॥ श्रीहरिः ॥

1364

श्रीविष्णुपुराण

[सचित्र, मोटा टाइप, केवल हिन्दी]

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीविष्णुपुराण

(सचित्र, मोटा टाइप, केवल हिन्दी)

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

निवेदन

भारतीय संस्कृतिके मूलाधारके रूपमें वेदोंके अनन्तर पुराणोंका ही सम्मानपूर्ण स्थान है। वेदोंमें वर्णित अगम रहस्योंतक जन-सामान्यकी पहुँच नहीं हो पाती, परंतु भक्तिरससे ओतप्रोत पुराणोंकी ज्ञानप्रदायिनी दिव्य कथाओंका श्रवण-मनन तथा पठन-पाठन करके जन-साधारण भी भक्ति-तत्त्वका अनुपम रहस्य ही हृदयङ्गम कर लेते हैं। ब्रह्माजीने समस्त शास्त्रोंमें सर्वप्रथम पुराणोंका ही स्मरण किया। पीछे उनके मुखसे वेदोंका प्राकट्य हुआ। इसलिये पुराण भी वेदार्थके ही बोधक हैं।

पुराणोंकी अनन्त ज्ञानराशिसे जन-जनको लाभान्वित करानेके उद्देश्यसे गीताप्रेस 'कल्याण' के माध्यमसे विशेषाङ्कोंके रूपमें समय-समयपर विभिन्न पुराणोंको प्रकाशित करता रहा है। उसी क्रममें 'श्रीविष्णुपुराण' का भी सानुवाद प्रकाशन किया गया था। हिन्दी-भाषा-भाषी पाठकोंकी सुविधाकी दृष्टिसे अब 'श्रीविष्णुपुराण' का केवल हिन्दी-अनुवाद (मोटे टाइपमें) पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत किया जा रहा है।

अष्टादश महापुराणोंकी शृंखलामें विष्णुपुराणका स्थान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। यह वैष्णव दर्शन तथा वैष्णव भक्ति-उपासनाका मूलाधार है। विष्णुपरक होनेपर भी इसमें शिव-भक्ति तथा शिव-चरित्रकी पूर्ण प्रतिष्ठा हुई है। ऐतिहासिक घटना-चक्रकी दृष्टिसे भी इस पुराणकी विशेष प्रधानता है। इस पुराणमें पुराणोंके पञ्चलक्षणोंका सम्यक् रूपसे परिपाक हुआ है। इसके प्रथम अंशमें विस्तारसे सृष्टिका वर्णन हुआ है। द्वितीय अंशमें भूगोल तथा खगोलका वर्णन है। तृतीय अंशमें मन्वन्तर, वेदकी शाखाओंका विस्तार, वर्णाश्रम-धर्म तथा श्राद्धोंका निरूपण किया गया है। चतुर्थ अंशमें मुख्यरूपसे सूर्य तथा चन्द्रवंशके राजाओंके दिव्य आख्यान, कलियुगके राजवंशोंका वर्णन तथा कलियुगकी श्रेष्ठता प्रदर्शित की गयी है। पञ्चम अंशमें विस्तारसे श्रीकृष्ण-चरित्र दिया गया है तथा षष्ठ अंशमें कलिधर्म-निरूपण, प्रलय-वर्णन और भगवान् वासुदेवके माहात्म्यके साथ केशिध्वज तथा खाण्डिक्यका महत्त्वपूर्ण आख्यान वर्णित है। साररूपमें कहा जाय तो यह पुराण भक्ति, ज्ञान तथा उपासनाका समुच्चय विलक्षण ग्रन्थ है। आशा है, श्रद्धालु पाठकगण 'कल्याण' के पुनर्मुद्रित विशेषाङ्कोंकी भाँति इसे भी अपनाकर इसके स्वाध्याय और मननके द्वारा अपने आत्मकल्याणका पथ प्रशस्त करेंगे।

—प्रकाशक

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

अध्याय विषय	पृष्ठ-संख्या

| **छठा अंश** | |

ॐ

श्रीमन्नारायणाय नमः

श्रीविष्णुपुराण

पहला अंश

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

पहला अध्याय

ग्रन्थका उपोद्घात

श्रीसूतजी बोले—मैत्रेयजीने नित्यकर्मोंसे निवृत्त हुए मुनिवर पराशरजीको प्रणाम कर एवं उनके चरण छूकर पूछा—॥ १॥ "हे गुरुदेव! मैंने आपहीसे सम्पूर्ण वेद, वेदांग और सकल धर्मशास्त्रोंका क्रमशः अध्ययन किया है॥ २॥ हे मुनिश्रेष्ठ! आपकी कृपासे मेरे विपक्षी भी मेरे लिये यह नहीं कह सकेंगे कि 'मैंने सम्पूर्ण शास्त्रोंके अभ्यासमें परिश्रम नहीं किया'॥ ३॥ हे धर्मज्ञ! हे महाभाग! अब मैं आपके मुखारविन्दसे यह सुनना चाहता हूँ कि यह जगत् किस प्रकार उत्पन्न हुआ और आगे भी (दूसरे कल्पके आरम्भमें) कैसे होगा?॥ ४॥ तथा हे ब्रह्मन्! इस संसारका उपादान-कारण क्या है? यह सम्पूर्ण चराचर किससे उत्पन्न हुआ है? यह पहले किसमें लीन था और आगे किसमें लीन हो जायगा?॥ ५॥ इसके अतिरिक्त [आकाश आदि] भूतोंका परिमाण, समुद्र, पर्वत तथा देवता आदिकी उत्पत्ति, पृथिवीका अधिष्ठान और सूर्य आदिका परिमाण तथा उनका आधार, देवता आदिके वंश, मनु, मन्वन्तर, [बार-बार आनेवाले] चारों युगोंमें विभक्त कल्प और कल्पोंके विभाग, प्रलयका स्वरूप, युगोंके पृथक्-पृथक् सम्पूर्ण धर्म, देवर्षि और राजर्षियोंके चरित्र, श्रीव्यासजीकृत वैदिक शाखाओंकी यथावत् रचना तथा ब्राह्मणादि वर्ण और ब्रह्मचर्यादि आश्रमोंके धर्म—ये सब, हे महामुनि शक्तिनन्दन! मैं आपसे सुनना चाहता हूँ॥ ६—१०॥ हे ब्रह्मन्! आप मेरे प्रति अपना चित्त प्रसादोन्मुख कीजिये जिससे हे महामुने! मैं आपकी कृपासे यह सब जान सकूँ"॥ ११॥

श्रीपराशरजी बोले—"हे धर्मज्ञ मैत्रेय! मेरे पिताजीके पिता श्रीवसिष्ठजीने जिसका वर्णन किया था, उस पूर्व प्रसंगका तुमने मुझे अच्छा स्मरण कराया—[इसके लिये तुम धन्यवादके पात्र हो]॥ १२॥ हे मैत्रेय ! जब मैंने सुना कि पिताजीको विश्वामित्रकी प्रेरणासे राक्षसने खा लिया है, तो मुझको बड़ा भारी क्रोध हुआ॥ १३॥ तब राक्षसोंका ध्वंस करनेके लिये मैंने यज्ञ करना आरम्भ किया। उस यज्ञमें सैकड़ों राक्षस जलकर भस्म हो गये॥ १४॥ इस प्रकार उन राक्षसोंको सर्वथा नष्ट होते देख मेरे महाभाग पितामह वसिष्ठजी मुझसे बोले—॥ १५॥ "हे वत्स! अत्यन्त क्रोध करना ठीक नहीं, अब इसे

शान्त करो। राक्षसोंका कुछ भी अपराध नहीं है, तुम्हारे पिताके लिये तो ऐसा ही होना था॥ १६॥ क्रोध तो मूर्खोंको ही हुआ करता है, विचारवानोंको भला कैसे हो सकता है? भैया! भला कौन किसीको मारता है? पुरुष स्वयं ही अपने कियेका फल भोगता है॥ १७॥ हे प्रियवर! यह क्रोध तो मनुष्यके अत्यन्त कष्टसे संचित यश और तपका भी प्रबल नाशक है॥ १८॥ हे तात! इस लोक और परलोक दोनोंको बिगाड़नेवाले इस क्रोधका महर्षिगण सर्वदा त्याग करते हैं, इसलिये तू इसके वशीभूत मत हो॥ १९॥ अब इन बेचारे निरपराध राक्षसोंको दग्ध करनेसे कोई लाभ नहीं; अपने इस यज्ञको समाप्त करो। साधुओंका धन तो सदा क्षमा ही है''॥ २०॥

महात्मा दादाजीके इस प्रकार समझानेपर उनकी बातोंके गौरवका विचार करके मैंने वह यज्ञ समाप्त कर दिया॥ २१॥ इससे मुनिश्रेष्ठ भगवान् वसिष्ठजी बहुत प्रसन्न हुए। उसी समय ब्रह्माजीके पुत्र पुलस्त्यजी वहाँ आये॥ २२॥ हे मैत्रेय! पितामह [वसिष्ठजी]-ने उन्हें अर्घ्य दिया, तब वे महर्षि पुलहके ज्येष्ठ भ्राता महाभाग पुलस्त्यजी आसन ग्रहण करके मुझसे बोले॥ २३॥

पुलस्त्यजी बोले—तुमने, चित्तमें बड़ा वैरभाव रहनेपर भी अपने बड़े-बूढ़े वसिष्ठजीके कहनेसे क्षमा स्वीकार की है, इसलिये तुम सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता होगे॥ २४॥ हे महाभाग! अत्यन्त क्रोधित होनेपर भी तुमने मेरी सन्तानका सर्वथा मूलोच्छेद नहीं किया; अतः मैं तुम्हें एक और उत्तम वर देता हूँ॥ २५॥ हे वत्स! तुम पुराणसंहिताके वक्ता होगे और देवताओंके यथार्थ स्वरूपको जानोगे॥ २६॥ तथा मेरे प्रसादसे तुम्हारी निर्मल बुद्धि प्रवृत्ति और निवृत्ति (भोग और मोक्ष)-के उत्पन्न करनेवाले कर्मोंमें निःसन्देह हो जायगी॥ २७॥ [पुलस्त्यजीके इस तरह कहनेके अनन्तर] फिर मेरे पितामह भगवान् वसिष्ठजी बोले—''पुलस्त्यजीने जो कुछ कहा है, वह सभी सत्य होगा''॥ २८॥

हे मैत्रेय! इस प्रकार पूर्वकालमें बुद्धिमान् वसिष्ठजी और पुलस्त्यजीने जो कुछ कहा था, वह सब तुम्हारे प्रश्नसे मुझे स्मरण हो आया है॥ २९॥ अतः हे मैत्रेय! तुम्हारे पूछनेसे मैं उस सम्पूर्ण पुराणसंहिताको तुम्हें सुनाता हूँ; तुम उसे भली प्रकार ध्यान देकर सुनो॥ ३०॥ यह जगत् विष्णुसे उत्पन्न हुआ है, उन्हींमें स्थित है, वे ही इसकी स्थिति और लयके कर्ता हैं तथा यह जगत् भी वे ही हैं॥ ३१॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पहले अंशमें पहला अध्याय समाप्त॥ १॥

दूसरा अध्याय

चौबीस तत्त्वोंके विचारके साथ जगत्के उत्पत्ति-क्रमका वर्णन और विष्णुकी महिमा

श्रीपराशरजी बोले—जो ब्रह्मा, विष्णु और शंकररूपसे जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहारके कारण हैं तथा अपने भक्तोंको संसार-सागरसे तारनेवाले हैं, उन विकाररहित, शुद्ध, अविनाशी, परमात्मा, सर्वदा एकरस, सर्वविजयी भगवान् वासुदेव विष्णुको नमस्कार है॥ १-२॥ जो एक होकर भी नाना रूपवाले हैं, स्थूल-सूक्ष्ममय हैं, अव्यक्त (कारण) एवं व्यक्त (कार्य) रूप हैं तथा [अपने अनन्य भक्तोंकी] मुक्तिके कारण हैं, [उन श्रीविष्णुभगवान्को नमस्कार है]॥ ३॥ जो विश्वरूप प्रभु विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और संहारके मूल-कारण हैं, उन परमात्मा विष्णुभगवान्को

नमस्कार है॥ ४॥ जो विश्वके अधिष्ठान हैं, अतिसूक्ष्मसे भी सूक्ष्म हैं, सर्व प्राणियोंमें स्थित पुरुषोत्तम और अविनाशी हैं, जो परमार्थतः (वास्तवमें) अति निर्मल ज्ञानस्वरूप हैं, किन्तु अज्ञानवश नाना पदार्थरूपसे प्रतीत होते हैं, तथा जो [कालस्वरूपसे] जगत्‌की उत्पत्ति और स्थितिमें समर्थ एवं उसका संहार करनेवाले हैं, उन जगदीश्वर, अजन्मा, अक्षय और अव्यय भगवान् विष्णुको प्रणाम करके तुम्हें वह सारा प्रसंग क्रमशः सुनाता हूँ जो दक्ष आदि मुनिश्रेष्ठोंके पूछनेपर पितामह भगवान् ब्रह्माजीने उनसे कहा था॥ ५—८॥

वह प्रसंग दक्ष आदि मुनियोंने नर्मदा-तटपर राजा पुरुकुत्सको सुनाया था तथा पुरुकुत्सने सारस्वतसे और सारस्वतने मुझसे कहा था॥ ९॥ 'जो पर (प्रकृति)-से भी पर, परमश्रेष्ठ, अन्तरात्मामें स्थित परमात्मा, रूप, वर्ण, नाम और विशेषण आदिसे रहित है; जिसमें जन्म, वृद्धि, परिणाम, क्षय और नाश—इन छः विकारोंका सर्वथा अभाव है; जिसको सर्वदा केवल 'है' इतना ही कह सकते हैं, तथा जिनके लिये यह प्रसिद्ध है कि 'वे सर्वत्र हैं और उनमें समस्त विश्व बसा हुआ है—इसलिये ही विद्वान् जिसको वासुदेव कहते हैं' वही नित्य, अजन्मा, अक्षय, अव्यय, एकरस और हेय गुणोंके अभावके कारण निर्मल परब्रह्म है॥ १०—१३॥ वही इन सब व्यक्त (कार्य) और अव्यक्त (कारण) जगत्‌के रूपसे, तथा इसके साक्षी पुरुष और महाकारण कालके रूपसे स्थित है॥ १४॥ हे द्विज! परब्रह्मका प्रथम रूप पुरुष है, अव्यक्त (प्रकृति) और व्यक्त (महदादि) उसके अन्य रूप हैं तथा [सबको क्षोभित करनेवाला होनेसे] काल उसका परमरूप है॥ १५॥

इस प्रकार जो प्रधान, पुरुष, व्यक्त और काल—इन चारोंसे परे है तथा जिसे पण्डितजन ही देख पाते हैं वही भगवान् विष्णुका परमपद है॥ १६॥ प्रधान, पुरुष, व्यक्त और काल—ये [भगवान् विष्णुके] रूप पृथक्-पृथक् संसारकी उत्पत्ति, पालन और संहारके प्रकाश तथा उत्पादनमें कारण हैं॥ १७॥ भगवान् विष्णु जो व्यक्त, अव्यक्त, पुरुष और कालरूपसे स्थित होते हैं, इसे उनकी बालवत् क्रीडा ही समझो॥ १८॥

उनमेंसे अव्यक्त कारणको, जो सदसद्रूप (कारण-शक्तिविशिष्ट) और नित्य (सदा एकरस) है, श्रेष्ठ मुनिजन प्रधान तथा सूक्ष्म प्रकृति कहते हैं॥ १९॥ वह क्षयरहित है, उसका कोई अन्य आधार भी नहीं है तथा अप्रमेय, अजर, निश्चल शब्द-स्पर्शादिशून्य और रूपादिरहित है॥ २०॥ वह त्रिगुणमय और जगत्‌का कारण है तथा स्वयं अनादि एवं उत्पत्ति और लयसे रहित है। यह सम्पूर्ण प्रपंच प्रलयकालसे लेकर सृष्टिके आदितक उसीसे व्याप्त था॥ २१॥ हे विद्वन्! श्रुतिके मर्मको जाननेवाले, श्रुतिपरायण ब्रह्मवेत्ता महात्मागण इसी अर्थको लक्ष्य करके प्रधानके प्रतिपादक इस (निम्नलिखित) श्लोकको कहा करते हैं—॥ २२॥ 'उस समय (प्रलयकालमें) न दिन था, न रात्रि थी, न आकाश था, न पृथिवी थी, न अन्धकार था, न प्रकाश था और न इनके अतिरिक्त कुछ और ही था। बस, श्रोत्रादि इन्द्रियों और बुद्धि आदिका अविषय एक प्रधान ब्रह्म और पुरुष ही था'॥ २३॥

हे विप्र! विष्णुके परम (उपाधिरहित) स्वरूपसे प्रधान और पुरुष—ये दो रूप हुए; उसी (विष्णु)-के जिस अन्य रूपके द्वारा वे दोनों [सृष्टि और प्रलयकालमें] संयुक्त और वियुक्त होते हैं, उस रूपान्तरका ही नाम 'काल' है॥ २४॥ बीते हुए प्रलयकालमें यह व्यक्त प्रपंच प्रकृतिमें लीन था, इसलिये प्रपंचके इस प्रलयको प्राकृत प्रलय कहते हैं॥ २५॥ हे द्विज! कालरूप भगवान्

अनादि हैं, इनका अन्त नहीं है इसलिये संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय भी कभी नहीं रुकते [वे प्रवाहरूपसे निरन्तर होते रहते हैं] ॥ २६ ॥

हे मैत्रेय! प्रलयकालमें प्रधान (प्रकृति)-के साम्यावस्थामें स्थित हो जानेपर और पुरुषके प्रकृतिसे पृथक् स्थित हो जानेपर विष्णुभगवान्‌का कालरूप [इन दोनोंको धारण करनेके लिये] प्रवृत्त होता है ॥ २७ ॥ तदनन्तर [सर्गकाल उपस्थित होनेपर] उन परब्रह्म परमात्मा विश्वरूप सर्वव्यापी सर्वभूतेश्वर सर्वात्मा परमेश्वरने अपनी इच्छासे विकारी प्रधान और अविकारी पुरुषमें प्रविष्ट होकर उनको क्षोभित किया ॥ २८-२९ ॥ जिस प्रकार क्रियाशील न होनेपर भी गन्ध अपनी सन्निधिमात्रसे ही मनको क्षुभित कर देता है उसी प्रकार परमेश्वर अपनी सन्निधिमात्रसे ही प्रधान और पुरुषको प्रेरित करते हैं ॥ ३० ॥ हे ब्रह्मन्! वह पुरुषोत्तम ही इनको क्षोभित करनेवाले हैं और वे ही क्षुब्ध होते हैं तथा संकोच (साम्य) और विकास (क्षोभ) युक्त प्रधानरूपसे भी वे ही स्थित हैं ॥ ३१ ॥ ब्रह्मादि समस्त ईश्वरोंके ईश्वर वे विष्णु ही समष्टि-व्यष्टिरूप, ब्रह्मादि जीवरूप तथा महत्तत्त्वरूपसे स्थित हैं ॥ ३२ ॥

हे द्विजश्रेष्ठ! सर्गकालके प्राप्त होनेपर गुणोंकी साम्यावस्थारूप प्रधान जब विष्णुके क्षेत्रज्ञरूपसे अधिष्ठित हुआ तो उससे महत्तत्त्वकी उत्पत्ति हुई ॥ ३३ ॥ उत्पन्न हुए महान्‌को प्रधानतत्त्वने आवृत किया; महत्तत्त्व सात्त्विक, राजस और तामस भेदसे तीन प्रकारका है। किन्तु जिस प्रकार बीज छिलकेसे समभावसे ढँका रहता है वैसे ही यह त्रिविध महत्तत्त्व प्रधान-तत्त्वसे सब ओर व्याप्त है। फिर त्रिविध महत्तत्त्वसे ही वैकारिक (सात्त्विक) तैजस (राजस) और तामस भूतादि तीन प्रकारका अहंकार उत्पन्न हुआ। हे महामुने! वह त्रिगुणात्मक होनेसे भूत और इन्द्रिय आदिका कारण है और प्रधानसे जैसे महत्तत्त्व व्याप्त है, वैसे ही महत्तत्त्वसे वह (अहंकार) व्याप्त है ॥ ३४—३६ ॥ भूतादि नामक तामस अहंकारने विकृत होकर शब्द-तन्मात्रा और उससे शब्द-गुणवाले आकाशकी रचना की ॥ ३७ ॥ उस भूतादि तामस अहंकारने शब्द-तन्मात्रारूप आकाशको व्याप्त किया। फिर [शब्द-तन्मात्रारूप] आकाशने विकृत होकर स्पर्श-तन्मात्राको रचा ॥ ३८ ॥ उस (स्पर्श-तन्मात्रा)-से बलवान् वायु हुआ, उसका गुण स्पर्श माना गया है। शब्द-तन्मात्रारूप आकाशने स्पर्श-तन्मात्रावाले वायुको आवृत किया है ॥ ३९ ॥ फिर [स्पर्श-तन्मात्रारूप] वायुने विकृत होकर रूप-तन्मात्राकी सृष्टि की। (रूप-तन्मात्रायुक्त) वायुसे तेज उत्पन्न हुआ है, उसका गुण रूप कहा जाता है ॥ ४० ॥ स्पर्श-तन्मात्रारूप वायुने रूप-तन्मात्रावाले तेजको आवृत किया। फिर [रूप-तन्मात्रामय] तेजने भी विकृत होकर रस-तन्मात्राकी रचना की ॥ ४१ ॥ उस (रस-तन्मात्रारूप)-से रस-गुणवाला जल हुआ। रस-तन्मात्रावाले जलको रूप-तन्मात्रामय तेजने आवृत किया ॥ ४२ ॥ [रस-तन्मात्रारूप] जलने विकारको प्राप्त होकर गन्ध-तन्मात्राकी सृष्टि की, उससे पृथिवी उत्पन्न हुई है जिसका गुण गन्ध माना जाता है ॥ ४३ ॥ उन-उन आकाशादि भूतोंमें तन्मात्रा है [अर्थात् केवल उनके गुण शब्दादि ही हैं] इसलिये वे तन्मात्रा (गुणरूप) ही कहे गये हैं ॥ ४४ ॥ तन्मात्राओंमें विशेष भाव नहीं है इसलिये उनकी अविशेष संज्ञा है ॥ ४५ ॥ वे अविशेष तन्मात्राएँ शान्त, घोर अथवा मूढ़ नहीं हैं [अर्थात् उनका सुख-दुःख या मोहरूपसे अनुभव नहीं हो सकता] इस प्रकार तामस अहंकारसे यह भूत-तन्मात्रारूप सर्ग हुआ है ॥ ४६ ॥

दस इन्द्रियाँ तैजस अर्थात् राजस अहंकारसे और उनके अधिष्ठाता देवता वैकारिक अर्थात् सात्त्विक अहंकारसे उत्पन्न हुए कहे जाते हैं। इस प्रकार इन्द्रियोंके अधिष्ठाता दस देवता और ग्यारहवाँ मन वैकारिक (सात्त्विक) हैं॥ ४७॥ हे द्विज! त्वक्, चक्षु, नासिका, जिह्वा और श्रोत्र—ये पाँचों बुद्धिकी सहायतासे शब्दादि विषयोंको ग्रहण करनेवाली पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं॥ ४८॥ हे मैत्रेय! पायु (गुदा), उपस्थ (लिंग), हस्त, पाद और वाक्—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। इनके कर्म [मल-मूत्रका] त्याग, शिल्प, गति और वचन बतलाये जाते हैं॥ ४९॥ आकाश, वायु, तेज, जल और पृथिवी—ये पाँचों भूत उत्तरोत्तर (क्रमशः) शब्द-स्पर्श आदि पाँच गुणोंसे युक्त हैं॥ ५०॥ ये पाँचों भूत शान्त घोर और मूढ हैं [अर्थात् सुख, दुःख और मोहयुक्त हैं] अतः ये विशेष कहलाते हैं*॥ ५१॥

इन भूतोंमें पृथक्-पृथक् नाना शक्तियाँ हैं। अतः वे परस्पर पूर्णतया मिले बिना संसारकी रचना नहीं कर सके॥ ५२॥ इसलिये एक-दूसरेके आश्रय रहनेवाले और एक ही संघातकी उत्पत्तिके लक्ष्यवाले महत्तत्त्वसे लेकर विशेषपर्यन्त प्रकृतिके इन सभी विकारोंने पुरुषसे अधिष्ठित होनेके कारण परस्पर मिलकर सर्वथा एक होकर प्रधान-तत्त्वके अनुग्रहसे अण्डकी उत्पत्ति की॥ ५३-५४॥ हे महाबुद्धे! जलके बुलबुलेके समान क्रमशः भूतोंसे बढ़ा हुआ वह गोलाकार और जलपर स्थित महान् अण्ड ब्रह्म (हिरण्यगर्भ) रूप विष्णुका अति उत्तम प्राकृत आधार हुआ॥ ५५॥ उसमें वे अव्यक्तस्वरूप जगत्पति विष्णु व्यक्त हिरण्यगर्भरूपसे स्वयं ही विराजमान हुए॥ ५६॥ उन महात्मा हिरण्यगर्भका सुमेरु उल्ब (गर्भको ढँकनेवाली झिल्ली), अन्य पर्वत, जरायु (गर्भाशय) तथा समुद्र गर्भाशयस्थ रस था॥ ५७॥ हे विप्र! उस अण्डमें ही पर्वत और द्वीपादिके सहित समुद्र, ग्रह-गणके सहित सम्पूर्ण लोक तथा देव, असुर और मनुष्य आदि विविध प्राणिवर्ग प्रकट हुए॥ ५८॥ वह अण्ड पूर्व-पूर्वकी अपेक्षा दस-दस-गुण अधिक जल, अग्नि, वायु, आकाश और भूतादि अर्थात् तामस-अहंकारसे आवृत है तथा भूतादि महत्तत्त्वसे घिरा हुआ है॥ ५९॥ और इन सबके सहित वह महत्तत्त्व भी अव्यक्त प्रधानसे आवृत है। इस प्रकार जैसे नारियलके फलका भीतरी बीज बाहरसे कितने ही छिलकोंसे ढँका रहता है वैसे ही यह अण्ड इन सात प्राकृत आवरणोंसे घिरा हुआ है॥ ६०॥

उसमें स्थित हुए स्वयं विश्वेश्वर भगवान् विष्णु ब्रह्मा होकर रजोगुणका आश्रय लेकर इस संसारकी रचनामें प्रवृत्त होते हैं॥ ६१॥ तथा रचना हो जानेपर सत्त्वगुण-विशिष्ट अतुल पराक्रमी भगवान् विष्णु उसका कल्पान्तपर्यन्त युग-युगमें पालन करते हैं॥ ६२॥ हे मैत्रेय! फिर कल्पका अन्त होनेपर अति दारुण तमःप्रधान रुद्ररूप धारण कर वे जनार्दन विष्णु ही समस्त भूतोंका भक्षण कर लेते हैं॥ ६३॥ इस प्रकार समस्त भूतोंका भक्षण कर संसारको जलमय करके वे परमेश्वर शेषशय्यापर शयन करते हैं॥ ६४॥ जगनेपर ब्रह्मारूप होकर वे फिर जगत्की रचना करते हैं॥ ६५॥ वह एक ही भगवान् जनार्दन जगत्की सृष्टि, स्थिति और संहारके लिये ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन तीन संज्ञाओंको धारण करते हैं॥ ६६॥ वे प्रभु विष्णु स्रष्टा (ब्रह्मा)

* परस्पर मिलनेसे सभी भूत शान्त, घोर और मूढ प्रतीत होते हैं, पृथक्-पृथक् तो पृथिवी और जल शान्त हैं, तेज और वायु घोर हैं तथा आकाश मूढ है।

होकर अपनी ही सृष्टि करते हैं, पालक विष्णु होकर पाल्यरूप अपना ही पालन करते हैं और अन्तमें स्वयं ही संहारक (शिव) तथा स्वयं ही उपसंहृत (लीन) होते हैं॥ ६७॥ पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश तथा समस्त इन्द्रियाँ और अन्तःकरण आदि जितना जगत् है सब पुरुषरूप है और क्योंकि वह अव्यय विष्णु ही विश्वरूप और सब भूतोंके अन्तरात्मा हैं, इसलिये ब्रह्मादि प्राणियोंमें स्थित सर्गादिक भी उन्हींके उपकारक हैं। [अर्थात् जिस प्रकार ऋत्विजोंद्वारा किया हुआ हवन यजमानका उपकारक होता है, उसी तरह परमात्माके रचे हुए समस्त प्राणियोंद्वारा होनेवाली सृष्टि भी उन्हींकी उपकारक है]॥ ६८-६९॥ वे सर्वस्वरूप, श्रेष्ठ, वरदायक और वरेण्य (प्रार्थनाके योग्य) भगवान् विष्णु ही ब्रह्मा आदि अवस्थाओंद्वारा रचनेवाले हैं, वे ही रचे जाते हैं, वे ही पालते हैं, वे ही पालित होते हैं तथा वे ही संहार करते हैं [और स्वयं ही संहृत होते हैं]॥ ७०॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पहले अंशमें दूसरा अध्याय समाप्त॥ २॥

तीसरा अध्याय

ब्रह्मादिकी आयु और कालका स्वरूप

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे भगवन्! जो ब्रह्म निर्गुण, अप्रमेय, शुद्ध और निर्मलात्मा है उसका सर्गादिका कर्त्ता होना कैसे सिद्ध हो सकता है?॥ १॥

श्रीपराशरजी बोले—हे तपस्वियोंमें श्रेष्ठ मैत्रेय! समस्त भाव-पदार्थोंकी शक्तियाँ अचिन्त्य-ज्ञानकी विषय होती हैं; [उनमें कोई युक्ति काम नहीं देती] अतः अग्निकी शक्ति उष्णताके समान ब्रह्मकी भी सर्गादि-रचनारूप शक्तियाँ स्वाभाविक हैं॥ २॥ अब जिस प्रकार नारायण नामक लोक-पितामह भगवान् ब्रह्माजी सृष्टिकी रचनामें प्रवृत्त होते हैं सो सुनो। हे विद्वन्! वे सदा उपचारसे ही 'उत्पन्न हुए' कहलाते हैं॥ ३-४॥ उनके अपने परिमाणसे उनकी आयु सौ वर्षकी कही जाती है। उस (सौ वर्ष)-का नाम पर है, उसका आधा परार्द्ध कहलाता है॥ ५॥

हे अनघ! मैंने जो तुमसे विष्णुभगवान्‌का कालस्वरूप कहा था उसीके द्वारा उस ब्रह्माकी तथा और भी जो पृथिवी, पर्वत, समुद्र आदि चराचर जीव हैं उनकी आयुका परिमाण किया जाता है॥ ६-७॥ हे मुनिश्रेष्ठ! पन्द्रह निमेषको काष्ठा कहते हैं, तीस काष्ठाकी एक कला तथा तीस कलाका एक मुहूर्त होता है॥ ८॥ तीस मुहूर्त्तका मनुष्यका एक दिन-रात कहा जाता है और उतने ही दिन-रातका दो पक्षयुक्त एक मास होता है॥ ९॥ छः महीनोंका एक अयन और दक्षिणायन तथा उत्तरायण दो अयन मिलकर एक वर्ष होता है। दक्षिणायन देवताओंकी रात्रि है और उत्तरायण दिन॥ १०॥ देवताओंके बारह हजार वर्षोंके सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग नामक चार युग होते हैं। उनका अलग-अलग परिमाण मैं तुम्हें सुनाता हूँ॥ ११॥ पुरातत्त्वके जाननेवाले सतयुग आदिका परिमाण क्रमशः चार, तीन, दो और एक हजार दिव्य वर्ष बतलाते हैं॥ १२॥ प्रत्येक युगके पूर्व उतने ही सौ वर्षकी सन्ध्या बतायी जाती है और युगके पीछे उतने ही परिमाणवाले सन्ध्यांश होते हैं [अर्थात् सतयुग आदिके पूर्व क्रमशः चार, तीन, दो और

एक सौ दिव्य वर्षकी सन्ध्याएँ और इतने ही वर्षके सन्ध्यांश होते हैं] ॥ १३ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ! इन सन्ध्या और सन्ध्यांशोंके बीचका जितना काल होता है, उसे ही सतयुग आदि नामवाले युग जानना चाहिये ॥ १४ ॥

हे मुने! सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलि ये मिलकर चतुर्युग कहलाते हैं; ऐसे हजार चतुर्युगका ब्रह्माका एक दिन होता है ॥ १५ ॥ हे ब्रह्मन्! ब्रह्माके एक दिनमें चौदह मनु होते हैं। उनका कालकृत परिमाण सुनो ॥ १६ ॥ सप्तर्षि, देवगण, इन्द्र, मनु और मनुके पुत्र राजालोग [पूर्वकल्पानुसार] एक ही कालमें रचे जाते हैं और एक ही कालमें उनका संहार किया जाता है ॥ १७ ॥ हे सत्तम! इकहत्तर चतुर्युगसे कुछ अधिक* कालका एक मन्वन्तर होता है। यही मनु और देवता आदिका काल है ॥ १८ ॥ इस प्रकार दिव्य वर्ष-गणनासे एक मन्वन्तरमें आठ लाख बावन हजार वर्ष बताये जाते हैं ॥ १९ ॥ तथा हे महामुने! मानवी वर्ष-गणनाके अनुसार मन्वन्तरका परिमाण पूरे तीस करोड़ सरसठ लाख बीस हजार वर्ष है, इससे अधिक नहीं ॥ २०-२१ ॥ इस कालका चौदह गुना ब्रह्माका दिन होता है, इसके अनन्तर नैमित्तिक नामवाला ब्राह्म-प्रलय होता है ॥ २२ ॥

उस समय भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक तीनों जलने लगते हैं और महर्लोकमें रहनेवाले सिद्धगण अति सन्तप्त होकर जनलोकको चले जाते हैं ॥ २३ ॥ इस प्रकार त्रिलोकीके जलमय हो जानेपर जनलोकवासी योगियोंद्वारा ध्यान किये जाते हुए नारायणरूप कमलयोनि ब्रह्माजी त्रिलोकीके ग्राससे तृप्त होकर दिनके बराबर ही परिमाणवाली उस रात्रिमें शेषशय्यापर शयन करते हैं और उसके बीत जानेपर पुनः संसारकी सृष्टि करते हैं ॥ २४-२५ ॥ इसी प्रकार (पक्ष, मास आदि) गणनासे ब्रह्माका एक वर्ष और फिर सौ वर्ष होते हैं। ब्रह्माके सौ वर्ष ही उस महात्मा (ब्रह्मा) की परमायु हैं ॥ २६ ॥ हे अनघ! उन ब्रह्माजीका एक परार्द्ध बीत चुका है। उसके अन्तमें पाद्म नामसे विख्यात महाकल्प हुआ था ॥ २७ ॥ हे द्विज! इस समय वर्तमान उनके दूसरे परार्द्धका यह वाराह नामक पहला कल्प कहा गया है ॥ २८ ॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पहले अंशमें तीसरा अध्याय समाप्त ॥ ३ ॥

चौथा अध्याय

ब्रह्माजीकी उत्पत्ति वराहभगवान्द्वारा पृथिवीका उद्धार और ब्रह्माजीकी लोक-रचना

श्रीमैत्रेय बोले—हे महामुने! कल्पके आदिमें नारायणाख्य भगवान् ब्रह्माजीने जिस प्रकार समस्त भूतोंकी रचना की वह आप वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

श्रीपराशरजी बोले—प्रजापतियोंके स्वामी नारायणस्वरूप भगवान् ब्रह्माजीने जिस प्रकार प्रजाकी सृष्टि की थी वह मुझसे सुनो ॥ २ ॥ पिछले कल्पका अन्त होनेपर रात्रिमें सोकर उठनेपर सत्त्वगुणके उद्रेकसे युक्त भगवान् ब्रह्माजीने सम्पूर्ण लोकोंको शून्यमय देखा ॥ ३ ॥ वे भगवान् नारायण पर हैं, अचिन्त्य हैं, ब्रह्मा, शिव आदि

---

* इकहत्तर चतुर्युगके हिसाबसे चौदह मन्वन्तरोंमें ९९४ चतुर्युग होते हैं और ब्रह्माके एक दिनमें एक हजार चतुर्युग होते हैं, अतः छः चतुर्युग और बचे। छः चतुर्युगका चौदहवाँ भाग कुछ कम पाँच हजार एक सौ तीन दिव्य वर्ष होता है, इस प्रकार एक मन्वन्तरमें इकहत्तर चतुर्युगके अतिरिक्त इतने दिव्य वर्ष और अधिक होते हैं।

ईश्वरोंके भी ईश्वर हैं, ब्रह्मस्वरूप हैं, अनादि हैं और सबकी उत्पत्तिके स्थान हैं॥ ४॥ [मनु आदि स्मृतिकार] उन ब्रह्मस्वरूप श्रीनारायणदेवके विषयमें जो इस जगत्‌की उत्पत्ति और लयके स्थान हैं, यह श्लोक कहते हैं॥ ५॥ नर [अर्थात् पुरुष—भगवान् पुरुषोत्तम]-से उत्पन्न होनेके कारण जलको 'नार' कहते हैं; वह नार (जल) ही उनका प्रथम अयन (निवास-स्थान) है। इसलिये भगवान्‌को 'नारायण' कहा है॥ ६॥

सम्पूर्ण जगत् जलमय हो रहा था। इसलिये प्रजापति ब्रह्माजीने अनुमानसे पृथिवीको जलके भीतर जान उसे बाहर निकालनेकी इच्छासे एक दूसरा शरीर धारण किया। उन्होंने पूर्व-कल्पोंके आदिमें जैसे मत्स्य, कूर्म आदि रूप धारण किये थे वैसे ही इस वाराह कल्पके आरम्भमें वेदयज्ञमय वाराह शरीर ग्रहण किया और सम्पूर्ण जगत्‌की स्थितिमें तत्पर हो सबके अन्तरात्मा और अविचल रूप वे परमात्मा प्रजापति ब्रह्माजी, जो पृथिवीको धारण करनेवाले और अपने ही आश्रयसे स्थित हैं, जन-लोकस्थित सनकादि सिद्धेश्वरोंसे स्तुति किये जाते हुए जलमें प्रविष्ट हुए॥ ७—१०॥ तब उन्हें पाताललोकमें आये देख देवी वसुन्धरा अति भक्तिविनम्र हो उनकी स्तुति करने लगी॥ ११॥

पृथिवी बोली—हे शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण करनेवाले कमलनयन भगवन्! आपको नमस्कार है। आज आप इस पातालतलसे मेरा उद्धार कीजिये। पूर्वकालमें आपहीसे मैं उत्पन्न हुई थी॥ १२॥ हे जनार्दन! पहले भी आपहीने मेरा उद्धार किया था। और हे प्रभो! मेरे तथा आकाशादि अन्य सब भूतोंके भी आप ही उपादान-कारण हैं॥ १३॥ हे परमात्मस्वरूप! आपको नमस्कार है। हे पुरुषात्मन्! आपको नमस्कार है। हे प्रधान (कारण) और व्यक्त (कार्य) रूप! आपको नमस्कार है। हे कालस्वरूप! आपको बारम्बार नमस्कार है॥ १४॥ हे प्रभो! जगत्‌की सृष्टि आदिके लिये ब्रह्मा, विष्णु और रुद्ररूप धारण करनेवाले आप ही सम्पूर्ण भूतोंकी उत्पत्ति, पालन और नाश करनेवाले हैं॥ १५॥ और जगत्‌के एकार्णवरूप (जलमय) हो जानेपर, हे गोविन्द! सबको भक्षणकर अन्तमें आप ही मनीषिजनोंद्वारा चिन्तित होते हुए जलमें शयन करते हैं॥ १६॥ हे प्रभो! आपका जो परतत्त्व है उसे तो कोई भी नहीं जानता; अतः आपका जो रूप अवतारोंमें प्रकट होता है उसीकी देवगण पूजा करते हैं॥ १७॥ आप परब्रह्मकी ही आराधना करके मुमुक्षुजन मुक्त होते हैं। भला वासुदेवकी आराधना किये बिना कौन मोक्ष प्राप्त कर सकता है?॥ १८॥ मनसे जो कुछ ग्रहण (संकल्प) किया जाता है, चक्षु आदि इन्द्रियोंसे जो कुछ ग्रहण (विषय) करनेयोग्य है, बुद्धिद्वारा जो कुछ विचारणीय है वह सब आपहीका रूप है॥ १९॥ हे प्रभो! मैं आपहीका रूप हूँ, आपहीके आश्रित हूँ और आपहीके द्वारा रची गयी हूँ तथा आपहीकी शरणमें हूँ। इसीलिये लोकमें मुझे 'माधवी' भी कहते हैं॥ २०॥ हे सम्पूर्ण ज्ञानमय! हे स्थूलमय! हे अव्यय! आपकी जय हो। हे अनन्त! हे अव्यक्त! हे व्यक्तमय प्रभो! आपकी जय हो॥ २१॥ हे परापरस्वरूप! हे विश्वात्मन्! हे यज्ञपते! हे अनघ! आपकी जय हो। हे प्रभो! आप ही यज्ञ हैं, आप ही वषट्कार हैं, आप ही ओंकार हैं और आप ही (आहवनीयादि) अग्नियाँ हैं॥ २२॥ हे हरे! आप ही वेद, वेदांग और यज्ञपुरुष हैं तथा सूर्य आदि ग्रह, तारे, नक्षत्र और सम्पूर्ण जगत् भी आप ही हैं॥ २३॥ हे पुरुषोत्तम!

हे परमेश्वर! मूर्त-अमूर्त, दृश्य-अदृश्य तथा जो कुछ मैंने कहा है और जो नहीं कहा, वह सब आप ही हैं। अतः आपको नमस्कार है, बारम्बार नमस्कार है॥ २४॥

श्रीपराशरजी बोले—पृथिवीद्वारा इस प्रकार स्तुति किये जानेपर सामस्वर ही जिनकी ध्वनि है उन भगवान् धरणीधरने घर्घर शब्दसे गर्जना की॥ २५॥ फिर विकसित कमलके समान नेत्रोंवाले उन महावराहने अपनी डाढ़ोंसे पृथिवीको उठा लिया और वे कमल-दलके समान श्याम तथा नीलाचलके सदृश विशालकाय भगवान् रसातलसे बाहर निकले॥ २६॥ निकलते समय उनके मुखके श्वाससे उछलते हुए जलने जनलोकमें रहनेवाले महातेजस्वी और निष्पाप सनन्दनादि मुनीश्वरोंको भिगो दिया॥ २७॥ जल बड़ा शब्द करता हुआ उनके खुरोंसे विदीर्ण हुए रसातलमें नीचेकी ओर जाने लगा और जनलोकमें रहनेवाले सिद्धगण उनके श्वास-वायुसे विक्षिप्त होकर इधर-उधर भागने लगे॥ २८॥ जिनकी कुक्षि जलमें भीगी हुई है वे महावराह जिस समय अपने वेदमय शरीरको कँपाते हुए पृथिवीको लेकर बाहर निकले उस समय उनकी रोमावलीमें स्थित मुनिजन स्तुति करने लगे॥ २९॥ उन निश्शंक और उन्नत दृष्टिवाले धराधर भगवान्‌की जनलोकमें रहनेवाले सनन्दनादि योगीश्वरोंने प्रसन्नचित्तसे अति नम्रतापूर्वक सिर झुकाकर इस प्रकार स्तुति की॥ ३०॥

'हे ब्रह्मादि ईश्वरोंके भी परम ईश्वर! हे केशव! हे शंख-गदाधर! हे खड्ग-चक्रधारी प्रभो! आपकी जय हो। आप ही संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और नाशके कारण हैं तथा आप ही ईश्वर हैं और जिसे परम पद कहते हैं वह भी आपसे अतिरिक्त और कुछ नहीं है॥ ३१॥ हे यूपरूपी डाढ़ोंवाले प्रभो! आप ही यज्ञपुरुष हैं। आपके चरणोंमें चारों वेद हैं, दाँतोंमें यज्ञ हैं, मुखमें [श्येन चित आदि] चितियाँ हैं। हुताशन (यज्ञाग्नि) आपकी जिह्वा है तथा कुशाएँ रोमावलि हैं॥ ३२॥ हे महात्मन्! रात और दिन आपके नेत्र हैं तथा सबका आधारभूत परब्रह्म आपका सिर है। हे देव! वैष्णव आदि समस्त सूक्त आपके सटाकलाप (स्कन्धके रोम-गुच्छ) हैं और समग्र हवि आपके प्राण हैं॥ ३३॥ हे प्रभो! स्रुक् आपका तुण्ड (थूथनी) है, सामस्वर धीर-गम्भीर शब्द है, प्राग्वंश (यजमानगृह) शरीर है तथा सत्र शरीरकी सन्धियाँ हैं। हे देव! इष्ट (श्रौत) और पूर्त (स्मार्त) धर्म आपके कान हैं। हे नित्यस्वरूप भगवन्! प्रसन्न होइये॥ ३४॥ हे अक्षर! हे विश्वमूर्ते! अपने पाद-प्रहारसे भूमण्डलको व्याप्त करनेवाले आपको हम विश्वके आदिकारण समझते हैं। आप सम्पूर्ण चराचर जगत्‌के परमेश्वर और नाथ हैं; अतः प्रसन्न होइये॥ ३५॥ हे नाथ! आपकी डाढ़ोंपर रखा हुआ यह सम्पूर्ण भूमण्डल ऐसा प्रतीत होता है मानो कमलवनको रौंदते हुए गजराजके दाँतोंसे कोई कीचड़में सना हुआ कमलका पत्ता लगा हो॥ ३६॥ हे अनुपम प्रभावशाली प्रभो! पृथिवी और आकाशके बीचमें जितना अन्तर है वह आपके शरीरसे ही व्याप्त है। हे विश्वको व्याप्त करनेमें समर्थ तेजयुक्त प्रभो! आप विश्वका कल्याण कीजिये॥ ३७॥

हे जगत्पते! परमार्थ (सत्य वस्तु) तो एकमात्र आप ही हैं, आपके अतिरिक्त और कोई भी नहीं है। यह आपकी ही महिमा (माया) है जिससे यह सम्पूर्ण चराचर जगत् व्याप्त है॥ ३८॥ यह जो कुछ भी मूर्तिमान् जगत् दिखायी देता है ज्ञानस्वरूप आपहीका रूप है। अजितेन्द्रिय लोग भ्रमसे इसे जगत्-रूप देखते हैं॥ ३९॥ इस सम्पूर्ण

ज्ञानस्वरूप जगत्‌को बुद्धिहीन लोग अर्थरूप देखते हैं, अतः वे निरन्तर मोहमय संसार-सागरमें भटका करते हैं॥ ४०॥ हे परमेश्वर! जो लोग शुद्धचित्त और विज्ञानवेत्ता हैं वे इस सम्पूर्ण संसारको आपका ज्ञानात्मक स्वरूप ही देखते हैं॥ ४१॥ हे सर्व! हे सर्वात्मन्! प्रसन्न होइये। हे अप्रमेयात्मन्! हे कमलनयन! संसारके निवासके लिये पृथिवीका उद्धार करके हमको शान्ति प्रदान कीजिये॥ ४२॥ हे भगवन्! हे गोविन्द! इस समय आप सत्त्वप्रधान हैं; अतः हे ईश! जगत्‌के उद्भवके लिये आप इस पृथिवीका उद्धार कीजिये और हे कमलनयन! हमको शान्ति प्रदान कीजिये॥ ४३॥ आपके द्वारा यह सर्गकी प्रवृत्ति संसारका उपकार करनेवाली हो। हे कमलनयन! आपको नमस्कार है, आप हमको शान्ति प्रदान कीजिये॥ ४४॥

श्रीपराशरजी बोले—इस प्रकार स्तुति किये जानेपर पृथिवीको धारण करनेवाले परमात्मा वराहजीने उसे शीघ्र ही उठाकर अपार जलके ऊपर स्थापित कर दिया॥ ४५॥ उस जलसमूहके ऊपर वह एक बहुत बड़ी नौकाके समान स्थित है और बहुत विस्तृत आकार होनेके कारण उसमें डूबती नहीं है॥ ४६॥ फिर उन अनादि परमेश्वरने पृथिवीको समतल कर उसपर जहाँ-तहाँ पर्वतोंको विभाग करके स्थापित कर दिया॥ ४७॥ सत्यसंकल्प भगवान्‌ने अपने अमोघ प्रभावसे पूर्वकल्पके अन्तमें दग्ध हुए समस्त पर्वतोंको पृथिवी-तलपर यथास्थान रच दिया॥ ४८॥ तदनन्तर उन्होंने सप्तद्वीपादि-क्रमसे पृथिवीका यथायोग्य विभाग कर भूर्लोकादि चारों लोकोंकी पूर्ववत् कल्पना कर दी॥ ४९॥ फिर उन भगवान् हरिने रजोगुणसे युक्त हो चतुर्मुखधारी ब्रह्मारूप धारण कर सृष्टिकी रचना की॥ ५०॥ सृष्टिकी रचनामें भगवान् तो केवल निमित्तमात्र ही हैं, क्योंकि उसकी प्रधान कारण तो सृज्य पदार्थोंकी शक्तियाँ ही हैं॥ ५१॥ हे तपस्वियोंमें श्रेष्ठ मैत्रेय! वस्तुओंकी रचनामें निमित्तमात्रको छोड़कर और किसी बातकी आवश्यकता भी नहीं है, क्योंकि वस्तु तो अपनी ही [परिणाम] शक्तिसे वस्तुता (स्थूलरूपता)-को प्राप्त हो जाती है॥ ५२॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पहले अंशमें चौथा अध्याय समाप्त॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

अविद्यादि विविध सर्गोंका वर्णन

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे द्विजराज! सर्गके आदिमें भगवान् ब्रह्माजीने पृथिवी, आकाश और जल आदिमें रहनेवाले देव, ऋषि, पितृगण, दानव, मनुष्य, तिर्यक् और वृक्षादिको जिस प्रकार रचा तथा जैसे गुण, स्वभाव और रूपवाले जगत्‌की रचना की वह सब आप मुझसे कहिये॥ १-२॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! भगवान् विभुने जिस प्रकार इस सर्गकी रचना की वह मैं तुमसे कहता हूँ; सावधान होकर सुनो॥ ३॥ सर्गके आदिमें ब्रह्माजीके पूर्ववत् सृष्टिका चिन्तन करनेपर पहले अबुद्धिपूर्वक [अर्थात् पहले-पहल असावधानी हो जानेसे] तमोगुणी सृष्टिका आविर्भाव हुआ॥ ४॥ उस महात्मासे प्रथम तम (अज्ञान), मोह, महामोह (भोगेच्छा), तामिस्र (क्रोध) और अन्धतामिस्र (अभिनिवेश) नामक पंचपर्वा (पाँच प्रकारकी) अविद्या उत्पन्न हुई॥ ५॥ उसके ध्यान करनेपर

ज्ञानशून्य, बाहर-भीतरसे तमोमय और जड नगादि (वृक्ष-गुल्म-लता-वीरुत्-तृण) रूप पाँच प्रकारका सर्ग हुआ॥ ६ ॥ [वराहजीद्वारा सर्वप्रथम स्थापित होनेके कारण] नगादिको मुख्य कहा गया है, इसलिये यह सर्ग भी मुख्य सर्ग कहलाता है॥ ७॥

उस सृष्टिको पुरुषार्थकी असाधिका देखकर उन्होंने फिर अन्य सर्गके लिये ध्यान किया तो तिर्यक्-स्रोत-सृष्टि उत्पन्न हुई। यह सर्ग [वायुके समान] तिरछा चलनेवाला है इसलिये तिर्यक्-स्रोत कहलाता है॥ ८-९ ॥ ये पशु, पक्षी आदि नामसे प्रसिद्ध हैं—और प्राय: तमोमय (अज्ञानी), विवेकरहित अनुचित मार्गका अवलम्बन करनेवाले और विपरीत ज्ञानको ही यथार्थ ज्ञान माननेवाले होते हैं। ये सब अहंकारी, अभिमानी, अट्ठाईस वधोंसे युक्त* आन्तरिक सुख आदिको ही पूर्णतया समझनेवाले और परस्पर एक-दूसरेकी प्रवृत्तिको न जाननेवाले होते हैं॥ १०-११ ॥

उस सर्गको भी पुरुषार्थका असाधक समझ पुन: चिन्तन करनेपर एक और सर्ग हुआ। वह ऊर्ध्व-स्रोतनामक तीसरा सात्त्विक सर्ग ऊपरके लोकोंमें रहने लगा॥ १२ ॥ वे ऊर्ध्व-स्रोत सृष्टिमें उत्पन्न हुए प्राणी विषय-सुखके प्रेमी, बाह्य और आन्तरिक दृष्टिसम्पन्न, तथा बाह्य और आन्तरिक ज्ञानयुक्त थे॥ १३ ॥ यह तीसरा देवसर्ग कहलाता है। इस सर्गके प्रादुर्भूत होनेसे सन्तुष्टचित्त ब्रह्माजीको अति प्रसन्नता हुई॥ १४ ॥

---

* सांख्य-कारिकामें अट्ठाईस वधोंका वर्णन इस प्रकार किया है—

एकादशेन्द्रियवधा: सह बुद्धिवधैरशक्तिरुद्दिष्टा । सप्तदश वधा बुद्धेर्विपर्ययात्तुष्टिसिद्धीनाम् ॥
आध्यात्मिक्यश्चतस्र:प्रकृत्युपादानकालभाग्याख्या: । बाह्या विषयोपरमात् पञ्च च नव तुष्टयोऽभिमता: ॥
ऊह: शब्दोऽध्ययनं दु:खविघातास्त्रय:सुहृत्प्राप्ति: । दानञ्च सिद्धयोऽष्टौ सिद्धे: पूर्वोऽङ्कुशस्त्रिविधा ॥
(४९—५१)

ग्यारह इन्द्रियवध और तुष्टि तथा सिद्धिके विपर्ययसे सत्रह बुद्धि-वध—ये कुल अट्ठाईस वध अशक्ति कहलाते हैं। प्रकृति, उपादान, काल और भाग्य नामक चार आध्यात्मिक और पाँचों ज्ञानेन्द्रियोंके बाह्य विषयोंके निवृत्त हो जानेसे पाँच बाह्य—इस प्रकार कुल नौ तुष्टियाँ हैं तथा ऊहा, शब्द, अध्ययन, [आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक] तीन दु:खविघात, सुहृत्प्राप्ति और दान—ये आठ सिद्धियाँ हैं। ये [इन्द्रियाशक्ति, तुष्टि, सिद्धिरूप] तीनों वध मुक्तिसे पूर्व विघ्नरूप हैं।

अन्धत्व-वधिरत्वादिसे लेकर पागलपनतक मनसहित ग्यारह इन्द्रियोंकी विपरीत अवस्थाएँ ग्यारह इन्द्रियवध हैं।

आठ प्रकारकी प्रकृतिमेंसे किसीमें चित्तका लय हो जानेसे अपनेको मुक्त मान लेना 'प्रकृति' नामवाली तुष्टि है। संन्याससे ही अपनेको कृतार्थ मान लेना 'उपादान' नामकी तुष्टि है। समय आनेपर स्वयं ही सिद्धि लाभ हो जायगी, ध्यानादि क्लेशकी क्या आवश्यकता है—ऐसा विचार करना 'काल' नामकी तुष्टि है और भाग्योदयसे सिद्धि हो जायगी—ऐसा विचार 'भाग्य' नामकी तुष्टि है। ये चारोंका आत्मासे सम्बन्ध है; अत: ये आध्यात्मिक तुष्टियाँ हैं। पदार्थोंके उपार्जन, रक्षण और व्यय आदिमें दोष देखकर उनसे उपराम हो जाना बाह्य तुष्टियाँ हैं। शब्दादि बाह्य विषय पाँच हैं, इसलिये बाह्य तुष्टियाँ भी पाँच ही हैं। इस प्रकार कुल नौ तुष्टियाँ हैं।

उपदेशकी अपेक्षा न करके स्वयं ही परमार्थका निश्चय कर लेना 'ऊहा' सिद्धि है। प्रसंगवश कहीं कुछ सुनकर उसीसे ज्ञानसिद्धि मान लेना 'शब्द' सिद्धि है। गुरुसे पढ़कर ही वस्तु प्राप्त हो गयी—ऐसा मान लेना 'अध्ययन' सिद्धि है। आध्यात्मिकादि त्रिविध दु:खोंका नाश हो जाना तीन प्रकारकी 'दु:खविघात' सिद्धि है। अभीष्ट पदार्थकी प्राप्ति हो जाना 'सुहृत्प्राप्ति' सिद्धि है तथा विद्वान् या तपस्वियोंका संग प्राप्त हो जाना 'दान' नामिका सिद्धि है। इस प्रकार ये आठ सिद्धियाँ हैं।

फिर, इन मुख्य सर्ग आदि तीनों प्रकारकी सृष्टियोंमें उत्पन्न हुए प्राणियोंको पुरुषार्थका असाधक जान उन्होंने एक और उत्तम साधक सर्गके लिये चिन्तन किया॥ १५॥ उन सत्यसंकल्प ब्रह्माजीके इस प्रकार चिन्तन करनेपर अव्यक्त (प्रकृति)-से पुरुषार्थका साधक अर्वाक्स्रोत नामक सर्ग प्रकट हुआ॥ १६॥ इस सर्गके प्राणी नीचे (पृथिवीपर) रहते हैं इसलिये वे 'अर्वाक्स्रोत' कहलाते हैं। उनमें सत्त्व, रज और तम तीनोंहीकी अधिकता होती है॥ १७॥ इसलिये वे दुःखबहुल, अत्यन्त क्रियाशील एवं बाह्य-आभ्यन्तर ज्ञानसे युक्त और साधक हैं। इस सर्गके प्राणी मनुष्य हैं॥ १८॥

हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार अबतक तुमसे छः सर्ग कहे। उनमें महत्तत्त्वको ब्रह्माका पहला सर्ग जानना चाहिये॥ १९॥ दूसरा सर्ग तन्मात्राओंका है, जिसे भूतसर्ग भी कहते हैं और तीसरा वैकारिक सर्ग है जो ऐन्द्रियिक (इन्द्रिय-सम्बन्धी) कहलाता है॥ २०॥ इस प्रकार बुद्धिपूर्वक उत्पन्न हुआ यह प्राकृत सर्ग हुआ। चौथा मुख्यसर्ग है। पर्वत-वृक्षादि स्थावर ही मुख्य सर्गके अन्तर्गत हैं॥ २१॥ पाँचवाँ जो तिर्यक्स्रोत बतलाया उसे तिर्यक् (कीट-पतंगादि) योनि भी कहते हैं। फिर छठा सर्ग ऊर्ध्व-स्रोताओंका है जो 'देवसर्ग' कहलाता है। उसके पश्चात् सातवाँ सर्ग अर्वाक्-स्रोताओंका है, वह मनुष्य-सर्ग है॥ २२-२३॥ आठवाँ अनुग्रह सर्ग है। वह सात्त्विक और तामसिक है। ये पाँच वैकृत (विकारी) सर्ग हैं और पहले तीन 'प्राकृत सर्ग' कहलाते हैं॥ २४॥ नवाँ कौमार सर्ग है जो प्राकृत और वैकृत भी है। इस प्रकार सृष्टि-रचनामें प्रवृत्त हुए जगदीश्वर प्रजापतिके प्राकृत और वैकृत नामक ये जगत्के मूलभूत नौ सर्ग तुम्हें सुनाये। अब और क्या सुनना चाहते हो?॥ २५-२६॥

श्रीमैत्रेयजी बोले— हे मुने! आपने इन देवादिकोंके सर्गोंका संक्षेपसे वर्णन किया। अब, हे मुनिश्रेष्ठ! मैं इन्हें आपके मुखारविन्दसे विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ॥ २७॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! सम्पूर्ण प्रजा अपने पूर्व-शुभाशुभ कर्मोंसे युक्त है; अतः प्रलयकालमें सबका लय होनेपर भी वह उनके संस्कारोंसे मुक्त नहीं होती॥ २८॥ हे ब्रह्मन्! ब्रह्माजीके सृष्टि-कर्ममें प्रवृत्त होनेपर देवताओंसे लेकर स्थावरपर्यन्त चार प्रकारकी सृष्टि हुई। वह केवल मनोमयी थी॥ २९॥

फिर देवता, असुर, पितृगण और मनुष्य— इन चारोंकी तथा जलकी सृष्टि करनेकी इच्छासे उन्होंने अपने शरीरका उपयोग किया॥ ३०॥ सृष्टि-रचनाकी कामनासे प्रजापतिके युक्तचित्त होनेपर तमोगुणकी वृद्धि हुई। अतः सबसे पहले उनकी जंघासे असुर उत्पन्न हुए॥ ३१॥ तब, हे मैत्रेय! उन्होंने उस तमोमय शरीरको छोड़ दिया, वह छोड़ा हुआ तमोमय शरीर ही रात्रि हुआ॥ ३२॥ फिर अन्य देहमें स्थित होनेपर सृष्टिकी कामनावाले उन प्रजापतिको अति प्रसन्नता हुई, और हे द्विज! उनके मुखसे सत्त्वप्रधान देवगण उत्पन्न हुए॥ ३३॥ तदनन्तर उस शरीरको भी उन्होंने त्याग दिया। वह त्यागा हुआ शरीर ही सत्त्वस्वरूप दिन हुआ। इसीलिये रात्रिमें असुर बलवान् होते हैं और दिनमें देवगणोंका बल विशेष होता है॥ ३४॥ फिर उन्होंने आंशिक सत्त्वमय अन्य शरीर ग्रहण किया और अपनेको पितृवत् मानते हुए [अपने पार्श्व-भागसे] पितृगणकी रचना की॥ ३५॥ पितृगणकी रचना कर उन्होंने उस शरीरको भी छोड़ दिया। वह त्यागा हुआ शरीर ही दिन और रात्रिके बीचमें स्थित सन्ध्या हुई॥ ३६॥ तत्पश्चात् उन्होंने आंशिक रजोमय अन्य शरीर धारण

किया; हे द्विजश्रेष्ठ! उससे रज:-प्रधान मनुष्य उत्पन्न हुए॥ ३७॥ फिर शीघ्र ही प्रजापतिने उस शरीरको भी त्याग दिया, वही ज्योत्स्ना हुआ, जिसे पूर्व-सन्ध्या अर्थात् प्रात:काल कहते हैं॥ ३८॥ इसीलिये, हे मैत्रेय! प्रात:काल होनेपर मनुष्य और सायंकालके समय पितर बलवान् होते हैं॥ ३९॥ इस प्रकार रात्रि, दिन, प्रात:काल और सायंकाल ये चारों प्रभु ब्रह्माजीके ही शरीर हैं और तीनों गुणोंके आश्रय हैं॥ ४०॥

फिर ब्रह्माजीने एक और रजोमात्रात्मक शरीर धारण किया। उसके द्वारा ब्रह्माजीसे क्षुधा उत्पन्न हुई और क्षुधासे कामकी उत्पत्ति हुई॥ ४१॥ तब भगवान् प्रजापतिने अन्धकारमें स्थित होकर क्षुधाग्रस्त सृष्टिकी रचना की। उसमें बड़े कुरूप और दाढ़ी-मूँछवाले व्यक्ति उत्पन्न हुए। वे स्वयं ब्रह्माजीकी ओर ही [उन्हें भक्षण करनेके लिये] दौड़े॥ ४२॥ उनमेंसे जिन्होंने यह कहा कि 'ऐसा मत करो, इनकी रक्षा करो' वे 'राक्षस' कहलाये और जिन्होंने कहा 'हम खायेंगे' वे खानेकी वासनावाले होनेसे 'यक्ष' कहे गये॥ ४३॥

उनकी इस अनिष्ट प्रवृत्तिको देखकर ब्रह्माजीके केश सिरसे गिर गये और फिर पुन: उनके मस्तकपर आरूढ़ हुए। इस प्रकार ऊपर चढ़नेके कारण वे 'सर्प' कहलाये और नीचे गिरनेके कारण 'अहि' कहे गये। तदनन्तर जगत्-रचयिता ब्रह्माजीने क्रोधित होकर क्रोधयुक्त प्राणियोंकी रचना की; वे कपिश (कालापन लिये हुए पीले) वर्णके, अति उग्र स्वभाववाले तथा मांसाहारी हुए॥ ४४-४५॥ फिर गान करते समय उनके शरीरसे तुरन्त ही गन्धर्व उत्पन्न हुए। हे द्विज! वे वाणीका उच्चारण करते अर्थात् बोलते हुए उत्पन्न हुए थे, इसलिये 'गन्धर्व' कहलाये॥ ४६॥

इन सबकी रचना करके भगवान् ब्रह्माजीने पक्षियोंको, उनके पूर्व-कर्मोंसे प्रेरित होकर स्वच्छन्दतापूर्वक अपनी आयुसे रचा॥ ४७॥ तदनन्तर अपने वक्ष:स्थलसे भेड़, मुखसे बकरी, उदर और पार्श्वभागसे गौ, पैरोंसे घोड़े, हाथी, गधे, वनगाय, मृग, ऊँट, खच्चर और न्यंकु आदि पशुओंकी रचना की॥ ४८-४९॥ उनके रोमोंसे फल-मूलरूप ओषधियाँ उत्पन्न हुईं। हे द्विजोत्तम! कल्पके आरम्भमें ही ब्रह्माजीने पशु और ओषधि आदिकी रचना करके फिर त्रेतायुगके आरम्भमें उन्हें यज्ञादि कर्मोंमें सम्मिलित किया॥ ५०॥ गौ, बकरी, पुरुष, भेड़, घोड़े, खच्चर और गधे ये सब गाँवोंमें रहनेवाले पशु हैं। जंगली पशु ये हैं—श्वापद (व्याघ्र आदि), दो खुरवाले (वनगाय आदि), हाथी, बन्दर और पाँचवें पक्षी, छठे जलके जीव तथा सातवें सरीसृप आदि॥ ५१-५२॥ फिर अपने प्रथम (पूर्व) मुखसे ब्रह्माजीने गायत्री, ऋक्, त्रिवृत्सोम रथन्तर और अग्निष्टोम यज्ञोंको निर्मित किया॥ ५३॥ दक्षिण-मुखसे यजु, त्रैष्टुप्छन्द, पंचदशस्तोम, बृहत्साम तथा उक्थकी रचना की॥ ५४॥ पश्चिम-मुखसे साम, जगतीछन्द, सप्तदशस्तोम, वैरूप और अतिरात्रको उत्पन्न किया॥ ५५॥ तथा उत्तर-मुखसे उन्होंने एकविंशतिस्तोम, अथर्ववेद, आप्तोर्यामाण, अनुष्टुप्छन्द और वैराजकी सृष्टि की॥ ५६॥

इस प्रकार उनके शरीरसे समस्त ऊँच-नीच प्राणी उत्पन्न हुए। उन आदिकर्ता प्रजापति भगवान् ब्रह्माजीने देव, असुर, पितृगण और मनुष्योंकी सृष्टि कर तदनन्तर कल्पका आरम्भ होनेपर फिर यक्ष, पिशाच, गन्धर्व, अप्सरागण, मनुष्य, किन्नर, राक्षस, पशु, पक्षी, मृग और सर्प आदि सम्पूर्ण नित्य एवं अनित्य स्थावर-

जंगम जगत्‌की रचना की। उनमेंसे जिनके जैसे-जैसे कर्म पूर्वकल्पोंमें थे पुनः-पुनः सृष्टि होनेपर उनकी उन्हींमें फिर प्रवृत्ति हो जाती है॥ ५७—६० ॥ उस समय हिंसा-अहिंसा, मृदुता-कठोरता, धर्म-अधर्म, सत्य-मिथ्या—ये सब अपनी पूर्व-भावनाके अनुसार उन्हें प्राप्त हो जाते हैं, इसीसे ये उन्हें अच्छे लगने लगते हैं॥ ६१ ॥

इस प्रकार प्रभु विधाताने ही स्वयं इन्द्रियोंके विषय भूत और शरीर आदिमें विभिन्नता और व्यवहारको उत्पन्न किया है॥ ६२ ॥ उन्हींने कल्पके आरम्भमें देवता आदि प्राणियोंके वेदानुसार नाम और रूप तथा कार्य-विभागको निश्चित किया है॥ ६३ ॥ ऋषियों तथा अन्य प्राणियोंके भी वेदानुकूल नाम और यथायोग्य कर्मोंको उन्हींने निर्दिष्ट किया है॥ ६४॥ जिस प्रकार भिन्न-भिन्न ऋतुओंके पुनः-पुनः आनेपर उनके चिह्न और नाम-रूप आदि पूर्ववत् रहते हैं उसी प्रकार युगादिमें भी उनके पूर्व-भाव ही देखे जाते हैं॥ ६५ ॥ सिसृक्षा-शक्ति (सृष्टि-रचनाकी इच्छारूप शक्ति)-से युक्त वे ब्रह्माजी सृज्य-शक्ति (सृष्टिके प्रारब्ध)-की प्रेरणासे कल्पोंके आरम्भमें बारम्बार इसी प्रकार सृष्टिकी रचना किया करते हैं॥ ६६ ॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पहले अंशमें पाँचवाँ अध्याय समाप्त॥ ५ ॥

छठा अध्याय

चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था, पृथिवी-विभाग और अन्नादिकी उत्पत्तिका वर्णन

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे भगवन्! आपने जो अर्वाक्-स्रोता मनुष्योंके विषयमें कहा उनकी सृष्टि ब्रह्माजीने किस प्रकार की—यह विस्तारपूर्वक कहिये॥ १ ॥ श्रीप्रजापतिने ब्राह्मणादि वर्णको जिन-जिन गुणोंसे युक्त और जिस प्रकार रचा तथा उनके जो-जो कर्तव्य-कर्म निर्धारित किये वह सब वर्णन कीजिये॥ २ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे द्विजश्रेष्ठ! जगत्-रचनाकी इच्छासे युक्त सत्यसंकल्प श्रीब्रह्माजीके मुखसे पहले सत्त्वप्रधान प्रजा उत्पन्न हुई॥ ३ ॥ तदनन्तर उनके वक्षःस्थलसे रजःप्रधान तथा जंघाओंसे रज और तमविशिष्ट सृष्टि हुई॥ ४ ॥ हे द्विजोत्तम! चरणोंसे ब्रह्माजीने एक और प्रकारकी प्रजा उत्पन्न की, वह तमःप्रधान थी। ये ही सब चारों वर्ण हुए॥ ५ ॥ इस प्रकार हे द्विजसत्तम! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चारों क्रमशः ब्रह्माजीके मुख, वक्षःस्थल, जानु और चरणोंसे उत्पन्न हुए॥ ६ ॥

हे महाभाग! ब्रह्माजीने यज्ञानुष्ठानके लिये ही यज्ञके उत्तम साधनरूप इस सम्पूर्ण चातुर्वर्ण्यकी रचना की थी॥ ७ ॥ हे धर्मज्ञ! यज्ञसे तृप्त होकर देवगण जल बरसाकर प्रजाको तृप्त करते हैं; अतः यज्ञ सर्वथा कल्याणका हेतु है॥ ८ ॥ जो मनुष्य सदा स्वधर्मपरायण, सदाचारी, सज्जन और सुमार्गगामी होते हैं उन्हींसे यज्ञका यथावत् अनुष्ठान हो सकता है॥ ९ ॥ हे मुने! [यज्ञके द्वारा] मनुष्य इस मनुष्य-शरीरसे ही स्वर्ग और अपवर्ग प्राप्त कर सकते हैं; तथा और भी जिस स्थानकी उन्हें इच्छा हो उसीको जा सकते हैं॥ १० ॥

हे मुनिसत्तम! ब्रह्माजीद्वारा रची हुई वह चातुर्वर्ण्य-विभागमें स्थित प्रजा अति श्रद्धायुक्त आचरणवाली, स्वेच्छानुसार रहनेवाली, सम्पूर्ण बाधाओंसे रहित, शुद्ध अन्तःकरणवाली, सत्कुलोत्पन्न और पुण्य कर्मोंके अनुष्ठानसे परम

पवित्र थी॥ ११-१२॥ उसका चित्त शुद्ध होनेके कारण उसमें निरन्तर शुद्धस्वरूप श्रीहरिके विराजमान रहनेसे उन्हें शुद्ध ज्ञान प्राप्त होता था जिससे वे भगवान्‌के उस 'विष्णु' नामक परम पदको देख पाते थे॥ १३॥ फिर (त्रेतायुगके आरम्भमें), हमने तुमसे भगवान्‌के जिस काल नामक अंशका पहले वर्णन किया है, वह अति अल्प सारवाले (सुखवाले) तुच्छ और घोर (दुःखमय) पापोंको प्रजामें प्रवृत्त कर देता है॥ १४॥ हे मैत्रेय! उससे प्रजामें पुरुषार्थका विघातक तथा अज्ञान और लोभको उत्पन्न करनेवाला रागादिरूप अधर्मका बीज उत्पन्न हो जाता है॥ १५॥ तभीसे उसे वह विष्णु-पद-प्राप्ति-रूप स्वाभाविक सिद्धि और रसोल्लास आदि अन्य अष्ट सिद्धियाँ[१] नहीं मिलतीं॥ १६॥

उन समस्त सिद्धियोंके क्षीण हो जाने और पापके बढ़ जानेसे फिर सम्पूर्ण प्रजा द्वन्द्व, ह्रास और दुःखसे आतुर हो गयी॥ १७॥ तब उसने मरुभूमि, पर्वत और जल आदिके स्वाभाविक तथा कृत्रिम दुर्ग और पुर तथा खर्वट[२] आदि स्थापित किये॥ १८॥ हे महामते! उन पुर आदिकोंमें शीत और घाम आदि बाधाओंसे बचनेके लिये उसने यथायोग्य घर बनाये॥ १९॥

इस प्रकार शीतोष्णादिसे बचनेका उपाय करके उस प्रजाने जीविकाके साधनरूप कृषि तथा कला-कौशल आदिकी रचना की॥ २०॥ हे मुने! धान, जौ, गेहूँ, छोटे धान्य, तिल, काँगनी, ज्वार, कोदो, छोटी मटर, उड़द, मूँग, मसूर, बड़ी मटर, कुलथी, राई, चना और सन—ये सत्रह ग्राम्य ओषधियोंकी जातियाँ हैं। ग्राम्य और वन्य दोनों प्रकारकी मिलाकर कुल चौदह ओषधियाँ याज्ञिक हैं। उनके नाम ये हैं—धान, जौ, उड़द, गेहूँ, छोटे धान्य, तिल, काँगनी और कुलथी—ये आठ तथा श्यामाक (समाँ), नीबार, वनतिल, गवेधु, वेणुयव और मर्कट (मक्का)॥ २१—२५॥ ये चौदह ग्राम्य और वन्य ओषधियाँ यज्ञानुष्ठानकी सामग्री हैं और यज्ञ इनकी उत्पत्तिका प्रधान हेतु है॥ २६॥ यज्ञोंके

१- रसोल्लासादि अष्ट-सिद्धियोंका वर्णन स्कन्दपुराणमें इस प्रकार किया है—

रसस्य स्वत एवान्तरुल्लासः स्यात्कृते युगे। रसोल्लासाख्यिका सिद्धिस्तया हन्ति क्षुधं नरः॥
स्त्र्यादीनां नैरपेक्ष्येण सदा तृप्ता प्रजास्तथा। द्वितीया सिद्धिरुद्दिष्टा सा तृप्तिर्मुनिसत्तमैः॥
धर्मोत्तमश्च योऽस्त्यासां सा तृतीयाऽभिधीयते। चतुर्थी तुल्यता तासामायुषः सुखरूपयोः॥
ऐकान्त्यबलबाहुल्यं विशोका नाम पञ्चमी। परमात्मपरत्वेन तपोध्यानादिनिष्ठिता॥
षष्ठी च कामचारित्वं सप्तमी सिद्धिरुच्यते। अष्टमी च तथा प्रोक्ता यत्र क्वचन शायिता॥

अर्थ—सत्ययुगमें रसका स्वयं ही उल्लास होता था। यही रसोल्लास नामकी सिद्धि है, उसके प्रभावसे मनुष्य भूखको नष्ट कर देता है। उस समय प्रजा स्त्री आदि भोगोंकी अपेक्षाके बिना ही सदा तृप्त रहती थी; इसीको मुनिश्रेष्ठोंने 'तृप्ति' नामक दूसरी सिद्धि कहा है। उनका जो उत्तम धर्म था वही उनकी तीसरी सिद्धि कही जाती है। उस समय सम्पूर्ण प्रजाके रूप और आयु एक-से थे, यही उनकी चौथी सिद्धि थी। बलकी ऐकान्तिकी अधिकता—यह 'विशोका' नामकी पाँचवीं सिद्धि है। परमात्मपरायण रहते हुए तप-ध्यानादिमें तत्पर रहना छठी सिद्धि है। स्वेच्छानुसार विचरना सातवीं सिद्धि कही जाती है तथा जहाँ-तहाँ मनकी मौज पड़े रहना आठवीं सिद्धि कही गयी है।

२-पहाड़ या नदीके तटपर बसे हुए छोटे-छोटे टोलोंको 'खर्वट' कहते हैं।

सहित ये ओषधियाँ प्रजाकी वृद्धिका परम कारण हैं इसलिये इहलोक-परलोकके ज्ञाता पुरुष यज्ञोंका अनुष्ठान किया करते हैं॥ २७॥ हे मुनिश्रेष्ठ! नित्यप्रति किया जानेवाला यज्ञानुष्ठान मनुष्योंका परम उपकारक और उनके किये हुए पापोंको शान्त करनेवाला है॥ २८॥

हे महामुने! जिनके चित्तमें कालकी गतिसे पापका बीज बढ़ता है उन्हीं लोगोंका चित्त यज्ञमें प्रवृत्त नहीं होता॥ २९॥ उन यज्ञके विरोधियोंने वैदिक मत, वेद और यज्ञादि कर्म—सभीकी निन्दा की है॥ ३०॥ वे लोग दुरात्मा, दुराचारी, कुटिलमति, वेद-विनिन्दक और प्रवृत्तिमार्गका उच्छेद करनेवाले ही थे॥ ३१॥

हे धर्मवानोंमें श्रेष्ठ मैत्रेय! इस प्रकार कृषि आदि जीविकाके साधनोंके निश्चित हो जानेपर प्रजापति ब्रह्माजीने प्रजाकी रचना कर उनके स्थान और गुणोंके अनुसार मर्यादा, वर्ण और आश्रमोंके धर्म तथा अपने धर्मका भली प्रकार पालन करनेवाले समस्त वर्णोंके लोक आदिकी स्थापना की॥ ३२-३३॥ कर्मनिष्ठ ब्राह्मणोंका स्थान पितृलोक है, युद्ध-क्षेत्रसे कभी न हटनेवाले क्षत्रियोंका इन्द्रलोक है॥ ३४॥ तथा अपने धर्मका पालन करनेवाले वैश्योंका वायुलोक और सेवाधर्मपरायण शूद्रोंका गन्धर्वलोक है॥ ३५॥ अट्ठासी हजार ऊर्ध्वरेता मुनि हैं; उनका जो स्थान बताया गया है वही गुरुकुलवासी ब्रह्मचारियोंका स्थान है॥ ३६॥ इसी प्रकार वनवासी वानप्रस्थोंका स्थान सप्तर्षिलोक, गृहस्थोंका पितृलोक और संन्यासियोंका ब्रह्मलोक है तथा आत्मानुभवसे तृप्त योगियोंका स्थान अमरपद (मोक्ष) है॥ ३७-३८॥ जो निरन्तर एकान्तसेवी और ब्रह्मचिन्तनमें मग्न रहनेवाले योगिजन हैं उनका जो परमस्थान है उसे पण्डितजन ही देख पाते हैं॥ ३९॥ चन्द्र और सूर्य आदि ग्रह भी अपने-अपने लोकोंमें जाकर फिर लौट आते हैं, किन्तु द्वादशाक्षर मन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) का चिन्तन करनेवाले अभीतक मोक्षपदसे नहीं लौटे॥ ४०॥ तामिस्र, अन्धतामिस्र, महारौरव, रौरव, असिपत्रवन, घोर, कालसूत्र और अवीचिक आदि जो नरक हैं, वे वेदोंकी निन्दा और यज्ञोंका उच्छेद करनेवाले तथा स्वधर्म-विमुख पुरुषोंके स्थान कहे गये हैं॥ ४१-४२॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पहले अंशमें छठा अध्याय समाप्त॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

मरीचि आदि प्रजापतिगण, तामसिक सर्ग, स्वायम्भुवमनु और शतरूपा तथा उनकी सन्तानका वर्णन

श्रीपराशरजी बोले—फिर उन प्रजापतिके ध्यान करनेपर उनके देहस्वरूप भूतोंसे उत्पन्न हुए शरीर और इन्द्रियोंके सहित मानस प्रजा उत्पन्न हुई। उस समय मतिमान् ब्रह्माजीके जड शरीरसे ही चेतन जीवोंका प्रादुर्भाव हुआ॥ १॥ मैंने पहले जिनका वर्णन किया है, देवताओंसे लेकर स्थावरपर्यन्त वे सभी त्रिगुणात्मक चर और अचर जीव इसी प्रकार उत्पन्न हुए॥ २-३॥

जब महाबुद्धिमान् प्रजापतिकी वह प्रजा पुत्र-पौत्रादि-क्रमसे और न बढ़ी तब उन्होंने भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अंगिरा, मरीचि, दक्ष, अत्रि और वसिष्ठ—इन अपने ही सदृश अन्य मानस-पुत्रोंकी सृष्टि की। पुराणोंमें ये नौ ब्रह्मा माने गये हैं॥ ४—६॥

फिर ख्याति, भूति, सम्भूति, क्षमा, प्रीति, सन्नति, ऊर्ज्जा, अनसूया तथा प्रसूति—इन नौ कन्याओंको उत्पन्न कर, इन्हें उन महात्माओंको 'तुम इनकी पत्नी हो' ऐसा कहकर सौंप दिया॥ ७-८ ॥

ब्रह्माजीने पहले जिन सनन्दनादिको उत्पन्न किया था वे निरपेक्ष होनेके कारण सन्तान और संसार आदिमें प्रवृत्त नहीं हुए॥ ९ ॥ वे सभी ज्ञानसम्पन्न, विरक्त और मत्सरादि दोषोंसे रहित थे। उन महात्माओंको संसार-रचनासे ब्रह्माजीको त्रिलोकीको भस्म कर देनेवाला महान् क्रोध उत्पन्न हुआ। हे मुने! उन ब्रह्माजीके क्रोधके कारण सम्पूर्ण त्रिलोकी ज्वाला-मालाओंसे अत्यन्त देदीप्यमान हो गयी॥ १०-११ ॥

उस समय उनकी टेढ़ी भृकुटि और क्रोध-सन्तप्त ललाटसे दोपहरके सूर्यके समान प्रकाशमान रुद्रकी उत्पत्ति हुई॥ १२ ॥ उसका अति प्रचण्ड शरीर आधा नर और आधा नारीरूप था। तब ब्रह्माजी 'अपने शरीरका विभाग कर' ऐसा कहकर अन्तर्धान हो गये॥ १३ ॥ ऐसा कहे जानेपर उस रुद्रने अपने शरीरस्थ स्त्री और पुरुष दोनों भागोंको अलग-अलग कर दिया और फिर पुरुष-भागको ग्यारह भागोंमें विभक्त किया॥ १४ ॥ तथा स्त्री-भागको भी सौम्य, क्रूर, शान्त-अशान्त और श्याम-गौर आदि कई रूपोंमें विभक्त कर दिया॥ १५ ॥

तदनन्तर, हे द्विज! अपनेसे उत्पन्न अपने ही स्वरूप स्वायम्भुवको ब्रह्माजीने प्रजा-पालनके लिये प्रथम मनु बनाया॥ १६ ॥ उन स्वायम्भुव मनुने [अपने ही साथ उत्पन्न हुई] तपके कारण निष्पाप शतरूपा नामकी स्त्रीको अपनी पत्नीरूपसे ग्रहण किया॥ १७ ॥ हे धर्मज्ञ! उन स्वायम्भुव मनुसे शतरूपा देवीने प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्र तथा उदार, रूप और गुणोंसे सम्पन्न प्रसूति और आकूति नामकी दो कन्याएँ उत्पन्न कीं। उनमेंसे प्रसूतिको दक्षके साथ तथा आकूतिको रुचि प्रजापतिके साथ विवाह दिया॥ १८-१९ ॥

हे महाभाग! रुचि प्रजापतिने उसे ग्रहण कर लिया। तब उन दम्पतीके यज्ञ और दक्षिणा—ये युगल (जुड़वाँ) सन्तान उत्पन्न हुईं॥ २० ॥ यज्ञके दक्षिणासे बारह पुत्र हुए, जो स्वायम्भुव मन्वन्तरमें याम नामके देवता कहलाये॥ २१ ॥ तथा दक्षने प्रसूतिसे चौबीस कन्याएँ उत्पन्न कीं। मुझसे उनके शुभ नाम सुनो॥ २२ ॥ श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, मेधा, पुष्टि, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि और तेरहवीं कीर्ति—इन दक्ष-कन्याओंको धर्मने पत्नीरूपसे ग्रहण किया। इनसे छोटी शेष ग्यारह कन्याएँ ख्याति, सती, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, सन्तति, अनसूया, ऊर्ज्जा, स्वाहा और स्वधा थीं॥ २३—२५॥ हे मुनिसत्तम! इन ख्याति आदि कन्याओंको क्रमशः भृगु, शिव, मरीचि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अत्रि, वसिष्ठ—इन मुनियों तथा अग्नि और पितरोंने ग्रहण किया॥ २६-२७ ॥

श्रद्धासे काम, चला (लक्ष्मी) से दर्प, धृतिसे नियम, तुष्टिसे सन्तोष और पुष्टिसे लोभकी उत्पत्ति हुई॥ २८ ॥ तथा मेधासे श्रुत, क्रियासे दण्ड, नय और विनय, बुद्धिसे बोध, लज्जासे विनय, वपुसे उसका पुत्र व्यवसाय, शान्तिसे क्षेम, सिद्धिसे सुख और कीर्तिसे यशका जन्म हुआ; ये ही धर्मके पुत्र हैं। रतिने कामसे धर्मके पौत्र हर्षको उत्पन्न किया॥ २९—३१ ॥

अधर्मकी स्त्री हिंसा थी, उससे अनृत नामक पुत्र और निकृति नामकी कन्या उत्पन्न

हुई। उन दोनोंसे भय और नरक नामके पुत्र तथा उनकी पत्नियाँ माया और वेदना नामकी कन्याएँ हुईं। उनमेंसे मायाने समस्त प्राणियोंका संहारकर्त्ता मृत्यु नामक पुत्र उत्पन्न किया॥ ३२-३३॥ वेदनाने भी रौरव (नरक)-के द्वारा अपने पुत्र दुःखको जन्म दिया और मृत्युसे व्याधि, जरा, शोक, तृष्णा और क्रोधकी उत्पत्ति हुई॥ ३४॥ ये सब अधर्मरूप हैं और 'दुःखोत्तर' नामसे प्रसिद्ध हैं, [क्योंकि इनसे परिणाममें दुःख ही प्राप्त होता है] इनके न कोई स्त्री है और न सन्तान। ये सब ऊर्ध्वरेता हैं॥ ३५॥ हे मुनिकुमार! ये भगवान् विष्णुके बड़े भयंकर रूप हैं और ये ही संसारके नित्य-प्रलयके कारण होते हैं॥ ३६॥ हे महाभाग! दक्ष, मरीचि, अत्रि और भृगु आदि प्रजापतिगण इस जगत्के नित्य-सर्गके कारण हैं॥ ३७॥ तथा मनु और मनुके पराक्रमी, सन्मार्गपरायण और शूर-वीर पुत्र राजागण इस संसारकी नित्य-स्थितिके कारण हैं॥ ३८॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे ब्रह्मन्! आपने जो नित्य-स्थिति, नित्य-सर्ग और नित्य-प्रलयका उल्लेख किया सो कृपा करके मुझसे इनका स्वरूप वर्णन कीजिये॥ ३९॥

श्रीपराशरजी बोले—जिनकी गति कहीं नहीं रुकती वे अचिन्त्यात्मा सर्वव्यापक भगवान् मधुसूदन निरन्तर इन मनु आदि रूपोंसे संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और नाश करते रहते हैं॥ ४०॥ हे द्विज! समस्त भूतोंका चार प्रकारका प्रलय है—नैमित्तिक, प्राकृतिक, आत्यन्तिक और नित्य॥ ४१॥ उनमेंसे नैमित्तिक प्रलय ही ब्राह्म-प्रलय है, जिसमें जगत्पति ब्रह्माजी कल्पान्तमें शयन करते हैं; तथा प्राकृतिक प्रलयमें ब्रह्माण्ड प्रकृतिमें लीन हो जाता है॥ ४२॥ ज्ञानके द्वारा योगीका परमात्मामें लीन हो जाना आत्यन्तिक प्रलय है और रात-दिन जो भूतोंका क्षय होता है वही नित्य-प्रलय है॥ ४३॥ प्रकृतिसे महत्तत्त्वादिक्रमसे जो सृष्टि होती है वह प्राकृतिक सृष्टि कहलाती है और अवान्तर-प्रलयके अनन्तर जो [ब्रह्माके द्वारा] चराचर जगत्की उत्पत्ति होती है वह दैनन्दिनी सृष्टि कही जाती है॥ ४४॥ और हे मुनिश्रेष्ठ! जिसमें प्रतिदिन प्राणियोंकी उत्पत्ति होती रहती है उसे पुराणार्थमें कुशल महानुभावोंने नित्य-सृष्टि कहा है॥ ४५॥

इस प्रकार समस्त शरीरमें स्थित भूतभावन भगवान् विष्णु जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करते रहते हैं॥ ४६॥ हे मैत्रेय! सृष्टि, स्थिति और विनाशकी इन वैष्णवी शक्तियोंका समस्त शरीरोंमें समान भावसे अहर्निश संचार होता रहता है॥ ४७॥ हे ब्रह्मन्! ये तीनों महती शक्तियाँ त्रिगुणमयी हैं; अतः जो उन तीनों गुणोंका अतिक्रमण कर जाता है वह परमपदको ही प्राप्त कर लेता है, फिर जन्म-मरणादिके चक्रमें नहीं पड़ता॥ ४८॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पहले अंशमें सातवाँ अध्याय समाप्त॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

रौद्र-सृष्टि और भगवान् तथा लक्ष्मीजीकी सर्वव्यापकताका वर्णन

श्रीपराशरजी बोले—हे महामुने! मैंने तुमसे ब्रह्माजीके तामस-सर्गका वर्णन किया, अब मैं रुद्र-सर्गका वर्णन करता हूँ, सो सुनो॥ १॥ कल्पके आदिमें अपने समान पुत्र उत्पन्न होनेके लिये चिन्तन करते हुए ब्रह्माजीकी गोदमें नीललोहित वर्णके एक कुमारका प्रादुर्भाव हुआ॥ २॥

हे द्विजोत्तम! जन्मके अनन्तर ही वह जोर-जोरसे रोने और इधर-उधर दौड़ने लगा। उसे रोता देख ब्रह्माजीने उससे पूछा—"तू क्यों रोता है?"॥ ३॥ उसने कहा—"मेरा नाम रखो।" तब ब्रह्माजी बोले—'हे देव! तेरा नाम रुद्र है, अब तू मत रो, धैर्य धारण कर।' ऐसा कहनेपर भी वह सात बार और रोया॥ ४॥ तब भगवान् ब्रह्माजीने उसके सात नाम और रखे; तथा उन आठोंके स्थान, स्त्री और पुत्र भी निश्चित किये॥ ५॥ हे द्विज! प्रजापतिने उसे भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र और महादेव कहकर सम्बोधन किया॥ ६॥ यही उसके नाम रखे और इनके स्थान भी निश्चित किये। सूर्य, जल, पृथिवी, वायु, अग्नि, आकाश, [यज्ञमें] दीक्षित ब्राह्मण और चन्द्रमा—ये क्रमशः उनकी मूर्तियाँ हैं॥ ७॥ हे द्विजश्रेष्ठ! रुद्र आदि नामोंके साथ उन सूर्य आदि मूर्तियोंकी क्रमशः सुवर्चला, ऊषा, विकेशी, अपरा, शिवा, स्वाहा, दिशा, दीक्षा और रोहिणी नामकी पत्नियाँ हैं। हे महाभाग! अब उनके पुत्रोंके नाम सुनो; उन्हींके पुत्र-पौत्रादिकोंसे यह सम्पूर्ण जगत् परिपूर्ण है॥ ८—१०॥ शनैश्चर, शुक्र, लोहितांग, मनोजव, स्कन्द, सर्ग, सन्तान और बुध—ये क्रमशः उनके पुत्र हैं॥ ११॥ ऐसे भगवान् रुद्रने प्रजापति दक्षकी अनिन्दिता पुत्री सतीको अपनी भार्यारूपसे ग्रहण किया॥ १२॥ हे द्विजसत्तम! उस सतीने दक्षपर कुपित होनेके कारण अपना शरीर त्याग दिया था। फिर वह मेनाके गर्भसे हिमाचलकी पुत्री (उमा) हुई। भगवान् शंकरने उस अनन्यपरायणा उमासे फिर भी विवाह किया॥ १३-१४॥ भृगुके द्वारा ख्यातिने धाता और विधातानामक दो देवताओंको तथा लक्ष्मीजीको जन्म दिया जो भगवान् विष्णुकी पत्नी हुईं॥ १५॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—भगवन्! सुना जाता है कि लक्ष्मीजी तो अमृत-मन्थनके समय क्षीर-सागरसे उत्पन्न हुई थीं, फिर आप ऐसा कैसे कहते हैं कि वे भृगुके द्वारा ख्यातिसे उत्पन्न हुईं॥ १६॥

श्रीपराशरजी बोले—हे द्विजोत्तम! भगवान्का कभी संग न छोड़नेवाली जगज्जननी लक्ष्मीजी तो नित्य ही हैं और जिस प्रकार श्रीविष्णुभगवान् सर्वव्यापक हैं वैसे ही ये भी हैं॥ १७॥ विष्णु अर्थ हैं और ये वाणी हैं, हरि नियम हैं और ये नीति हैं, भगवान् विष्णु बोध हैं और ये बुद्धि हैं तथा वे धर्म हैं और ये सत्क्रिया हैं॥ १८॥ हे मैत्रेय! भगवान् जगत्के स्रष्टा हैं और लक्ष्मीजी सृष्टि हैं, श्रीहरि भूधर (पर्वत अथवा राजा) हैं और लक्ष्मीजी भूमि हैं तथा भगवान् सन्तोष हैं और लक्ष्मीजी नित्य-तुष्टि हैं॥ १९॥ भगवान् काम हैं और लक्ष्मीजी इच्छा हैं, वे यज्ञ हैं और ये दक्षिणा हैं, श्रीजनार्दन पुरोडाश हैं और देवी लक्ष्मीजी आज्याहुति (घृतकी आहुति) हैं॥ २०॥ हे मुने! मधुसूदन यजमानगृह हैं और लक्ष्मीजी पत्नीशाला हैं, श्रीहरि यूप हैं और लक्ष्मीजी चिति हैं तथा भगवान् कुशा हैं और लक्ष्मीजी इध्मा हैं॥ २१॥ भगवान् सामस्वरूप हैं और श्रीकमलादेवी उद्गीति हैं, जगत्पति भगवान् वासुदेव हुताशन हैं और लक्ष्मीजी स्वाहा हैं॥ २२॥ हे द्विजोत्तम! भगवान् विष्णु शंकर हैं और श्रीलक्ष्मीजी गौरी हैं तथा हे मैत्रेय! श्रीकेशव सूर्य हैं और कमलवासिनी श्रीलक्ष्मीजी उनकी प्रभा हैं॥ २३॥ श्रीविष्णु पितृगण हैं और श्रीकमला नित्य पुष्टिदायिनी स्वधा हैं, विष्णु अति विस्तीर्ण सर्वात्मक अवकाश हैं और लक्ष्मीजी स्वर्गलोक हैं॥ २४॥ भगवान् श्रीधर चन्द्रमा हैं और श्रीलक्ष्मीजी उनकी अक्षय कान्ति हैं, हरि सर्वगामी वायु हैं और लक्ष्मीजी जगच्चेष्टा (जगत्की गति) और धृति (आधार) हैं॥ २५॥ हे महामुने! श्रीगोविन्द समुद्र हैं और हे द्विज! लक्ष्मीजी उसकी तरंग हैं, भगवान् मधुसूदन

देवराज इन्द्र हैं और लक्ष्मीजी इन्द्राणी हैं॥ २६॥ चक्रपाणि भगवान् यम हैं और श्रीकमला यमपत्नी धूमोर्णा हैं, देवाधिदेव श्रीविष्णु कुबेर हैं और श्रीलक्ष्मीजी साक्षात् ऋद्धि हैं॥ २७॥ श्रीकेशव स्वयं वरुण हैं और महाभागा लक्ष्मीजी गौरी हैं, हे द्विजराज! श्रीहरि देवसेनापति स्वामिकार्तिकेय हैं और श्रीलक्ष्मीजी देवसेना हैं॥ २८॥ हे द्विजोत्तम! भगवान् गदाधर आश्रय हैं और लक्ष्मीजी शक्ति हैं, भगवान् निमेष हैं और लक्ष्मीजी काष्ठा हैं, वे मुहूर्त हैं और ये कला हैं॥ २९॥ सर्वेश्वर सर्वरूप श्रीहरि दीपक हैं और श्रीलक्ष्मीजी ज्योति हैं, श्रीविष्णु वृक्षरूप हैं और जगन्माता श्रीलक्ष्मीजी लता हैं॥ ३०॥ चक्रगदाधरदेव श्रीविष्णु दिन हैं और लक्ष्मीजी रात्रि हैं, वरदायक श्रीहरि वर हैं और पद्मनिवासिनी श्रीलक्ष्मीजी वधू हैं॥ ३१॥ भगवान् नद हैं और श्रीजी नदी हैं, कमलनयन भगवान् ध्वजा हैं और कमलालया लक्ष्मीजी पताका हैं॥ ३२॥ जगदीश्वर परमात्मा नारायण लोभ हैं और लक्ष्मीजी तृष्णा हैं तथा हे मैत्रेय! रति और राग भी साक्षात् श्रीलक्ष्मी और गोविन्दरूप ही हैं॥ ३३॥ अधिक क्या कहा जाय? संक्षेपमें, यह कहना चाहिये कि देव, तिर्यक् और मनुष्य आदिमें पुरुषवाची भगवान् हरि हैं और स्त्रीवाची श्रीलक्ष्मीजी, इनके परे और कोई नहीं है॥ ३४-३५॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पहले अंशमें आठवाँ अध्याय समाप्त॥ ८॥

नवाँ अध्याय

दुर्वासाजीके शापसे इन्द्रका पराजय, ब्रह्माजीकी स्तुतिसे प्रसन्न हुए भगवान्‌का प्रकट होकर देवताओंको समुद्र-मन्थनका उपदेश करना तथा देवता और दैत्योंका समुद्र-मन्थन

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय ! तुमने इस समय मुझसे जिसके विषयमें पूछा है वह श्रीसम्बन्ध (लक्ष्मीजीका इतिहास) मैंने भी मरीचि ऋषिसे सुना था, वह मैं तुम्हें सुनाता हूँ, [सावधान होकर] सुनो॥ १॥ एक बार शंकरके अंशावतार श्रीदुर्वासाजी पृथिवीतलमें विचर रहे थे। घूमते-घूमते उन्होंने एक विद्याधरीके हाथोंमें सन्तानक पुष्पोंकी एक दिव्य माला देखी। हे ब्रह्मन्! उसकी गन्धसे सुवासित होकर वह वन वनवासियोंके लिये अति सेवनीय हो रहा था॥ २-३॥ तब उन उन्मत्तवृत्तिवाले विप्रवरने वह सुन्दर माला देखकर उसे उस विद्याधर-सुन्दरीसे माँगा॥ ४॥ उनके माँगनेपर उस बड़े-बड़े नेत्रोंवाली कृशांगी विद्याधरीने उन्हें आदरपूर्वक प्रणाम कर वह माला दे दी॥ ५॥

हे मैत्रेय! उन उन्मत्तवेषधारी विप्रवरने उसे लेकर अपने मस्तकपर डाल लिया और पृथिवीपर विचरने लगे॥ ६॥ इसी समय उन्होंने उन्मत्त ऐरावतपर चढ़कर देवताओंके साथ आते हुए त्रैलोक्याधिपति शचीपति इन्द्रको देखा॥ ७॥ उन्हें देखकर मुनिवर दुर्वासाने उन्मत्तके समान वह मतवाले भौंरोंसे गुंजायमान माला अपने सिरपरसे उतारकर देवराज इन्द्रके ऊपर फेंक दी॥ ८॥ देवराजने उसे लेकर ऐरावतके मस्तकपर डाल दी; उस समय वह ऐसी सुशोभित हुई मानो कैलास पर्वतके शिखरपर श्रीगंगाजी विराजमान हों॥ ९॥ उस मदोन्मत्त हाथीने भी उसकी गन्धसे आकर्षित हो उसे सूँडसे सूँघकर पृथिवीपर फेंक

दिया॥ १०॥ हे मैत्रेय! यह देखकर मुनिश्रेष्ठ भगवान् दुर्वासाजी अति क्रोधित हुए और देवराज इन्द्रसे इस प्रकार बोले॥ ११॥

दुर्वासाजीने कहा—अरे ऐश्वर्यके मदसे दूषितचित्त इन्द्र! तू बड़ा ढीठ है, तूने मेरी दी हुई सम्पूर्ण शोभाकी धाम मालाका कुछ भी आदर नहीं किया!॥ १२॥ अरे! तूने न तो प्रणाम करके 'बड़ी कृपा की' ऐसा ही कहा और न हर्षसे प्रसन्नवदन होकर उसे अपने सिरपर ही रखा॥ १३॥ रे मूढ़! तूने मेरी दी हुई मालाका कुछ भी मूल्य नहीं किया, इसलिये तेरा त्रिलोकीका वैभव नष्ट हो जायगा॥ १४॥ इन्द्र! निश्चय ही तू मुझे और ब्राह्मणोंके समान ही समझता है, इसीलिये तुझ अति मानीने हमारा इस प्रकार अपमान किया है॥ १५॥ अच्छा, तूने मेरी दी हुई मालाको पृथिवीपर फेंका है इसलिये तेरा यह त्रिभुवन भी शीघ्र ही श्रीहीन हो जायगा॥ १६॥ रे देवराज! जिसके क्रुद्ध होनेपर सम्पूर्ण चराचर जगत् भयभीत हो जाता है उस मेरा ही तूने अति गर्वसे इस प्रकार अपमान किया!॥ १७॥

श्रीपराशरजी बोले—तब तो इन्द्रने तुरन्त ही ऐरावत हाथीसे उतरकर निष्पाप मुनिवर दुर्वासाजीको [अनुनय-विनय करके] प्रसन्न किया॥ १८॥ तब उसके प्रणामादि करनेसे प्रसन्न होकर मुनिश्रेष्ठ दुर्वासाजी उससे इस प्रकार कहने लगे॥ १९॥

दुर्वासाजी बोले—इन्द्र! मैं कृपालु-चित्त नहीं हूँ, मेरे अन्तःकरणमें क्षमाको स्थान नहीं है। वे मुनिजन तो और ही हैं; तुम समझो, मैं तो दुर्वासा हूँ न?॥ २०॥ गौतमादि अन्य मुनिजनोंने व्यर्थ ही तुझे इतना मुँह लगा लिया है; पर याद रख, मुझ दुर्वासाका सर्वस्व तो क्षमा न करना ही है॥ २१॥ दयामूर्ति वसिष्ठ आदिके बढ़-बढ़कर स्तुति करनेसे तू इतना गर्वीला हो गया कि आज मेरा भी अपमान करने चला है॥ २२॥ अरे! आज त्रिलोकीमें ऐसा कौन है जो मेरे प्रज्वलित जटाकलाप और टेढ़ी भृकुटिको देखकर भयभीत न हो जाय?॥ २३॥ रे शतक्रतो! तू बारम्बार अनुनय-विनय करनेका ढोंग क्यों करता है? तेरे इस कहने-सुननेसे क्या होगा? मैं क्षमा नहीं कर सकता॥ २४॥

श्रीपराशरजी बोले—हे ब्रह्मन्! इस प्रकार कह वे विप्रवर वहाँसे चल दिये और इन्द्र भी ऐरावतपर चढ़कर अमरावतीको चले गये॥ २५॥ हे मैत्रेय! तभीसे इन्द्रके सहित तीनों लोक वृक्ष-लता आदिके क्षीण हो जानेसे श्रीहीन और नष्ट-भ्रष्ट होने लगे॥ २६॥ तबसे यज्ञोंका होना बन्द हो गया, तपस्वियोंने तप करना छोड़ दिया तथा लोगोंका दान आदि धर्मोंमें चित्त नहीं रहा॥ २७॥ हे द्विजोत्तम! सम्पूर्ण लोक लोभादिके वशीभूत हो जानेसे सत्त्वशून्य (सामर्थ्यहीन) हो गये और तुच्छ वस्तुओंके लिये भी लालायित रहने लगे॥ २८॥ जहाँ सत्त्व होता है वहीं लक्ष्मी रहती है और सत्त्व भी लक्ष्मीका ही साथी है। श्रीहीनोंमें भला सत्त्व कहाँ? और बिना सत्त्वके गुण कैसे ठहर सकते हैं?॥ २९॥ बिना गुणोंके पुरुषमें बल, शौर्य आदि सभीका अभाव हो जाता है और निर्बल तथा अशक्त पुरुष सभीसे अपमानित होता है॥ ३०॥ अपमानित होनेपर प्रतिष्ठित पुरुषकी बुद्धि बिगड़ जाती है॥ ३१॥

इस प्रकार त्रिलोकीके श्रीहीन और सत्त्वरहित हो जानेपर दैत्य और दानवोंने देवताओंपर चढ़ाई कर दी॥ ३२॥ सत्त्व और वैभवसे शून्य होनेपर भी दैत्योंने लोभवश निःसत्त्व और श्रीहीन देवताओंसे घोर युद्ध ठाना॥ ३३॥ अन्तमें दैत्योंद्वारा देवतालोग परास्त हुए। तब इन्द्रादि समस्त

देवगण अग्निदेवको आगे कर महाभाग पितामह श्रीब्रह्माजीकी शरण गये॥ ३४॥ देवताओंसे सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनकर श्रीब्रह्माजीने उनसे कहा, 'हे देवगण! तुम दैत्य-दलन परावरेश्वर भगवान् विष्णुकी शरण जाओ, जो [आरोपसे] संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और संहारके कारण हैं किन्तु [वास्तवमें] कारण भी नहीं हैं और जो चराचरके ईश्वर, प्रजापतियोंके स्वामी, सर्वव्यापक, अनन्त और अजेय हैं तथा जो अजन्मा किन्तु कार्यरूपमें परिणत हुए प्रधान (मूलप्रकृति) और पुरुषके कारण हैं एवं शरणागतवत्सल हैं। [शरण जानेपर] वे अवश्य तुम्हारा मंगल करेंगे'॥ ३५—३७॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! सम्पूर्ण देवगणोंसे इस प्रकार कह लोकपितामह श्रीब्रह्माजी भी उनके साथ क्षीरसागरके उत्तरी तटपर गये॥ ३८॥ वहाँ पहुँचकर पितामह ब्रह्माजीने समस्त देवताओंके साथ परावरनाथ श्रीविष्णुभगवान्‌की अति मंगलमय वाक्योंसे स्तुति की॥ ३९॥

ब्रह्माजी कहने लगे—जो समस्त अणुओंसे भी अणु और पृथिवी आदि समस्त गुरुओं (भारी पदार्थों)-से भी गुरु (भारी) हैं; उन निखिललोकविश्राम, पृथिवीके आधारस्वरूप, अप्रकाश्य, अभेद्य, सर्वरूप, सर्वेश्वर, अनन्त, अज और अव्यय नारायणको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ४०-४१॥ मेरे सहित सम्पूर्ण जगत् जिसमें स्थित है, जिससे उत्पन्न हुआ है और जो देव सर्वभूतमय है तथा जो पर (प्रधानादि) से भी पर है; जो पर पुरुषसे भी पर है, मुक्ति-लाभके लिये मोक्षकामी मुनिजन जिसका ध्यान धरते हैं तथा जिस ईश्वरमें सत्त्वादि प्राकृतिक गुणोंका सर्वथा अभाव है वह समस्त शुद्ध पदार्थोंसे भी परम शुद्ध परमात्मस्वरूप आदिपुरुष हमपर प्रसन्न हों॥ ४२—४४॥ जिस शुद्धस्वरूप भगवान्‌की शक्ति (विभूति) कला-काष्ठा और मुहूर्त आदि काल-क्रमका विषय नहीं है, वे भगवान् विष्णु हमपर प्रसन्न हों॥ ४५॥ जो शुद्धस्वरूप होकर भी उपचारसे परमेश्वर (परमा=महालक्ष्मी+ ईश्वर=पति) अर्थात् लक्ष्मीपति कहलाते हैं और जो समस्त देहधारियोंके आत्मा हैं वे श्रीविष्णुभगवान् हमपर प्रसन्न हों॥ ४६॥ जो कारण और कार्यरूप हैं तथा कारणके भी कारण और कार्यके भी कार्य हैं वे श्रीहरि हमपर प्रसन्न हों॥ ४७॥ जो कार्य (महत्तत्त्व)-के कार्य (अहंकार)-का भी कार्य (तन्मात्रापंचक) है उसके कार्य (भूतपंचक)-का भी कार्य (ब्रह्माण्ड) जो स्वयं है और जो उसके कार्य (ब्रह्मा-दक्षादि)-का भी कार्यभूत (प्रजापतियोंके पुत्र-पौत्रादि) है उसे हम प्रणाम करते हैं॥ ४८॥ तथा जो जगत्‌के कारण (ब्रह्मादि)-का कारण (ब्रह्माण्ड) और उसके कारण (भूतपंचक)-के कारण (पंचतन्मात्रा)-के कारणों (अहंकार-महत्तत्त्वादि)-का भी हेतु (मूलप्रकृति) है उस परमेश्वरको हम प्रणाम करते हैं॥ ४९॥ जो भोक्ता और भोग्य, स्रष्टा और सृज्य तथा कर्ता और कार्यरूप स्वयं ही है उस परमपदको हम प्रणाम करते हैं॥ ५०॥ जो विशुद्ध बोधस्वरूप, नित्य, अजन्मा, अक्षय, अव्यय, अव्यक्त और अविकारी है वही विष्णुका परमपद (परस्वरूप) है॥ ५१॥ जो न स्थूल है न सूक्ष्म और न किसी अन्य विशेषणका विषय है वही भगवान् विष्णुका नित्य-निर्मल परमपद है, हम उसको प्रणाम करते हैं॥ ५२॥ जिसके अयुतांश (दस हजारवें अंश) के अयुतांशमें यह विश्वरचनाकी शक्ति स्थित है तथा जो परब्रह्मस्वरूप है उस अव्ययको हम प्रणाम करते हैं ॥ ५३॥ नित्य-युक्त योगिगण अपने पुण्य-पापादिका क्षय हो जानेपर ॐ कारद्वारा चिन्तनीय जिस अविनाशी पदका साक्षात्कार

करते हैं वही भगवान् विष्णुका परमपद है॥ ५४॥ जिसको देवगण, मुनिगण, शंकर और मैं—कोई भी नहीं जान सकते वही परमेश्वर श्रीविष्णुका परमपद है॥ ५५॥ जिस अभूतपूर्व देवकी ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप शक्तियाँ हैं वही भगवान् विष्णुका परमपद है॥ ५६॥ हे सर्वेश्वर! हे सर्वभूतात्मन्! हे सर्वरूप! हे सर्वाधार! हे अच्युत! हे विष्णो! हम भक्तोंपर प्रसन्न होकर हमें दर्शन दीजिये॥ ५७॥

श्रीपराशरजी बोले—ब्रह्माजीके इन उद्गारोंको सुनकर देवगण भी प्रणाम करके बोले—'प्रभो! हमपर प्रसन्न होकर हमें दर्शन दीजिये॥ ५८॥ हे जगद्धाम सर्वगत अच्युत! जिसे ये भगवान् ब्रह्माजी भी नहीं जानते, आपके उस परमपदको हम प्रणाम करते हैं'॥ ५९॥

तदनन्तर ब्रह्मा और देवगणोंके बोल चुकनेपर बृहस्पति आदि समस्त देवर्षिगण कहने लगे—॥ ६०॥ 'जो परम स्तवनीय आद्य यज्ञ-पुरुष हैं और पूर्वजोंके भी पूर्वपुरुष हैं उन जगत्के रचयिता निर्विशेष परमात्माको हम नमस्कार करते हैं॥ ६१॥ हे भूत-भव्येश यज्ञमूर्तिधर भगवन्! हे अव्यय! हम सब शरणागतोंपर आप प्रसन्न होइये और दर्शन दीजिये॥ ६२॥ हे नाथ! हमारे सहित ये ब्रह्माजी, रुद्रोंके सहित भगवान् शंकर, बारहों आदित्योंके सहित भगवान् पूषा, अग्नियोंके सहित पावक और ये दोनों अश्विनीकुमार, आठों वसु, समस्त मरुद्गण, साध्यगण, विश्वेदेव तथा देवराज इन्द्र ये सभी देवगण दैत्य-सेनासे पराजित होकर अति प्रणत हो आपकी शरणमें आये हैं'॥ ६३—६५॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! इस प्रकार स्तुति किये जानेपर शंख-चक्रधारी भगवान् परमेश्वर उनके सम्मुख प्रकट हुए॥ ६६॥ तब उस शंख-चक्रगदाधारी उत्कृष्ट तेजोराशिमय अपूर्व दिव्य मूर्तिको देखकर पितामह आदि समस्त देवगण अति विनयपूर्वक प्रणाम कर क्षोभवश चकित-नयन हो उन कमलनयन भगवान्की स्तुति करने लगे॥ ६७—६८॥

देवगण बोले—हे प्रभो! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आप निर्विशेष हैं तथापि आप ही ब्रह्मा हैं, आप ही शंकर हैं तथा आप ही इन्द्र, अग्नि, पवन, वरुण, सूर्य और यमराज हैं॥ ६९॥ हे देव! वसुगण, मरुद्गण, साध्यगण और विश्वेदेवगण भी आप ही हैं तथा आपके सम्मुख जो यह देवसमुदाय है, हे जगत्स्रष्टा! वह भी आप ही हैं क्योंकि आप सर्वत्र परिपूर्ण हैं॥ ७०॥ आप ही यज्ञ हैं, आप ही वषट्कार हैं तथा आप ही ओंकार और प्रजापति हैं। हे सर्वात्मन्! विद्या, वेद्य और सम्पूर्ण जगत् आपहीका स्वरूप तो है॥ ७१॥ हे विष्णो! दैत्योंसे परास्त हुए हम आतुर होकर आपकी शरणमें आये हैं; हे सर्वस्वरूप! आप हमपर प्रसन्न होइये और अपने तेजसे हमें सशक्त कीजिये॥ ७२॥ हे प्रभो! जबतक जीव सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करनेवाले आपकी शरणमें नहीं जाता तभीतक उसमें दीनता, इच्छा, मोह और दुःख आदि रहते हैं॥ ७३॥ हे प्रसन्नात्मन्! हम शरणागतोंपर आप प्रसन्न होइये और हे नाथ! अपनी शक्तिसे हम सब देवताओंके [खोये हुए] तेजको फिर बढ़ाइये॥ ७४॥

श्रीपराशरजी बोले—विनीत देवताओंद्वारा इस प्रकार स्तुति किये जानेपर विश्वकर्ता भगवान् हरि प्रसन्न होकर इस प्रकार बोले—॥ ७५॥ हे देवगण! मैं तुम्हारे तेजको फिर बढ़ाऊँगा; तुम इस समय मैं जो कुछ कहता हूँ वह करो॥ ७६॥ तुम दैत्योंके साथ सम्पूर्ण ओषधियाँ लाकर अमृतके लिये क्षीर-सागरमें डालो और मन्दराचलको मथानी

तथा वासुकि नागको नेती बनाकर उसे दैत्य और दानवोंके सहित मेरी सहायतासे मथकर अमृत निकालो॥ ७७-७८॥ तुमलोग सामनीतिका अवलम्बन कर दैत्योंसे कहो कि 'इस काममें सहायता करनेसे आपलोग भी इसके फलमें समान भाग पायेंगे'॥ ७९॥ समुद्रके मथनेपर उससे जो अमृत निकलेगा उसका पान करनेसे तुम सबल और अमर हो जाओगे॥ ८०॥ हे देवगण! तुम्हारे लिये मैं ऐसी युक्ति करूँगा जिससे तुम्हारे द्वेषी दैत्योंको अमृत न मिल सकेगा और उनके हिस्सेमें केवल समुद्र-मन्थनका क्लेश ही आयेगा॥ ८१॥

श्रीपराशरजी बोले—तब देवदेव भगवान् विष्णुके ऐसा कहनेपर सभी देवगण दैत्योंसे सन्धि करके अमृतप्राप्तिके लिये यत्न करने लगे॥ ८२॥ हे मैत्रेय! देव, दानव और दैत्योंने नाना प्रकारकी ओषधियाँ लाकर उन्हें शरद्-ऋतुके आकाशकी-सी निर्मल कान्तिवाले क्षीर-सागरके जलमें डाला और मन्दराचलको मथानी तथा वासुकि नागको नेती बनाकर बड़े वेगसे अमृत मथना आरम्भ किया॥ ८३-८४॥ भगवान्ने जिस ओर वासुकिकी पूँछ थी उस ओर देवताओंको तथा जिस ओर मुख था उधर दैत्योंको नियुक्त किया॥ ८५॥ महातेजस्वी वासुकिके मुखसे निकलते हुए निःश्वासाग्निसे झुलसकर सभी दैत्यगण निस्तेज हो गये॥ ८६॥ और उसी श्वास-वायुसे विक्षिप्त हुए मेघोंके पूँछकी ओर बरसते रहनेसे देवताओंकी शक्ति बढ़ती गयी॥ ८७॥

हे महामुने! भगवान् स्वयं कूर्मरूप धारण कर क्षीर-सागरमें घूमते हुए मन्दराचलके आधार हुए॥ ८८॥ और वे ही चक्र-गदाधर भगवान् अपने एक अन्य रूपसे देवताओंमें और एक रूपसे दैत्योंमें मिलकर नागराजको खींचने लगे थे॥ ८९॥ तथा हे मैत्रेय! एक अन्य विशाल रूपसे जो देवता और दैत्योंको दिखायी नहीं देता था श्रीकेशवने ऊपरसे पर्वतको दबा रखा था॥ ९०॥ भगवान् श्रीहरि अपने तेजसे नागराज वासुकिमें बलका संचार करते थे और अपने अन्य तेजसे वे देवताओंका बल बढ़ा रहे थे॥ ९१॥

इस प्रकार, देवता और दानवोंद्वारा क्षीर-समुद्रके मथे जानेपर पहले हवि (यज्ञ-सामग्री)-की आश्रयरूपा सुरपूजिता कामधेनु उत्पन्न हुई॥ ९२॥ हे महामुने! उस समय देव और दानवगण अति आनन्दित हुए और उसकी ओर चित्त खिंच जानेसे उनकी टकटकी बँध गयी॥ ९३॥ फिर स्वर्गलोकमें 'यह क्या है? यह क्या है?' इस प्रकार चिन्ता करते हुए सिद्धोंके समक्ष मदसे घूमते हुए नेत्रोंवाली वारुणीदेवी प्रकट हुई॥ ९४॥ और पुनः मन्थन करनेपर उस क्षीर-सागरसे, अपनी गन्धसे त्रिलोकीको सुगन्धित करनेवाला तथा सुर-सुन्दरियोंका आनन्दवर्धक कल्पवृक्ष उत्पन्न हुआ॥ ९५॥ हे मैत्रेय! तत्पश्चात् क्षीर-सागरसे रूप और उदारता आदि गुणोंसे युक्त अति अद्भुत अप्सराएँ प्रकट हुईं॥ ९६॥ फिर चन्द्रमा प्रकट हुआ जिसे महादेवजीने ग्रहण कर लिया। इसी प्रकार क्षीर-सागरसे उत्पन्न हुए विषको नागोंने ग्रहण किया॥ ९७॥ फिर श्वेतवस्त्रधारी साक्षात् भगवान् धन्वन्तरिजी अमृतसे भरा कमण्डलु लिये प्रकट हुए॥ ९८॥ हे मैत्रेय! उस समय मुनिगणके सहित समस्त दैत्य और दानवगण स्वस्थ-चित्त होकर अति प्रसन्न हुए॥ ९९॥

उसके पश्चात् विकसित कमलपर विराजमान स्फुटकान्तिमयी श्रीलक्ष्मीदेवी हाथोंमें कमल-पुष्प धारण किये क्षीर-समुद्रसे प्रकट हुईं॥ १००॥ उस समय महर्षिगण अति प्रसन्नतापूर्वक श्रीसूक्तद्वारा उनकी स्तुति करने लगे तथा विश्वावसु आदि

गन्धर्वगण उनके सम्मुख गान और घृताची आदि अप्सराएँ नृत्य करने लगीं॥ १०१-१०२॥ उन्हें अपने जलसे स्नान करानेके लिये गंगा आदि नदियाँ स्वयं उपस्थित हुईं और दिग्गजोंने सुवर्ण कलशोंमें भरे हुए उनके निर्मल जलसे सर्वलोक-महेश्वरी श्रीलक्ष्मीदेवीको स्नान कराया॥ १०३॥ क्षीरसागरने मूर्तिमान् होकर उन्हें विकसित कमल-पुष्पोंकी माला दी तथा विश्वकर्माने उनके अंग-प्रत्यंगमें विविध आभूषण पहनाये॥ १०४॥ इस प्रकार दिव्य माला और वस्त्र धारण कर, दिव्य जलसे स्नान कर, दिव्य आभूषणोंसे विभूषित हो श्रीलक्ष्मीजी सम्पूर्ण देवताओंके देखते-देखते श्रीविष्णुभगवान्के वक्षःस्थलमें विराजमान हुईं॥ १०५॥

हे मैत्रेय! श्रीहरिके वक्षःस्थलमें विराजमान श्रीलक्ष्मीजीका दर्शन कर देवताओंको अकस्मात् अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्त हुई॥ १०६॥ और हे महाभाग! लक्ष्मीजीसे परित्यक्त होनेके कारण भगवान् विष्णुके विरोधी विप्रचित्ति आदि दैत्यगण परम उद्विग्न (व्याकुल) हुए॥ १०७॥ तब उन महाबलवान् दैत्योंने श्रीधन्वन्तरिजीके हाथसे वह कमण्डलु छीन लिया जिसमें अति उत्तम अमृत भरा हुआ था॥ १०८॥ अतः स्त्री (मोहिनी)-रूपधारी भगवान् विष्णुने अपनी मायासे दानवोंको मोहित कर उनसे वह कमण्डलु लेकर देवताओंको दे दिया॥ १०९॥

तब इन्द्र आदि देवगण उस अमृतको पी गये; इससे दैत्यलोग अति तीखे खड्ग आदि शस्त्रोंसे सुसज्जित हो उनके ऊपर टूट पड़े॥ ११०॥ किन्तु अमृत-पानके कारण बलवान् हुए देवताओंद्वारा मारी-काटी जाकर दैत्योंकी सम्पूर्ण सेना दिशा-विदिशाओंमें भाग गयी और कुछ पाताललोकमें भी चली गयी॥ १११॥ फिर देवगण प्रसन्नतापूर्वक शंख-चक्र-गदा-धारी भगवान्को प्रणाम कर पहलेहीके समान स्वर्गका शासन करने लगे॥ ११२॥

हे मुनिश्रेष्ठ! उस समयसे प्रखर तेजोयुक्त भगवान् सूर्य अपने मार्गसे तथा अन्य तारागण भी अपने-अपने मार्गसे चलने लगे॥ ११३॥ सुन्दर दीप्तिशाली भगवान् अग्निदेव अत्यन्त प्रज्वलित हो उठे और उसी समयसे समस्त प्राणियोंकी धर्ममें प्रवृत्ति हो गयी॥ ११४॥ हे द्विजोत्तम! त्रिलोकी श्रीसम्पन्न हो गयी और देवताओंमें श्रेष्ठ इन्द्र भी पुनः श्रीमान् हो गये॥ ११५॥ तदनन्तर इन्द्रने स्वर्गलोकमें जाकर फिरसे देवराज्यपर अधिकार पाया और राजसिंहासनपर आरूढ़ हो पद्महस्ता श्रीलक्ष्मीजीकी इस प्रकार स्तुति की॥ ११६॥

इन्द्र बोले—सम्पूर्ण लोकोंकी जननी, विकसित कमलके सदृश नेत्रोंवाली, भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलमें विराजमान कमलोद्भवा श्रीलक्ष्मीदेवीको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ११७॥ कमल ही जिनका निवासस्थान है, कमल ही जिनके कर-कमलोंमें सुशोभित है, तथा कमल-दलके समान ही जिनके नेत्र हैं उन कमलमुखी कमलनाभ-प्रिया श्रीकमलादेवीकी मैं वन्दना करता हूँ॥ ११८॥ हे देवि! तुम सिद्धि हो, स्वधा हो, स्वाहा हो, सुधा हो और त्रिलोकीको पवित्र करनेवाली हो तथा तुम ही सन्ध्या, रात्रि, प्रभा, विभूति, मेधा, श्रद्धा और सरस्वती हो॥ ११९॥

हे शोभने! यज्ञ-विद्या (कर्म-काण्ड), महाविद्या (उपासना) और गुह्यविद्या (इन्द्रजाल) तुम्हीं हो तथा हे देवि! तुम्हीं मुक्ति-फलदायिनी आत्मविद्या हो॥ १२०॥ हे देवि! आन्वीक्षिकी (तर्कविद्या), वेदत्रयी, वार्ता (शिल्पवाणिज्यादि) और दण्डनीति (राजनीति) भी तुम्हीं हो। तुम्हींने अपने शान्त और उग्र रूपोंसे यह समस्त संसार व्याप्त किया

हुआ है॥ १२१ ॥ हे देवि! तुम्हारे बिना और ऐसी कौन स्त्री है जो देवदेव भगवान् गदाधरके योगिजनचिन्तित सर्वयज्ञमय शरीरका आश्रय पा सके॥ १२२ ॥ हे देवि! तुम्हारे छोड़ देनेपर सम्पूर्ण त्रिलोकी नष्टप्राय हो गयी थी; अब तुम्हींने उसे पुनः जीवन-दान दिया है॥ १२३ ॥ हे महाभागे! स्त्री, पुत्र, गृह, धन, धान्य तथा सुहृद् ये सब सदा आपहीके दृष्टिपातसे मनुष्योंको मिलते हैं॥ १२४ ॥ हे देवि! तुम्हारी कृपा-दृष्टिके पात्र पुरुषोंके लिये शारीरिक आरोग्य, ऐश्वर्य, शत्रु-पक्षका नाश और सुख आदि कुछ भी दुर्लभ नहीं हैं॥ १२५ ॥ तुम सम्पूर्ण लोकोंकी माता हो और देवदेव भगवान् हरि पिता हैं। हे मातः! तुमसे और श्रीविष्णुभगवान्से यह सकल चराचर जगत् व्याप्त है॥ १२६ ॥ हे सर्वपावनि मातेश्वरि! हमारे कोश (खजाना), गोष्ठ (पशुशाला), गृह, भोगसामग्री, शरीर और स्त्री आदिको आप कभी न त्यागें अर्थात् इनमें भरपूर रहें॥ १२७ ॥ अयि विष्णुवक्षःस्थल निवासिनि! हमारे पुत्र, सुहृद्, पशु और भूषण आदिको आप कभी न छोड़ें॥ १२८ ॥ हे अमले! जिन मनुष्योंको तुम छोड़ देती हो उन्हें सत्त्व (मानसिक बल), सत्य, शौच और शील आदि गुण भी शीघ्र ही त्याग देते हैं॥ १२९ ॥ और तुम्हारी कृपा-दृष्टि होनेपर तो गुणहीन पुरुष भी शीघ्र ही शील आदि सम्पूर्ण गुण और कुलीनता तथा ऐश्वर्य आदिसे सम्पन्न हो जाते है॥ १३० ॥ हे देवि! जिसपर तुम्हारी कृपा-दृष्टि है वही प्रशंसनीय है, वही गुणी है, वही धन्यभाग्य है, वही कुलीन और बुद्धिमान् है तथा वही शूरवीर और पराक्रमी है॥ १३१ ॥ हे विष्णुप्रिये! हे जगज्जननि! तुम जिससे विमुख हो उसके तो शील आदि सभी गुण तुरन्त अवगुणरूप हो जाते हैं॥ १३२ ॥ हे देवि! तुम्हारे गुणोंका वर्णन करनेमें तो श्रीब्रह्माजीकी रसना भी समर्थ नहीं है। [फिर मैं क्या कर सकता हूँ?] अतः हे कमलनयने! अब मुझपर प्रसन्न हो और मुझे कभी न छोड़ो॥ १३३ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे द्विज! इस प्रकार सम्यक् स्तुति किये जानेपर सर्वभूतस्थिता श्रीलक्ष्मीजी सब देवताओंके सुनते हुए इन्द्रसे इस प्रकार बोलीं॥ १३४ ॥

श्रीलक्ष्मीजी बोलीं—हे देवेश्वर इन्द्र! मैं तेरे इस स्तोत्रसे अति प्रसन्न हूँ; तुझको जो अभीष्ट हो वही वर माँग ले। मैं तुझे वर देनेके लिये ही यहाँ आयी हूँ॥ १३५ ॥

इन्द्र बोले—हे देवि! यदि आप वर देना चाहती हैं और मैं भी यदि वर पानेयोग्य हूँ तो मुझको पहला वर तो यही दीजिये कि आप इस त्रिलोकीका कभी त्याग न करें॥ १३६ ॥ और हे समुद्रसम्भवे! दूसरा वर मुझे यह दीजिये कि जो कोई आपकी इस स्तोत्रसे स्तुति करे उसे आप कभी न त्यागें॥ १३७ ॥

श्रीलक्ष्मीजी बोलीं—हे देवश्रेष्ठ इन्द्र! मैं अब इस त्रिलोकीको कभी न छोड़ूँगी। तेरे स्तोत्रसे प्रसन्न होकर मैं तुझे यह वर देती हूँ॥ १३८ ॥ तथा जो कोई मनुष्य प्रातःकाल और सायंकालके समय इस स्तोत्रसे मेरी स्तुति करेगा उससे भी मैं कभी विमुख न होऊँगी॥ १३९ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! इस प्रकार पूर्वकालमें महाभागा श्रीलक्ष्मीजीने देवराजकी स्तोत्ररूप आराधनासे सन्तुष्ट होकर उन्हें ये वर दिये॥ १४० ॥ लक्ष्मीजी पहले भृगुजीके द्वारा ख्याति नामक स्त्रीसे उत्पन्न हुई थीं, फिर अमृत-मन्थनके समय देव और दानवोंके प्रयत्नसे वे समुद्रसे प्रकट हुईं॥ १४१ ॥ इस प्रकार संसारके स्वामी देवाधिदेव श्रीविष्णुभगवान् जब-जब अवतार धारण करते हैं तभी लक्ष्मीजी उनके साथ रहती हैं॥ १४२ ॥

भगवान् श्रीविष्णु

लक्ष्मीजीका प्रादुर्भाव
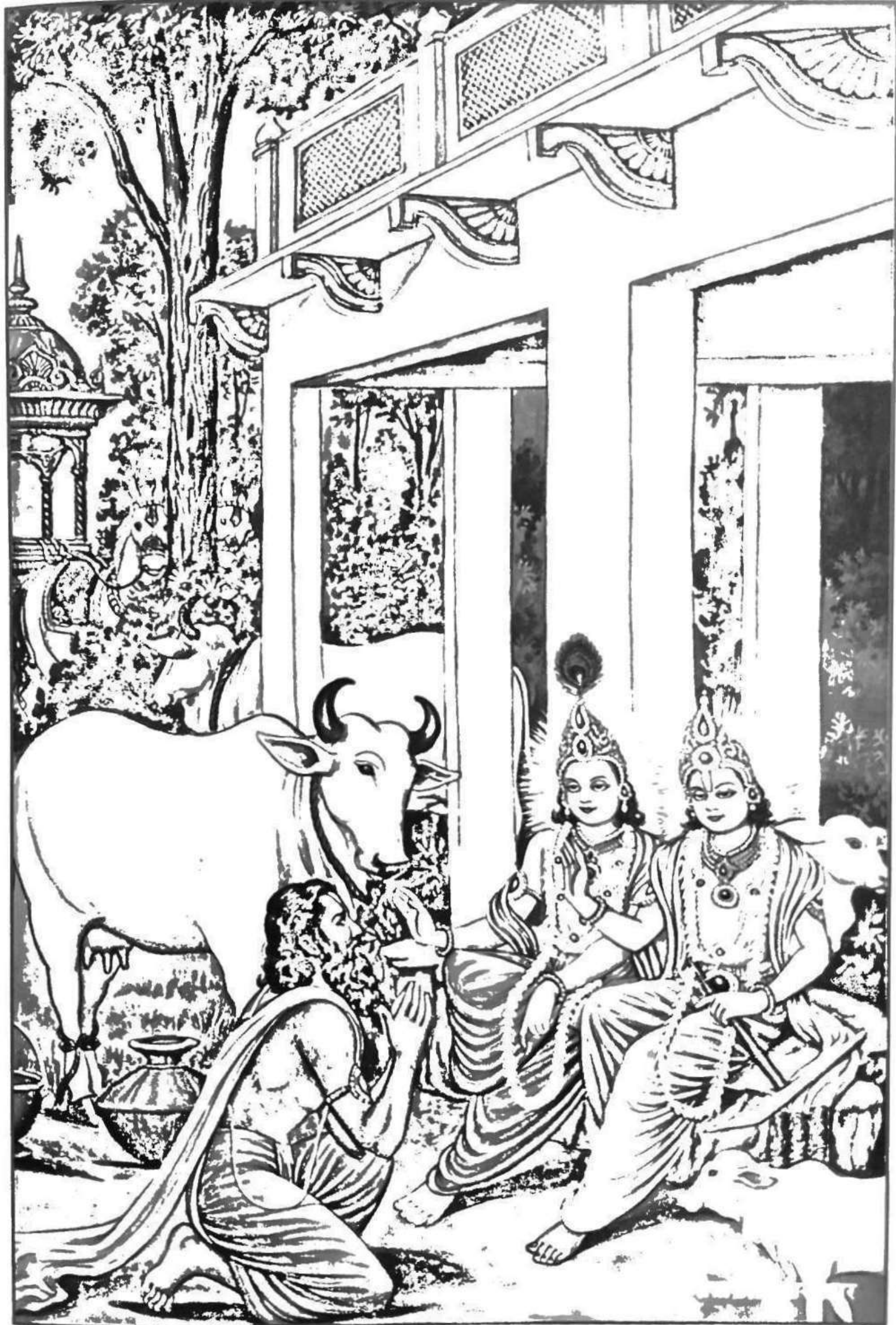
अक्रूरको प्रथम दर्शन
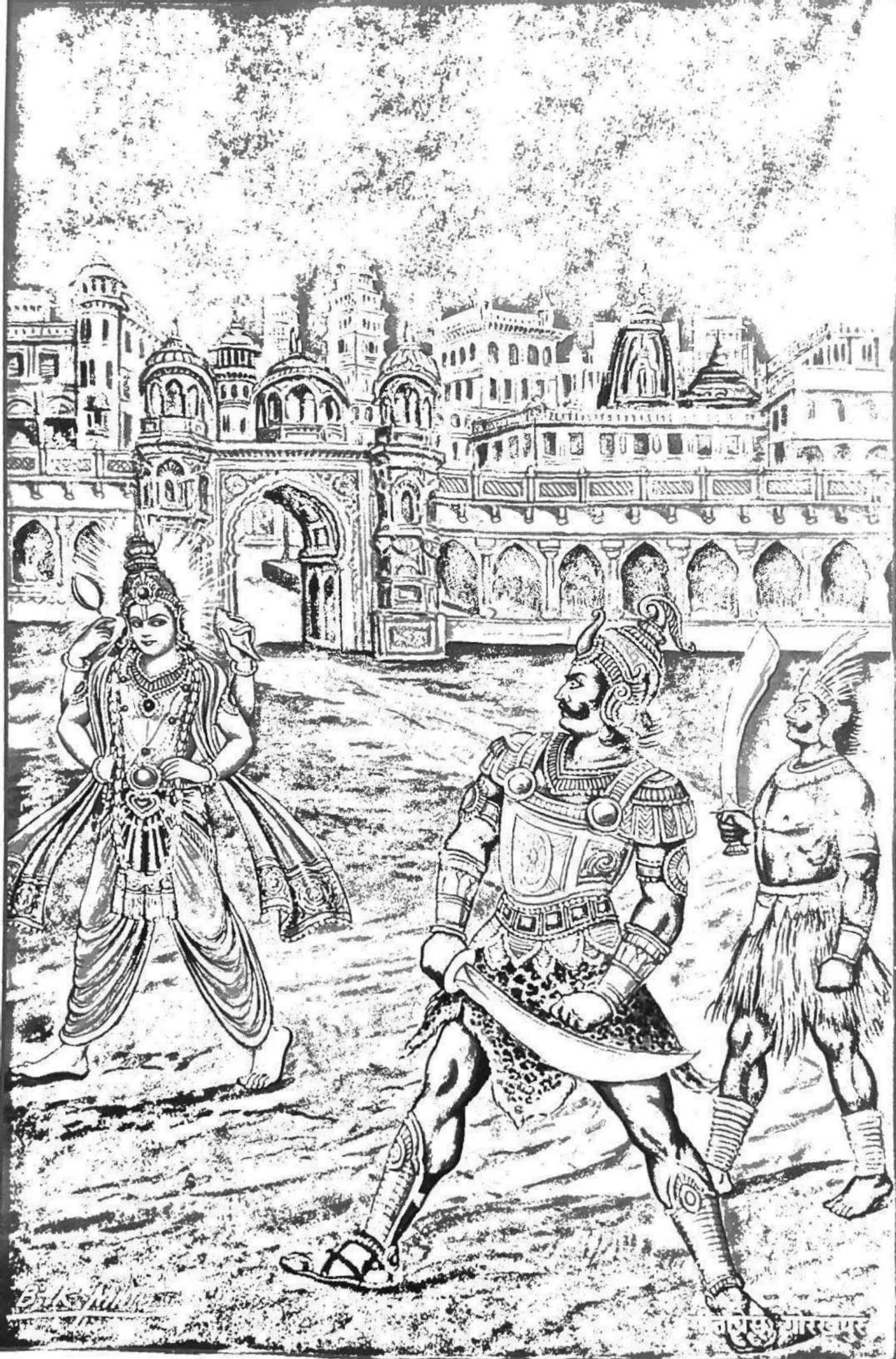
कालयवन और श्रीकृष्ण
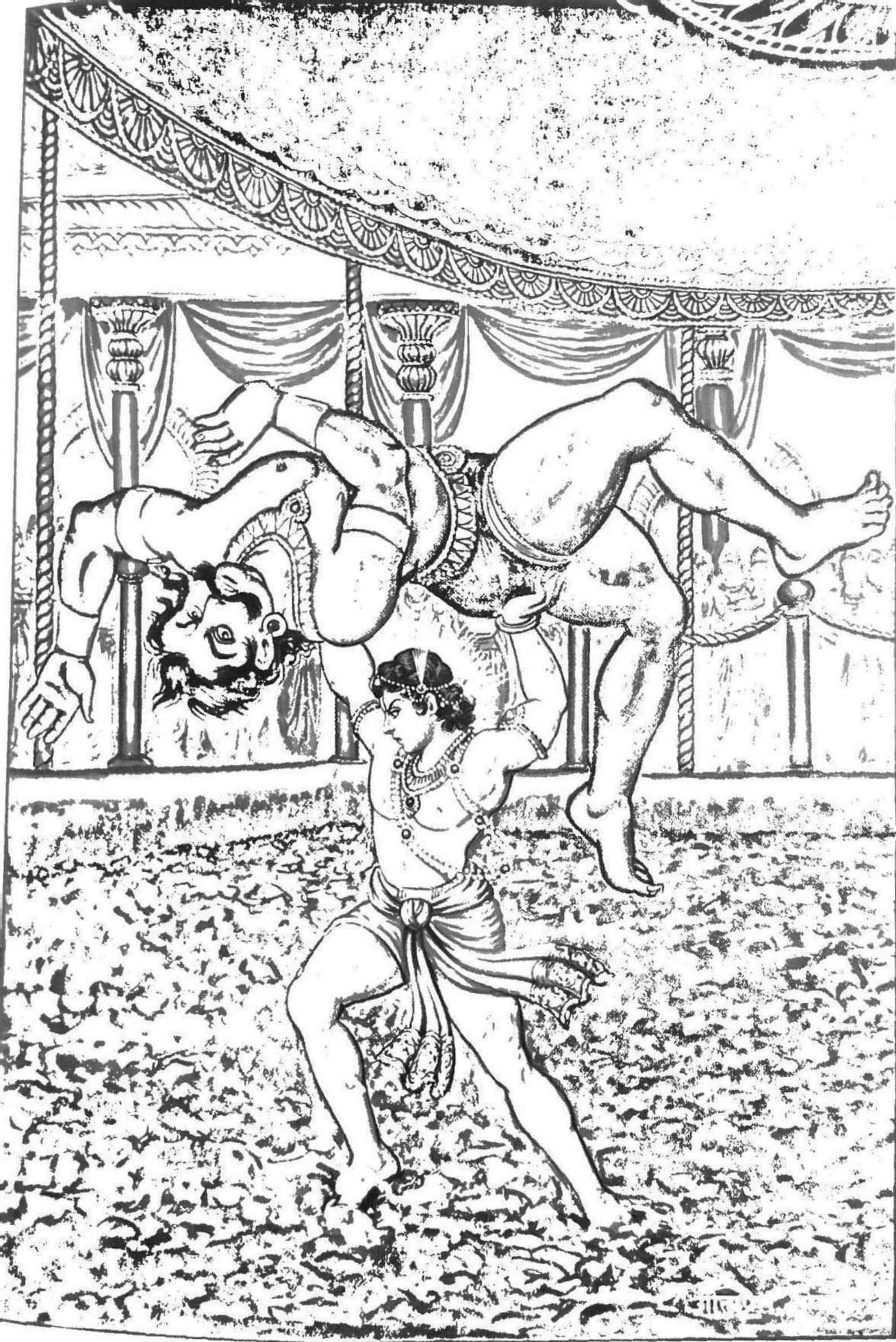
कंसकी मल्लशालामें श्रीबलराम
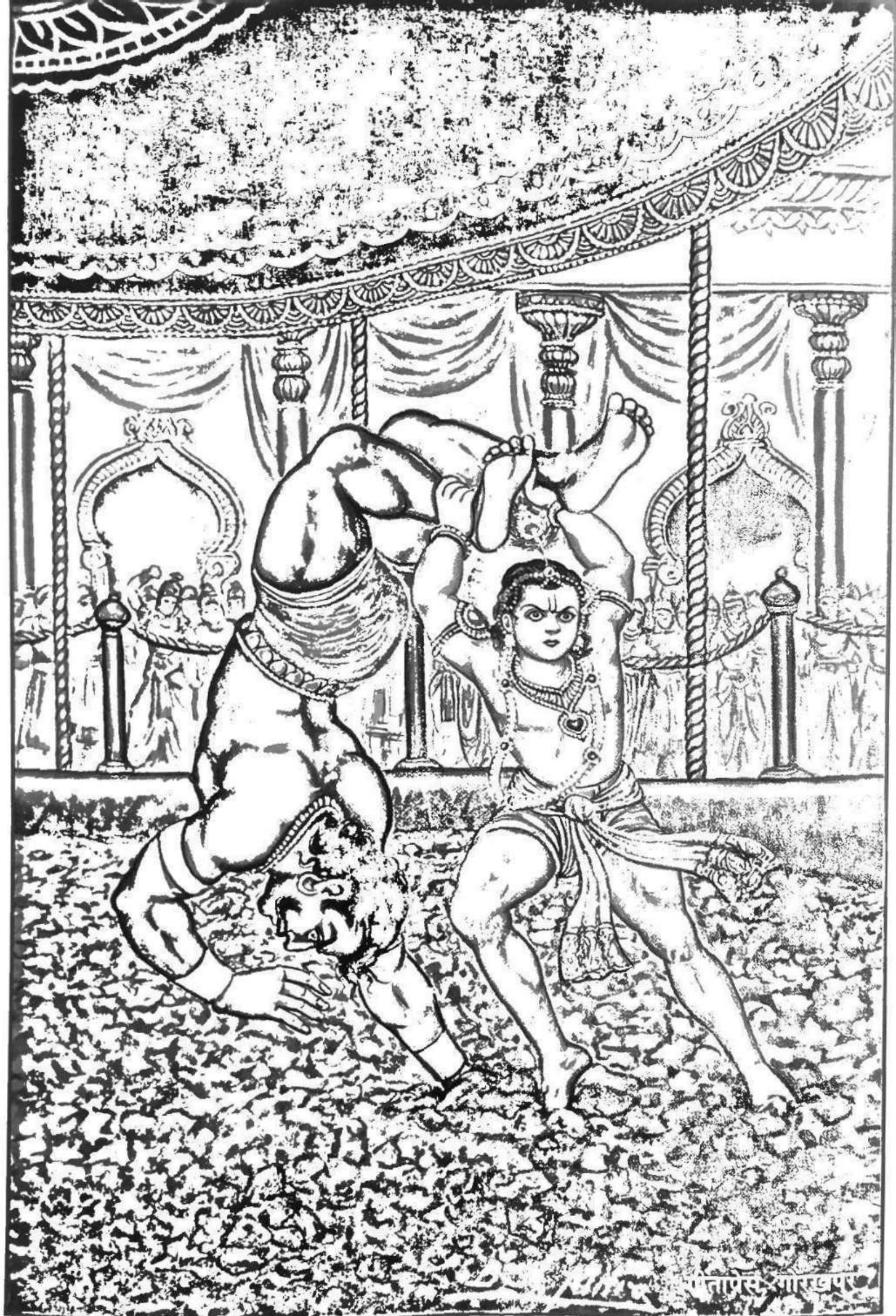
कंसकी मल्लशालामें श्रीकृष्ण

श्रीबलरामजीकी लातसे धरती फट गयी

पौण्ड्रकपर श्रीकृष्णका प्रहार

जब श्रीहरि आदित्यरूप हुए तो वे पद्मसे फिर उत्पन्न हुईं [और पद्मा कहलायीं]। तथा जब वे परशुराम हुए तो ये पृथिवी हुईं॥ १४३॥ श्रीहरिके राम होनेपर ये सीताजी हुईं और कृष्णावतारमें श्रीरुक्मिणीजी हुईं। इसी प्रकार अन्य अवतारोंमें भी ये भगवान्‌से कभी पृथक् नहीं होतीं॥ १४४॥ भगवान्‌के देवरूप होनेपर ये दिव्य शरीर धारण करती हैं और मनुष्य होनेपर मानवीरूपसे प्रकट होती हैं। विष्णुभगवान्‌के शरीरके अनुरूप ही ये अपना शरीर भी बना लेती हैं॥ १४५॥ जो मनुष्य लक्ष्मीजीके जन्मकी इस कथाको सुनेगा अथवा पढ़ेगा उसके घरमें (वर्तमान आगामी और भूत) तीनों कुलोंके रहते हुए कभी लक्ष्मीका नाश न होगा॥ १४६॥ हे मुने! जिन घरोंमें लक्ष्मीजीके इस स्तोत्रका पाठ होता है उनमें कलहकी आधारभूता दरिद्रता कभी नहीं ठहर सकती॥ १४७॥ हे ब्रह्मन्! तुमने जो मुझसे पूछा था कि पहले भृगुजीकी पुत्री होकर फिर लक्ष्मीजी क्षीर-समुद्रसे कैसे उत्पन्न हुईं सो मैंने तुमसे यह सब वृत्तान्त कह दिया॥ १४८॥

इस प्रकार इन्द्रके मुखसे प्रकट हुई यह लक्ष्मीजीकी स्तुति सकल विभूतियोंकी प्राप्तिका कारण है। जो लोग इसका नित्यप्रति पाठ करेंगे उनके घरमें निर्धनता कभी नहीं रह सकेगी॥ १४९॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पहले अंशमें नवाँ अध्याय समाप्त॥ ९॥

दसवाँ अध्याय

भृगु, अग्नि और अग्निष्वात्तादि पितरोंकी सन्तानका वर्णन

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे मुने! मैंने आपसे जो कुछ पूछा था वह सब आपने वर्णन किया; अब भृगुजीकी सन्तानसे लेकर सम्पूर्ण सृष्टिका आप मुझसे फिर वर्णन कीजिये॥ १॥

श्रीपराशरजी बोले—भृगुजीके द्वारा ख्यातिसे विष्णुपत्नी लक्ष्मीजी और धाता, विधाता नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए॥ २॥ महात्मा मेरुकी आयति और नियति-नाम्नी कन्याएँ धाता और विधाताकी स्त्रियाँ थीं; उनसे उनके प्राण और मृकण्डु नामक दो पुत्र हुए। मृकण्डुसे मार्कण्डेय और उनसे वेदशिराका जन्म हुआ। अब प्राणकी सन्तानका वर्णन सुनो॥ ३-४॥ प्राणका पुत्र द्युतिमान् और उसका पुत्र राजवान् हुआ। हे महाभाग! उस राजवान्‌से फिर भृगुवंशका बड़ा विस्तार हुआ॥ ५॥

मरीचिकी पत्नी सम्भूतिने पौर्णमासको उत्पन्न किया। उस महात्माके विरजा और पर्वत दो पुत्र थे॥ ६॥ हे द्विज! उनके वंशका वर्णन करते समय मैं उन दोनोंकी सन्तानका वर्णन करूँगा। अंगिराकी पत्नी स्मृति थी, उसके सिनीवाली, कुहू, राका और अनुमति नामकी कन्याएँ हुईं॥ ७॥ अत्रिकी भार्या अनसूयाने चन्द्रमा, दुर्वासा और योगी दत्तात्रेय—इन निष्पाप पुत्रोंको जन्म दिया॥ ८॥ पुलस्त्यकी स्त्री प्रीतिसे दत्तोलिका जन्म हुआ जो अपने पूर्व जन्ममें स्वायम्भुव मन्वन्तरमें अगस्त्य कहा जाता था॥ ९॥ प्रजापति पुलहकी पत्नी क्षमासे कर्दम, उर्वरीयान् और सहिष्णु ये तीन पुत्र हुए॥ १०॥

क्रतुकी सन्तति नामक भार्याने अँगूठेके पोरुओंके समान शरीरवाले तथा प्रखर सूर्यके समान तेजस्वी वालखिल्यादि साठ हजार ऊर्ध्वरेता मुनियोंको जन्म दिया॥ ११॥ वसिष्ठकी ऊर्जा नामक स्त्रीसे रज, गोत्र, ऊर्ध्वबाहु, सवन,

अनघ, सुतपा और शुक्र ये सात पुत्र उत्पन्न हुए। ये निर्मल स्वभाववाले समस्त मुनिगण [तीसरे मन्वन्तरमें] सप्तर्षि हुए॥ १२-१३॥

हे द्विज! अग्निका अभिमानी देव, जो ब्रह्माजीका ज्येष्ठ पुत्र है, उसके द्वारा स्वाहा नामक पत्नीसे अति तेजस्वी पावक, पवमान और जलको भक्षण करनेवाला शुचि—ये तीन पुत्र हुए॥ १४-१५॥ इन तीनोंके [प्रत्येकके पन्द्रह-पन्द्रह पुत्रके क्रमसे] पैंतालीस सन्तानें हुईं। पिता अग्नि और उसके तीन पुत्रोंको मिलाकर ये सब अग्नि ही कहलाते हैं। इस प्रकार कुल उनचास (४९) अग्नि कहे गये हैं॥ १६-१७॥ हे द्विज! ब्रह्माजीद्वारा रचे गये जिन अनग्निक अग्निष्वात्ता और साग्निक बर्हिषद् आदि पितरोंके विषयमें तुमसे कहा था। उनके द्वारा स्वधाने मेना और धारिणी नामक दो कन्याएँ उत्पन्न कीं। वे दोनों ही उत्तम ज्ञानसे सम्पन्न और सभी गुणोंसे युक्त ब्रह्मवादिनी तथा योगिनी थीं॥ १८—२०॥

इस प्रकार यह दक्षकन्याओंकी वंशपरम्पराका वर्णन किया। जो कोई श्रद्धापूर्वक इसका स्मरण करता है वह निःसन्तान नहीं रहता॥ २१॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पहले अंशमें दसवाँ अध्याय समाप्त॥ १०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

ध्रुवका वनगमन और मरीचि आदि ऋषियोंसे भेंट

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! मैंने तुम्हें स्वायम्भुवमनुके प्रियव्रत एवं उत्तानपाद नामक दो महाबलवान् और धर्मज्ञ पुत्र बतलाये थे॥ १॥ हे ब्रह्मन्! उनमेंसे उत्तानपादकी प्रेयसी पत्नी सुरुचिसे पिताका अत्यन्त लाडला उत्तम नामक पुत्र हुआ॥ २॥ हे द्विज! उस राजाकी जो सुनीति नामक राजमहिषी थी उसमें उसका विशेष प्रेम न था। उसका पुत्र ध्रुव हुआ॥ ३॥

एक दिन राजसिंहासनपर बैठे हुए पिताकी गोदमें अपने भाई उत्तमको बैठा देख ध्रुवकी इच्छा भी गोदमें बैठनेकी हुई॥ ४॥ किन्तु राजाने अपनी प्रेयसी सुरुचिके सामने, गोदमें चढ़नेके लिये उत्कण्ठित होकर प्रेमवश आये हुए उस पुत्रका आदर नहीं किया॥ ५॥ अपनी सौतके पुत्रको गोदमें चढ़नेके लिये उत्सुक और अपने पुत्रको गोदमें बैठा देख सुरुचि इस प्रकार कहने लगी॥ ६॥ "अरे लल्ला! बिना मेरे पेटसे उत्पन्न हुए किसी अन्य स्त्रीका पुत्र होकर भी तू व्यर्थ क्यों ऐसा बड़ा मनोरथ करता है?॥ ७॥ तू अविवेकी है, इसीलिये ऐसी अलभ्य उत्तमोत्तम वस्तुकी इच्छा करता है। यह ठीक है कि तू भी इन्हीं राजाका पुत्र है, तथापि मैंने तो तुझे अपने गर्भमें धारण नहीं किया!॥ ८॥ समस्त चक्रवर्ती राजाओंका आश्रयरूप यह राजसिंहासन तो मेरे ही पुत्रके योग्य है; तू व्यर्थ क्यों अपने चित्तको सन्ताप देता है?॥ ९॥ मेरे पुत्रके समान तुझे वृथा ही यह ऊँचा मनोरथ क्यों होता है? क्या तू नहीं जानता कि तेरा जन्म सुनीतिसे हुआ है?"॥ १०॥

श्रीपराशरजी बोले—हे द्विज! विमाताका ऐसा कथन सुन वह बालक कुपित हो पिताको छोड़कर अपनी माताके महलको चल दिया॥ ११॥ हे मैत्रेय! जिसके ओष्ठ कुछ-कुछ काँप रहे थे—ऐसे अपने पुत्रको क्रोधयुक्त देख सुनीतिने उसे गोदमें बिठाकर पूछा—॥ १२॥ "बेटा! तेरे

क्रोधका क्या कारण है? तेरा किसने आदर नहीं किया? तेरा अपराध करके कौन तेरे पिताजीका अपमान करने चला है?"॥ १३॥

श्रीपराशरजी बोले—ऐसा पूछनेपर ध्रुवने अपनी मातासे वे सब बातें कह दीं जो अति गर्वीली सुरुचिने उससे पिताके सामने कही थीं॥ १४॥ अपने पुत्रके सिसक-सिसककर ऐसा कहनेपर दुःखिनी सुनीतिने खिन्नचित्त और दीर्घ निःश्वासके कारण मलिननयना होकर कहा॥ १५॥

सुनीति बोली—बेटा! सुरुचिने ठीक ही कहा है, अवश्य ही तू मन्दभाग्य है। हे वत्स! पुण्यवानोंसे उनके विपक्षी ऐसा नहीं कह सकते॥ १६॥ बच्चा! तू व्याकुल मत हो, क्योंकि तूने पूर्व-जन्मोंमें जो कुछ किया है उसे दूर कौन कर सकता है? और जो नहीं किया वह तुझे दे भी कौन सकता है? इसलिये तुझे उसके वाक्योंसे खेद नहीं करना चाहिये॥ १७-१८॥ हे वत्स! जिसका पुण्य होता है उसीको राजासन, राजच्छत्र तथा उत्तम-उत्तम घोड़े और हाथी आदि मिलते हैं—ऐसा जानकर तू शान्त हो जा॥ १९॥ अन्य जन्मोंमें किये हुए पुण्य-कर्मोंके कारण ही सुरुचिमें राजाकी सुरुचि (प्रीति) है और पुण्यहीना होनेसे ही मुझ-जैसी स्त्री केवल भार्या (भरण करनेयोग्य) ही कही जाती है॥ २०॥ उसी प्रकार उसका पुत्र उत्तम भी बड़ा पुण्यपुंज-सम्पन्न है और मेरा पुत्र तू ध्रुव मेरे समान ही अल्प पुण्यवान् है॥ २१॥ तथापि बेटा! तुझे दुःखी नहीं होना चाहिये, क्योंकि जिस मनुष्यको जितना मिलता है वह अपनी ही पूँजीमें मग्न रहता है॥ २२॥ और यदि सुरुचिके वाक्योंसे तुझे अत्यन्त दुःख ही हुआ है तो सर्व फलदायक पुण्यके संग्रह करनेका प्रयत्न कर॥ २३॥ तू सुशील, पुण्यात्मा, प्रेमी और समस्त प्राणियोंका हितैषी बन, क्योंकि जैसे नीची भूमिकी ओर ढलकता हुआ जल अपने-आप ही पात्रमें आ जाता है वैसे ही सत्पात्र मनुष्यके पास स्वतः ही समस्त सम्पत्तियाँ आ जाती हैं॥ २४॥

ध्रुव बोला—माताजी! तुमने मेरे चित्तको शान्त करनेके लिये जो वचन कहे हैं वे दुर्वाक्योंसे बिंधे हुए मेरे हृदयमें तनिक भी नहीं ठहरते॥ २५॥ इसलिये मैं तो अब वही प्रयत्न करूँगा जिससे सम्पूर्ण लोकोंसे आदरणीय सर्वश्रेष्ठ पदको प्राप्त कर सकूँ॥ २६॥ राजाकी प्रेयसी तो अवश्य सुरुचि ही है और मैंने उसके उदरसे जन्म भी नहीं लिया है, तथापि हे माता! अपने गर्भमें बढ़े हुए मेरा प्रभाव भी तुम देखना॥ २७॥ उत्तम, जिसको उसने अपने गर्भमें धारण किया है, मेरा भाई ही है। पिताका दिया हुआ राजासन वही प्राप्त करे। [भगवान् करें] ऐसा ही हो॥ २८॥ माताजी! मैं किसी दूसरेके दिये हुए पदका इच्छुक नहीं हूँ; मैं तो अपने पुरुषार्थसे ही उस पदकी इच्छा करता हूँ जिसको पिताजीने भी नहीं प्राप्त किया है॥ २९॥

श्रीपराशरजी बोले—मातासे इस प्रकार कह ध्रुव उसके महलसे निकल पड़ा और फिर नगरसे बाहर आकर बाहरी उपवनमें पहुँचा॥ ३०॥

वहाँ ध्रुवने पहलेसे ही आये हुए सात मुनीश्वरोंको कृष्ण मृग-चर्मके बिछौनोंसे युक्त आसनोंपर बैठे देखा॥ ३१॥ उस राजकुमारने उन सबको प्रणाम कर अति नम्रता और समुचित अभिवादनादिपूर्वक उनसे कहा॥ ३२॥

ध्रुवने कहा—हे महात्माओ! मुझे आप सुनीतिसे उत्पन्न हुआ राजा उत्तानपादका पुत्र जानें। मैं आत्म-ग्लानिके कारण आपके निकट आया हूँ॥ ३३॥

ऋषि बोले—राजकुमार! अभी तो तू चार-पाँच वर्षका ही बालक है। अभी तेरे निर्वेदका कोई कारण नहीं दिखायी पड़ता॥ ३४॥ तुझे

कोई चिन्ताका विषय भी नहीं है, क्योंकि अभी तेरा पिता राजा जीवित है और हे बालक! तेरी कोई इष्ट वस्तु खो गयी हो ऐसा भी हमें दिखायी नहीं देता॥ ३५॥ तथा हमें तेरे शरीरमें भी कोई व्याधि नहीं दीख पड़ती फिर बता, तेरी ग्लानिका क्या कारण है?॥ ३६॥

श्रीपराशरजी बोले—तब सुरुचिने उससे जो कुछ कहा था वह सब उसने कह सुनाया। उसे सुनकर वे ऋषिगण आपसमें इस प्रकार कहने लगे॥ ३७॥ 'अहो! क्षात्रतेज कैसा प्रबल है, जिससे बालकमें भी इतनी अक्षमा है कि अपनी विमाताका कथन उसके हृदयसे नहीं टलता'॥ ३८॥ हे क्षत्रियकुमार! इस निर्वेदके कारण तूने जो कुछ करनेका निश्चय किया है, यदि तुझे रुचे तो, वह हमलोगोंसे कह दे॥ ३९॥ और हे अतुलित तेजस्वी! यह भी बता कि हम तेरी क्या सहायता करें, क्योंकि हमें ऐसा प्रतीत होता है कि तू कुछ कहना चाहता है॥ ४०॥

ध्रुवने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ! मुझे न तो धनकी इच्छा है और न राज्यकी; मैं तो केवल एक उसी स्थानको चाहता हूँ जिसको पहले कभी किसीने न भोगा हो॥ ४१॥ हे मुनिश्रेष्ठ! आपकी यही सहायता होगी कि आप मुझे भली प्रकार यह बता दें कि क्या करनेसे वह सबसे अग्रगण्य स्थान प्राप्त हो सकता है॥ ४२॥

मरीचि बोले—हे राजपुत्र! बिना गोविन्दकी आराधना किये मनुष्यको वह श्रेष्ठ स्थान नहीं मिल सकता; अतः तू श्रीअच्युतकी आराधना कर॥ ४३॥

अत्रि बोले—जो परा प्रकृति आदिसे भी परे हैं वे परमपुरुष जनार्दन जिससे सन्तुष्ट होते हैं उसीको वह अक्षयपद मिलता है यह मैं सत्य-सत्य कहता हूँ॥ ४४॥

अंगिरा बोले—यदि तू अग्र्यस्थानका इच्छुक है तो जिन अव्ययात्मा अच्युतमें यह सम्पूर्ण जगत् ओतप्रोत है, उन गोविन्दकी ही आराधना कर॥ ४५॥

पुलस्त्य बोले—जो परब्रह्म, परमधाम और परस्वरूप हैं, उन हरिकी आराधना करनेसे मनुष्य अति दुर्लभ मोक्षपदको भी प्राप्त कर लेता है॥ ४६॥

पुलह बोले—हे सुव्रत! जिन जगत्पतिकी आराधनासे इन्द्रने अत्युत्तम इन्द्रपद प्राप्त किया है, तू उन यज्ञपति भगवान् विष्णुकी आराधना कर॥ ४७॥

क्रतु बोले—जो परमपुरुष यज्ञपुरुष, यज्ञ और योगेश्वर हैं, उन जनार्दनके सन्तुष्ट होनेपर कौन-सी वस्तु दुर्लभ रह सकती है?॥ ४८॥

वसिष्ठ बोले—हे वत्स! विष्णुभगवान्‌की आराधना करनेपर तू अपने मनसे जो कुछ चाहेगा वही प्राप्त कर लेगा, फिर त्रिलोकीके उत्तमोत्तम स्थानकी तो बात ही क्या है?॥ ४९॥

ध्रुवने कहा—हे महर्षिगण! मुझ विनीतको आपने आराध्यदेव तो बता दिया। अब उसको प्रसन्न करनेके लिये मुझे क्या जपना चाहिये—यह बताइये। उस महापुरुषकी मुझे जिस प्रकार आराधना करनी चाहिये, वह आपलोग मुझसे प्रसन्नतापूर्वक कहिये॥ ५०-५१॥

ऋषिगण बोले—हे राजकुमार! विष्णुभगवान्‌की आराधनामें तत्पर पुरुषोंको जिस प्रकार उनकी उपासना करनी चाहिये वह तू हमसे यथावत् श्रवण कर॥ ५२॥ मनुष्यको चाहिये कि पहले सम्पूर्ण बाह्य विषयोंसे चित्तको हटावे और उसे एकमात्र उन जगदाधारमें ही स्थिर कर दे॥ ५३॥ हे राजकुमार! इस प्रकार एकाग्रचित्त होकर तन्मयभावसे जो कुछ जपना चाहिये, वह सुन—॥ ५४॥ 'ॐ हिरण्यगर्भ, पुरुष, प्रधान

और अव्यक्तरूप शुद्ध ज्ञानस्वरूप वासुदेवको नमस्कार है'॥ ५५॥ इस (**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**) मन्त्रको पूर्वकालमें तेरे पितामह भगवान् स्वायम्भुव मनुने जपा था। तब उनसे सन्तुष्ट होकर श्रीजनार्दनने उन्हें त्रिलोकीमें दुर्लभ मनोवांछित सिद्धि दी थी। उसी प्रकार तू भी इसका निरन्तर जप करता हुआ श्रीगोविन्दको प्रसन्न कर॥ ५६-५७॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पहले अंशमें ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त॥ ११॥

बारहवाँ अध्याय

ध्रुवकी तपस्यासे प्रसन्न हुए भगवान्‌का आविर्भाव और उसे ध्रुवपद-दान

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! यह सब सुनकर राजपुत्र ध्रुव उन ऋषियोंको प्रणामकर उस वनसे चल दिया॥ १॥ और हे द्विज! अपनेको कृतकृत्य-सा मानकर वह यमुनातटवर्ती अति पवित्र मधु नामक वनमें आया। आगे चलकर उस वनमें मधु नामक दैत्य रहने लगा था, इसलिये वह इस पृथ्वीतलमें मधुवन नामसे विख्यात हुआ॥ २-३॥ वहीं मधुके पुत्र लवण नामक महाबली राक्षसको मारकर शत्रुघ्नने मधुरा (मथुरा) नामकी पुरी बसायी॥ ४॥ जिस (मधुवन)-में निरन्तर देवदेव श्रीहरिकी सन्निधि रहती है उसी सर्वपापापहारी तीर्थमें ध्रुवने तपस्या की॥ ५॥ मरीचि आदि मुनीश्वरोंने उसे जिस प्रकार उपदेश किया था उसने उसी प्रकार अपने हृदयमें विराजमान निखिलदेवेश्वर श्रीविष्णुभगवान्‌का ध्यान करना आरम्भ किया॥ ६॥ इस प्रकार हे विप्र! अनन्य-चित्त होकर ध्यान करते रहनेसे उसके हृदयमें सर्वभूतान्तर्यामी भगवान् हरि सर्वतोभावसे प्रकट हुए॥ ७॥

हे मैत्रेय! योगी ध्रुवके चित्तमें भगवान् विष्णुके स्थित हो जानेपर सर्वभूतोंको धारण करनेवाली पृथिवी उसका भार न सँभाल सकी॥ ८॥ उसके बायें चरणपर खड़े होनेसे पृथिवीका बायाँ आधा भाग झुक गया और फिर दाँयें चरणपर खड़े होनेसे दायाँ भाग झुक गया॥ ९॥ और जिस समय वह पैरके अँगूठेसे पृथिवीको (बीचसे) दबाकर खड़ा हुआ तो पर्वतोंके सहित समस्त भूमण्डल विचलित हो गया॥ १०॥ हे महामुने! उस समय नदी, नद और समुद्र आदि सभी अत्यन्त क्षुब्ध हो गये और उनके क्षोभसे देवताओंमें भी बड़ी हलचल मची॥ ११॥ हे मैत्रेय! तब याम नामक देवताओंने अत्यन्त व्याकुल हो इन्द्रके साथ परामर्श कर उसके ध्यानको भंग करनेका आयोजन किया॥ १२॥ हे महामुने! इन्द्रके साथ अति आतुर कूष्माण्ड नामक उपदेवताओंने नाना रूप धारणकर उसकी समाधि भंग करना आरम्भ किया॥ १३॥

उस समय मायाहीसे रची हुई उसकी माता सुनीति नेत्रोंमें आँसू भरे उसके सामने प्रकट हुई और 'हे पुत्र! हे पुत्र!' ऐसा कहकर करुणायुक्त वचन बोलने लगी [उसने कहा]—बेटा! तू शरीरको घुलानेवाले इस भयंकर तपका आग्रह छोड़ दे। मैंने बड़ी-बड़ी कामनाओंद्वारा तुझे प्राप्त किया है॥ १४-१५॥ अरे! मुझ अकेली, अनाथा, दुखियाको सौतके कटु वाक्योंसे छोड़ देना तुझे उचित नहीं है। बेटा! मुझ आश्रयहीनाका तो एकमात्र तू ही सहारा है॥ १६॥ कहाँ तो पाँच वर्षका तू और कहाँ तेरा यह अति उग्र तप? अरे! इस निष्फल

क्लेशकारी आग्रहसे अपना मन मोड़ ले॥ १७॥ अभी तो तेरे खेलने-कूदनेका समय है, फिर अध्ययनका समय आयेगा, तदनन्तर समस्त भोगोंके भोगनेका और फिर अन्तमें तपस्या करना भी ठीक होगा॥ १८॥ बेटा! तुझ सुकुमार बालकका 'जो खेल-कूदका समय है उसीमें तू तपस्या करना चाहता है। तू इस प्रकार क्यों अपने सर्वनाशमें तत्पर हुआ है?॥ १९॥ तेरा परम धर्म तो मुझको प्रसन्न रखना ही है, अतः तू अपनी आयु और अवस्थाके अनुकूल कर्मोंमें ही लग, मोहका अनुवर्तन न कर और इस तपरूपी अधर्मसे निवृत्त हो॥ २०॥ बेटा! यदि आज तू इस तपस्याको न छोड़ेगा तो देख तेरे सामने ही मैं अपने प्राण छोड़ दूँगी॥ २१॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! भगवान् विष्णुमें चित्त स्थिर रहनेके कारण ध्रुवने उसे आँखोंमें आँसू भरकर इस प्रकार विलाप करती देखकर भी नहीं देखा॥ २२॥

तब, 'अरे बेटा! यहाँसे भाग-भाग! देख, इस महाभयंकर वनमें ये कैसे घोर राक्षस अस्त्र-शस्त्र उठाये आ रहे हैं'—ऐसा कहती हुई वह चली गयी और वहाँ जिनके मुखसे अग्निकी लपटें निकल रही थीं ऐसे अनेकों राक्षसगण अस्त्र-शस्त्र सँभाले प्रकट हो गये॥ २३-२४॥ उन राक्षसोंने अपने अति चमकीले शस्त्रोंको घुमाते हुए उस राजपुत्रके सामने बड़ा भयंकर कोलाहल किया॥ २५॥ उस नित्य-योगयुक्त बालकको भयभीत करनेके लिये अपने मुखसे अग्निकी लपटें निकालती हुई सैकड़ों स्यारियाँ घोर नाद करने लगीं॥ २६॥ वे राक्षसगण भी 'इसको मारो-मारो, काटो-काटो, खाओ-खाओ' इस प्रकार चिल्लाने लगे ॥ २७॥ फिर सिंह, ऊँट और मकर आदिके-से मुखवाले वे राक्षस राजपुत्रको त्राण देनेके लिये नाना प्रकारसे गरजने लगे॥ २८॥

किन्तु उस भगवदासक्तचित्त बालकको वे राक्षस, उनके शब्द, स्यारियाँ और अस्त्र-शस्त्रादि कुछ भी दिखायी नहीं दिये॥ २९॥ वह राजपुत्र एकाग्रचित्तसे निरन्तर अपने आश्रयभूत विष्णुभगवान्‌को ही देखता रहा और उसने किसीकी ओर किसी भी प्रकार दृष्टिपात नहीं किया॥ ३०॥

तब सम्पूर्ण मायाके लीन हो जानेपर उससे हार जानेकी आशंकासे देवताओंको बड़ा भय हुआ॥ ३१॥ अतः उसके तपसे सन्तप्त हो वे सब आपसमें मिलकर जगत्‌के आदि-कारण, शरणागतवत्सल, अनादि और अनन्त श्रीहरिकी शरणमें गये॥ ३२॥

देवता बोले—हे देवाधिदेव, जगन्नाथ, परमेश्वर, पुरुषोत्तम! हम सब ध्रुवकी तपस्यासे सन्तप्त होकर आपकी शरणमें आये हैं॥ ३३॥ हे देव! जिस प्रकार चन्द्रमा अपनी कलाओंसे प्रतिदिन बढ़ता है उसी प्रकार यह भी तपस्याके कारण रात-दिन उन्नत हो रहा है॥ ३४॥ हे जनार्दन! इस उत्तानपादके पुत्रकी तपस्यासे भयभीत होकर हम आपकी शरणमें आये हैं, आप उसे तपसे निवृत्त कीजिये॥ ३५॥ हम नहीं जानते, वह इन्द्रत्व चाहता है या सूर्यत्व अथवा उसे कुबेर, वरुण या चन्द्रमाके पदकी अभिलाषा है ॥ ३६॥ अतः हे ईश! आप हमपर प्रसन्न होइये और इस उत्तानपादके पुत्रको तपसे निवृत्त करके हमारे हृदयका काँटा निकालिये॥ ३७॥

श्रीभगवान् बोले—हे सुरगण! उसे इन्द्र, सूर्य, वरुण अथवा कुबेर आदि किसीके पदकी अभिलाषा नहीं है, उसकी जो कुछ इच्छा है वह मैं सब पूर्ण करूँगा॥ ३८॥ हे देवगण! तुम निश्चिन्त होकर इच्छानुसार अपने-अपने स्थानोंको

जाओ। मैं तपस्यामें लगे हुए उस बालकको निवृत्त करता हूँ॥ ३९॥

श्रीपराशरजी बोले—देवाधिदेव भगवान्‌के ऐसा कहनेपर इन्द्र आदि समस्त देवगण उन्हें प्रणाम कर अपने-अपने स्थानोंको गये॥ ४०॥ सर्वात्मा भगवान् हरिने भी ध्रुवकी तन्मयतासे प्रसन्न हो उसके निकट चतुर्भुजरूपसे जाकर इस प्रकार कहा॥ ४१॥

श्रीभगवान् बोले—हे उत्तानपादके पुत्र ध्रुव! तेरा कल्याण हो। मैं तेरी तपस्यासे प्रसन्न होकर तुझे वर देनेके लिये प्रकट हुआ हूँ, हे सुव्रत! तू वर माँग॥ ४२॥ तूने सम्पूर्ण बाह्य विषयोंसे उपरत होकर अपने चित्तको मुझमें ही लगा दिया है। अतः मैं तुझसे अति सन्तुष्ट हूँ। अब तू अपनी इच्छानुसार श्रेष्ठ वर माँग॥ ४३॥

श्रीपराशरजी बोले—देवाधिदेव भगवान्‌के ऐसे वचन सुनकर बालक ध्रुवने आँखें खोलीं और अपनी ध्यानावस्थामें देखे हुए भगवान् हरिको साक्षात् अपने सम्मुख खड़े देखा॥ ४४॥ श्रीअच्युतको किरीट तथा शंख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग धनुष और खड्ग धारण किये देख उसने पृथिवीपर सिर रखकर प्रणाम किया॥ ४५॥ और सहसा रोमांचित तथा परम भयभीत होकर उसने देवदेवकी स्तुति करनेकी इच्छा की॥ ४६॥ किन्तु 'इनकी स्तुतिके लिये मैं क्या कहूँ? क्या कहनेसे इनका स्तवन हो सकता है?' यह न जाननेके कारण वह चित्तमें व्याकुल हो गया और अन्तमें उसने उन देवदेवकी ही शरण ली॥ ४७॥

ध्रुवने कहा—भगवन्! आप यदि मेरी तपस्यासे सन्तुष्ट हैं तो मैं आपकी स्तुति करना चाहता हूँ, आप मुझे यही वर दीजिये [जिससे मैं स्तुति कर सकूँ]॥ ४८॥ [हे देव! जिनकी गति ब्रह्मा आदि वेदज्ञजन भी नहीं जानते; उन्हीं आपका मैं बालक कैसे स्तवन कर सकता हूँ। किन्तु हे परम प्रभो! आपकी भक्तिसे द्रवीभूत हुआ मेरा चित्त आपके चरणोंकी स्तुति करनेमें प्रवृत्त हो रहा है। अतः आप इसे उसके लिये बुद्धि प्रदान कीजिये]।

श्रीपराशरजी बोले—हे द्विजवर्य! तब जगत्पति श्रीगोविन्दने अपने सामने हाथ जोड़े खड़े हुए उस उत्तानपादके पुत्रको अपने (वेदमय) शंखके अन्त (वेदान्तमय) भागसे छू दिया॥ ४९॥ तब तो एक क्षणमें ही वह राजकुमार प्रसन्न-मुखसे अति विनीत हो सर्वभूताधिष्ठान श्रीअच्युतकी स्तुति करने लगा॥ ५०॥

ध्रुव बोले—पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहंकार और मूल-प्रकृति—ये सब जिनके रूप हैं उन भगवान्‌को मैं नमस्कार करता हूँ॥ ५१॥ जो अति शुद्ध, सूक्ष्म, सर्वव्यापक और प्रधानसे भी परे हैं, वह पुरुष जिनका रूप है उन गुण-भोक्ता परमपुरुषको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ५२॥ हे परमेश्वर! पृथिवी आदि समस्त भूत, गन्धादि उनके गुण, बुद्धि आदि अन्तःकरण-चतुष्टय तथा प्रधान और पुरुष(जीव)-से भी परे जो सनातन पुरुष हैं, उन आप निखिलब्रह्माण्डनायकके ब्रह्मभूत शुद्धस्वरूप आत्माकी मैं शरण हूँ॥ ५३-५४॥ हे सर्वात्मन्! हे योगियोंके चिन्तनीय! व्यापक और वर्धनशील होनेके कारण आपका जो ब्रह्म नामक स्वरूप है, उस विकाररहित रूपको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ५५॥ हे प्रभो! आप हजारों मस्तकोंवाले, हजारों नेत्रोंवाले और हजारों चरणोंवाले परमपुरुष हैं, आप सर्वत्र व्याप्त हैं और [पृथिवी आदि आवरणोंके सहित] सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको व्याप्त कर दस गुण महाप्रमाणसे स्थित हैं॥ ५६॥

हे पुरुषोत्तम! भूत और भविष्यत् जो कुछ पदार्थ हैं वे सब आप ही हैं तथा विराट्, स्वराट्,

सम्राट् और अधिपुरुष (ब्रह्मा) आदि भी सब आपहीसे उत्पन्न हुए हैं॥ ५७॥ वे ही आप इस पृथिवीके नीचे-ऊपर और इधर-उधर सब ओर बढ़े हुए हैं। यह सम्पूर्ण जगत् आपहीसे उत्पन्न हुआ है तथा आपहीसे भूत और भविष्यत् हुए हैं॥ ५८॥ यह सम्पूर्ण जगत् आपके स्वरूपभूत ब्रह्माण्डके अन्तर्गत है [फिर आपके अन्तर्गत होनेकी तो बात ही क्या है] जिसमें सभी पुरोडाशोंका हवन होता है वह यज्ञ, पृषदाज्य (दधि और घृत) तथा [ग्राम्य और वन्य] दो प्रकारके पशु आपहीसे उत्पन्न हुए हैं॥ ५९॥ आपहीसे ऋक्, साम और गायत्री आदि छन्द प्रकट हुए हैं, आपहीसे यजुर्वेदका प्रादुर्भाव हुआ है और आपहीसे अश्व तथा एक ओर दाँतवाले महिष आदि जीव उत्पन्न हुए हैं॥ ६०॥ आपहीसे गौओं, बकरियों, भेड़ों और मृगोंकी उत्पत्ति हुई है; आपहीके मुखसे ब्राह्मण, बाहुओंसे क्षत्रिय, जंघाओंसे वैश्य और चरणोंसे शूद्र प्रकट हुए हैं तथा आपहीके नेत्रोंसे सूर्य, प्राणसे वायु, मनसे चन्द्रमा, भीतरी छिद्र (नासारन्ध्र)-से प्राण, मुखसे अग्नि, नाभिसे आकाश, सिरसे स्वर्ग, श्रोत्रसे दिशाएँ और चरणोंसे पृथिवी आदि उत्पन्न हुए हैं; इस प्रकार हे प्रभो! यह सम्पूर्ण जगत् आपहीसे प्रकट हुआ है॥ ६१—६४॥ जिस प्रकार नन्हेंसे बीजमें बड़ा भारी वट-वृक्ष रहता है उसी प्रकार प्रलय-कालमें यह सम्पूर्ण जगत् बीज-स्वरूप आपहीमें लीन रहता है॥ ६५॥ जिस प्रकार बीजसे अंकुररूपमें प्रकट हुआ वट-वृक्ष बढ़कर अत्यन्त विस्तारवाला हो जाता है उसी प्रकार सृष्टिकालमें यह जगत् आपहीसे प्रकट होकर फैल जाता है॥ ६६॥ हे ईश्वर! जिस प्रकार केलेका पौधा छिलके और पत्तोंसे अलग दिखायी नहीं देता उसी प्रकार जगत्से आप पृथक् नहीं हैं, वह आपहीमें स्थित देखा जाता है॥ ६७॥ सबके आधारभूत आपमें ह्लादिनी (निरन्तर आह्लादित करनेवाली) और सन्धिनी (विच्छेदरहित) संवित् (विद्याशक्ति) अभिन्नरूपसे रहती हैं। आपमें (विषयजन्य) आह्लाद या ताप देनेवाली (सात्त्विकी या तामसी) अथवा उभयमिश्रा (राजसी) कोई भी संवित् नहीं है, क्योंकि आप निर्गुण हैं॥ ६८॥ आप [कार्यदृष्टिसे] पृथक्-रूप और [कारणदृष्टिसे] एकरूप हैं। आप ही भूतसूक्ष्म हैं और आप ही नाना जीवरूप हैं। हे भूतान्तरात्मन्! ऐसे आपको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ६९॥ [योगियोंके द्वारा] अन्तःकरणमें आप ही महत्तत्त्व, प्रधान, पुरुष, विराट्, सम्राट् और स्वराट् आदि रूपोंसे भावना किये जाते हैं और [क्षयशील] पुरुषोंमें आप नित्य अक्षय हैं॥ ७०॥ आकाशादि सर्वभूतोंमें सार अर्थात् उनके गुणरूप आप ही हैं; समस्त रूपोंको धारण करनेवाले होनेसे सब कुछ आप ही हैं; सब कुछ आपहीसे हुआ है; अतएव सबके द्वारा आप ही हो रहे हैं इसलिये आप सर्वात्माको नमस्कार है॥ ७१॥ हे सर्वेश्वर! आप सर्वात्मक हैं; क्योंकि सम्पूर्ण भूतोंमें व्याप्त हैं; अतः मैं आपसे क्या कहूँ? आप स्वयं ही सब हृदयस्थित बातोंको जानते हैं॥ ७२॥ हे सर्वात्मन्! हे सर्वभूतेश्वर! हे सब भूतोंके आदि-स्थान! आप सर्वभूतरूपसे सभी प्राणियोंके मनोरथोंको जानते हैं॥ ७३॥ हे नाथ! मेरा जो कुछ मनोरथ था वह तो आपने सफल कर दिया और हे जगत्पते! मेरी तपस्या भी सफल हो गयी, क्योंकि मुझे आपका साक्षात् दर्शन प्राप्त हुआ॥ ७४॥

श्रीभगवान् बोले—हे ध्रुव! तुमको मेरा साक्षात् दर्शन प्राप्त हुआ, इससे अवश्य ही तेरी तपस्या तो सफल हो गयी; परन्तु हे राजकुमार! मेरा दर्शन भी तो कभी निष्फल नहीं होता॥ ७५॥

इसलिये तुझको जिस वरकी इच्छा हो वह माँग ले। मेरा दर्शन हो जानेपर पुरुषको सभी कुछ प्राप्त हो सकता है॥ ७६ ॥

ध्रुव बोले—हे भूतभव्येश्वर भगवन्! आप सभीके अन्तःकरणोंमें विराजमान हैं। हे ब्रह्मन्! मेरे मनकी जो कुछ अभिलाषा है वह क्या आपसे छिपी हुई है?॥ ७७ ॥ तो भी, हे देवेश्वर! मैं दुर्विनीत जिस अति दुर्लभ वस्तुकी हृदयसे इच्छा करता हूँ उसे आपकी आज्ञानुसार आपके प्रति निवेदन करूँगा॥ ७८ ॥ हे समस्त संसारको रचनेवाले परमेश्वर! आपके प्रसन्न होनेपर (संसारमें) क्या दुर्लभ है? इन्द्र भी आपके कृपाकटाक्षके फलरूपसे ही त्रिलोकीको भोगता है॥ ७९ ॥

प्रभो! मेरी सौतेली माताने गर्वसे अति बढ़-बढ़कर मुझसे यह कहा था कि 'जो मेरे उदरसे उत्पन्न नहीं है उसके योग्य यह राजासन नहीं है'॥ ८० ॥ अतः हे प्रभो! आपके प्रसादसे मैं उस सर्वोत्तम एवं अव्यय स्थानको प्राप्त करना चाहता हूँ जो सम्पूर्ण विश्वका आधारभूत हो॥ ८१ ॥

श्रीभगवान् बोले—अरे बालक! तूने अपने पूर्वजन्ममें भी मुझे सन्तुष्ट किया था, इसलिये तू जिस स्थानकी इच्छा करता है उसे अवश्य प्राप्त करेगा॥ ८२ ॥ पूर्व जन्ममें तू एक ब्राह्मण था और मुझमें निरन्तर एकाग्रचित्त रहनेवाला, माता-पिताका सेवक तथा स्वधर्मका पालन करनेवाला था॥ ८३ ॥ कालान्तरमें एक राजपुत्र तेरा मित्र हो गया। वह अपनी युवावस्थामें सम्पूर्ण भोगोंसे सम्पन्न और अति दर्शनीय रूपलावण्ययुक्त था॥ ८४॥ उसके संगसे उसके दुर्लभ वैभवको देखकर तेरी ऐसी इच्छा हुई कि 'मैं भी राजपुत्र होऊँ'॥ ८५ ॥ अतः हे ध्रुव! तुझको अपनी मनोवांछित राजपुत्रता प्राप्त हुई और जिन स्वायम्भुवमनुके कुलमें और किसीको स्थान मिलना अति दुर्लभ है, उन्हींके घरमें तूने उत्तानपादके यहाँ जन्म लिया॥ ८६-८७॥ अरे बालक! [औरोंके लिये यह स्थान कितना ही दुर्लभ हो परन्तु] जिसने मुझे सन्तुष्ट किया है उसके लिये तो यह अत्यन्त तुच्छ है। मेरी आराधना करनेसे तो मोक्षपद भी तत्काल प्राप्त हो सकता है, फिर जिसका चित्त निरन्तर मुझमें ही लगा हुआ है उसके लिये स्वर्गादि लोकोंका तो कहना ही क्या है?॥ ८८-८९ ॥ हे ध्रुव! मेरी कृपासे तू निस्सन्देह उस स्थानमें, जो त्रिलोकीमें सबसे उत्कृष्ट है, सम्पूर्ण ग्रह और तारामण्डलका आश्रय बनेगा॥ ९० ॥ हे ध्रुव! मैं तुझे वह ध्रुव (निश्चल) स्थान देता हूँ जो सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि आदि ग्रहों, सभी नक्षत्रों, सप्तर्षियों और सम्पूर्ण विमानचारी देवगणोंसे ऊपर है॥ ९१-९२॥ देवताओंमेंसे कोई तो केवल चार युगतक और कोई एक मन्वन्तरतक ही रहते हैं; किन्तु तुझे मैं एक कल्पतककी स्थिति देता हूँ॥ ९३ ॥

तेरी माता सुनीति भी अति स्वच्छ तारारूपसे उतने ही समयतक तेरे पास एक विमानपर निवास करेगी॥ ९४॥ और जो लोग समाहित-चित्तसे सायंकाल और प्रातःकालके समय तेरा गुण-कीर्तन करेंगे उनको महान् पुण्य होगा॥ ९५ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे महामते! इस प्रकार पूर्वकालमें जगत्पति देवाधिदेव भगवान् जनार्दनसे वर पाकर ध्रुव उस अत्युत्तम स्थानमें स्थित हुए॥ ९६ ॥ हे मुने! अपने माता-पिताकी धर्मपूर्वक सेवा करनेसे तथा द्वादशाक्षर-मन्त्रके माहात्म्य और तपके प्रभावसे उनके मान, वैभव एवं प्रभावकी वृद्धि देखकर देव और असुरोंके आचार्य शुक्रदेवने ये श्लोक कहे हैं—॥ ९७-९८॥

'अहो! इस ध्रुवके तपका कैसा प्रभाव है? अहो ! इसकी तपस्याका कैसा अद्भुत फल है जो

इस ध्रुवको ही आगे रखकर सप्तर्षिगण स्थित हो रहे हैं॥ ९९ ॥ इसकी यह सुनीति नामवाली माता भी अवश्य ही सत्य और हितकर वचन बोलनेवाली है*। संसारमें ऐसा कौन है जो इसकी महिमाका वर्णन कर सके? जिसने अपनी कोखमें उस ध्रुवको धारण करके त्रिलोकीका आश्रयभूत अति उत्तम स्थान प्राप्त कर लिया, जो भविष्यमें भी स्थिर रहनेवाला है'॥ १००-१०१ ॥

जो व्यक्ति ध्रुवके इस दिव्यलोक-प्राप्तिके प्रसंगका कीर्तन करता है वह सब पापोंसे मुक्त होकर स्वर्गलोकमें पूजित होता है॥ १०२ ॥ वह स्वर्गमें रहे अथवा पृथिवीमें, कभी अपने स्थानसे च्युत नहीं होता तथा समस्त मंगलोंसे भरपूर रहकर बहुत कालतक जीवित रहता है॥ १०३ ॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पहले अंशमें बारहवाँ अध्याय समाप्त॥ १२ ॥

तेरहवाँ अध्याय

राजा वेन और पृथुका चरित्र

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! ध्रुवसे [उसकी पत्नीने] शिष्टि और भव्यको उत्पन्न किया और भव्यसे शम्भुका जन्म हुआ तथा शिष्टिके द्वारा उसकी पत्नी सुच्छायाने रिपु, रिपुंजय, विप्र, वृकल और वृकतेजा नामक पाँच निष्पाप पुत्र उत्पन्न किये। उनमेंसे रिपुके द्वारा बृहतीके गर्भसे महातेजस्वी चाक्षुषका जन्म हुआ॥ १-२ ॥ चाक्षुषने अपनी भार्या पुष्करणीसे, जो वरुण-कुलमें उत्पन्न और महात्मा वीरण प्रजापतिकी पुत्री थी, मनुको उत्पन्न किया [जो छठे मन्वन्तरके अधिपति हुए] ॥ ३ ॥ तपस्वियोंमें श्रेष्ठ मनुसे वैराज प्रजापतिकी पुत्री नड्वलाके गर्भमें दस महातेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुए॥ ४ ॥ नड्वलासे कुरु, पुरु, शतद्युम्न, तपस्वी, सत्यवान्, शुचि, अग्निष्टोम, अतिरात्र तथा नवाँ सुद्युम्न और दसवाँ अभिमन्यु इन महातेजस्वी पुत्रोंका जन्म हुआ॥ ५ ॥ कुरुके द्वारा उसकी पत्नी आग्नेयीने अंग, सुमना, ख्याति, क्रतु, अंगिरा और शिबि इन छः परम तेजस्वी पुत्रोंको उत्पन्न किया॥ ६ ॥ अंगसे सुनीथाके वेन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। ऋषियोंने उस (वेन)-के दाहिने हाथका सन्तानके लिये मन्थन किया था॥ ७ ॥ हे महामुने! वेनके हाथका मन्थन करनेपर उससे वैन्य नामक महीपाल उत्पन्न हुए जो पृथु नामसे विख्यात हैं और जिन्होंने प्रजाके हितके लिये पूर्वकालमें पृथिवीको दुहा था॥ ८-९ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! परमर्षियोंने वेनके हाथको क्यों मथा जिससे महापराक्रमी पृथुका जन्म हुआ?॥ १० ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मुने! मृत्युकी सुनीथा नामवाली जो प्रथम पुत्री थी वह अंगको पत्नीरूपसे दी (व्याही) गयी थी। उसीसे वेनका जन्म हुआ॥ ११ ॥ हे मैत्रेय! वह मृत्युकी कन्याका पुत्र अपने मातामह (नाना)-के दोषसे स्वभावसे ही दुष्ट प्रकृति हुआ॥ १२ ॥ उस वेनका जिस समय महर्षियोंद्वारा राजपदपर अभिषेक हुआ उसी समय उस पृथिवीपतिने संसारभरमें यह घोषणा

* सुनीतिने ध्रुवको पुण्योपार्जन करनेका उपदेश दिया था, जिसके आचरणसे उन्हें उत्तम लोक प्राप्त हुआ। अतएव 'सुनीति' सूनृता कही गयी है।

कर दी कि 'भगवान्, यज्ञपुरुष मैं ही हूँ, मुझसे अतिरिक्त यज्ञका भोक्ता और स्वामी हो ही कौन सकता है? इसलिये कभी कोई यज्ञ, दान और हवन आदि न करे'॥ १३-१४॥ हे मैत्रेय! तब ऋषियोंने उस पृथिवीपतिके पास उपस्थित हो पहले उसकी खूब प्रशंसा कर सान्त्वनायुक्त मधुर वाणीसे कहा॥ १५॥

ऋषिगण बोले—हे राजन्! हे पृथिवीपते! तुम्हारे राज्य और देहके उपकार तथा प्रजाके हितके लिये हम जो बात कहते हैं, सुनो॥ १६॥ तुम्हारा कल्याण हो; देखो, हम बड़े-बड़े यज्ञोंद्वारा जो सर्वयज्ञेश्वर देवाधिपति भगवान् हरिका पूजन करेंगे उसके फलमेंसे तुमको भी [छठा] भाग मिलेगा॥ १७॥ हे नृप! इस प्रकार यज्ञोंके द्वारा यज्ञपुरुष भगवान् विष्णु प्रसन्न होकर हमलोगोंके साथ तुम्हारी भी सकल कामनाएँ पूर्ण करेंगे॥ १८॥ हे राजन्! जिन राजाओंके राज्यमें यज्ञेश्वर भगवान् हरिका यज्ञोंद्वारा पूजन किया जाता है, वे उनकी सभी कामनाओंको पूर्ण कर देते हैं॥ १९॥

वेन बोला—मुझसे भी बढ़कर ऐसा और कौन है जो मेरा भी पूजनीय है? जिसे तुम यज्ञेश्वर मानते हो वह 'हरि' कहलानेवाला कौन है?॥ २०॥ ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, धाता, पूषा, पृथिवी और चन्द्रमा तथा इनके अतिरिक्त और भी जितने देवता शाप और कृपा करनेमें समर्थ हैं वे सभी राजाके शरीरमें निवास करते हैं, इस प्रकार राजा सर्वदेवमय है॥ २१-२२॥ हे ब्राह्मणो! ऐसा जानकर मैंने जैसी जो कुछ आज्ञा की है वैसा ही करो। देखो, कोई भी दान, यज्ञ और हवन आदि न करे॥ २३॥ हे द्विजगण! स्त्रीका परमधर्म जैसे अपने पतिकी सेवा करना ही माना गया है वैसे ही आपलोगोंका धर्म भी मेरी आज्ञाका पालन करना ही है॥ २४॥

ऋषिगण बोले—महाराज! आप ऐसी आज्ञा दीजिये, जिससे धर्मका क्षय न हो। देखिये, यह सारा जगत् हवि (यज्ञमें हवन की हुई सामग्री)-का ही परिणाम है॥ २५॥

श्रीपराशरजी बोले—महर्षियोंके इस प्रकार बारम्बार समझाने और कहने-सुननेपर भी जब वेनने ऐसी आज्ञा नहीं दी तो वे अत्यन्त क्रुद्ध और अमर्षयुक्त होकर आपसमें कहने लगे—'इस पापीको मारो, मारो!॥ २६-२७॥ जो अनादि और अनन्त यज्ञपुरुष प्रभु विष्णुकी निन्दा करता है वह अनाचारी किसी प्रकार पृथिवीपति होनेके योग्य नहीं है'॥ २८॥ ऐसा कह मुनिगणोंने, भगवान्‌की निन्दा आदि करनेके कारण पहले ही मरे हुए उस राजाको मन्त्रसे पवित्र किये हुए कुशाओंसे मार डाला॥ २९॥

हे द्विज! तदनन्तर उन मुनीश्वरोंने सब ओर बड़ी धूलि उठती देखी, उसे देखकर उन्होंने अपने निकटवर्ती लोगोंसे पूछा—"यह क्या है?"॥ ३०॥ उन पुरुषोंने कहा—"राष्ट्रके राजाहीन हो जानेसे दीन-दुखिया लोगोंने चोर बनकर दूसरोंका धन लूटना आरम्भ कर दिया है॥ ३१॥ हे मुनिवरो! उन तीव्र वेगवाले परधनहारी चोरोंके उत्पातसे ही यह बड़ी भारी धूलि उड़ती दीख रही है"॥ ३२॥

तब उन सब मुनीश्वरोंने आपसमें सलाह कर उस पुत्रहीन राजाकी जंघाका पुत्रके लिये यत्नपूर्वक मन्थन किया॥ ३३॥ उसकी जंघाके मथनेपर उससे एक पुरुष उत्पन्न हुआ जो जले ठूँठके समान काला, अत्यन्त नाटा और छोटे मुखवाला था॥ ३४॥ उसने अति आतुर होकर उन सब ब्राह्मणोंसे कहा—'मैं क्या करूँ?" उन्होंने कहा—"निषीद (बैठ)" अत: वह 'निषाद' कहलाया॥ ३५॥ इसलिये हे मुनिशार्दूल! उससे

उत्पन्न हुए लोग विन्ध्याचलनिवासी पाप-परायण निषादगण हुए॥ ३६ ॥ उस निषादरूप द्वारसे राजा वेनका सम्पूर्ण पाप निकल गया। अत: निषादगण वेनके पापोंका नाश करनेवाले हुए॥ ३७ ॥

फिर उन ब्राह्मणोंने उसके दायें हाथका मन्थन किया। उसका मन्थन करनेसे परम प्रतापी वेनसुवन पृथु प्रकट हुए, जो अपने शरीरसे प्रज्वलित अग्निके समान देदीप्यमान थे॥ ३८-३९ ॥ इसी समय आजगव नामक आद्य (सर्वप्रथम) शिव-धनुष और दिव्य बाण तथा कवच आकाशसे गिरे॥ ४० ॥ उनके उत्पन्न होनेसे सभी जीवोंको अति आनन्द हुआ और केवल सत्पुत्रके ही जन्म लेनेसे वेन भी स्वर्गलोकको चला गया। इस प्रकार महात्मा पुत्रके कारण ही उसकी पुम् अर्थात् नरकसे रक्षा हुई ॥ ४१-४२ ॥

महाराज पृथुके अभिषेकके लिये सभी समुद्र और नदियाँ सब प्रकारके रत्न और जल लेकर उपस्थित हुए॥ ४३ ॥ उस समय आंगिरस देवगणोंके सहित पितामह ब्रह्माजीने और समस्त स्थावर-जंगम प्राणियोंने वहाँ आकर महाराज वैन्य (वेनपुत्र)-का राज्याभिषेक किया ॥ ४४ ॥ उनके दाहिने हाथमें चक्रका चिह्न देखकर उन्हें विष्णुका अंश जान पितामह ब्रह्माजीको परम आनन्द हुआ॥ ४५ ॥ यह श्रीविष्णुभगवान्‌के चक्रका चिह्न सभी चक्रवर्ती राजाओंके हाथमें हुआ करता है। उनका प्रभाव कभी देवताओंसे भी कुण्ठित नहीं होता॥ ४६ ॥

इस प्रकार महातेजस्वी और परम प्रतापी वेनपुत्र धर्मकुशल महानुभावोंद्वारा विधिपूर्वक अति महान् राजराजेश्वरपदपर अभिषिक्त हुए॥ ४७ ॥ जिस प्रजाको पिताने अपरक्त (अप्रसन्न) किया था उसीको उन्होंने अनुरंजित (प्रसन्न) किया, इसलिये अनुरंजन करनेसे उनका नाम 'राजा' हुआ॥ ४८ ॥ जब वे समुद्रमें चलते थे तो जल बहनेसे रुक जाता था, पर्वत उन्हें मार्ग देते थे और उनकी ध्वजा कभी भंग नहीं हुई॥ ४९ ॥ पृथिवी बिना जोते-बोये धान्य पकानेवाली थी; केवल चिन्तनमात्रसे ही अन्न सिद्ध हो जाता था, गौएँ कामधेनुरूपा थीं और पत्ते-पत्तेमें मधु भरा रहता था॥ ५० ॥

राजा पृथुने उत्पन्न होते ही पैतामह यज्ञ किया; उससे सोमाभिषवके दिन सूति (सोमाभिषवभूमि)-से महामति सूतकी उत्पत्ति हुई॥ ५१ ॥ उसी महायज्ञमें बुद्धिमान् मागधका भी जन्म हुआ। तब मुनिवरोंने उन दोनों सूत और मागधोंसे कहा—॥ ५२ ॥ 'तुम इन प्रतापवान् वेनपुत्र महाराज पृथुकी स्तुति करो। तुम्हारे योग्य यही कार्य है और राजा भी स्तुतिके ही योग्य हैं'॥ ५३ ॥ तब उन्होंने हाथ जोड़कर सब ब्राह्मणोंसे कहा—"ये महाराज तो आज ही उत्पन्न हुए हैं, हम इनके कोई कर्म तो जानते ही नहीं हैं॥ ५४ ॥ अभी इनके न तो कोई गुण प्रकट हुए हैं और न यश ही विख्यात हुआ है; फिर कहिये, हम किस आधारपर इनकी स्तुति करें"॥ ५५ ॥

ऋषिगण बोले—ये महाबली चक्रवर्ती महाराज भविष्यमें जो-जो कर्म करेंगे और इनके जो-जो भावी गुण होंगे उन्हींसे तुम इनका स्तवन करो॥ ५६ ॥

श्रीपराशरजी बोले—यह सुनकर राजाको भी परम सन्तोष हुआ; उन्होंने सोचा 'मनुष्य सद्‌गुणोंके कारण ही प्रशंसाका पात्र होता है; अतः मुझको भी गुण उपार्जन करने चाहिये॥ ५७ ॥ इसलिये अब स्तुतिके द्वारा ये जिन गुणोंका वर्णन करेंगे मैं भी सावधानतापूर्वक वैसा ही करूँगा॥ ५८ ॥ यदि यहाँपर ये कुछ त्याज्य अवगुणोंको भी कहेंगे तो मैं उन्हें त्यागूँगा।' इस प्रकार राजाने अपने चित्तमें निश्चय किया॥ ५९ ॥ तदनन्तर उन (सूत

और मागध) दोनोंने परम बुद्धिमान् वेननन्दन महाराज पृथुका, उनके भावी कर्मोंके आश्रयसे स्वरसहित भली प्रकार स्तवन किया॥ ६०॥ [उन्होंने कहा—] 'ये महाराज सत्यवादी, दानशील, सत्य मर्यादावाले, लज्जाशील, सुहृद्, क्षमाशील, पराक्रमी और दुष्टोंका दमन करनेवाले हैं॥ ६१॥ ये धर्मज्ञ, कृतज्ञ, दयावान्, प्रियभाषी, माननीयोंको मान देनेवाले, यज्ञपरायण, ब्रह्मण्य, साधुसमाजमें सम्मानित और शत्रु तथा मित्रके साथ समान व्यवहार करनेवाले हैं'॥ ६२-६३॥ इस प्रकार सूत और मागधके कहे हुए गुणोंको उन्होंने अपने चित्तमें धारण किया और उसी प्रकारके कार्य किये॥ ६४॥ तब उन पृथिवीपतिने पृथिवीका पालन करते हुए बड़ी-बड़ी दक्षिणाओंवाले अनेकों महान् यज्ञ किये॥ ६५॥ अराजकताके समय ओषधियोंके नष्ट हो जानेसे भूखसे व्याकुल हुई प्रजा पृथिवीनाथ पृथुके पास आयी और उनके पूछनेपर प्रणाम करके उनसे अपने आनेका कारण निवेदन किया॥ ६६॥

प्रजाने कहा—हे प्रजापति नृपश्रेष्ठ! अराजकताके समय पृथिवीने समस्त ओषधियाँ अपनेमें लीन कर ली हैं, अत: आपकी सम्पूर्ण प्रजा क्षीण हो रही है॥ ६७॥ विधाताने आपको हमारा जीवनदायक प्रजापति बनाया है; अत: क्षुधारूप महारोगसे पीड़ित हम प्रजाजनोंको आप जीवनरूप ओषधि दीजिये॥ ६८॥

श्रीपराशरजी बोले—यह सुनकर महाराज पृथु अपना आजगव नामक दिव्य धनुष और दिव्य बाण लेकर अत्यन्त क्रोधपूर्वक पृथिवीके पीछे दौड़े॥ ६९॥ तब भयसे अत्यन्त व्याकुल हुई पृथिवी गौका रूप धारणकर भागी और ब्रह्मलोक आदि सभी लोकोंमें गयी॥ ७०॥ समस्त भूतोंको धारण करनेवाली पृथिवी जहाँ-जहाँ भी गयी वहीं-वहीं उसने वेनपुत्र पृथुको शस्त्र-सन्धान किये अपने पीछे आते देखा॥ ७१॥ तब उन प्रबल पराक्रमी महाराज पृथुसे, उनके बाणप्रहारसे बचनेकी कामनासे काँपती हुई पृथिवी इस प्रकार बोली॥ ७२॥

पृथिवीने कहा—हे राजेन्द्र! क्या आपको स्त्री-वधका महापाप नहीं दीख पड़ता, जो मुझे मारनेपर आप ऐसे उतारू हो रहे हैं?॥ ७३॥

पृथु बोले—जहाँ एक अनर्थकारीको मार देनेसे बहुतोंको सुख प्राप्त हो उसे मार देना ही पुण्यप्रद है॥ ७४॥

पृथिवी बोली—हे नृपश्रेष्ठ! यदि आप प्रजाके हितके लिये ही मुझे मारना चाहते हैं तो [मेरे मर जानेपर] आपकी प्रजाका आधार क्या होगा?॥ ७५॥

पृथुने कहा—अरी वसुधे! अपनी आज्ञाका उल्लंघन करनेवाली तुझे मारकर मैं अपने योगबलसे ही इस प्रजाको धारण करूँगा॥ ७६॥

श्रीपराशरजी बोले—तब अत्यन्त भयभीत एवं काँपती हुई पृथिवीने उन पृथिवीपतिको पुन: प्रणाम करके कहा॥ ७७॥

पृथिवी बोली—हे राजन्! यत्नपूर्वक आरम्भ किये हुए सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं। अत: मैं भी आपको एक उपाय बताती हूँ; यदि आपकी इच्छा हो तो वैसा ही करें॥ ७८॥ हे नरनाथ! मैंने जिन समस्त ओषधियोंको पचा लिया है उन्हें यदि आपकी इच्छा हो तो दुग्धरूपसे मैं दे सकती हूँ॥ ७९॥ अत: हे धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ महाराज! आप प्रजाके हितके लिये कोई ऐसा वत्स (बछड़ा) बनाइये जिससे वात्सल्यवश मैं उन्हें दुग्धरूपसे निकाल सकूँ॥ ८०॥ और मुझको आप सर्वत्र समतल कर दीजिये जिससे मैं उत्तमोत्तम ओषधियोंके बीजरूप दुग्धको सर्वत्र उत्पन्न कर सकूँ॥ ८१॥

श्रीपराशरजी बोले—तब महाराज पृथुने

अपने धनुषकी कोटिसे सैकड़ों-हजारों पर्वतोंको उखाड़ा और उन्हें एक स्थानपर इकट्ठा कर दिया॥ ८२॥ इससे पूर्व पृथिवीके समतल न होनेसे पुर और ग्राम आदिका कोई नियमित विभाग नहीं था॥ ८३॥ हे मैत्रेय! उस समय अन्न, गोरक्षा, कृषि और व्यापारका भी कोई क्रम न था। यह सब तो वेनपुत्र पृथुके समयसे ही आरम्भ हुआ है॥ ८४॥

हे द्विजोत्तम! जहाँ-जहाँ भूमि समतल थी वहीं-वहींपर प्रजाने निवास करना पसन्द किया॥ ८५॥ उस समयतक प्रजाका आहार केवल फल मूलादि ही था; वह भी ओषधियोंके नष्ट हो जानेसे बड़ा दुर्लभ हो गया था॥ ८६॥

तब पृथिवीपति पृथुने स्वायम्भुवमनुको बछड़ा बनाकर अपने हाथमें ही पृथिवीसे प्रजाके हितके लिये समस्त धान्योंको दुहा। हे तात! उसी अन्नके आधारसे अब भी सदा प्रजा जीवित रहती है॥ ८७-८८॥ महाराज पृथु प्राणदान करनेके कारण भूमिके पिता हुए,* इसलिये उस सर्वभूतधारिणीको 'पृथिवी' नाम मिला॥ ८९॥

हे मुने! फिर देवता, मुनि, दैत्य, राक्षस, पर्वत, गन्धर्व, सर्प, यक्ष और पितृगण आदिने अपने-अपने पात्रोंमें अपना अभिमत दूध दुहा तथा दुहनेवालोंके अनुसार उनके सजातीय ही दोग्धा और वत्स आदि हुए ॥ ९०-९१॥ इसीलिये विष्णुभगवान्‌के चरणोंसे प्रकट हुई यह पृथिवी ही सबको जन्म देनेवाली, बनानेवाली तथा धारण और पोषण करनेवाली है॥ ९२॥ इस प्रकार पूर्वकालमें वेनके पुत्र महाराज पृथु ऐसे प्रभावशाली और वीर्यवान् हुए। प्रजाका रंजन करनेके कारण वे 'राजा' कहलाये॥ ९३॥

जो मनुष्य महाराज पृथुके इस चरित्रका कीर्तन करता है उसका कोई भी दुष्कर्म फलदायी नहीं होता॥ ९४॥ पृथुका यह अत्युत्तम जन्म-वृत्तान्त और उनका प्रभाव अपने सुननेवाले पुरुषोंके दुःस्वप्नोंको सर्वदा शान्त कर देता है॥ ९५॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पहले अंशमें तेरहवाँ अध्याय समाप्त॥ १३॥

चौदहवाँ अध्याय

प्राचीनबर्हिका जन्म और प्रचेताओंका भगवदाराधन

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! पृथुके अन्तर्द्धान और वादी नामक दो धर्मज्ञ पुत्र हुए; उनमेंसे अन्तर्द्धानसे उसकी पत्नी शिखण्डिनीने हविर्धानको उत्पन्न किया॥ १॥ हविर्धानसे अग्निकुलीना धिषणाने प्राचीनबर्हि, शुक्र, गय, कृष्ण, वृज और अजिन—ये छः पुत्र उत्पन्न किये॥ २॥ हे महाभाग! हविर्धानसे उत्पन्न हुए भगवान् प्राचीनबर्हि एक महान् प्रजापति थे, जिन्होंने यज्ञके द्वारा अपनी प्रजाकी बहुत वृद्धि की॥ ३॥ हे मुने! उनके समयमें [यज्ञानुष्ठानकी अधिकताके कारण] प्राचीनाग्र कुश समस्त पृथिवीमें फैले हुए थे, इसलिये वे महाबली 'प्राचीनबर्हि' नामसे विख्यात हुए॥ ४॥

* जन्म देनेवाला, यज्ञोपवीत करानेवाला, अन्नदाता, भयसे रक्षा करनेवाला तथा जो विद्यादान करे—ये पाँचों पिता माने गये हैं; जैसे कहा है—

जनकश्चोपनेता च यश्च विद्याः प्रयच्छति। अन्नदाता भयत्राता पञ्चैते पितरः स्मृताः॥

हे महामते! उन महीपतिने महान् तपस्याके अनन्तर समुद्रकी पुत्री सवर्णासे विवाह किया॥ ५॥ उस समुद्र-कन्या सवर्णाके प्राचीनबर्हिसे दस पुत्र हुए। वे प्रचेता-नामक सभी पुत्र धनुर्विद्याके पारगामी थे॥ ६॥ उन्होंने समुद्रके जलमें रहकर दस हजार वर्षतक समान धर्मका आचरण करते हुए घोर तपस्या की॥ ७॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे महामुने! उन महात्मा प्रचेताओंने जिस लिये समुद्रके जलमें तपस्या की थी सो आप कहिये॥ ८॥

श्रीपराशरजी कहने लगे—हे मैत्रेय! एक बार प्रजापतिकी प्रेरणासे प्रचेताओंके महात्मा पिता प्राचीनबर्हिने उनसे अति सम्मानपूर्वक सन्तानोत्पत्तिके लिये इस प्रकार कहा॥ ९॥

प्राचीनबर्हि बोले—हे पुत्रो! देवाधिदेव ब्रह्माजीने मुझे आज्ञा दी है कि 'तुम प्रजाकी वृद्धि करो' और मैंने भी उनसे 'बहुत अच्छा' कह दिया है॥ १०॥ अत: हे पुत्रगण! तुम भी मेरी प्रसन्नताके लिये सावधानतापूर्वक प्रजाकी वृद्धि करो, क्योंकि प्रजापतिकी आज्ञा तुमको भी सर्वथा माननीय है॥ ११॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मुने! उन राजकुमारोंने पिताके ये वचन सुनकर उनसे 'जो आज्ञा' ऐसा कहकर फिर पूछा॥ १२॥

प्रचेता बोले—हे तात! जिस कर्मसे हम प्रजा-वृद्धिमें समर्थ हो सकें उसकी आप हमसे भली प्रकार व्याख्या कीजिये॥ १३॥

पिताने कहा—वरदायक भगवान् विष्णुकी आराधना करनेसे ही मनुष्यको नि:सन्देह इष्ट वस्तुकी प्राप्ति होती है और किसी उपायसे नहीं। इसके सिवा और मैं तुमसे क्या कहूँ॥ १४॥ इसलिये यदि तुम सफलता चाहते हो तो प्रजा-वृद्धिके लिये सर्वभूतोंके स्वामी श्रीहरि गोविन्दकी उपासना करो॥ १५॥ धर्म, अर्थ, काम या मोक्षकी इच्छावालोंको सदा अनादि पुरुषोत्तम भगवान् विष्णुकी ही आराधना करनी चाहिये॥ १६॥ कल्पके आरम्भमें जिनकी उपासना करके प्रजापतिने संसारकी रचना की है, तुम उन अच्युतकी ही आराधना करो। इससे तुम्हारी सन्तानकी वृद्धि होगी॥ १७॥

श्रीपराशरजी बोले—पिताकी ऐसी आज्ञा होनेपर प्रचेता नामक दसों पुत्रोंने समुद्रके जलमें डूबे रहकर सावधानतापूर्वक तप करना आरम्भ कर दिया॥ १८॥ हे मुनिश्रेष्ठ! सर्वलोकाश्रय जगत्पति श्रीनारायणमें चित्त लगाये हुए उन्होंने दस हजार वर्षतक वहीं (जलमें ही) स्थित रहकर देवाधिदेव श्रीहरिकी एकाग्र-चित्तसे स्तुति की, जो अपनी स्तुति की जानेपर स्तुति करनेवालोंकी सभी कामनाएँ सफल कर देते हैं॥ १९-२०॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! समुद्रके जलमें स्थित रहकर प्रचेताओंने भगवान् विष्णुकी जो अति पवित्र स्तुति की थी वह कृपया मुझसे कहिये॥ २१॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! पूर्वकालमें समुद्रमें स्थित रहकर प्रचेताओंने तन्मयभावसे श्रीगोविन्दकी जो स्तुति की, वह सुनो॥ २२॥

प्रचेताओंने कहा—जिनमें सम्पूर्ण वाक्योंकी नित्य-प्रतिष्ठा है [अर्थात् जो सम्पूर्ण वाक्योंके एकमात्र प्रतिपाद्य हैं] तथा जो जगत्की उत्पत्ति और प्रलयके कारण हैं उन निखिल-जगन्नायक परमप्रभुको हम नमस्कार करते हैं॥ २३॥ जो आद्य ज्योतिस्स्वरूप, अनुपम, अणु, अनन्त, अपार और समस्त चराचरके कारण हैं, तथा जिन रूपहीन परमेश्वरके दिन, रात्रि और सन्ध्या ही प्रथम रूप हैं, उन कालस्वरूप भगवान्को नमस्कार है॥ २४-२५॥ समस्त प्राणियोंके जीवनरूप जिनके

अमृतमय स्वरूपको देव और पितृगण नित्यप्रति भोगते हैं—उन सोमस्वरूप प्रभुको नमस्कार है॥ २६॥ जो तीक्ष्णस्वरूप अपने तेजसे आकाशमण्डलको प्रकाशित करते हुए अन्धकारको भक्षण कर जाते हैं तथा जो घाम, शीत और जलके उद्‍गमस्थान हैं उन सूर्यस्वरूप [नारायण]-को नमस्कार है॥ २७॥ जो कठिनतायुक्त होकर इस सम्पूर्ण संसारको धारण करते हैं और शब्द आदि पाँचों विषयोंके आधार तथा व्यापक हैं, उन भूमिरूप भगवान्‌को नमस्कार है॥ २८॥ जो संसारका योनिरूप है और समस्त देहधारियोंका बीज है, भगवान् हरिके उस जलस्वरूपको हम नमस्कार करते हैं॥ २९॥ जो समस्त देवताओंका हव्यभुक् और पितृगणका कव्यभुक् मुख है, उस अग्निस्वरूप विष्णुभगवान्‌को नमस्कार है॥ ३०॥ जो प्राण, अपान आदि पाँच प्रकारसे देहमें स्थित होकर दिन-रात चेष्टा करता रहता है तथा जिसकी योनि आकाश है, उस वायुरूप भगवान्‌को नमस्कार है॥ ३१॥ जो समस्त भूतोंको अवकाश देता है उस अनन्तमूर्ति और परम शुद्ध आकाशस्वरूप प्रभुको नमस्कार है॥ ३२॥ समस्त इन्द्रिय-सृष्टिके जो उत्तम स्थान हैं उन शब्द-स्पर्शादिरूप विधाता श्रीकृष्णचन्द्रको नमस्कार है॥ ३३॥ जो क्षर और अक्षर इन्द्रियरूपसे नित्य विषयोंको ग्रहण करते हैं उन ज्ञानमूल हरिको नमस्कार है॥ ३४॥ इन्द्रियोंके द्वारा ग्रहण किये विषयोंको जो आत्माके सम्मुख उपस्थित करता है उस अन्तःकरणरूप विश्वात्माको नमस्कार है॥ ३५॥ जिस अनन्तमें सकल विश्व स्थित है, जिससे वह उत्पन्न हुआ है और जो उसके लयका भी स्थान है उस प्रकृतिस्वरूप परमात्माको नमस्कार है॥ ३६॥ जो शुद्ध और निर्गुण होकर भी भ्रमवश गुणयुक्त-से दिखायी देते हैं उन आत्मस्वरूप पुरुषोत्तमदेवको हम नमस्कार करते हैं॥ ३७॥ जो अविकारी, अजन्मा, शुद्ध, निर्गुण, निर्मल और श्रीविष्णुका परमपद है उस ब्रह्मस्वरूपको हम नमस्कार करते हैं॥ ३८॥ जो न लम्बा है, न पतला है, न मोटा है, न छोटा है और न काला है, न लाल है; जो स्नेह (द्रव), कान्ति तथा शरीरसे रहित एवं अनासक्त और अशरीरी (जीवसे भिन्न) है॥ ३९॥ जो अवकाश स्पर्श, गन्ध और रससे रहित तथा आँख-कान-विहीन, अचल एवं जिह्वा, हाथ और मनसे रहित है॥ ४०॥ जो नाम, गोत्र, सुख और तेजसे शून्य तथा कारणहीन है; जिसमें भय, भ्रान्ति, निद्रा, जरा और मरण—इन (अवस्थाओं)-का अभाव है॥ ४१॥ जो अरज (रजोगुणरहित), अशब्द, अमृत, अप्लुत (गतिशून्य) और असंवृत (अनाच्छादित) है एवं जिसमें पूर्वापर व्यवहारकी गति नहीं है वही भगवान् विष्णुका परमपद है॥ ४२॥ जिसका ईशन (शासन) ही परमगुण है, जो सर्वरूप और अनाधार है तथा जिह्वा और दृष्टिका अविषय है, भगवान् विष्णुके उस परमपदको हम नमस्कार करते हैं॥ ४३॥

श्रीपराशरजी बोले—इस प्रकार श्रीविष्णुभगवान्‌में समाधिस्थ होकर प्रचेताओंने महासागरमें रहकर उनकी स्तुति करते हुए दस हजार वर्षतक तपस्या की ॥ ४४॥ तब भगवान् श्रीहरिने प्रसन्न होकर उन्हें खिले हुए नील कमलकी-सी आभायुक्त दिव्य छविसे जलके भीतर ही दर्शन दिया॥ ४५॥ प्रचेताओंने पक्षिराज गरुड़पर चढ़े हुए श्रीहरिको देखकर उन्हें भक्तिभावके भारसे झुके हुए मस्तकोंद्वारा प्रणाम किया॥ ४६॥

तब भगवान्‌ने उनसे कहा—"मैं तुमसे प्रसन्न होकर तुम्हें वर देनेके लिये आया हूँ, तुम अपना अभीष्ट वर माँगो"॥ ४७॥ तब प्रचेताओंने वरदायक श्रीहरिको प्रणाम कर, जिस प्रकार

उनके पिताने उन्हें प्रजा-वृद्धिके लिये आज्ञा दी थी वह सब उनसे निवेदन की॥ ४८॥ तदनन्तर, भगवान् उन्हें अभीष्ट वर देकर अन्तर्धान हो गये और वे जलसे बाहर निकल आये॥ ४९॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पहले अंशमें चौदहवाँ अध्याय समाप्त॥ १४॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

प्रचेताओंका मारिषा नामक कन्याके साथ विवाह, दक्ष प्रजापतिकी उत्पत्ति एवं दक्षकी आठ कन्याओंके वंशका वर्णन

श्रीपराशरजी बोले—प्रचेताओंके तपस्यामें लगे रहनेसे [कृषि आदिद्वारा] किसी प्रकारकी रक्षा न होनेके कारण पृथिवीको वृक्षोंने ढँक लिया और प्रजा बहुत कुछ नष्ट हो गयी॥ १॥ आकाश वृक्षोंसे भर गया था। इसलिये दस हजार वर्षतक न तो वायु ही चला और न प्रजा ही किसी प्रकारकी चेष्टा कर सकी॥ २॥ जलसे निकलनेपर उन वृक्षोंको देखकर प्रचेतागण अति क्रोधित हुए और उन्होंने रोषपूर्वक अपने मुखसे वायु और अग्निको छोड़ा॥ ३॥ वायुने वृक्षोंको उखाड़-उखाड़कर सुखा दिया और प्रचण्ड अग्निने उन्हें जला डाला। इस प्रकार उस समय वहाँ वृक्षोंका नाश होने लगा॥ ४॥

तब वह भयंकर वृक्ष-प्रलय देखकर थोड़े-से वृक्षोंके रह जानेपर उनके राजा सोमने प्रजापति प्रचेताओंके पास जाकर कहा—॥ ५॥ "हे नृपतिगण! आप क्रोध शान्त कीजिये और मैं जो कुछ कहता हूँ, सुनिये। मैं वृक्षोंके साथ आपलोगोंकी सन्धि करा दूँगा॥ ६॥ वृक्षोंसे उत्पन्न हुई इस सुन्दर वर्णवाली रत्नस्वरूपा कन्याका मैंने पहलेसे ही भविष्यको जानकर अपनी [अमृतमयी] किरणोंसे पालन-पोषण किया है॥ ७॥ वृक्षोंकी यह कन्या मारिषा नामसे प्रसिद्ध है, यह महाभागा इसलिये ही उत्पन्न की गयी है कि निश्चय ही तुम्हारे वंशको बढ़ानेवाली तुम्हारी भार्या हो॥ ८॥ मेरे और तुम्हारे आधे-आधे तेजसे इसके परम विद्वान् दक्ष नामक प्रजापति उत्पन्न होगा॥ ९॥ वह तुम्हारे तेजके सहित मेरे अंशसे युक्त होकर अपने तेजके कारण अग्निके समान होगा और प्रजाकी खूब वृद्धि करेगा॥ १०॥

पूर्वकालमें वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ एक कण्डु नामक मुनीश्वर थे। उन्होंने गोमती नदीके परम रमणीक तटपर घोर तप किया॥ ११॥ तब इन्द्रने उन्हें तपोभ्रष्ट करनेके लिये प्रम्लोचा नामकी उत्तम अप्सराको नियुक्त किया। उस मंजुहासिनीने उन ऋषिश्रेष्ठको विचलित कर दिया॥ १२॥ उसके द्वारा क्षुब्ध होकर वे सौसे भी अधिक वर्षतक विषयासक्त-चित्तसे मन्दराचलकी कन्दरामें रहे॥ १३॥

तब, हे महाभाग! एक दिन उस अप्सराने कण्डु ऋषिसे कहा—"हे ब्रह्मन्! अब मैं स्वर्गलोकको जाना चाहती हूँ, आप प्रसन्नतापूर्वक मुझे आज्ञा दीजिये"॥ १४॥ उसके ऐसा कहनेपर उसमें आसक्तचित्त हुए मुनिने कहा—"भद्रे! अभी कुछ दिन और रहो"॥ १५॥ उनके ऐसा कहनेपर उस सुन्दरीने महात्मा कण्डुके साथ अगले सौ वर्षतक और रहकर नाना प्रकारके भोग भोगे॥ १६॥ तब भी, उसके यह पूछनेपर कि 'भगवन्! मुझे स्वर्गलोकको जानेकी आज्ञा दीजिये' ऋषिने यही कहा कि 'अभी और ठहरो'॥ १७॥ तदनन्तर सौ

वर्षसे कुछ अधिक बीत जानेपर उस सुमुखीने प्रणययुक्त मुसकानसे सुशोभित वचनोंमें फिर कहा—"ब्रह्मन्! अब मैं स्वर्गको जाती हूँ"॥ १८॥ यह सुनकर मुनिने उस विशालाक्षीको आलिंगनकर कहा—'अयि सुभ्रु! अब तो तू बहुत दिनोंके लिये चली जायगी इसलिये क्षणभर तो और ठहर'॥ १९॥ तब वह सुश्रोणी (सुन्दर कमरवाली) उस ऋषिके साथ क्रीड़ा करती हुई दो सौ वर्षसे कुछ कम और रही॥ २०॥

हे महाभाग! इस प्रकार जब-जब वह सुन्दरी देवलोकको जानेके लिये कहती तभी-तभी कण्डु ऋषि उससे यही कहते कि 'अभी ठहर जा'॥ २१॥ मुनिके इस प्रकार कहनेपर, प्रणयभंगकी पीड़ाको जाननेवाली उस दक्षिणाने* अपने दाक्षिण्यवश तथा मुनिके शापसे भयभीत होकर उन्हें न छोड़ा॥ २२॥ तथा उन महर्षि महोदयका भी कामासक्तचित्तसे उसके साथ अहर्निश रमण करते-करते, उसमें नित्य नूतन प्रेम बढ़ता गया॥ २३॥

एक दिन वे मुनिवर बड़ी शीघ्रतासे अपनी कुटीसे निकले। उनके निकलते समय वह सुन्दरी बोली—"आप कहाँ जाते हैं"॥ २४॥ उसके इस प्रकार पूछनेपर मुनिने कहा—"हे शुभे! दिन अस्त हो चुका है, इसलिये मैं सन्ध्योपासना करूँगा; नहीं तो नित्य-क्रिया नष्ट हो जायगी"॥ २५॥ तब उस सुन्दर दाँतोंवालीने उन मुनीश्वरसे हँसकर कहा—"हे सर्वधर्मज्ञ! क्या आज ही आपका दिन अस्त हुआ है?॥ २६॥ हे विप्र! अनेकों वर्षोंके पश्चात् आज आपका दिन अस्त हुआ है; इससे कहिये, किसको आश्चर्य न होगा?"॥ २७॥

मुनि बोले—भद्रे! नदीके इस सुन्दर तटपर तुम आज सबेरे ही तो आयी हो। [मुझे भली प्रकार स्मरण है] मैंने आज ही तुमको अपने आश्रममें प्रवेश करते देखा था॥ २८॥ अब दिनके समाप्त होनेपर यह सन्ध्याकाल हुआ है। फिर, सच तो कहो, ऐसा उपहास क्यों करती हो?॥ २९॥

प्रम्लोचा बोली—ब्रह्मन्! आपका यह कथन कि 'तुम सबेरे ही आयी हो' ठीक ही है, इसमें झूठ नहीं; परन्तु उस समयको तो आज सैकड़ों वर्ष बीत चुके॥ ३०॥

सोमने कहा—तब उन विप्रवरने उस विशालाक्षीसे कुछ घबड़ाकर पूछा—"अरी भीरु! ठीक-ठीक बता, तेरे साथ रमण करते मुझे कितना समय बीत गया?"॥ ३१॥

प्रम्लोचाने कहा—अबतक नौ सौ सात वर्ष, छः महीने तथा तीन दिन और भी बीत चुके हैं॥ ३२॥

ऋषि बोले—अयि भीरु! यह तू ठीक कहती है, या हे शुभे! मेरी हँसी करती है? मुझे तो ऐसा ही प्रतीत होता है कि मैं इस स्थानपर तेरे साथ केवल एक ही दिन रहा हूँ॥ ३३॥

प्रम्लोचा बोली—हे ब्रह्मन्! आपके निकट मैं झूठ कैसे बोल सकती हूँ? और फिर विशेषतया उस समय जब कि आज आप अपने धर्म-मार्गका अनुसरण करनेमें तत्पर होकर मुझसे पूछ रहे हैं॥ ३४॥

सोमने कहा—हे राजकुमारो! उसके ये सत्य वचन सुनकर मुनिने 'मुझे धिक्कार है! मुझे

---

* दक्षिणा नायिकाका लक्षण इस प्रकार कहा है—

या गौरवं भयं प्रेम सद्भावं पूर्वनायके। न मुञ्चत्यन्यसक्तापि सा ज्ञेया दक्षिणा बुधैः॥

अन्य नायकमें आसक्त रहते हुए भी जो अपने पूर्व-नायकको गौरव, भय, प्रेम और सद्भावके कारण न छोड़ती हो उसे 'दक्षिणा' जानना चाहिये। दक्षिणाके गुणको 'दाक्षिण्य' कहते हैं।

धिक्कार है!' ऐसा कहकर स्वयं ही अपनेको बहुत कुछ भला-बुरा कहा॥ ३५॥

मुनि बोले—ओह! मेरा तप नष्ट हो गया, जो ब्रह्मवेत्ताओंका धन था वह लुट गया और विवेकबुद्धि मारी गयी। अहो! स्त्रीको तो किसीने मोह उपजानेके लिये ही रचा है॥ ३६॥ 'मुझे अपने मनको जीतकर छहों ऊर्मियों* से अतीत परब्रह्मको जानना चाहिये'—जिसने मेरी इस प्रकारकी बुद्धिको नष्ट कर दिया, उस कामरूपी महाग्रहको धिक्कार है॥ ३७॥ नरकग्रामके मार्गरूप इस स्त्रीके संगसे वेदवेद्य भगवान्‌की प्राप्तिके कारणरूप मेरे समस्त व्रत नष्ट हो गये॥ ३८॥

इस प्रकार उन धर्मज्ञ मुनिवरने अपने-आप ही अपनी निन्दा करते हुए वहाँ बैठी हुई उस अप्सरासे कहा—॥ ३९॥ "अरी पापिनि! अब तेरी जहाँ इच्छा हो चली जा, तूने अपनी भावभंगीसे मुझे मोहित करके इन्द्रका जो कार्य था वह पूरा कर लिया॥ ४०॥ मैं अपने क्रोधसे प्रज्वलित हुए अग्निद्वारा तुझे भस्म नहीं करता हूँ, क्योंकि सज्जनोंकी मित्रता सात पग साथ रहनेसे हो जाती है और मैं तो [इतने दिन] तेरे साथ निवास कर चुका हूँ॥ ४१॥ अथवा इसमें तेरा दोष भी क्या है, जो मैं तुझपर क्रोध करूँ? दोष तो सारा मेरा ही है, क्योंकि मैं बड़ा ही अजितेन्द्रिय हूँ॥ ४२॥ तू महामोहकी पिटारी और अत्यन्त निन्दनीया है। हाय! तूने इन्द्रके स्वार्थके लिये मेरी तपस्या नष्ट कर दी!! तुझे धिक्कार है!!!॥ ४३॥

सोमने कहा—वे ब्रह्मर्षि उस सुन्दरीसे जबतक ऐसा कहते रहे तबतक वह [भयके कारण] पसीनेमें सराबोर होकर अत्यन्त काँपती रही॥ ४४॥ इस प्रकार जिसका समस्त शरीर पसीनेमें डूबा हुआ था और जो भयसे थर-थर काँप रही थी उस प्रम्लोचासे मुनिश्रेष्ठ कण्डुने क्रोधपूर्वक कहा—'अरी! तू चली जा! चली जा!!॥ ४५॥

तब बारम्बार फटकारे जानेपर वह उस आश्रमसे निकली और आकाश-मार्गसे जाते हुए उसने अपना पसीना वृक्षके पत्तोंसे पोंछा॥ ४६॥ वह बाला वृक्षोंके नवीन लाल-लाल पत्तोंसे अपने पसीनेसे तर शरीरको पोंछती हुई एक वृक्षसे दूसरे वृक्षपर चलती गयी॥ ४७॥ उस समय ऋषिने उसके शरीरमें जो गर्भ स्थापित किया था; वह भी रोमांचसे निकले हुए पसीनेके रूपमें उसके शरीरसे बाहर निकल आया॥ ४८॥ उस गर्भको वृक्षोंने ग्रहण कर लिया, उसे वायुने एकत्रित कर दिया और मैं अपनी किरणोंसे उसे पोषित करने लगा। इससे वह धीरे-धीरे बढ़ गया॥ ४९॥ वृक्षाग्रसे उत्पन्न हुई वह मारिषा नामकी सुमुखी कन्या तुम्हें वृक्षगण समर्पण करेंगे। अतः अब यह क्रोध शान्त करो॥ ५०॥ इस प्रकार वृक्षोंसे उत्पन्न हुई वह कन्या प्रम्लोचाकी पुत्री है तथा कण्डु मुनिकी, मेरी और वायुकी भी सन्तान है॥ ५१॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! [तब यह सोचकर कि प्रचेतागण योगभ्रष्टकी कन्या होनेसे मारिषाको अग्राह्य न समझें सोमदेवने कहा—] साधुश्रेष्ठ भगवान् कण्डु भी तपके क्षीण हो जानेसे पुरुषोत्तमक्षेत्र नामक भगवान् विष्णुकी निवास-भूमिको गये और हे राजपुत्रो! वहाँ वे महायोगी एकनिष्ठ होकर एकाग्रचित्तसे ब्रह्मपार-मन्त्रका जप करते हुए ऊर्ध्वबाहु रहकर श्रीविष्णुभगवान्‌की आराधना करने लगे॥ ५२-५३॥

प्रचेतागण बोले—हम कण्डु मुनिका ब्रह्मपार नामक परमस्तोत्र सुनना चाहते हैं,

* क्षुधा, पिपासा, लोभ, मोह, जरा और मृत्यु—ये छः ऊर्मियाँ हैं।

जिसका जप करते हुए उन्होंने श्रीकेशवकी आराधना की थी॥ ५४॥

सोमने कहा—[हे राजकुमारो! वह मन्त्र इस प्रकार है—] 'श्रीविष्णुभगवान् संसारमार्गकी अन्तिम अवधि हैं, उनका पार पाना कठिन है, वे पर (आकाशादि)-से भी पर अर्थात् अनन्त हैं, अत: सत्यस्वरूप हैं। तपोनिष्ठ महात्माओंको ही वे प्राप्त हो सकते हैं, क्योंकि वे पर (अनात्म-प्रपंच)-से परे हैं तथा पर (इन्द्रियों)-के अगोचर परमात्मा हैं और [भक्तोंके] पालक एवं [उनके अभीष्टको] पूर्ण करनेवाले हैं॥ ५५॥ वे कारण (पंचभूत)-के कारण (पंचतन्मात्रा)-के हेतु (तामस-अहंकार) और उसके भी हेतु (महत्तत्त्व)-के हेतु (प्रधान)-के भी परम हेतु हैं और इस प्रकार समस्त कर्म और कर्ता आदिके सहित कार्यरूपसे स्थित सकल प्रपंचका पालन करते हैं॥ ५६॥ ब्रह्म ही प्रभु है, ब्रह्म ही सर्वजीवरूप है और ब्रह्म ही सकल प्रजाका पति (रक्षक) तथा अविनाशी है। वह ब्रह्म अव्यय, नित्य और अजन्मा है तथा वही क्षय आदि समस्त विकारोंसे शून्य विष्णु है॥ ५७॥ क्योंकि वह अक्षर, अज और नित्य ब्रह्म ही पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु हैं, इसलिये [उनका नित्य अनुरक्त भक्त होनेके कारण] मेरे राग आदि दोष शान्त हों'॥ ५८॥

इस ब्रह्मपार नामक परम स्तोत्रका जप करते हुए श्रीकेशवकी आराधना करनेसे उन मुनीश्वरने परमसिद्धि प्राप्त की॥ ५९॥ [जो पुरुष इस स्तवको नित्यप्रति पढ़ता या सुनता है वह काम आदि सकल दोषोंसे मुक्त होकर अपना मनोवांछित फल प्राप्त करता है।] अब मैं तुम्हें यह बताता हूँ कि यह मारिषा पूर्वजन्ममें कौन थी। यह बता देनेसे तुम्हारे कार्यका गौरव सफल होगा। [अर्थात् तुम प्रजा-वृद्धिरूप फल प्राप्त कर सकोगे]॥ ६०॥

यह साध्वी अपने पूर्व जन्ममें एक महारानी थी। पुत्रहीन अवस्थामें ही पतिके मर जानेपर इस महाभागाने अपने भक्तिभावसे विष्णुभगवान्‌को सन्तुष्ट किया॥ ६१॥ इसकी आराधनासे प्रसन्न हो विष्णुभगवान्‌ने प्रकट होकर कहा—"हे शुभे! वर माँग।" तब इसने अपनी मनोभिलाषा इस प्रकार कह सुनायी—॥ ६२॥ "भगवन्! बाल-विधवा होनेके कारण मेरा जन्म व्यर्थ ही हुआ। हे जगत्पते! मैं ऐसी अभागिनी हूँ कि फलहीन (पुत्रहीन) ही उत्पन्न हुई॥ ६३॥ अत: आपकी कृपासे जन्म-जन्ममें मेरे बड़े प्रशंसनीय पति हों और प्रजापति (ब्रह्माजी)-के समान पुत्र हो॥ ६४॥ और हे अधोक्षज! आपके प्रसादसे मैं भी कुल, शील, अवस्था, सत्य, दाक्षिण्य (कार्य-कुशलता), शीघ्रकारिता, अविसंवादिता (उलटा न कहना), सत्त्व, वृद्धसेवा और कृतज्ञता आदि गुणोंसे तथा सुन्दर रूपसम्पत्तिसे सम्पन्न और सबको प्रिय लगनेवाली अयोनिजा (माताके गर्भसे जन्म लिये बिना) ही उत्पन्न होऊँ'॥ ६५-६६॥

सोम बोले—उसके ऐसा कहनेपर वरदायक परमेश्वर देवाधिदेव श्रीहृषीकेशने प्रणामके लिये झुकी हुई उस बालाको उठाकर कहा॥ ६७॥

भगवान् बोले—तेरे एक ही जन्ममें बड़े पराक्रमी और विख्यात कर्मवीर दस पति होंगे और हे शोभने! उसी समय तुझे प्रजापतिके समान एक महावीर्यवान् एवं अत्यन्त बल-विक्रमयुक्त पुत्र भी प्राप्त होगा॥ ६८-६९॥ वह इस संसारमें कितने ही वंशोंको चलानेवाला होगा और उसकी सन्तान सम्पूर्ण त्रिलोकीमें फैल जायगी॥ ७०॥ तथा तू भी मेरी कृपासे उदाररूप-गुणसम्पन्ना, सुशीला और मनुष्योंके चित्तको प्रसन्न करनेवाली अयोनिजा ही उत्पन्न होगी॥ ७१॥

हे राजपुत्रो! उस विशालाक्षीसे ऐसा कह भगवान् अन्तर्धान हो गये और वही यह मारिषाके रूपसे उत्पन्न हुई तुम्हारी पत्नी है॥ ७२॥

श्रीपराशरजी बोले— तब सोमदेवके कहनेसे प्रचेताओंने अपना क्रोध शान्त किया और उस मारिषाको वृक्षोंसे पत्नीरूपमें ग्रहण किया॥ ७३॥ उन दसों प्रचेताओंसे मारिषाके महाभाग दक्ष प्रजापतिका जन्म हुआ, जो पहले ब्रह्माजीसे उत्पन्न हुए थे॥ ७४॥

हे महामते! उन महाभाग दक्षने, ब्रह्माजीकी आज्ञा पालते हुए सर्ग-रचनाके लिये उद्यत होकर उनकी अपनी सृष्टि बढ़ाने और सन्तान उत्पन्न करनेके लिये नीच-ऊँच तथा द्विपद-चतुष्पद आदि नाना प्रकारके जीवोंको पुत्ररूपसे उत्पन्न किया॥ ७५-७६॥ प्रजापति दक्षने पहले मनसे ही सृष्टि करके फिर स्त्रियोंकी उत्पत्ति की। उनमेंसे दस धर्मको और तेरह कश्यपको दीं तथा काल-परिवर्तनमें नियुक्त [अश्विनी आदि] सत्ताईस चन्द्रमाको विवाह दीं॥ ७७॥ उन्हींसे देवता, दैत्य, नाग, गौ, पक्षी, गन्धर्व, अप्सरा और दानव आदि उत्पन्न हुए॥ ७८॥ हे मैत्रेय! दक्षके समयसे ही प्रजाका मैथुन (स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध) द्वारा उत्पन्न होना आरम्भ हुआ है। उससे पहले तो अत्यन्त तपस्वी प्राचीन सिद्ध पुरुषोंके तपोबलसे उनके संकल्प, दर्शन अथवा स्पर्शमात्रसे ही प्रजा उत्पन्न होती थी॥ ७९॥

श्रीमैत्रेयजी बोले— हे महामुने! मैंने तो सुना था कि दक्षका जन्म ब्रह्माजीके दायें अँगूठेसे हुआ था, फिर वे प्रचेताओंके पुत्र किस प्रकार हुए?॥ ८०॥ हे ब्रह्मन्! मेरे हृदयमें यह बड़ा सन्देह है कि सोमदेवके दौहित्र (धेवते) होकर भी फिर वे उनके श्वशुर हुए!॥ ८१॥

श्रीपराशरजी बोले— हे मैत्रेय! प्राणियोंके उत्पत्ति और नाश [प्रवाहरूपसे] निरन्तर हुआ करते हैं। इस विषयमें ऋषियों तथा अन्य दिव्यदृष्टि-पुरुषोंको कोई मोह नहीं होता॥ ८२॥ हे मुनिश्रेष्ठ! ये दक्षादि युग-युगमें होते हैं और फिर लीन हो जाते हैं; इसमें विद्वान्‌को किसी प्रकारका सन्देह नहीं होता॥ ८३॥ हे द्विजोत्तम! इनमें पहले किसी प्रकारकी ज्येष्ठता अथवा कनिष्ठता भी नहीं थी। उस समय तप और प्रभाव ही उनकी ज्येष्ठताका कारण होता था॥ ८४॥

श्रीमैत्रेयजी बोले— हे ब्रह्मन्! आप मुझसे देव, दानव, गन्धर्व, सर्प और राक्षसोंकी उत्पत्ति विस्तारपूर्वक कहिये॥ ८५॥

श्रीपराशरजी बोले— हे महामुने! स्वयम्भू-भगवान् ब्रह्माजीकी ऐसी आज्ञा होनेपर कि 'तुम प्रजा उत्पन्न करो' दक्षने पूर्वकालमें जिस प्रकार प्राणियोंकी रचना की थी वह सुनो॥ ८६॥ उस समय पहले तो दक्षने ऋषि, गन्धर्व, असुर और सर्प आदि मानसिक प्राणियोंको ही उत्पन्न किया॥ ८७॥ इस प्रकार रचना करते हुए जब उनकी वह प्रजा और न बढ़ी तो उन प्रजापतिने सृष्टिकी वृद्धिके लिये मनमें विचारकर मैथुनधर्मसे नाना प्रकारकी प्रजा उत्पन्न करनेकी इच्छासे वीरण प्रजापतिकी अति तपस्विनी और लोकधारिणी पुत्री असिक्नीसे विवाह किया॥ ८८-८९॥

तदनन्तर वीर्यवान् प्रजापति दक्षने सर्गकी वृद्धिके लिये वीरणसुता असिक्नीसे पाँच सहस्र पुत्र उत्पन्न किये॥ ९०॥ उन्हें प्रजा-वृद्धिके इच्छुक देख प्रियवादी देवर्षि नारदने उनके निकट जाकर इस प्रकार कहा—॥ ९१॥ "हे महापराक्रमी हर्यश्वगण! आपलोगोंकी ऐसी चेष्टा प्रतीत होती है कि आप प्रजा उत्पन्न करेंगे, सो मेरा यह कथन सुनो॥ ९२॥ खेदकी बात है, तुमलोग अभी निरे अनभिज्ञ हो क्योंकि तुम इस पृथिवीका

मध्य, ऊर्ध्व (ऊपरी भाग) और अध: (नीचेका भाग) कुछ भी नहीं जानते, फिर प्रजाकी रचना किस प्रकार करोगे? देखो, तुम्हारी गति इस ब्रह्माण्डमें ऊपर-नीचे और इधर-उधर सब ओर अप्रतिहत (बे-रोक-टोक) है; अत: हे अज्ञानियो! तुम सब मिलकर इस पृथिवीका अन्त क्यों नहीं देखते?"॥ ९३-९४॥ नारदजीके ये वचन सुनकर वे सब भिन्न-भिन्न दिशाओंको चले गये और समुद्रमें जाकर जिस प्रकार नदियाँ नहीं लौटतीं उसी प्रकार वे भी आजतक नहीं लौटे॥ ९५॥

हर्यश्वोंके इस प्रकार चले जानेपर प्रचेताओंके पुत्र दक्षने वैरुणीसे एक सहस्र पुत्र और उत्पन्न किये॥ ९६॥ वे शबलाश्वगण भी प्रजा बढ़ानेके इच्छुक हुए, किन्तु हे ब्रह्मन्! उनसे नारदजीने ही फिर पूर्वोक्त बातें कह दीं। तब वे सब आपसमें एक-दूसरेसे कहने लगे—'महामुनि नारदजी ठीक कहते हैं; हमको भी, इसमें सन्देह नहीं, अपने भाइयोंके मार्गका ही अवलम्बन करना चाहिये। हम भी पृथिवीका परिमाण जानकर ही सृष्टि करेंगे।' इस प्रकार वे भी उसी मार्गसे समस्त दिशाओंको चले गये और समुद्रगत नदियोंके समान आजतक नहीं लौटे॥ ९७—९९॥ हे द्विज! तबसे ही यदि भाईको खोजनेके लिये भाई ही जाय तो वह नष्ट हो जाता है, अत: विज्ञ पुरुषको ऐसा न करना चाहिये॥ १००॥

महाभाग दक्ष प्रजापतिने उन पुत्रोंको भी गये जान नारदजीपर बड़ा क्रोध किया और उन्हें शाप दे दिया॥ १०१॥ हे मैत्रेय! हमने सुना है कि फिर उस विद्वान् प्रजापतिने सर्गवृद्धिकी इच्छासे वैरुणीसे साठ कन्याएँ उत्पन्न कीं॥ १०२॥ उनमेंसे उन्होंने दस धर्मको, तेरह कश्यपको, सत्ताईस सोम (चन्द्रमा)-को और चार अरिष्टनेमिको दीं॥ १०३॥ तथा दो बहुपुत्र, दो अंगिरा और दो कृशाश्वको विवाहीं। अब उनके नाम सुनो॥ १०४॥ अरुन्धती, वसु, यामी, लम्बा, भानु, मरुत्वती, संकल्पा, मुहूर्ता, साध्या और विश्वा—ये दस धर्मकी पत्नियाँ थीं; अब तुम इनके पुत्रोंका विवरण सुनो॥ १०५॥ विश्वाके पुत्र विश्वेदेवा थे, साध्यासे साध्यगण हुए, मरुत्वतीसे मरुत्वान् और वसुसे वसुगण हुए तथा भानुसे भानु और मुहूर्तासे मुहूर्ताभिमानी देवगण हुए॥ १०६॥ लम्बासे घोष, यामीसे नागवीथी और अरुन्धतीसे समस्त पृथिवी-विषयक प्राणी हुए तथा संकल्पासे सर्वात्मक संकल्पकी उत्पत्ति हुई॥ १०७-१०८॥

नाना प्रकारका वसु (तेज अथवा धन) ही जिनका प्राण है ऐसे ज्योति आदि जो आठ वसुगण विख्यात हैं, अब मैं उनके वंशका विस्तार बताता हूँ॥ १०९॥ उनके नाम आप, ध्रुव, सोम, धर्म, अनिल (वायु), अनल (अग्नि), प्रत्यूष और प्रभास कहे जाते हैं॥ ११०॥ आपके पुत्र वैतण्ड, श्रम, शान्त और ध्वनि हुए तथा ध्रुवके पुत्र लोक-संहारक भगवान् काल हुए॥ १११॥ भगवान् वर्चा सोमके पुत्र थे जिनसे पुरुष वर्चस्वी (तेजस्वी) हो जाता है और धर्मके उनकी भार्या मनोहरासे द्रविण, हुत एवं हव्यवह तथा शिशिर, प्राण और वरुण नामक पुत्र हुए॥ ११२-११३॥

अनिलकी पत्नी शिवा थी; उससे अनिलके मनोजव और अविज्ञातगति—ये दो पुत्र हुए॥ ११४॥ अग्निके पुत्र कुमार शरस्तम्ब (सरकण्डे)-से उत्पन्न हुए थे, ये कृत्तिकाओंके पुत्र होनेसे कार्तिकेय कहलाये। शाख, विशाख और नैगमेय इनके छोटे भाई थे॥ ११५-११६॥ देवल नामक ऋषिको प्रत्यूषका पुत्र कहा जाता है। इन देवलके भी दो क्षमाशील और मनीषी पुत्र हुए॥ ११७॥

बृहस्पतिजीकी बहिन वरस्त्री, जो ब्रह्मचारिणी और सिद्ध योगिनी थी तथा अनासक्त भावसे समस्त भूमण्डलमें विचरती थी, आठवें वसु प्रभासकी भार्या हुई॥ ११८॥ उससे सहस्रों शिल्पों (कारीगरियों)-के कर्ता और देवताओंके शिल्पी महाभाग प्रजापति विश्वकर्माका जन्म हुआ॥ ११९॥ जो समस्त शिल्पकारोंमें श्रेष्ठ और सब प्रकारके आभूषण बनानेवाले हुए तथा जिन्होंने देवताओंके सम्पूर्ण विमानोंकी रचना की और जिन महात्माकी [आविष्कृता] शिल्पविद्याके आश्रयसे बहुत-से मनुष्य जीवन-निर्वाह करते हैं॥ १२०॥ उन विश्वकर्माके चार पुत्र थे; उनके नाम सुनो। वे अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, त्वष्टा और परमपुरुषार्थी रुद्र थे। उनमेंसे त्वष्टाके पुत्र महातपस्वी विश्वरूप थे॥ १२१॥ हे महामुने! हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित, वृषाकपि, शम्भु, कपर्दी, रैवत, मृगव्याध, शर्व और कपाली—ये त्रिलोकीके अधीश्वर ग्यारह रुद्र कहे गये हैं। ऐसे सैकड़ों महातेजस्वी एकादश रुद्र प्रसिद्ध हैं॥ १२२-१२३॥

जो [दक्षकन्याएँ] कश्यपजीकी स्त्रियाँ हुईं उनके नाम सुनो—वे अदिति, दिति, दनु, अरिष्टा, सुरसा, खसा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद्रु और मुनि थीं। हे धर्मज्ञ! अब तुम उनकी सन्तानका विवरण श्रवण करो॥ १२४-१२५॥

पूर्व (चाक्षुष) मन्वन्तरमें तुषित नामक बारह श्रेष्ठ देवगण थे। वे यशस्वी सुरश्रेष्ठ चाक्षुष मन्वन्तरके पश्चात् वैवस्वत-मन्वन्तरके उपस्थित होनेपर एक-दूसरेके पास जाकर मिले और परस्पर कहने लगे— ॥ १२६—१२७॥

"हे देवगण! आओ, हमलोग शीघ्र ही अदितिके गर्भमें प्रवेश कर इस वैवस्वत-मन्वन्तरमें जन्म लें, इसीमें हमारा हित है"॥ १२८॥ इस प्रकार चाक्षुष-मन्वन्तरमें निश्चयकर उन सबने मरीचिपुत्र कश्यपजीके यहाँ दक्षकन्या अदितिके गर्भसे जन्म लिया॥ १२९॥ वे अति तेजस्वी उससे उत्पन्न होकर विष्णु, इन्द्र, अर्यमा, धाता, त्वष्टा, पूषा, विवस्वान्, सविता, मैत्र, वरुण, अंशु और भग नामक द्वादश आदित्य कहलाये॥ १३०-१३१॥ इस प्रकार पहले चाक्षुष-मन्वन्तरमें जो तुषित नामक देवगण थे वे ही वैवस्वत-मन्वन्तरमें द्वादश आदित्य हुए॥ १३२॥

सोमकी जिन सत्ताईस सुव्रता पत्नियोंके विषयमें पहले कह चुके हैं वे सब नक्षत्रयोगिनी हैं और उन नामोंसे ही विख्यात हैं॥ १३३॥ उन अति तेजस्विनियोंसे अनेक प्रतिभाशाली पुत्र उत्पन्न हुए। अरिष्टनेमिकी पत्नियोंके सोलह पुत्र हुए। बुद्धिमान् बहुपुत्रकी भार्या [कपिला, अतिलोहिता, पीता और अशिता *नामक] चार प्रकारकी विद्युत् कही जाती हैं॥ १३४-१३५॥ ब्रह्मर्षियोंसे सत्कृत ऋचाओंके अभिमानी देवश्रेष्ठ प्रत्यंगिरासे उत्पन्न हुए हैं तथा शास्त्रोंके अभिमानी देवप्रहरण नामक देवगण देवर्षि कृशाश्वकी सन्तान कहे जाते हैं॥ १३६॥ हे तात! [आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, प्रजापति और वषट्कार] ये तैंतीस वेदोक्त देवता अपनी इच्छानुसार जन्म लेनेवाले हैं। कहते हैं, इस लोकमें इनके उत्पत्ति और निरोध निरन्तर हुआ करते हैं। ये एक हजार युगके अनन्तर पुनः-पुनः उत्पन्न होते रहते हैं॥ १३७-१३८॥ हे मैत्रेय! जिस प्रकार लोकमें सूर्यके अस्त और

* ज्योतिःशास्त्रमें कहा है—

वाताय कपिला विद्युदातपायातिलोहिता। पीता वर्षाय विज्ञेया दुर्भिक्षाय सिता भवेत्॥

अर्थात् कपिल (भूरी) वर्णकी बिजली वायु लानेवाली, अत्यन्त लोहित धूप निकालनेवाली, पीतवर्णा वृष्टि लानेवाली और सिता (श्वेत) दुर्भिक्षकी सूचना देनेवाली होती है।

उदय निरन्तर हुआ करते हैं उसी प्रकार ये देवगण भी युग-युगमें उत्पन्न होते रहते हैं॥ १३९ ॥

हमने सुना है दितिके कश्यपजीके वीर्यसे परम दुर्जय हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष नामक दो पुत्र तथा सिंहिका नामकी एक कन्या हुई जो विप्रचित्तिको विवाही गयी॥ १४०-१४१ ॥ हिरण्यकशिपुके अति तेजस्वी और महापराक्रमी अनुह्लाद, ह्लाद, बुद्धिमान् प्रह्लाद और संह्लाद नामक चार पुत्र हुए जो दैत्यवंशको बढ़ानेवाले थे॥ १४२ ॥

हे महाभाग! उनमें प्रह्लादजी सर्वत्र समदर्शी और जितेन्द्रिय थे, जिन्होंने श्रीविष्णुभगवान्की परम भक्तिका वर्णन किया था॥ १४३ ॥ जिनको दैत्यराजद्वारा दीप्त किये हुए अग्निने उनके सर्वांगमें व्याप्त होकर भी, हृदयमें वासुदेवभगवान्के स्थित रहनेसे नहीं जला पाया॥ १४४ ॥ जिन महाबुद्धिमान्के पाशबद्ध होकर समुद्रके जलमें पड़े-पड़े इधर-उधर हिलने-डुलनेसे सारी पृथिवी हिलने लगी थी॥ १४५ ॥ जिनका पर्वतके समान कठोर शरीर, सर्वत्र भगवच्चित्त रहनेके कारण दैत्यराजके चलाये हुए अस्त्र-शस्त्रोंसे भी छिन्न-भिन्न नहीं हुआ॥ १४६ ॥ दैत्यराजद्वारा प्रेरित विषाग्निसे प्रज्वलित मुखवाले सर्प भी जिन महातेजस्वीका अन्त नहीं कर सके॥ १४७ ॥ जिन्होंने भगवत्स्मरणरूपी कवच धारण किये रहनेके कारण पुरुषोत्तमभगवान्का स्मरण करते हुए पत्थरोंकी मार पड़नेपर भी अपने प्राणोंको नहीं छोड़ा॥ १४८ ॥ स्वर्गनिवासी दैत्यपतिद्वारा ऊपरसे गिराये जानेपर जिन महामतिको पृथिवीने पास जाकर बीचहीमें अपनी गोदमें धारण कर लिया॥ १४९ ॥ चित्तमें श्रीमधुसूदनभगवान्के स्थित रहनेसे दैत्यराजका नियुक्त किया हुआ सबका शोषण करनेवाला वायु जिनके शरीरमें लगनेसे शान्त हो गया॥ १५० ॥ दैत्येन्द्रद्वारा आक्रमणके लिये नियुक्त उन्मत्त दिग्गजोंके दाँत जिनके वक्षःस्थलमें लगनेसे टूट गये और उनका सारा मद चूर्ण हो गया॥ १५१ ॥ पूर्वकालमें दैत्यराजके पुरोहितोंकी उत्पन्न की हुई कृत्या भी जिन गोविन्दासक्तचित्त भक्तराजके अन्तका कारण नहीं हो सकी॥ १५२ ॥ जिनके ऊपर प्रयुक्त की हुई अति मायावी शम्बरासुरकी हजारों मायाएँ श्रीकृष्णचन्द्रके चक्रसे व्यर्थ हो गयीं॥ १५३ ॥ जिन मतिमान् और निर्मत्सरने दैत्यराजके रसोइयोंके लाये हुए हलाहल विषको निर्विकार-भावसे पचा लिया॥ १५४॥ जो इस संसारमें समस्त प्राणियोंके प्रति समानचित्त और अपने समान ही दूसरोंके लिये भी परमप्रेमयुक्त थे॥ १५५ ॥ और जो परम धर्मात्मा महापुरुष, सत्य एवं शौर्य आदि गुणोंकी खानि तथा समस्त साधु-पुरुषोंके लिये उपमानस्वरूप हुए थे॥ १५६ ॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पहले अंशमें पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त॥ १५ ॥

सोलहवाँ अध्याय

नृसिंहावतारविषयक प्रश्न

श्रीमैत्रेयजी बोले—आपने महात्मा मनुपुत्रोंके वंशोंका वर्णन किया और यह भी बताया कि इस जगत्के सनातन कारण भगवान् विष्णु ही हैं॥ १ ॥ किन्तु, भगवन्! आपने जो कहा कि दैत्यश्रेष्ठ प्रह्लादजीको न तो अग्निने ही भस्म किया और न उन्होंने अस्त्र-शस्त्रोंसे आघात किये जानेपर ही अपने प्राणोंको छोड़ा॥ २ ॥ तथा पाशबद्ध होकर समुद्रके जलमें पड़े रहनेपर उनके

हिलते-डुलते हुए अंगोंसे आहत होकर पृथिवी डगमगाने लगी॥ ३॥ और शरीरपर पत्थरोंकी बौछार पड़नेपर भी वे नहीं मरे। इस प्रकार जिन महाबुद्धिमान्‌का आपने बहुत ही माहात्म्य वर्णन किया है॥ ४॥ हे मुने! जिन अति तेजस्वी महात्माके ऐसे चरित्र हैं, मैं उन परम विष्णुभक्तका अतुलित प्रभाव सुनना चाहता हूँ॥ ५॥ हे मुनिवर! वे तो बड़े ही धर्मपरायण थे; फिर दैत्योंने उन्हें क्यों अस्त्र-शस्त्रोंसे पीड़ित किया और क्यों समुद्रके जलमें डाला?॥ ६॥ उन्होंने किसलिये उन्हें पर्वतोंसे दबाया? किस कारण सर्पोंसे डँसाया? क्यों पर्वतशिखरसे गिराया और क्यों अग्निमें डलवाया?॥ ७॥ उन महादैत्योंने उन्हें दिग्गजोंके दाँतोंसे क्यों रुँधवाया और क्यों सर्व शोषक वायुको उनके लिये नियुक्त किया?॥ ८॥ हे मुने! उनपर दैत्यगुरुओंने किसलिये कृत्याका प्रयोग किया और शम्बरासुरने क्यों अपनी सहस्रों मायाओंका वार किया?॥ ९॥ उन महात्माको मारनेके लिये दैत्यराजके रसोइयोंने, जिसे वे महाबुद्धिमान् पचा गये थे ऐसा हलाहल विष क्यों दिया?॥ १०॥

हे महाभाग! महात्मा प्रह्लादका यह सम्पूर्ण चरित्र, जो उनके महान् माहात्म्यका सूचक है, मैं सुनना चाहता हूँ॥ ११॥ यदि दैत्यगण उन्हें नहीं मार सके तो इसका मुझे कोई आश्चर्य नहीं है, क्योंकि जिसका मन अनन्यभावसे भगवान् विष्णुमें लगा हुआ है उसको भला कौन मार सकता है?॥ १२॥ [आश्चर्य तो इसीका है कि] जो नित्यधर्मपरायण और भगवदाराधनामें तत्पर रहते थे, उनसे उनके ही कुलमें उत्पन्न हुए दैत्योंने ऐसा अति दुष्कर द्वेष किया! [क्योंकि ऐसे समदर्शी और धर्मभीरु पुरुषोंसे तो किसीका भी द्वेष होना अत्यन्त कठिन है]॥ १३॥ उन धर्मात्मा, महाभाग, मत्सरहीन विष्णु-भक्तको दैत्योंने किस कारणसे इतना कष्ट दिया, सो आप मुझसे कहिये॥ १४॥

महात्मालोग तो ऐसे गुण-सम्पन्न साधु पुरुषोंके विपक्षी होनेपर भी उनपर किसी प्रकारका प्रहार नहीं करते, फिर स्वपक्षमें होनेपर तो कहना ही क्या है?॥ १५॥ इसलिये हे मुनिश्रेष्ठ! यह सम्पूर्ण वृत्तान्त विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये। मैं उन दैत्यराजका सम्पूर्ण चरित्र सुनना चाहता हूँ॥ १६॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पहले अंशमें सोलहवाँ अध्याय समाप्त॥ १६॥

सत्रहवाँ अध्याय

हिरण्यकशिपुका दिग्विजय और प्रह्लाद-चरित

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! उन सर्वदा उदारचरित परमबुद्धिमान् महात्मा प्रह्लादजीका चरित्र तुम ध्यानपूर्वक श्रवण करो॥ १॥ पूर्वकालमें दितिके पुत्र महाबली हिरण्यकशिपुने ब्रह्माजीके वरसे गर्वयुक्त (सशक्त) होकर सम्पूर्ण त्रिलोकीको अपने वशीभूत कर लिया था॥ २॥ वह दैत्य इन्द्रपदका भोग करता था। वह महान् असुर स्वयं ही सूर्य, वायु, अग्नि, वरुण और चन्द्रमा बना हुआ था॥ ३॥ वह स्वयं ही कुबेर और यमराज भी था और वह असुर स्वयं ही सम्पूर्ण यज्ञ-भागोंको भोगता था॥ ४॥ हे मुनिसत्तम! उसके भयसे देवगण स्वर्गको छोड़कर मनुष्य-शरीर धारणकर भूमण्डलमें विचरते रहते थे॥ ५॥ इस प्रकार सम्पूर्ण त्रिलोकीको जीतकर त्रिभुवनके

वैभवसे गर्वित हुआ और गन्धर्वोंसे अपनी स्तुति सुनता हुआ वह अपने अभीष्ट भोगोंको भोगता था॥ ६॥

उस समय उस मद्यपानासक्त महाकाय हिरण्यकशिपुकी ही समस्त सिद्ध, गन्धर्व और नाग आदि उपासना करते थे॥ ७॥ उस दैत्यराजके सामने कोई सिद्धगण तो बाजे बजाकर उसका यशोगान करते और कोई अति प्रसन्न होकर जयजयकार करते॥ ८॥ तथा वह असुरराज वहाँ स्फटिक एवं अभ्र-शिलाके बने हुए मनोहर महलमें, जहाँ अप्सराओंका उत्तम नृत्य हुआ करता था, प्रसन्नताके साथ मद्यपान करता रहता था॥ ९॥ उसका प्रह्लाद नामक महाभाग्यवान् पुत्र था। वह बालक गुरुके यहाँ जाकर बालोचित पाठ पढ़ने लगा॥ १०॥ एक दिन वह धर्मात्मा बालक गुरुजीके साथ अपने पिता दैत्यराजके पास गया जो उस समय मद्यपानमें लगा हुआ था॥ ११॥ तब अपने चरणोंमें झुके हुए अपने परम तेजस्वी पुत्र प्रह्लादजीको उठाकर पिता हिरण्यकशिपुने कहा॥ १२॥

हिरण्यकशिपु बोला—वत्स! अबतक अध्ययनमें निरन्तर तत्पर रहकर तुमने जो कुछ पढ़ा है उसका सारभूत शुभ भाषण हमें सुनाओ॥ १३॥

प्रह्लादजी बोले—पिताजी! मेरे मनमें जो सबके सारांशरूपसे स्थित है वह मैं आपकी आज्ञानुसार सुनाता हूँ, सावधान होकर सुनिये॥ १४॥ जो आदि, मध्य और अन्तसे रहित, अजन्मा, वृद्धि-क्षय-शून्य और अच्युत हैं, समस्त कारणोंके कारण तथा जगत्के स्थिति और अन्तकर्ता उन श्रीहरिको मैं प्रणाम करता हूँ॥ १५॥

श्रीपराशरजी बोले—यह सुन दैत्यराज हिरण्यकशिपुने क्रोधसे नेत्र लाल कर प्रह्लादके गुरुकी ओर देखकर काँपते हुए ओठोंसे कहा॥ १६॥

हिरण्यकशिपु बोला—रे दुर्बुद्धि ब्राह्मणाधम! यह क्या? तूने मेरी अवज्ञा कर इस बालकको मेरे विपक्षीकी स्तुतिसे युक्त असार शिक्षा दी है!॥ १७॥

गुरुजीने कहा—दैत्यराज! आपको क्रोधके वशीभूत न होना चाहिये। आपका यह पुत्र मेरी सिखायी हुई बात नहीं कह रहा है॥ १८॥

हिरण्यकशिपु बोला—बेटा प्रह्लाद! बताओ तो तुमको यह शिक्षा किसने दी है? तुम्हारे गुरुजी कहते हैं कि मैंने तो इसे ऐसा उपदेश दिया नहीं है॥ १९॥

प्रह्लादजी बोले—पिताजी! हृदयमें स्थित भगवान् विष्णु ही तो सम्पूर्ण जगत्के उपदेशक हैं। उन परमात्माको छोड़कर और कौन किसीको कुछ सिखा सकता है?॥ २०॥

हिरण्यकशिपु बोला—अरे मूर्ख! जिस विष्णुका तू मुझ जगदीश्वरके सामने धृष्टतापूर्वक निश्शंक होकर बारम्बार वर्णन करता है, वह कौन है?॥ २१॥

प्रह्लादजी बोले—योगियोंके ध्यान करनेयोग्य जिसका परमपद वाणीका विषय नहीं हो सकता तथा जिससे विश्व प्रकट हुआ है और जो स्वयं विश्वरूप है वह परमेश्वर ही विष्णु है॥ २२॥

हिरण्यकशिपु बोला—अरे मूढ! मेरे रहते हुए और कौन परमेश्वर कहा जा सकता है? फिर भी तू मौतके मुखमें जानेकी इच्छासे बारम्बार ऐसा बक रहा है॥ २३॥

प्रह्लादजी बोले—हे तात! वह ब्रह्मभूत विष्णु तो केवल मेरा ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण प्रजा और आपका भी कर्ता, नियन्ता और परमेश्वर है। आप प्रसन्न होइये, व्यर्थ क्रोध क्यों करते हैं॥ २४॥

हिरण्यकशिपु बोला—अरे कौन पापी

इस दुर्बुद्धि बालकके हृदयमें घुस बैठा है जिससे आविष्टचित्त होकर यह ऐसे अमंगल वचन बोलता है?॥ २५॥

प्रह्लादजी बोले—पिताजी! वे विष्णुभगवान् तो मेरे ही हृदयमें नहीं, बल्कि सम्पूर्ण लोकोंमें स्थित हैं। वे सर्वगामी तो मुझको, आप सबको और समस्त प्राणियोंको अपनी-अपनी चेष्टाओंमें प्रवृत्त करते हैं॥ २६॥

हिरण्यकशिपु बोला—इस पापीको यहाँसे निकालो और गुरुके यहाँ ले जाकर इसका भली प्रकार शासन करो। इस दुर्मतिको न जाने किसने मेरे विपक्षीकी प्रशंसामें नियुक्त कर दिया है?॥ २७॥

श्रीपराशरजी बोले—उसके ऐसा कहनेपर दैत्यगण उस बालकको फिर गुरुजीके यहाँ ले गये और वे वहाँ गुरुजीकी रात-दिन भली प्रकार सेवा-शुश्रूषा करते हुए विद्याध्ययन करने लगे॥ २८॥ बहुत काल व्यतीत हो जानेपर दैत्यराजने प्रह्लादजीको फिर बुलाया और कहा—'बेटा! आज कोई गाथा (कथा) सुनाओ'॥ २९॥

प्रह्लादजी बोले—जिनसे प्रधान, पुरुष और यह चराचर जगत् उत्पन्न हुआ है वे सकल प्रपंचके कारण श्रीविष्णुभगवान् हमपर प्रसन्न हों॥ ३०॥

हिरण्यकशिपु बोला—अरे! यह बड़ा दुरात्मा है। इसको मार डालो; अब इसके जीनेसे कोई लाभ नहीं है, क्योंकि स्वपक्षकी हानि करनेवाला होनेसे यह तो अपने कुलके लिये अंगाररूप हो गया है॥ ३१॥

श्रीपराशरजी बोले—उसकी ऐसी आज्ञा होनेपर सैकड़ों-हजारों दैत्यगण बड़े-बड़े अस्त्र-शस्त्र लेकर उन्हें मारनेके लिये तैयार हुए॥ ३२॥

प्रह्लादजी बोले—अरे दैत्यो! भगवान् विष्णु तो शस्त्रोंमें, तुमलोगोंमें और मुझमें—सर्वत्र ही स्थित हैं। इस सत्यके प्रभावसे इन अस्त्र-शस्त्रोंका मेरे ऊपर कोई प्रभाव न हो॥ ३३॥

श्रीपराशरजी बोले—तब तो उन सैकड़ों दैत्योंके शस्त्र-समूहका आघात होनेपर भी उनको तनिक-सी भी वेदना न हुई, वे फिर भी ज्यों-के-त्यों नवीन बल-सम्पन्न ही रहे॥ ३४॥

हिरण्यकशिपु बोला—रे दुर्बुद्धे! अब तू विपक्षीकी स्तुति करना छोड़ दे; जा, मैं तुझे अभयदान देता हूँ, अब और अधिक नादान मत हो॥ ३५॥

प्रह्लादजी बोले—हे तात! जिनके स्मरणमात्रसे जन्म, जरा और मृत्यु आदिके समस्त भय दूर हो जाते हैं, उन सकल-भयहारी अनन्तके हृदयमें स्थित रहते मुझे भय कहाँ रह सकता है॥ ३६॥

हिरण्यकशिपु बोला—अरे सर्पो! इस अत्यन्त दुर्बुद्धि और दुराचारीको अपने विषाग्नि-सन्तप्त मुखोंसे काटकर शीघ्र ही नष्ट कर दो॥ ३७॥

श्रीपराशरजी बोले—ऐसी आज्ञा होनेपर अतिक्रूर और विषधर तक्षक आदि सर्पोंने उनके समस्त अंगोंमें काटा॥ ३८॥ किन्तु उन्हें तो श्रीकृष्णचन्द्रमें आसक्तचित्त रहनेके कारण भगवत्स्मरणके परमानन्दमें डूबे रहनेसे उन महासर्पोंके काटनेपर भी अपने शरीरकी कोई सुधि नहीं हुई॥ ३९॥

सर्प बोले—हे दैत्यराज! देखो, हमारी दाढ़ें टूट गयीं, मणियाँ चटखने लगीं, फणोंमें पीड़ा होने लगी और हृदय काँपने लगा, तथापि इसकी त्वचा तो जरा भी नहीं कटी। इसलिये अब आप हमें कोई और कार्य बताइये॥ ४०॥

हिरण्यकशिपु बोला—हे दिग्गजो! तुम सब अपने संकीर्ण दाँतोंको मिलाकर मेरे शत्रु-पक्षद्वारा [बहकाकर] मुझसे विमुख किये हुए इस बालकको मार डालो। देखो, जैसे अरणीसे उत्पन्न हुआ अग्नि उसीको जला डालता है उसी प्रकार कोई-कोई जिससे उत्पन्न होते हैं उसीके नाश करनेवाले हो जाते हैं॥ ४१ ॥

श्रीपराशरजी बोले—तब पर्वत-शिखरके समान विशालकाय दिग्गजोंने उस बालकको पृथिवीपर पटककर अपने दाँतोंसे खूब रौंदा॥ ४२ ॥ किन्तु श्रीगोविन्दका स्मरण करते रहनेसे हाथियोंके हजारों दाँत उनके वक्षःस्थलसे टकराकर टूट गये; तब उन्होंने पिता हिरण्यकशिपुसे कहा— ॥ ४३ ॥ "ये जो हाथियोंके वज्रके समान कठोर दाँत टूट गये हैं इसमें मेरा कोई बल नहीं है; यह तो श्रीजनार्दनभगवान्‌के महाविपत्ति और क्लेशोंके नष्ट करनेवाले स्मरणका ही प्रभाव है"॥ ४४ ॥

हिरण्यकशिपु बोला—अरे दिग्गजो! तुम हट जाओ। दैत्यगण! तुम अग्नि जलाओ, और हे वायु! तुम अग्निको प्रज्वलित करो जिससे इस पापीको जला डाला जाय॥ ४५ ॥

श्रीपराशरजी बोले—तब अपने स्वामीकी आज्ञासे दानवगण काष्ठके एक बड़े ढेरमें स्थित उस असुर राजकुमारको अग्नि प्रज्वलित करके जलाने लगे॥ ४६ ॥

प्रह्लादजी बोले—हे तात! पवनसे प्रेरित हुआ भी यह अग्नि मुझे नहीं जलाता। मुझको तो सभी दिशाएँ ऐसी शीतल प्रतीत होती हैं मानो मेरे चारों ओर कमल बिछे हुए हों॥ ४७॥

श्रीपराशरजी बोले—तदनन्तर, शुक्रजीके पुत्र बड़े वाग्मी महात्मा [षण्डामर्क आदि] पुरोहितगण सामनीतिसे दैत्यराजकी बड़ाई करते हुए बोले॥ ४८ ॥

पुरोहित बोले—हे राजन्! अपने इस बालक पुत्रके प्रति अपना क्रोध शान्त कीजिये; आपको तो देवताओंपर ही क्रोध करना चाहिये, क्योंकि उसकी सफलता तो वहीं है॥ ४९ ॥ हे राजन्! हम आपके इस बालकको ऐसी शिक्षा देंगे जिससे यह विपक्षके नाशका कारण होकर आपके प्रति अति विनीत हो जायगा॥ ५० ॥ हे दैत्यराज! बाल्यावस्था तो सब प्रकारके दोषोंका आश्रय होती ही है, इसलिये आपको इस बालकपर अत्यन्त क्रोधका प्रयोग नहीं करना चाहिये॥ ५१ ॥ यदि हमारे कहनेसे भी यह विष्णुका पक्ष नहीं छोड़ेगा तो हम इसको नष्ट करनेके लिये किसी प्रकार न टलनेवाली कृत्या उत्पन्न करेंगे॥ ५२ ॥

श्रीपराशरजीने कहा—पुरोहितोंके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर दैत्यराजने दैत्योंद्वारा प्रह्लादको अग्निसमूहसे बाहर निकलवाया॥ ५३ ॥ फिर प्रह्लादजी, गुरुजीके यहाँ रहते हुए उनके पढ़ा चुकनेपर अन्य दानवकुमारोंको बार-बार उपदेश देने लगे॥ ५४ ॥

प्रह्लादजी बोले—हे दैत्यकुलोत्पन्न असुर-बालको! सुनो, मैं तुम्हें परमार्थका उपदेश करता हूँ, तुम इसे अन्यथा न समझना, क्योंकि मेरे ऐसा कहनेमें किसी प्रकारका लोभादि कारण नहीं है॥ ५५ ॥ सभी जीव जन्म, बाल्यावस्था और फिर यौवन प्राप्त करते हैं, तत्पश्चात् दिन-दिन वृद्धावस्थाकी प्राप्ति भी अनिवार्य ही है॥ ५६ ॥ और हे दैत्यराजकुमारो! फिर यह जीव मृत्युके मुखमें चला जाता है, यह हम और तुम सभी प्रत्यक्ष देखते हैं॥ ५७ ॥ मरनेपर पुनर्जन्म होता है, यह नियम भी कभी नहीं टलता। इस विषयमें [श्रुति-स्मृतिरूप] आगम भी प्रमाण है कि बिना उपादानके कोई वस्तु उत्पन्न नहीं

होती* ॥ ५८ ॥ पुनर्जन्म प्राप्त करानेवाली गर्भवास आदि जितनी अवस्थाएँ हैं उन सबको दुःखरूप ही जानो ॥ ५९ ॥ मनुष्य मूर्खतावश क्षुधा, तृष्णा और शीतादिकी शान्तिको सुख मानते हैं, परन्तु वास्तवमें तो वे दुःखमात्र ही हैं ॥ ६० ॥ जिनका शरीर [वातादि दोषसे] अत्यन्त शिथिल हो जाता है उन्हें जिस प्रकार व्यायाम सुखप्रद प्रतीत होता है उसी प्रकार जिनकी दृष्टि भ्रान्तिज्ञानसे ढँकी हुई है उन्हें दुःख ही सुखरूप जान पड़ता है ॥ ६१ ॥ अहो! कहाँ तो कफ आदि महाघृणित पदार्थोंका समूहरूप शरीर और कहाँ कान्ति, शोभा, सौन्दर्य एवं रमणीयता आदि दिव्य गुण? [तथापि मनुष्य इस घृणित शरीरमें कान्ति आदिका आरोप कर सुख मानने लगता है] ॥ ६२ ॥ यदि किसी मूढ पुरुषकी मांस, रुधिर, पीब, विष्ठा, मूत्र, स्नायु, मज्जा और अस्थियोंके समूहरूप इस शरीरमें प्रीति हो सकती है तो उसे नरक भी प्रिय लग सकता है ॥ ६३ ॥ अग्नि, जल और भात क्रमशः शीत, तृषा और क्षुधाके कारण ही सुखकारी होते हैं और इनके प्रतियोगी जल आदि भी अपनेसे भिन्न अग्नि आदिके कारण ही सुखके हेतु होते हैं ॥ ६४ ॥

हे दैत्यकुमारो! विषयोंका जितना-जितना संग्रह किया जाता है उतना-उतना ही वे मनुष्यके चित्तमें दुःख बढ़ाते हैं ॥ ६५ ॥ जीव अपने मनको प्रिय लगनेवाले जितने ही सम्बन्धोंको बढ़ाता जाता है उतने ही उसके हृदयमें शोकरूपी शल्य (काँटे) स्थिर होते जाते हैं ॥ ६६ ॥ घरमें जो कुछ धन धान्यादि होते हैं मनुष्यके जहाँ-तहाँ (परदेशमें) रहनेपर भी वे पदार्थ उसके चित्तमें बने रहते हैं, और उनके नाश और दाह आदिकी सामग्री भी उसीमें मौजूद रहती है। [अर्थात् घरमें स्थित पदार्थोंके सुरक्षित रहनेपर भी मनःस्थिति पदार्थोंके नाश आदिकी भावनासे पदार्थ-नाशका दुःख प्राप्त हो जाता है] ॥ ६७ ॥ इस प्रकार जीते-जी तो यहाँ महान् दुःख होता ही है, मरनेपर भी यम-यातनाओंका और गर्भ-प्रवेशका उग्र कष्ट भोगना पड़ता है ॥ ६८ ॥ यदि तुम्हें गर्भवासमें लेशमात्र भी सुखका अनुमान होता हो तो कहो। सारा संसार इसी प्रकार अत्यन्त दुःखमय है ॥ ६९ ॥ इसलिये दुःखोंके परम आश्रय इस संसार-समुद्रमें एकमात्र विष्णुभगवान् ही आपलोगोंकी परमगति हैं—यह मैं सर्वथा सत्य कहता हूँ ॥ ७० ॥

ऐसा मत समझो कि हम तो अभी बालक हैं, क्योंकि जरा, यौवन और जन्म आदि अवस्थाएँ तो देहके ही धर्म हैं, शरीरका अधिष्ठाता आत्मा तो नित्य है, उसमें यह कोई धर्म नहीं है ॥ ७१ ॥ जो मनुष्य ऐसी दुराशाओंसे विक्षिप्तचित्त रहता है कि 'अभी मैं बालक हूँ इसलिये इच्छानुसार खेल-कूद लूँ, युवावस्था प्राप्त होनेपर कल्याण-साधनका यत्न करूँगा।' [फिर युवा होनेपर कहता है कि] 'अभी तो मैं युवा हूँ, बुढ़ापेमें आत्मकल्याण कर लूँगा।' और [वृद्ध होनेपर सोचता है कि] 'अब मैं बूढ़ा हो गया, अब तो मेरी इन्द्रियाँ अपने कर्मोंमें प्रवृत्त ही नहीं होतीं, शरीरके शिथिल हो जानेपर अब मैं क्या कर सकता हूँ? सामर्थ्य रहते तो मैंने कुछ किया ही नहीं।' वह अपने कल्याण-पथपर कभी अग्रसर नहीं होता; केवल भोग-तृष्णामें ही व्याकुल रहता है ॥ ७२—७४ ॥ मूर्खलोग अपनी बाल्यावस्थामें खेल-कूदमें लगे रहते हैं, युवावस्थामें विषयोंमें

* यह पुनर्जन्म होनेमें युक्ति है क्योंकि जबतक पूर्व-जन्मके किये हुए शुभाशुभ कर्मरूप कारणका होना न माना जाय तबतक वर्तमान जन्म भी सिद्ध नहीं हो सकता। इसी प्रकार, जब इस जन्ममें शुभाशुभका आरम्भ हुआ है तो इसका कार्यरूप पुनर्जन्म भी अवश्य होगा।

फँस जाते हैं और बुढ़ापा आनेपर उसे असमर्थताके कारण व्यर्थ ही काटते हैं ॥ ७५ ॥ इसलिये विवेकी पुरुषको चाहिये कि देहकी बाल्य, यौवन और वृद्ध आदि अवस्थाओंकी अपेक्षा न करके बाल्यावस्थामें ही अपने कल्याणका यत्न करे ॥ ७६ ॥

मैंने तुमलोगोंसे जो कुछ कहा है उसे यदि तुम मिथ्या नहीं समझते तो मेरी प्रसन्नताके लिये ही बन्धनको छुटानेवाले श्रीविष्णुभगवान्‌का स्मरण करो ॥ ७७ ॥ उनका स्मरण करनेमें परिश्रम भी क्या है? और स्मरणमात्रसे ही वे अति शुभ फल देते हैं तथा रात-दिन उन्हींका स्मरण करनेवालोंका पाप भी नष्ट हो जाता है ॥ ७८ ॥ उन सर्वभूतस्थ प्रभुमें तुम्हारी बुद्धि अहर्निश लगी रहे और उनमें निरन्तर तुम्हारा प्रेम बढ़े; इस प्रकार तुम्हारे समस्त क्लेश दूर हो जायँगे ॥ ७९ ॥

जब कि यह सभी संसार तापत्रयसे दग्ध हो रहा है तो इन बेचारे शोचनीय जीवोंसे कौन बुद्धिमान् द्वेष करेगा? ॥ ८० ॥ यदि [ऐसा दिखायी दे कि] 'और जीव तो आनन्दमें हैं, मैं ही परम शक्तिहीन हूँ' तब भी प्रसन्न ही होना चाहिये, क्योंकि द्वेषका फल तो दुःखरूप ही है ॥ ८१ ॥ यदि कोई प्राणी वैरभावसे द्वेष भी करें तो विचारवानोंके लिये तो वे 'अहो! ये महामोहसे व्याप्त हैं!' इस प्रकार अत्यन्त शोचनीय ही हैं ॥ ८२ ॥

हे दैत्यगण! ये मैंने भिन्न-भिन्न दृष्टिवालोंके विकल्प (भिन्न-भिन्न उपाय) कहे। अब उनका समन्वयपूर्वक संक्षिप्त विचार सुनो ॥ ८३ ॥ यह सम्पूर्ण जगत् सर्वभूतमय भगवान् विष्णुका विस्तार है, अतः विचक्षण पुरुषोंको इसे आत्माके समान अभेदरूपसे देखना चाहिये ॥ ८४ ॥ इसलिये दैत्यभावको छोड़कर हम और तुम ऐसा यत्न करें जिससे शान्ति लाभ कर सकें ॥ ८५ ॥ जो [परम शान्ति] अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, वायु, मेघ, वरुण, सिद्ध, राक्षस, यक्ष, दैत्यराज, सर्प, किन्नर, मनुष्य, पशु और अपने दोषोंसे तथा ज्वर, नेत्ररोग, अतिसार, प्लीहा (तिल्ली) और गुल्म आदि रोगोंसे एवं द्वेष, ईर्ष्या, मत्सर, राग, लोभ और किसी अन्य भावसे भी कभी क्षीण नहीं होती, और जो सर्वदा अत्यन्त निर्मल है उसे मनुष्य अमलस्वरूप श्रीकेशवमें मनोनिवेश करनेसे प्राप्त कर लेता है ॥ ८६—८९ ॥

हे दैत्यो! मैं आग्रहपूर्वक कहता हूँ, तुम इस असार संसारके विषयोंमें कभी सन्तुष्ट मत होना। तुम सर्वत्र समदृष्टि करो, क्योंकि समता ही श्रीअच्युतकी [वास्तविक] आराधना है ॥ ९० ॥ उन अच्युतके प्रसन्न होनेपर फिर संसारमें दुर्लभ ही क्या है? तुम धर्म, अर्थ और कामकी इच्छा कभी न करना; वे तो अत्यन्त तुच्छ हैं। उस ब्रह्मरूप महावृक्षका आश्रय लेनेपर तो तुम निःसन्देह [मोक्षरूप] महाफल प्राप्त कर लोगे ॥ ९१ ॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पहले अंशमें सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १७ ॥

अठारहवाँ अध्याय

प्रह्लादको मारनेके लिये विष, शस्त्र और अग्नि आदिका प्रयोग एवं प्रह्लादकृत भगवत्-स्तुति

श्रीपराशरजी बोले—उनकी ऐसी चेष्टा देख दैत्योंने दैत्यराज हिरण्यकशिपुसे डरकर उससे सारा वृत्तान्त कह सुनाया, और उसने भी तुरन्त अपने रसोइयोंको बुलाकर कहा॥ १॥

हिरण्यकशिपु बोला—अरे सूदगण! मेरा यह दुष्ट और दुर्मति पुत्र औरोंको भी कुमार्गका उपदेश देता है, अत: तुम शीघ्र ही इसे मार डालो॥ २॥ तुम उसे उसके बिना जाने समस्त खाद्यपदार्थोंमें हलाहल विष मिलाकर दो और किसी प्रकारका शोच-विचार न कर उस पापीको मार डालो॥ ३॥

श्रीपराशरजी बोले—तब उन रसोइयोंने महात्मा प्रह्लादको, जैसी कि उनके पिताने आज्ञा दी थी उसीके अनुसार विष दे दिया॥ ४॥ हे मैत्रेय! तब वे उस घोर हलाहल विषको भगवन्नामके उच्चारणसे अभिमन्त्रित कर अन्नके साथ खा गये॥ ५॥ तथा भगवन्नामके प्रभावसे निस्तेज हुए उस विषको खाकर उसे बिना किसी विकारके पचाकर स्वस्थ चित्तसे स्थित रहे॥ ६॥ उस महान् विषको पचा हुआ देख रसोइयोंने भयसे व्याकुल हो हिरण्यकशिपुके पास जा उसे प्रणाम करके कहा॥ ७॥

सूदगण बोले—हे दैत्यराज! हमने आपकी आज्ञासे अत्यन्त तीक्ष्ण विष दिया था, तथापि आपके पुत्र प्रह्लादने उसे अन्नके साथ पचा लिया॥ ८॥

हिरण्यकशिपु बोला—हे पुरोहितगण! शीघ्रता करो, शीघ्रता करो! उसे नष्ट करनेके लिये अब कृत्या उत्पन्न करो; और देरी न करो॥ ९॥

श्रीपराशरजी बोले—तब पुरोहितोंने अति विनीत प्रह्लादसे, उसके पास जाकर शान्तिपूर्वक कहा॥ १०॥

पुरोहित बोले—हे आयुष्मन्! तुम त्रिलोकीमें विख्यात ब्रह्माजीके कुलमें उत्पन्न हुए हो और दैत्यराज हिरण्यकशिपुके पुत्र हो॥ ११॥ तुम्हें देवता, अनन्त अथवा और भी किसीसे क्या प्रयोजन है? तुम्हारे पिता तुम्हारे तथा सम्पूर्ण लोकोंके आश्रय हैं और तुम भी ऐसे ही होगे॥ १२॥ इसलिये तुम यह विपक्षकी स्तुति करना छोड़ दो। तुम्हारे पिता सब प्रकार प्रशंसनीय हैं और वे ही समस्त गुरुओंमें परम गुरु हैं॥ १३॥

प्रह्लादजी बोले—हे महाभागगण! यह ठीक ही है। इस सम्पूर्ण त्रिलोकीमें भगवान् मरीचिका यह महान् कुल अवश्य ही प्रशंसनीय है। इसमें कोई कुछ भी अन्यथा नहीं कह सकता॥ १४॥ और मेरे पिताजी भी सम्पूर्ण जगत्‌में बहुत बड़े पराक्रमी हैं; यह भी मैं जानता हूँ। यह बात भी बिलकुल ठीक है, अन्यथा नहीं॥ १५॥ और आपने जो कहा कि समस्त गुरुओंमें पिता ही परम गुरु हैं—इसमें भी मुझे लेशमात्र सन्देह नहीं है॥ १६॥ पिताजी परम गुरु हैं और प्रयत्नपूर्वक पूजनीय हैं—इसमें कोई सन्देह नहीं। और मेरे चित्तमें भी यही विचार स्थित है कि मैं उनका कोई अपराध नहीं करूँगा॥ १७॥ किन्तु आपने जो यह कहा कि 'तुझे अनन्तसे क्या प्रयोजन है?' सो ऐसी बातको भला कौन न्यायोचित कह सकता है? आपका यह कथन किसी भी तरह ठीक नहीं है॥ १८॥

ऐसा कहकर वे उनका गौरव रखनेके लिये चुप हो गये और फिर हँसकर कहने लगे—'तुझे अनन्तसे क्या प्रयोजन है? इस विचारको धन्यवाद है!॥ १९॥ हे मेरे गुरुगण! आप कहते हैं कि तुझे अनन्तसे क्या प्रयोजन है? धन्यवाद है आपके इस विचारको! अच्छा, यदि आपको बुरा न लगे तो मुझे अनन्तसे जो प्रयोजन है सो सुनिये॥ २०॥ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चार पुरुषार्थ कहे जाते हैं। ये चारों ही जिनसे सिद्ध होते हैं, उनसे क्या प्रयोजन?—आपके इस कथनको क्या कहा जाय!॥ २१॥ उन अनन्तसे ही दक्ष और मरीचि आदि तथा अन्यान्य ऋषीश्वरोंको धर्म, किन्हीं अन्य मुनीश्वरोंको अर्थ एवं अन्य किन्हींको कामकी प्राप्ति हुई है॥ २२॥ किन्हीं अन्य महापुरुषोंने ज्ञान, ध्यान और समाधिके द्वारा उन्हींके तत्त्वको जानकर अपने संसार-बन्धनको काटकर मोक्षपद प्राप्त किया है॥ २३॥ अत: सम्पत्ति, ऐश्वर्य, माहात्म्य, ज्ञान, सन्तति और कर्म तथा मोक्ष—इन सबकी एकमात्र मूल श्रीहरिकी आराधना ही उपार्जनीय है॥ २४॥ हे द्विजगण! इस प्रकार, जिनसे अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष—ये चारों ही फल प्राप्त होते हैं उनके लिये भी आप ऐसा क्यों कहते हैं कि 'अनन्तसे तुझे क्या प्रयोजन है?'॥ २५॥ और बहुत कहनेसे क्या लाभ? आपलोग तो मेरे गुरु हैं; उचित-अनुचित सभी कुछ कह सकते हैं। और मुझे तो विचार भी बहुत ही कम है॥ २६॥ इस विषयमें अधिक क्या कहा जाय? [मेरे विचारसे तो] सबके अन्त:करणोंमें स्थित एकमात्र वे ही संसारके स्वामी तथा उसके रचयिता, पालक और संहारक हैं॥ २७॥ वे ही भोक्ता और भोज्य तथा वे ही एकमात्र जगदीश्वर हैं। हे गुरुगण! मैंने बाल्यभावसे यदि कुछ अनुचित कहा हो तो आप क्षमा करें''॥ २८॥

पुरोहितगण बोले—अरे बालक! हमने तो यह समझकर कि तू फिर ऐसी बात न कहेगा तुझे अग्निमें जलनेसे बचाया है। हम यह नहीं जानते थे कि तू ऐसा बुद्धिहीन है?॥ २९॥ रे दुर्मते! यदि तू हमारे कहनेसे अपने इस मोहमय आग्रहको नहीं छोड़ेगा तो हम तुझे नष्ट करनेके लिये कृत्या उत्पन्न करेंगे॥ ३०॥

प्रह्लादजी बोले—कौन जीव किससे मारा जाता है और कौन किससे रक्षित होता है? शुभ और अशुभ आचरणोंके द्वारा आत्मा स्वयं ही अपनी रक्षा और नाश करता है॥ ३१॥ कर्मोंके कारण ही सब उत्पन्न होते हैं और कर्म ही उनकी शुभाशुभ गतियोंके साधन हैं। इसलिये प्रयत्नपूर्वक शुभकर्मोंका ही आचरण करना चाहिये॥ ३२॥

श्रीपराशरजी बोले—उनके ऐसा कहनेपर उन दैत्यराजके पुरोहितोंने क्रोधित होकर अग्निशिखाके समान प्रज्वलित शरीरवाली कृत्या उत्पन्न कर दी॥ ३३॥ उस अति भयंकरीने अपने पादाघातसे पृथिवीको कम्पित करते हुए वहाँ प्रकट होकर बड़े क्रोधसे प्रह्लादजीकी छातीमें त्रिशूलसे प्रहार किया॥ ३४॥ किन्तु उस बालकके वक्ष:स्थलमें लगते ही वह तेजोमय त्रिशूल टूटकर पृथिवीपर गिर पड़ा और वहाँ गिरनेसे भी उसके सैकड़ों टुकड़े हो गये॥ ३५॥ जिस हृदयमें निरन्तर अक्षुण्णभावसे श्रीहरिभगवान् विराजते हैं उसमें लगनेसे तो वज्रके भी टूक-टूक हो जाते हैं, त्रिशूलकी तो बात ही क्या है?॥ ३६॥

उन पापी पुरोहितोंने उस निष्पाप बालकपर कृत्याका प्रयोग किया था; इसलिये तुरन्त ही उसने उनपर वार किया और स्वयं भी नष्ट हो गयी॥ ३७॥ अपने गुरुओंको कृत्याद्वारा जलाये जाते देख महामति प्रह्लाद 'हे कृष्ण! रक्षा करो! हे अनन्त! बचाओ!' ऐसा कहते हुए उनकी ओर दौड़े॥ ३८॥

प्रह्लादजी कहने लगे—हे सर्वव्यापी, विश्वरूप, विश्वस्रष्टा जनार्दन! इन ब्राह्मणोंकी इस मन्त्राग्निरूप दुःसह दुःखसे रक्षा करो॥ ३९॥ 'सर्वव्यापी जगद्गुरु भगवान् विष्णु सभी प्राणियोंमें व्याप्त हैं'—इस सत्यके प्रभावसे ये पुरोहितगण जीवित हो जायँ॥ ४०॥ यदि मैं सर्वव्यापी और अक्षय श्रीविष्णुभगवान्‌को अपने विपक्षियोंमें भी देखता हूँ तो ये पुरोहितगण जीवित हो जायँ॥ ४१॥ जो लोग मुझे मारनेके लिये आये, जिन्होंने मुझे विष दिया, जिन्होंने आगमें जलाया, जिन्होंने दिग्गजोंसे पीड़ित कराया और जिन्होंने सर्पोंसे डँसाया उन सबके प्रति यदि मैं समान मित्रभावसे रहा हूँ और मेरी कभी पाप-बुद्धि नहीं हुई तो उस सत्यके प्रभावसे ये दैत्यपुरोहित जी उठें॥ ४२-४३॥

श्रीपराशरजी बोले—ऐसा कहकर उनके स्पर्श करते ही वे ब्राह्मण स्वस्थ होकर उठ बैठे और उस विनयावनत बालकसे कहने लगे॥ ४४॥

पुरोहितगण बोले—हे वत्स! तू बड़ा श्रेष्ठ है। तू दीर्घायु, निर्द्वन्द्व, बल-वीर्यसम्पन्न तथा पुत्र, पौत्र एवं धन-ऐश्वर्यादिसे सम्पन्न हो॥ ४५॥

श्रीपराशरजी बोले—हे महामुने! ऐसा कह पुरोहितोंने दैत्यराज हिरण्यकशिपुके पास जा उसे सारा समाचार ज्यों-का-त्यों सुना दिया॥ ४६॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पहले अंशमें अठारहवाँ अध्याय समाप्त॥ १८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

प्रह्लादकृत भगवत्-गुण-वर्णन और प्रह्लादकी रक्षाके लिये भगवान्‌का सुदर्शनचक्रको भेजना

श्रीपराशरजी बोले—हिरण्यकशिपुने कृत्याको भी विफल हुई सुन अपने पुत्र प्रह्लादको बुलाकर उनके इस प्रभावका कारण पूछा॥ १॥

हिरण्यकशिपु बोला—अरे प्रह्लाद! तू बड़ा प्रभावशाली है! तेरी ये चेष्टाएँ मन्त्रादिजनित हैं या स्वाभाविक ही हैं॥ २॥

श्रीपराशरजी बोले—पिताके इस प्रकार पूछनेपर दैत्यकुमार प्रह्लादजीने उसके चरणोंमें प्रणाम कर इस प्रकार कहा—॥ ३॥ "पिताजी! मेरा यह प्रभाव न तो मन्त्रादिजनित है और न स्वाभाविक ही है, बल्कि जिस-जिसके हृदयमें श्रीअच्युतभगवान्‌का निवास होता है उसके लिये यह सामान्य बात है॥ ४॥ जो मनुष्य अपने समान दूसरोंका बुरा नहीं सोचता, हे तात! कोई कारण न रहनेसे उसका भी कभी बुरा नहीं होता॥ ५॥ जो मनुष्य मन, वचन या कर्मसे दूसरोंको कष्ट देता है उसके उस परपीडारूप बीजसे ही उत्पन्न हुआ उसको अत्यन्त अशुभ फल मिलता है॥ ६॥ अपनेसहित समस्त प्राणियोंमें श्रीकेशवको वर्तमान समझकर मैं न तो किसीका बुरा चाहता हूँ और न कहता या करता ही हूँ॥ ७॥ इस प्रकार सर्वत्र शुभचित्त होनेसे मुझको शारीरिक, मानसिक, दैविक अथवा भौतिक दुःख किस प्रकार प्राप्त हो सकता है?॥ ८॥ इसी प्रकार भगवान्‌को सर्वभूतमय जानकर विद्वानोंको सभी प्राणियोंमें अविचल भक्ति (प्रेम) करनी चाहिये"॥ ९॥

श्रीपराशरजी बोले—अपने महलकी अट्टालिकापर बैठे हुए उस दैत्यराजने यह सुनकर क्रोधान्ध हो अपने दैत्य अनुचरोंसे कहा॥ १०॥

हिरण्यकशिपु बोला—यह बड़ा दुरात्मा

है, इसे इस सौ योजन ऊँचे महलसे गिरा दो, जिससे यह इस पर्वतके ऊपर गिरे और शिलाओंसे इसके अंग-अंग छिन्न-भिन्न हो जायँ॥ ११॥

तब उन समस्त दैत्य और दानवोंने उन्हें महलसे गिरा दिया और वे भी उनके ढकेलनेसे हृदयमें श्रीहरिका स्मरण करते-करते नीचे गिर गये॥ १२॥ जगत्कर्ता भगवान् केशवके परमभक्त प्रह्लादजीके गिरते समय उन्हें जगद्धात्री पृथिवीने निकट जाकर अपनी गोदमें ले लिया॥ १३॥ तब बिना किसी हड्डी-पसलीके टूटे उन्हें स्वस्थ देख दैत्यराज हिरण्यकशिपुने परममायावी शम्बरासुरसे कहा॥ १४॥

हिरण्यकशिपु बोला—यह दुर्बुद्धि बालक कोई ऐसी माया जानता है जिससे यह हमसे नहीं मारा जा सकता, इसलिये आप मायासे ही इसे मार डालिये॥ १५॥

शम्बरासुर बोला—हे दैत्येन्द्र! इस बालकको मैं अभी मारे डालता हूँ, तुम मेरी मायाका बल देखो। देखो, मैं तुम्हें सैकड़ों-हजारों-करोड़ों मायाएँ दिखलाता हूँ॥ १६॥

श्रीपराशरजी बोले—तब उस दुर्बुद्धि शम्बरासुरने समदर्शी प्रह्लादके लिये, उनके नाशकी इच्छासे बहुत-सी मायाएँ रचीं॥ १७॥ किन्तु, हे मैत्रेय! शम्बरासुरके प्रति भी सर्वथा द्वेषहीन रहकर प्रह्लादजी सावधान चित्तसे श्रीमधुसूदनभगवान्का स्मरण करते रहे॥ १८॥ उस समय भगवान्की आज्ञासे उनकी रक्षाके लिये वहाँ ज्वाला-मालाओंसे युक्त सुदर्शनचक्र आ गया॥ १९॥ उस शीघ्रगामी सुदर्शनचक्रने उस बालककी रक्षा करते हुए शम्बरासुरकी सहस्रों मायाओंको एक-एक करके नष्ट कर दिया॥ २०॥

तब दैत्यराजने सबको सुखा डालनेवाले वायुसे कहा कि मेरी आज्ञासे तुम शीघ्र ही इस दुरात्माको नष्ट कर दो॥ २१॥ अतः उस अति तीव्र शीतल और रूक्ष वायुने, जो अति असहनीय था 'जो आज्ञा' कह उनके शरीरको सुखानेके लिये उसमें प्रवेश किया॥ २२॥ अपने शरीरमें वायुका आवेश हुआ जान दैत्यकुमार प्रह्लादने भगवान् धरणीधरको हृदयमें धारण किया॥ २३॥ उनके हृदयमें स्थित हुए श्रीजनार्दनने क्रुद्ध होकर उस भीषण वायुको पी लिया, इससे वह क्षीण हो गया॥ २४॥

इस प्रकार पवन और सम्पूर्ण मायाओंके क्षीण हो जानेपर महामति प्रह्लादजी अपने गुरुके घर चले गये॥ २५॥ तदनन्तर गुरुजी उन्हें नित्यप्रति शुक्राचार्यजीकी बनायी हुई राज्यफलप्रदायिनी राजनीतिका अध्ययन कराने लगे॥ २६॥ जब गुरुजीने उन्हें नीतिशास्त्रमें निपुण और विनयसम्पन्न देखा तो उनके पितासे कहा—'अब यह सुशिक्षित हो गया है'॥ २७॥

आचार्य बोले—हे दैत्यराज! अब हमने तुम्हारे पुत्रको नीतिशास्त्रमें पूर्णतया निपुण कर दिया है, भृगुनन्दन शुक्राचार्यजीने जो कुछ कहा है उसे प्रह्लाद तत्त्वतः जानता है॥ २८॥

हिरण्यकशिपु बोला—प्रह्लाद! [यह तो बता] राजाको मित्रोंसे कैसा बर्ताव करना चाहिये? और शत्रुओंसे कैसा? तथा त्रिलोकीमें जो मध्यस्थ (दोनों पक्षोंके हितचिन्तक) हों, उनसे किस प्रकार आचरण करे?॥ २९॥ मन्त्रियों, अमात्यों, बाह्य और अन्तःपुरके सेवकों, गुप्तचरों, पुरवासियों, शंकितों (जिन्हें जीतकर बलात् दास बना लिया हो) तथा अन्यान्य जनोंके प्रति किस प्रकार व्यवहार करना चाहिये?॥ ३०॥ हे प्रह्लाद! यह ठीक-ठीक बता कि करने और न करनेयोग्य कार्योंका विधान किस प्रकार करे, दुर्ग और

आटविक (जंगली मनुष्य) आदिको किस प्रकार वशीभूत करे और गुप्त शत्रुरूप काँटेको कैसे निकाले?॥ ३१॥ यह सब तथा और भी जो कुछ तूने पढ़ा हो वह सब मुझे सुना, मैं तेरे मनके भावोंको जाननेके लिये बहुत उत्सुक हूँ॥ ३२॥

श्रीपराशरजी बोले—तब विनयभूषण प्रह्लादजीने पिताके चरणोंमें प्रणाम कर दैत्यराज हिरण्यकशिपुसे हाथ जोड़कर कहा॥ ३३॥

प्रह्लादजी बोले—पिताजी! इसमें सन्देह नहीं, गुरुजीने तो मुझे इन सभी विषयोंकी शिक्षा दी है, और मैं उन्हें समझ भी गया हूँ; परन्तु मेरा विचार है कि वे नीतियाँ अच्छी नहीं हैं॥ ३४॥ साम, दान तथा दण्ड और भेद—ये सब उपाय मित्रादिके साधनेके लिये बतलाये गये हैं॥ ३५॥ किन्तु, पिताजी! आप क्रोध न करें, मुझे तो कोई शत्रु-मित्र आदि दिखायी ही नहीं देते; और हे महाबाहो! जब कोई साध्य ही नहीं है तो इन साधनोंसे लेना ही क्या है?॥ ३६॥ हे तात! सर्वभूतात्मक जगन्नाथ जगन्मय परमात्मा गोविन्दमें भला शत्रु-मित्रकी बात ही कहाँ है?॥ ३७॥ श्रीविष्णुभगवान् तो आपमें, मुझमें और अन्यत्र भी सभी जगह वर्तमान हैं, फिर 'यह मेरा मित्र है और यह शत्रु है' ऐसे भेदभावको स्थान ही कहाँ है?॥ ३८॥ इसलिये, हे तात! अविद्याजन्य दुष्कर्मोंमें प्रवृत्त करनेवाले इस वाग्जालको सर्वथा छोड़कर अपने शुभके लिये ही यत्न करना चाहिये॥ ३९॥ हे दैत्यराज! अज्ञानके कारण ही मनुष्योंकी अविद्यामें विद्या-बुद्धि होती है। बालक क्या अज्ञानवश खद्योतको ही अग्नि नहीं समझ लेता?॥ ४०॥ कर्म वही है जो बन्धनका कारण न हो और विद्या भी वही है जो मुक्तिकी साधिका हो। इसके अतिरिक्त और कर्म तो परिश्रमरूप तथा अन्य विद्याएँ कला-कौशलमात्र ही हैं॥ ४१॥

हे महाभाग! इस प्रकार इन सबको असार समझकर अब आपको प्रणाम कर मैं उत्तम सार बतलाता हूँ, आप श्रवण कीजिये॥ ४२॥ राज्य पानेकी चिन्ता किसे नहीं होती और धनकी अभिलाषा भी किसको नहीं है? तथापि ये दोनों मिलते उन्हींको हैं जिन्हें मिलनेवाले होते हैं॥ ४३॥ हे महाभाग! महत्त्व-प्राप्तिके लिये सभी यत्न करते हैं, तथापि वैभवका कारण तो मनुष्यका भाग्य ही है, उद्यम नहीं॥ ४४॥ हे प्रभो! जड, अविवेकी, निर्बल और अनीतिज्ञोंको भी भाग्यवश नाना प्रकारके भोग और राज्यादि प्राप्त होते हैं॥ ४५॥ इसलिये जिसे महान् वैभवकी इच्छा हो उसे केवल पुण्यसंचयका ही यत्न करना चाहिये; और जिसे मोक्षकी इच्छा हो उसे भी समत्वलाभका ही प्रयत्न करना चाहिये॥ ४६॥ देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष और सरीसृप—ये सब भगवान् विष्णुसे भिन्न-से स्थित हुए भी वास्तवमें श्रीअनन्तके ही रूप हैं॥ ४७॥ इस बातको जाननेवाला पुरुष सम्पूर्ण चराचर जगत्को आत्मवत् देखे, क्योंकि यह सब विश्व-रूपधारी भगवान् विष्णु ही हैं॥ ४८॥ ऐसा जान लेनेपर वे अनादि परमेश्वर भगवान् अच्युत प्रसन्न होते हैं और उनके प्रसन्न होनेपर सभी क्लेश क्षीण हो जाते हैं॥ ४९॥

श्रीपराशरजी बोले—यह सुनकर हिरण्यकशिपुने क्रोधपूर्वक अपने राजसिंहासनसे उठकर पुत्र प्रह्लादके वक्षःस्थलमें लात मारी॥ ५०॥ और क्रोध तथा अमर्षसे जलते हुए मानो सम्पूर्ण संसारको मार डालेगा इस प्रकार हाथ मलता हुआ बोला॥ ५१॥

हिरण्यकशिपुने कहा—हे विप्रचित्ते! हे राहो! हे बल! तुमलोग इसे भली प्रकार नागपाशसे बाँधकर महासागरमें डाल दो, देरी मत करो॥ ५२॥ नहीं तो सम्पूर्ण लोक और दैत्य-दानव आदि भी इस

मूढ दुरात्माके मतका ही अनुगमन करेंगे [अर्थात् इसकी तरह वे भी विष्णुभक्त हो जायँगे] ॥ ५३ ॥ हमने इसे बहुतेरा रोका, तथापि यह दुष्ट शत्रुकी ही स्तुति किये जाता है। ठीक है, दुष्टोंको तो मार देना ही लाभदायक होता है ॥ ५४ ॥

श्रीपराशरजी बोले—तब उन दैत्योंने अपने स्वामीकी आज्ञाको शिरोधार्य कर तुरन्त ही उन्हें नागपाशसे बाँधकर समुद्रमें डाल दिया ॥ ५५ ॥ उस समय प्रह्लादजीके हिलने-डुलनेसे सम्पूर्ण महासागरमें हलचल मच गयी और अत्यन्त क्षोभके कारण उसमें सब ओर ऊँची-ऊँची लहरें उठने लगीं ॥ ५६ ॥ हे महामते! उस महान् जल-पूरसे सम्पूर्ण पृथिवीको डूबती देख हिरण्यकशिपुने दैत्योंसे इस प्रकार कहा ॥ ५७ ॥

हिरण्यकशिपु बोला—अरे दैत्यो! तुम इस दुर्मतिको इस समुद्रके भीतर ही किसी ओरसे खुला न रखकर सब ओरसे सम्पूर्ण पर्वतोंसे दबा दो ॥ ५८ ॥ देखो, इसे न तो अग्निने जलाया, न यह शस्त्रोंसे कटा, न सर्पोंसे नष्ट हुआ और न वायु, विष और कृत्यासे ही क्षीण हुआ, तथा न यह मायाओंसे, ऊपरसे गिरानेसे अथवा दिग्गजोंसे ही मारा गया। यह बालक अत्यन्त दुष्ट-चित्त है, अब इसके जीवनका कोई प्रयोजन नहीं है ॥ ५९-६० ॥ अत: अब यह पर्वतोंसे लदा हुआ हजारों वर्षतक जलमें ही पड़ा रहे, इससे यह दुर्मति स्वयं ही प्राण छोड़ देगा ॥ ६१ ॥

तब दैत्य और दानवोंने उसे समुद्रमें ही पर्वतोंसे ढँककर उसके ऊपर हजारों योजनका ढेर कर दिया ॥ ६२ ॥ उन महामतिने समुद्रमें पर्वतोंसे लाद दिये जानेपर अपने नित्यकर्मोंके समय एकाग्रचित्तसे श्रीअच्युतभगवान्‌की इस प्रकार स्तुति की ॥ ६३ ॥

प्रह्लादजी बोले—हे कमलनयन! आपको नमस्कार है। हे पुरुषोत्तम! आपको नमस्कार है। हे सर्वलोकात्मन्! आपको नमस्कार है। हे तीक्ष्णचक्रधारी प्रभो! आपको बारम्बार नमस्कार है ॥ ६४ ॥ गो-ब्राह्मण-हितकारी ब्रह्मण्यदेव भगवान् कृष्णको नमस्कार है। जगत्-हितकारी श्रीगोविन्दको बारम्बार नमस्कार है ॥ ६५ ॥

आप ब्रह्मारूपसे विश्वकी रचना करते हैं, फिर उसके स्थित हो जानेपर विष्णुरूपसे पालन करते हैं और अन्तमें रुद्ररूपसे संहार करते हैं—ऐसे त्रिमूर्तिधारी आपको नमस्कार है ॥ ६६ ॥ हे अच्युत! देव, यक्ष, असुर, सिद्ध, नाग, गन्धर्व, किन्नर, पिशाच, राक्षस, मनुष्य, पशु, पक्षी, स्थावर, पिपीलिका (चींटी), सरीसृप, पृथिवी, जल, अग्नि, आकाश, वायु, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, मन, बुद्धि, आत्मा, काल और गुण—इन सबके पारमार्थिक रूप आप ही हैं, वास्तवमें आप ही ये सब हैं ॥ ६७—६९ ॥ आप ही विद्या और अविद्या, सत्य और असत्य तथा विष और अमृत हैं तथा आप ही वेदोक्त प्रवृत्त और निवृत्त कर्म हैं ॥ ७० ॥ हे विष्णो! आप ही समस्त कर्मोंके भोक्ता और उनकी सामग्री हैं तथा सर्व कर्मोंके जितने भी फल हैं वे सब भी आप ही हैं ॥ ७१ ॥ हे प्रभो! मुझमें तथा अन्यत्र समस्त भूतों और भुवनोंमें आपहीके गुण और ऐश्वर्यकी सूचिका व्याप्ति हो रही है ॥ ७२ ॥ योगिगण आपहीका ध्यान धरते हैं और याज्ञिकगण आपहीका यजन करते हैं, तथा पितृगण और देवगणके रूपसे एक आप ही हव्य और कव्यके भोक्ता हैं ॥ ७३ ॥

हे ईश! यह निखिल ब्रह्माण्ड ही आपका स्थूल रूप है, उससे सूक्ष्म यह संसार (पृथिवीमण्डल) है, उससे भी सूक्ष्म ये भिन्न-भिन्न रूपधारी समस्त प्राणी हैं; उनमें भी जो अन्तरात्मा है वह और भी अत्यन्त सूक्ष्म है ॥ ७४ ॥

उससे भी परे जो सूक्ष्म आदि विशेषणोंका अविषय आपका कोई अचिन्त्य परमात्मस्वरूप है उन पुरुषोत्तमरूप आपको नमस्कार है॥ ७५ ॥ हे सर्वात्मन्! समस्त भूतोंमें आपकी जो गुणाश्रया पराशक्ति है, हे सुरेश्वर! उस नित्यस्वरूपिणीको नमस्कार है॥ ७६ ॥ जो वाणी और मनके परे है, विशेषणरहित तथा ज्ञानियोंके ज्ञानसे परिच्छेद्य है उस स्वतन्त्रा पराशक्तिकी मैं वन्दना करता हूँ॥ ७७ ॥ ॐ उन भगवान् वासुदेवको सदा नमस्कार है, जिनसे अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं है तथा जो स्वयं सबसे अतिरिक्त (असंग) हैं॥ ७८ ॥ जिनका कोई भी नाम अथवा रूप नहीं है और जो अपनी सत्तामात्रसे ही उपलब्ध होते हैं उन महात्माको नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है॥ ७९ ॥ जिनके पर स्वरूपको न जानते हुए ही देवतागण उनके अवतार-शरीरोंका सम्यक् अर्चन करते हैं उन महात्माको नमस्कार है॥ ८० ॥ जो ईश्वर सबके अन्त:करणोंमें स्थित होकर उनके शुभाशुभ कर्मोंको देखते हैं उन सर्वसाक्षी विश्वरूप परमेश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ८१ ॥

जिनसे यह जगत् सर्वथा अभिन्न है उन श्रीविष्णुभगवान्‌को नमस्कार है, वे जगत्‌के आदिकारण और योगियोंके ध्येय अव्यय हरि मुझपर प्रसन्न हों॥ ८२ ॥ जिनमें यह सम्पूर्ण विश्व ओतप्रोत है वे अक्षर, अव्यय और सबके आधारभूत हरि मुझपर प्रसन्न हों॥ ८३ ॥ ॐ जिनमें सब कुछ स्थित है, जिनसे सब उत्पन्न हुआ है और जो स्वयं सब कुछ तथा सबके आधार हैं, उन श्रीविष्णुभगवान्‌को नमस्कार है, उन्हें बारम्बार नमस्कार है॥ ८४ ॥ भगवान् अनन्त सर्वगामी हैं; अत: वे ही मेरे रूपसे स्थित हैं, इसलिये यह सम्पूर्ण जगत् मुझहीसे हुआ है, मैं ही यह सब कुछ हूँ और मुझ सनातनमें ही यह सब स्थित है॥ ८५ ॥ मैं ही अक्षय, नित्य और आत्माधार परमात्मा हूँ; तथा मैं ही जगत्‌के आदि और अन्तमें स्थित ब्रह्मसंज्ञक परमपुरुष हूँ॥ ८६ ॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पहले अंशमें उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त॥ १९ ॥

बीसवाँ अध्याय

प्रह्लादकृत भगवत्-स्तुति और भगवान्‌का आविर्भाव

श्रीपराशरजी बोले—हे द्विज! इस प्रकार भगवान् विष्णुको अपनेसे अभिन्न चिन्तन करते-करते पूर्ण तन्मयता प्राप्त हो जानेसे उन्होंने अपनेको अच्युतरूप ही अनुभव किया॥ १ ॥ वे अपने-आपको भूल गये; उस समय उन्हें श्रीविष्णुभगवान्‌के अतिरिक्त और कुछ भी प्रतीत न होता था। बस, केवल यही भावना चित्तमें थी कि मैं ही अव्यय और अनन्त परमात्मा हूँ॥ २ ॥ उस भावनाके योगसे वे क्षीणपाप हो गये और उनके शुद्ध अन्त:करणमें ज्ञानस्वरूप अच्युत श्रीविष्णुभगवान् विराजमान हुए॥ ३ ॥

हे मैत्रेय! इस प्रकार योगबलसे असुर प्रह्लादजीके विष्णुमय हो जानेपर उनके विचलित होनेसे वे नागपाश एक क्षणभरमें ही टूट गये॥ ४ ॥ भ्रमणशील ग्राहगण और तरल तरंगोंसे पूर्ण सम्पूर्ण महासागर क्षुब्ध हो गया, तथा पर्वत और वनोपवनोंसे पूर्ण समस्त पृथिवी हिलने लगी॥ ५ ॥ तथा महामति प्रह्लादजी अपने ऊपर

दैत्योंद्वारा लादे गये उस सम्पूर्ण पर्वत-समूहको दूर फेंककर जलसे बाहर निकल आये ॥ ६ ॥ तब आकाशादिरूप जगत्को फिर देखकर उन्हें चित्तमें यह पुनः भान हुआ कि मैं प्रह्लाद हूँ ॥ ७ ॥ और उन महाबुद्धिमान्ने मन, वाणी और शरीरके संयमपूर्वक धैर्य धारणकर एकाग्रचित्तसे पुनः भगवान् अनादि पुरुषोत्तमकी स्तुति की ॥ ८ ॥

प्रह्लादजी कहने लगे—हे परमार्थ! हे अर्थ (दृश्यरूप)! हे स्थूल-सूक्ष्म (जाग्रत्-स्वप्नदृश्य-स्वरूप)! हे क्षराक्षर (कार्य-कारणरूप)! हे व्यक्ताव्यक्त (दृश्यादृश्यस्वरूप)! हे कलातीत! हे सकलेश्वर! हे निरंजन देव! आपको नमस्कार है ॥ ९ ॥ हे गुणोंको अनुरंजित करनेवाले! हे गुणाधार! हे निर्गुणात्मन्! हे गुणस्थित! हे मूर्त और अमूर्तरूप महामूर्तिमन्! हे सूक्ष्ममूर्ते! हे प्रकाशाप्रकाशस्वरूप! [आपको नमस्कार है] ॥ १० ॥ हे विकराल और सुन्दररूप! हे विद्या और अविद्यामय अच्युत! हे सदसत् (कार्यकारण) रूप जगत्के उद्भवस्थान और सदसज्जगत्के पालक! [आपको नमस्कार है] ॥ ११ ॥ हे नित्यानित्य (आकाशघटादिरूप) प्रपंचात्मन्! हे प्रपंचसे पृथक् रहनेवाले! हे ज्ञानियोंके आश्रयरूप! हे एकानेकरूप आदिकारण वासुदेव! [आपको नमस्कार है] ॥ १२ ॥ जो स्थूल-सूक्ष्मरूप और स्फुट-प्रकाशमय हैं, जो अधिष्ठानरूपसे सर्वभूतस्वरूप तथापि वस्तुतः सम्पूर्ण भूतादिसे परे हैं, विश्वके कारण न होनेपर भी जिनसे यह समस्त विश्व उत्पन्न हुआ है; उन पुरुषोत्तम-भगवान्को नमस्कार है ॥ १३ ॥

श्रीपराशरजी बोले—उनके इस प्रकार तन्मयता-पूर्वक स्तुति करनेपर पीताम्बरधारी देवाधिदेव भगवान् हरि प्रकट हुए ॥ १४ ॥ हे द्विज! उन्हें सहसा प्रकट हुए देख वे खड़े हो गये और गद्गद वाणीसे 'विष्णुभगवान्को नमस्कार है! विष्णुभगवान्को नमस्कार है!' ऐसा बारम्बार कहने लगे ॥ १५ ॥

प्रह्लादजी बोले—हे शरणागत-दुःखहारी श्रीकेशवदेव! प्रसन्न होइये। हे अच्युत! अपने पुण्य-दर्शनोंसे मुझे फिर भी पवित्र कीजिये ॥ १६ ॥

श्रीभगवान् बोले—हे प्रह्लाद! मैं तेरी अनन्यभक्तिसे अति प्रसन्न हूँ; तुझे जिस वरकी इच्छा हो माँग ले ॥ १७ ॥

प्रह्लादजी बोले—हे नाथ! सहस्रों योनियोंमेंसे मैं जिस-जिसमें भी जाऊँ उसी-उसीमें, हे अच्युत! आपमें मेरी सर्वदा अक्षुण्ण भक्ति रहे ॥ १८ ॥ अविवेकी पुरुषोंकी विषयोंमें जैसी अविचल प्रीति होती है वैसी ही आपका स्मरण करते हुए मेरे हृदयसे कभी दूर न हो ॥ १९ ॥

श्रीभगवान् बोले—हे प्रह्लाद! मुझमें तो तेरी भक्ति है ही और आगे भी ऐसी ही रहेगी; किन्तु इसके अतिरिक्त भी तुझे और जिस वरकी इच्छा हो मुझसे माँग ले ॥ २० ॥

प्रह्लादजी बोले—हे देव! आपकी स्तुतिमें प्रवृत्त होनेसे मेरे पिताके चित्तमें मेरे प्रति जो द्वेष हुआ है, उन्हें उससे जो पाप लगा है वह नष्ट हो जाय ॥ २१ ॥ इसके अतिरिक्त [उनकी आज्ञासे] मेरे शरीरपर जो शस्त्राघात किये गये—मुझे अग्निसमूहमें डाला गया, सर्पोंसे कटवाया गया, भोजनमें विष दिया गया, बाँधकर समुद्रमें डाला गया, शिलाओंसे दबाया गया तथा और भी जो-जो दुर्व्यवहार पिताजीने मेरे साथ किये हैं, वे सब आपमें भक्ति रखनेवाले पुरुषके प्रति द्वेष होनेसे, उन्हें उनके कारण जो पाप लगा है, हे प्रभो! आपकी कृपासे मेरे पिता उससे शीघ्र ही मुक्त हो जायँ ॥ २२—२४ ॥

श्रीभगवान् बोले—हे प्रह्लाद! मेरी कृपासे तुम्हारी ये सब इच्छाएँ पूर्ण होंगी। हे

असुरकुमार! मैं तुमको एक वर और भी देता हूँ, तुम्हें जो इच्छा हो माँग लो॥ २५॥

प्रह्लादजी बोले—हे भगवन्! मैं तो आपके इस वरसे ही कृतकृत्य हो गया कि आपकी कृपासे आपमें मेरी निरन्तर अविचल भक्ति रहेगी॥ २६॥ हे प्रभो! सम्पूर्ण जगत्के कारणरूप आपमें जिसकी निश्चल भक्ति है, मुक्ति भी उसकी मुट्ठीमें रहती है, फिर धर्म, अर्थ, कामसे तो उसे लेना ही क्या है?॥ २७॥

श्रीभगवान् बोले—हे प्रह्लाद! मेरी भक्तिसे युक्त तेरा चित्त जैसा निश्चल है उसके कारण तू मेरी कृपासे परम निर्वाणपद प्राप्त करेगा॥ २८॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! ऐसा कह भगवान् उनके देखते-देखते अन्तर्धान हो गये; और उन्होंने भी फिर आकर अपने पिताके चरणोंकी वन्दना की॥ २९॥ हे द्विज! तब पिता हिरण्यकशिपुने, जिसे नाना प्रकारसे पीड़ित किया था उस पुत्रका सिर सूँघकर, आँखोंमें आँसू भरकर कहा—'बेटा, जीता तो है!' ॥ ३०॥ वह महान् असुर अपने कियेपर पछताकर फिर प्रह्लादसे प्रेम करने लगा और इसी प्रकार धर्मज्ञ प्रह्लादजी भी अपने गुरु और माता-पिताकी सेवा-शुश्रूषा करने लगे॥ ३१॥ हे मैत्रेय! तदनन्तर नृसिंहरूपधारी भगवान् विष्णुद्वारा पिताके मारे जानेपर वे दैत्योंके राजा हुए॥ ३२॥ हे द्विज! फिर प्रारब्धक्षयकारिणी राज्यलक्ष्मी, बहुत-से पुत्र-पौत्रादि तथा परम ऐश्वर्य पाकर, कर्माधिकारके क्षीण होनेपर पुण्य-पापसे रहित हो भगवान्का ध्यान करते हुए उन्होंने परम निर्वाणपद प्राप्त किया॥ ३३-३४॥

हे मैत्रेय! जिनके विषयमें तुमने पूछा था वे परम भगवद्भक्त महामति दैत्यप्रवर प्रह्लादजी ऐसे प्रभावशाली हुए॥ ३५॥ उन महात्मा प्रह्लादजीके इस चरित्रको जो पुरुष सुनता है उसके पाप शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं॥ ३६॥ हे मैत्रेय! इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्य प्रह्लाद-चरित्रके सुनने या पढ़नेसे दिन-रातके (निरन्तर) किये हुए पापसे अवश्य छूट जाता है॥ ३७॥ हे द्विज! पूर्णिमा, अमावास्या, अष्टमी अथवा द्वादशीको इसे पढ़नेसे मनुष्यको गोदानका फल मिलता है॥ ३८॥ जिस प्रकार भगवान्ने प्रह्लादजीकी सम्पूर्ण आपत्तियोंसे रक्षा की थी उसी प्रकार वे सर्वदा उसकी भी रक्षा करते हैं जो उनका चरित्र सुनता है॥ ३९॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पहले अंशमें बीसवाँ अध्याय समाप्त॥ २०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

कश्यपजीकी अन्य स्त्रियोंके वंश एवं मरुद्गणकी उत्पत्तिका वर्णन

श्रीपराशरजी बोले—संह्लादके पुत्र आयुष्मान् शिबि और बाष्कल थे तथा प्रह्लादके पुत्र विरोचन थे और विरोचनसे बलिका जन्म हुआ॥ १॥ हे महामुने! बलिके सौ पुत्र थे जिनमें बाणासुर सबसे बड़ा था। हिरण्याक्षके पुत्र उत्कुर, शकुनि, भूतसन्तापन, महानाभ, महाबाहु तथा कालनाभ आदि सभी महाबलवान् थे॥ २-३॥

(कश्यपजीकी एक दूसरी स्त्री) दनुके पुत्र द्विमूर्धा, शम्बर, अयोमुख, शंकुशिरा, कपिल, शंकर, एकचक्र, महाबाहु, तारक, महाबल, स्वर्भानु, वृषपर्वा, महाबली पुलोम और परमपराक्रमी विप्रचित्ति थे। ये सब दनुके पुत्र विख्यात हैं॥ ४—६॥ स्वर्भानुकी कन्या प्रभा थी तथा शर्मिष्ठा, उपदानी और हयशिरा—ये वृषपर्वाकी

परम सुन्दरी कन्याएँ विख्यात हैं॥ ७॥ वैश्वानरकी पुलोमा और कालका दो पुत्रियाँ थीं। हे महाभाग! वे दोनों कन्याएँ मरीचिनन्दन कश्यपजीकी भार्या हुईं॥ ८॥ उनके पुत्र साठ हजार दानव-श्रेष्ठ हुए। मरीचिनन्दन कश्यपजीके वे सभी पुत्र पौलोम और कालकेय कहलाये॥ ९॥ इनके सिवा विप्रचित्तिके सिंहिकाके गर्भसे और भी बहुत-से महाबलवान्, भयंकर और अतिक्रूर पुत्र उत्पन्न हुए॥ १०॥ वे व्यंश, शल्य, बलवान् नभ, महाबली वातापी, नमुचि, इल्वल, खसृम, अन्धक, नरक, कालनाभ, महावीर, स्वर्भानु और महादैत्य वक्त्र योधी थे॥ ११-१२॥ ये सब दानवश्रेष्ठ दनुके वंशको बढ़ानेवाले थे। इनके और भी सैकड़ों-हजारों पुत्र-पौत्रादि हुए॥ १३॥ महान् तपस्याद्वारा आत्मज्ञानसम्पन्न दैत्यवर प्रह्लादजीके कुलमें निवातकवच नामक दैत्य उत्पन्न हुए॥ १४॥

कश्यपजीकी स्त्री ताम्राकी शुकी, श्येनी, भासी, सुग्रीवी, शुचि और गृद्ध्रिका—ये छः अति प्रभावशालिनी कन्याएँ कही जाती हैं॥ १५॥ शुकीसे शुक, उलूक एवं उलूकोंके प्रतिपक्षी काक आदि उत्पन्न हुए तथा श्येनीसे श्येन (बाज), भासीसे भास और गृद्ध्रिकासे गृद्ध्रोंका जन्म हुआ॥ १६॥ शुचिसे जलके पक्षिगण और सुग्रीवीसे अश्व, उष्ट्र और गर्दभोंकी उत्पत्ति हुई। इस प्रकार यह ताम्राका वंश कहा जाता है॥ १७॥ विनताके गरुड और अरुण ये दो पुत्र विख्यात हैं। इनमें पक्षियोंमें श्रेष्ठ सुपर्ण (गरुडजी) अति भयंकर और सर्पोंको खानेवाले हैं॥ १८॥ हे ब्रह्मन्! सुरसासे सहस्त्रों सर्प उत्पन्न हुए जो बड़े ही प्रभावशाली, आकाशमें विचरनेवाले, अनेक शिरोंवाले और बड़े विशालकाय थे॥ १९॥ और कद्रूके पुत्र भी महाबली और अमित तेजस्वी अनेक सिरवाले सहस्त्रों सर्प ही हुए जो गरुडजीके वशवर्ती थे॥ २०॥ उनमेंसे शेष, वासुकि, तक्षक, शंखश्वेत, महापद्म, कम्बल, अश्वतर, एलापुत्र, नाग, कर्कोटक, धनंजय तथा और भी अनेक उग्र विषधर एवं काटनेवाले सर्प प्रधान हैं॥ २१-२२॥ क्रोधवशाके पुत्र क्रोधवशगण हैं। वे सभी बड़ी-बड़ी दाढ़ोंवाले, भयंकर और कच्चा मांस खानेवाले जलचर, स्थलचर एवं पक्षिगण हैं॥ २३॥ महाबली पिशाचोंको भी क्रोधाने ही जन्म दिया है। सुरभिसे गौ और महिष आदिकी उत्पत्ति हुई तथा इरासे वृक्ष, लता, बेल और सब प्रकारके तृण उत्पन्न हुए हैं॥ २४॥ खसाने यक्ष और राक्षसोंको, मुनिने अप्सराओंको तथा अरिष्टाने अति समर्थ गन्धर्वोंको जन्म दिया॥ २५॥ ये सब स्थावर-जंगम कश्यपजीकी सन्तान हुए। इनके और भी सैकड़ों-हजारों पुत्र-पौत्रादि हुए॥ २६॥ हे ब्रह्मन्! यह स्वारोचिष-मन्वन्तरकी सृष्टिका वर्णन कहा जाता है॥ २७॥ वैवस्वत-मन्वन्तरके आरम्भमें महान् वारुण यज्ञ हुआ, उसमें ब्रह्माजी होता थे, अब मैं उनकी प्रजाका वर्णन करता हूँ॥ २८॥

हे साधुश्रेष्ठ! पूर्व-मन्वन्तरमें जो सप्तर्षिगण स्वयं ब्रह्माजीके मानसपुत्ररूपसे उत्पन्न हुए थे, उन्हींको ब्रह्माजीने इस कल्पमें गन्धर्व, नाग, देव और दानवादिके पितृरूपसे निश्चित किया॥ २९॥ पुत्रोंके नष्ट हो जानेपर दितिने कश्यपजीको प्रसन्न किया। उसकी सम्यक् आराधनासे सन्तुष्ट हो तपस्वियोंमें श्रेष्ठ कश्यपजीने उसे वर देकर प्रसन्न किया। उस समय उसने इन्द्रके वध करनेमें समर्थ एक अति तेजस्वी पुत्रका वर माँगा॥ ३०-३१॥

मुनिश्रेष्ठ कश्यपजीने अपनी भार्या दितिको वह वर दिया और उस अति उग्र वरको देते हुए वे उससे बोले—॥ ३२॥ ''यदि तुम भगवान्‌के

ध्यानमें तत्पर रहकर अपना गर्भ शौच* और संयमपूर्वक सौ वर्षतक धारण कर सकोगी तो तुम्हारा पुत्र इन्द्रको मारनेवाला होगा"॥ ३३ ॥ ऐसा कहकर मुनि कश्यपजीने उस देवीसे संगमन किया और उसने बड़े शौचपूर्वक रहते हुए वह गर्भ धारण किया॥ ३४ ॥

उस गर्भको अपने वधका कारण जान देवराज इन्द्र भी विनयपूर्वक उसकी सेवा करनेके लिये आ गये॥ ३५॥ उसके शौचादिमें कभी कोई अन्तर पड़े—यही देखनेकी इच्छासे इन्द्र वहाँ हर समय उपस्थित रहते थे। अन्तमें सौ वर्षमें कुछ ही कमी रहनेपर उन्होंने एक अन्तर देख ही लिया॥ ३६॥ एक दिन दिति बिना चरण-शुद्धि किये ही अपनी शय्यापर लेट गयी। उस समय निद्राने उसे घेर लिया। तब इन्द्र हाथमें वज्र लेकर उसकी कुक्षिमें घुस गये और उस महागर्भके सात टुकड़े कर डाले। इस प्रकार वज्रसे पीड़ित होनेसे वह गर्भ जोर-जोरसे रोने लगा॥ ३७-३८॥ इन्द्रने उससे पुनः-पुनः कहा कि 'मत रो'। किन्तु जब वह गर्भ सात भागोंमें विभक्त हो गया, [और फिर भी न मरा] तो इन्द्रने अत्यन्त कुपित हो अपने शत्रु-विनाशक वज्रसे एक-एकके सात-सात टुकड़े और कर दिये। वे ही अति वेगवान् मरुत् नामक देवता हुए॥ ३९-४०॥ भगवान् इन्द्रने जो उससे कहा था कि '**मा रोदीः**' (मत रो) इसीलिये वे मरुत् कहलाये। ये उनचास मरुद्गण इन्द्रके सहायक देवता हुए॥ ४१॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पहले अंशमें इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त॥ २१॥

बाईसवाँ अध्याय

विष्णुभगवान्‌की विभूति और जगत्‌की व्यवस्थाका वर्णन

श्रीपराशरजी बोले—पूर्वकालमें महर्षियोंने जब महाराज पृथुको राज्यपदपर अभिषिक्त किया तो लोक-पितामह श्रीब्रह्माजीने भी क्रमसे राज्योंका बँटवारा किया॥ १॥ ब्रह्माजीने नक्षत्र, ग्रह, ब्राह्मण, सम्पूर्ण वनस्पति और यज्ञ तथा तप आदिके राज्यपर चन्द्रमाको नियुक्त किया॥ २॥ इसी प्रकार विश्रवाके पुत्र कुबेरजीको राजाओंका, वरुणको जलोंका, विष्णुको आदित्योंका और अग्निको वसुगणोंका अधिपति बनाया॥ ३॥ दक्षको प्रजापतियोंका, इन्द्रको मरुद्गणका तथा प्रह्लादजीको दैत्य और दानवोंका आधिपत्य दिया॥ ४॥ पितृगणके राज्यपदपर धर्मराज यमको अभिषिक्त किया और सम्पूर्ण गजराजोंका स्वामित्व ऐरावतको दिया॥ ५॥ गरुडको पक्षियोंका, इन्द्रको देवताओंका, उच्चैःश्रवाको घोड़ोंका और वृषभको गौओंका अधिपति बनाया॥ ६॥ प्रभु ब्रह्माजीने समस्त

---

* शौच आदि नियम मत्स्यपुराणमें इस प्रकार बतलाये गये हैं—

'सन्ध्यायां नैव भोक्तव्यं गर्भिण्या वरवर्णिनि। न स्थातव्यं न गन्तव्यं वृक्षमूलेषु सर्वदा॥
वर्जयेत् कलहं लोके गात्रभङ्गं तथैव च। नोन्मुक्तकेशी तिष्ठेच्च नाशुचिः स्यात् कदाचन॥'

हे सुन्दरि! गर्भिणी स्त्रीको चाहिये कि सायंकालमें भोजन न करे, वृक्षोंके नीचे न जाय और न वहाँ ठहरे ही तथा लोगोंके साथ कलह और अँगड़ाई लेना छोड़ दे, कभी केश खुला न रखे और न अपवित्र ही रहे।

तथा भागवतमें भी कहा है—'न हिंस्यात्सर्वभूतानि न शपेन्नानृतं वदेत्' इत्यादि। अर्थात् प्राणियोंकी हिंसा न करे, किसीको बुरा-भला न कहे और कभी झूठ न बोले।

मृगों (वन्यपशुओं)-का राज्य सिंहको दिया और सर्पोंका स्वामी शेषनागको बनाया॥ ७॥ स्थावरोंका स्वामी हिमालयको, मुनिजनोंका कपिलदेवजीको और नख तथा दाढ़वाले मृगगणका राजा व्याघ्र (बाघ)-को बनाया॥ ८॥ तथा प्लक्ष (पाकर)-को वनस्पतियोंका राजा किया। इसी प्रकार ब्रह्माजीने और-और जातियोंके प्राधान्यकी भी व्यवस्था की॥ ९॥

इस प्रकार राज्योंका विभाग करनेके अनन्तर प्रजापतियोंके स्वामी ब्रह्माजीने सब ओर दिक्पालोंकी स्थापना की॥ १०॥ उन्होंने पूर्व-दिशामें वैराज प्रजापतिके पुत्र राजा सुधन्वाको दिक्पालपदपर अभिषिक्त किया॥ ११॥ तथा दक्षिण-दिशामें कर्दम प्रजापतिके पुत्र राजा शंखपदकी नियुक्ति की॥ १२॥ कभी च्युत न होनेवाले रजसपुत्र महात्मा केतुमान्‌को उन्होंने पश्चिम-दिशामें स्थापित किया॥ १३॥ और पर्जन्य प्रजापतिके पुत्र अति दुर्द्धर्ष राजा हिरण्यरोमाको उत्तर-दिशामें अभिषिक्त किया॥ १४॥ वे आजतक सात द्वीप और अनेकों नगरोंसे युक्त इस सम्पूर्ण पृथिवीका अपने-अपने विभागानुसार धर्मपूर्वक पालन करते हैं॥ १५॥

हे मुनिसत्तम! ये तथा अन्य भी जो सम्पूर्ण राजालोग हैं वे सभी विश्वके पालनमें प्रवृत्त परमात्मा श्रीविष्णुभगवान्‌के विभूतिरूप हैं॥ १६॥ हे द्विजोत्तम! जो-जो भूताधिपति पहले हो गये हैं और जो-जो आगे होंगे वे सभी सर्वभूत भगवान् विष्णुके अंश हैं॥ १७॥ जो-जो भी देवताओं, दैत्यों, दानवों और मांसभोजियोंके अधिपति हैं, जो-जो पशुओं, पक्षियों, मनुष्यों, सर्पों और नागोंके अधिनायक हैं, जो-जो वृक्षों, पर्वतों और ग्रहोंके स्वामी हैं तथा और भी भूत, भविष्यत् एवं वर्तमानकालीन जितने भूतेश्वर हैं वे सभी सर्वभूत भगवान् विष्णुके अंशसे उत्पन्न हुए हैं॥ १८—२०॥ हे महाप्राज्ञ! सृष्टिके पालन-कार्यमें प्रवृत्त सर्वेश्वर श्रीहरिको छोड़कर और किसीमें भी पालन करनेकी शक्ति नहीं है॥ २१॥ रजः और सत्त्वादि गुणोंके आश्रयसे वे सनातन प्रभु ही जगत्‌की रचनाके समय रचना करते हैं, स्थितिके समय पालन करते हैं और अन्तसमयमें कालरूपसे संहार करते हैं॥ २२॥

वे जनार्दन चार विभागसे सृष्टिके और चार विभागसे ही स्थितिके समय रहते हैं तथा चार रूप धारण करके ही अन्तमें प्रलय करते हैं॥ २३॥ एक अंशसे वे अव्यक्तस्वरूप ब्रह्मा होते हैं, दूसरे अंशसे मरीचि आदि प्रजापति होते हैं, उनका तीसरा अंश काल है और चौथा सम्पूर्ण प्राणी। इस प्रकार वे रजोगुणविशिष्ट होकर चार प्रकारसे सृष्टिके समय स्थित होते हैं॥ २४-२५॥ फिर वे पुरुषोत्तम सत्त्वगुणका आश्रय लेकर जगत्‌की स्थिति करते हैं। उस समय वे एक अंशसे विष्णु होकर पालन करते हैं, दूसरे अंशसे मनु आदि होते हैं तथा तीसरे अंशसे काल और चौथेसे सर्वभूतोंमें स्थित होते हैं॥ २६-२७॥ तथा अन्तकालमें वे अजन्मा भगवान् तमोगुणकी वृत्तिका आश्रय ले एक अंशसे रुद्ररूप, दूसरे भागसे अग्नि और अन्तकादि रूप, तीसरेसे कालरूप और चौथेसे सम्पूर्ण भूतस्वरूप हो जाते हैं॥ २८-२९॥ हे ब्रह्मन्! विनाश करनेके लिये उन महात्माकी यह चार प्रकारकी सार्वकालिक विभागकल्पना कही जाती है॥ ३०॥ ब्रह्मा, दक्ष आदि प्रजापतिगण, काल तथा समस्त प्राणी—ये श्रीहरिकी विभूतियाँ जगत्‌की सृष्टिकी कारण हैं॥ ३१॥

हे द्विज! विष्णु, मनु आदि, काल और समस्त भूतगण—ये जगत्‌की स्थितिके कारणरूप भगवान् विष्णुकी विभूतियाँ हैं॥ ३२॥ तथा रुद्र, काल, अन्तकादि और सकल जीव—श्रीजनार्दनकी ये चार विभूतियाँ प्रलयकी कारणरूप हैं॥ ३३॥

हे द्विज! जगत्‌के आदि और मध्यमें तथा

प्रलय-पर्यन्त भी ब्रह्मा, मरीचि आदि तथा भिन्न-भिन्न जीवोंसे ही सृष्टि हुआ करती है॥ ३४॥ सृष्टिके आरम्भमें पहले ब्रह्माजी रचना करते हैं, फिर मरीचि आदि प्रजापतिगण और तदनन्तर समस्त जीव क्षण-क्षणमें सन्तान उत्पन्न करते रहते हैं॥ ३५॥ हे द्विज! कालके बिना ब्रह्मा, प्रजापति एवं अन्य समस्त प्राणी भी सृष्टि-रचना नहीं कर सकते [अतः भगवान् कालरूप विष्णु ही सर्वदा सृष्टिके कारण हैं]॥ ३६॥ हे मैत्रेय! इसी प्रकार जगत्की स्थिति और प्रलयमें भी उन देवदेवके चार-चार विभाग बताये जाते हैं॥ ३७॥ हे द्विज! जिस किसी जीवद्वारा जो कुछ भी रचना की जाती है उस उत्पन्न हुए जीवकी उत्पत्तिमें सर्वथा श्रीहरिका शरीर ही कारण है॥ ३८॥ हे मैत्रेय! इसी प्रकार जो कोई स्थावर-जंगम भूतोंमेंसे किसीको नष्ट करता है, वह नाश करनेवाला भी श्रीजनार्दनका अन्तकारक रौद्ररूप ही है॥ ३९॥ इस प्रकार वे जनार्दनदेव ही समस्त संसारके रचयिता, पालनकर्ता और संहारक हैं तथा वे ही स्वयं जगत्-रूप भी हैं॥ ४०॥ जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और अन्तके समय वे इसी प्रकार तीनों गुणोंकी प्रेरणासे प्रवृत्त होते हैं, तथापि उनका परमपद महान् निर्गुण है॥ ४१॥ परमात्माका वह स्वरूप ज्ञानमय, व्यापक, स्वसंवेद्य (स्वयं-प्रकाश) और अनुपम है तथा वह भी चार प्रकारका ही है॥ ४२॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे मुने! आपने जो भगवान्का परम पद कहा, वह चार प्रकारका कैसे है? यह आप मुझसे विधिपूर्वक कहिये॥ ४३॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! सब वस्तुओंका जो कारण होता है वही उनका साधन भी होता है और जिस अपनी अभिमत वस्तुकी सिद्धि की जाती है वही साध्य कहलाती है॥ ४४॥ मुक्तिकी इच्छावाले योगिजनोंके लिये प्राणायाम आदि साधन हैं और परब्रह्म ही साध्य है, जहाँसे फिर लौटना नहीं पड़ता॥ ४५॥ हे मुने! जो योगीकी मुक्तिका कारण है, वह 'साधनालम्बन-ज्ञान' ही उस ब्रह्मभूत परमपदका प्रथम भेद है*॥ ४६॥ क्लेश-बन्धनसे मुक्त होनेके लिये योगाभ्यासी योगीका साध्यरूप जो ब्रह्म है, हे महामुने! उसका ज्ञान ही 'आलम्बन-विज्ञान' नामक दूसरा भेद है॥ ४७॥ इन दोनों साध्य-साधनोंका अभेदपूर्वक जो 'अद्वैतमय ज्ञान' है उसीको मैं तीसरा भेद कहता हूँ॥ ४८॥ और हे महामुने! उक्त तीनों प्रकारके ज्ञानकी विशेषताका निराकरण करनेपर अनुभव हुए आत्मस्वरूपके समान ज्ञानस्वरूप भगवान् विष्णुका जो निर्व्यापार अनिर्वचनीय, व्याप्तिमात्र, अनुपम, आत्मबोधस्वरूप, सत्तामात्र, अलक्षण, शान्त, अभय, शुद्ध, भावनातीत और आश्रयहीन रूप है, वह 'ब्रह्म' नामक ज्ञान [उसका चौथा भेद] है॥ ४९—५१॥ हे द्विज! जो योगिजन अन्य ज्ञानोंका निरोधकर इस (चौथे भेद)-में ही लीन हो जाते हैं वे इस संसार-क्षेत्रके भीतर बीजारोपणरूप कर्म करनेमें निर्बीज (वासनारहित) होते हैं। [अर्थात् वे लोकसंग्रहके लिये कर्म करते भी रहते हैं तो भी उन्हें उन कर्मोंका कोई पाप-पुण्यरूप फल प्राप्त नहीं होता]॥ ५२॥ इस प्रकारका वह निर्मल, नित्य, व्यापक, अक्षय और समस्त हेय गुणोंसे रहित विष्णु नामक परमपद है॥ ५३॥ पुण्य-पापका क्षय और क्लेशोंकी निवृत्ति होनेपर जो अत्यन्त निर्मल हो जाता है वही योगी उस परब्रह्मका आश्रय लेता है जहाँसे वह फिर नहीं लौटता॥ ५४॥

* प्राणायामादि साधनविषयक ज्ञानको 'साधनालम्बन-ज्ञान' कहते हैं।

उस ब्रह्मके मूर्त और अमूर्त दो रूप हैं, जो क्षर और अक्षररूपसे समस्त प्राणियोंमें स्थित हैं॥ ५५॥ अक्षर ही वह परब्रह्म है और क्षर सम्पूर्ण जगत् है। जिस प्रकार एकदेशीय अग्निका प्रकाश सर्वत्र फैला रहता है उसी प्रकार यह सम्पूर्ण जगत् परब्रह्मकी ही शक्ति है॥ ५६॥ हे मैत्रेय! अग्निकी निकटता और दूरताके भेदसे जिस प्रकार उसके प्रकाशमें भी अधिकता और न्यूनताका भेद रहता है उसी प्रकार ब्रह्मकी शक्तिमें भी तारतम्य है॥ ५७॥ हे ब्रह्मन्! ब्रह्मा, विष्णु और शिव ब्रह्मकी प्रधान शक्तियाँ हैं, उनसे न्यून देवगण हैं तथा उनके अनन्तर दक्ष आदि प्रजापतिगण हैं॥ ५८॥ उनसे भी न्यून मनुष्य, पशु, पक्षी, मृग और सरीसृपादि हैं तथा उनसे भी अत्यन्त न्यून वृक्ष, गुल्म और लता आदि हैं॥ ५९॥ अत: हे मुनिवर! आविर्भाव (उत्पन्न होना), तिरोभाव (छिप जाना), जन्म और नाश आदि विकल्पयुक्त भी यह सम्पूर्ण जगत् वास्तवमें नित्य और अक्षय ही है॥ ६०॥

सर्वशक्तिमय विष्णु ही ब्रह्मके पर-स्वरूप तथा मूर्तरूप हैं जिनका योगिजन योगारम्भके पूर्व चिन्तन करते हैं॥ ६१॥ हे मुने! जिनमें मनको सम्यक्-प्रकारसे निरन्तर एकाग्र करनेवालोंको आलम्बनयुक्त सबीज (सम्प्रज्ञात) महायोगकी प्राप्ति होती है, हे महाभाग! वे सर्वब्रह्ममय श्रीविष्णुभगवान् समस्त परा शक्तियोंमें प्रधान और ब्रह्मके अत्यन्त निकटवर्ती मूर्त-ब्रह्मस्वरूप हैं॥ ६२-६३॥ हे मुने! उन्हींमें यह सम्पूर्ण जगत् ओतप्रोत है, उन्हींसे उत्पन्न हुआ है, उन्हींमें स्थित है और स्वयं वे ही समस्त जगत् हैं॥ ६४॥ क्षराक्षरमय (कार्य-कारण-रूप) ईश्वर विष्णु ही इस पुरुष-प्रकृतिमय सम्पूर्ण जगत्को अपने आभूषण और आयुधरूपसे धारण करते हैं॥ ६५॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—भगवान् विष्णु इस संसारको भूषण और आयुधरूपसे किस प्रकार धारण करते हैं यह आप मुझसे कहिये॥ ६६॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मुने! जगत्का पालन करनेवाले अप्रमेय श्रीविष्णुभगवान्को नमस्कार कर अब मैं, जिस प्रकार वसिष्ठजीने मुझसे कहा था वह तुम्हें सुनाता हूँ॥ ६७॥ इस जगत्के निर्लेप तथा निर्गुण और निर्मल आत्माको अर्थात् शुद्ध क्षेत्रज्ञ-स्वरूपको श्रीहरि कौस्तुभमणिरूपसे धारण करते हैं॥ ६८॥ श्रीअनन्तने प्रधानको श्रीवत्सरूपसे आश्रय दिया है और बुद्धि श्रीमाधवकी गदारूपसे स्थित है॥ ६९॥ भूतोंके कारण तामस अहंकार और इन्द्रियोंके कारण राजस अहंकार इन दोनोंको वे शंख और शार्ङ्ग धनुषरूपसे धारण करते हैं॥ ७०॥ अपने वेगसे पवनको भी पराजित करनेवाला अत्यन्त चंचल, सात्त्विक अहंकाररूप मन श्रीविष्णुभगवान्के कर-कमलोंमें स्थित चक्रका रूप धारण करता है॥ ७१॥ हे द्विज! भगवान् गदाधरकी जो [मुक्ता, माणिक्य, मरकत, इन्द्रनील और हीरकमयी] पंचरूपा वैजयन्ती माला है वह पंचतन्मात्राओं और पंचभूतोंका ही संघात है॥ ७२॥ जो ज्ञान और कर्ममयी इन्द्रियाँ हैं उन सबको श्रीजनार्दन-भगवान् बाणरूपसे धारण करते हैं॥ ७३॥ भगवान् अच्युत जो अत्यन्त निर्मल खड्ग धारण करते हैं वह अविद्यामय कोशसे आच्छादित विद्यामय ज्ञान ही है॥ ७४॥ हे मैत्रेय! इस प्रकार पुरुष, प्रधान, बुद्धि, अहंकार, पंचभूत, मन, इन्द्रियाँ तथा विद्या और अविद्या सभी श्रीहृषीकेशमें आश्रित हैं॥ ७५॥ श्रीहरि रूपरहित होकर भी मायामयरूपसे प्राणियोंके कल्याणके लिये इन सबको अस्त्र और भूषणरूपसे धारण करते हैं॥ ७६॥ इस प्रकार वे कमलनयन

परमेश्वर सविकार प्रधान [निर्विकार], पुरुष तथा सम्पूर्ण जगत्‌को धारण करते हैं॥ ७७॥ जो कुछ भी विद्या-अविद्या, सत्-असत् तथा अव्ययरूप है, हे मैत्रेय! वह सब सर्वभूतेश्वर श्रीमधुसूदनमें ही स्थित है॥ ७८॥ कला, काष्ठा, निमेष, दिन, ऋतु, अयन और वर्षरूपसे वे कालस्वरूप निष्पाप अव्यय श्रीहरि ही विराजमान हैं॥ ७९॥

हे मुनिश्रेष्ठ! भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक तथा मह, जन, तप और सत्य आदि सातों लोक भी सर्वव्यापक भगवान् ही हैं॥ ८०॥ सभी पूर्वजोंके पूर्वज तथा समस्त विद्याओंके आधार श्रीहरि ही स्वयं लोकमयस्वरूपसे स्थित हैं॥ ८१॥ निराकार और सर्वेश्वर श्रीअनन्त ही भूतस्वरूप होकर देव, मनुष्य और पशु आदि नानारूपोंसे स्थित हैं॥ ८२॥ ऋक्, यजुः, साम और अथर्ववेद, इतिहास (महाभारतादि), उपवेद (आयुर्वेदादि), वेदान्तवाक्य, समस्त वेदांग, मनु आदि कथित समस्त धर्मशास्त्र, पुराणादि सकल शास्त्र, आख्यान, अनुवाक (कल्पसूत्र) तथा समस्त काव्य-चर्चा और राग-रागिनी आदि जो कुछ भी हैं वे सब शब्दमूर्तिधारी परमात्मा विष्णुका ही शरीर हैं॥ ८३—८५॥ इस लोकमें अथवा कहीं और भी जितने मूर्त, अमूर्त पदार्थ हैं, वे सब उन्हींका शरीर हैं॥ ८६॥ 'मैं तथा यह सम्पूर्ण जगत् जनार्दन श्रीहरि ही हैं; उनसे भिन्न और कुछ भी कार्य-कारणादि नहीं है'—जिसके चित्तमें ऐसी भावना है उसे फिर देहजन्य राग-द्वेषादि द्वन्द्वरूप रोगकी प्राप्ति नहीं होती॥ ८७॥

हे द्विज! इस प्रकार तुमसे इस पुराणके पहले अंशका यथावत् वर्णन किया। इसका श्रवण करनेसे मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ८८॥ हे मैत्रेय! बारह वर्षतक कार्तिक मासमें पुष्करक्षेत्रमें स्नान करनेसे जो फल होता है; वह सब मनुष्यको इसके श्रवणमात्रसे मिल जाता है॥ ८९॥ हे मुने! देव, ऋषि, गन्धर्व, पितृ और यक्ष आदिकी उत्पत्तिका श्रवण करनेवाले पुरुषको वे देवादि वरदायक हो जाते हैं॥ ९०॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पहले अंशमें बाईसवाँ अध्याय समाप्त॥ २२॥

इस प्रकार श्रीपराशरमुनिद्वारा विरचित श्रीविष्णुपरत्वनिर्णायक श्रीविष्णुमहापुराणका पहला अंश समाप्त॥

ॐ

श्रीमन्नारायणाय नमः

श्रीविष्णुपुराण

दूसरा अंश

पहला अध्याय

प्रियव्रतके वंशका वर्णन

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे भगवन्! हे गुरो! मैंने जगत्‌की सृष्टिके विषयमें आपसे जो कुछ पूछा था वह सब आपने मुझसे भली प्रकार कह दिया॥ १॥ हे मुनिश्रेष्ठ! जगत्‌की सृष्टिसम्बन्धी आपने जो यह प्रथम अंश कहा है, उसकी एक बात मैं और सुनना चाहता हूँ॥ २॥ स्वायम्भुवमनुके जो प्रियव्रत और उत्तानपाद दो पुत्र थे, उनमेंसे उत्तानपादके पुत्र ध्रुवके विषयमें तो आपने कहा॥ ३॥ किंतु, हे द्विज! आपने प्रियव्रतकी सन्तानके विषयमें कुछ भी नहीं कहा, अतः मैं उसका वर्णन सुनना चाहता हूँ, सो आप प्रसन्नतापूर्वक कहिये॥ ४॥

श्रीपराशरजी बोले—प्रियव्रतने कर्दमजीकी पुत्रीसे विवाह किया था। उससे उनके सम्राट् और कुक्षि नामकी दो कन्याएँ तथा दस पुत्र हुए॥ ५॥ प्रियव्रतके पुत्र बड़े बुद्धिमान्, बलवान्, विनयसम्पन्न और अपने माता-पिताके अत्यन्त प्रिय कहे जाते हैं; उनके नाम सुनो—॥ ६॥ वे आग्नीध्र, अग्निबाहु, वपुष्मान्, द्युतिमान्, मेधा, मेधातिथि, भव्य, सवन और पुत्र थे तथा दसवाँ यथार्थनामा ज्योतिष्मान् था। वे प्रियव्रतके पुत्र अपने बल-पराक्रमके कारण विख्यात थे॥ ७-८॥ उनमें महाभाग मेधा, अग्निबाहु और पुत्र—ये तीन योगपरायण तथा अपने पूर्वजन्मका वृत्तान्त जाननेवाले थे। उन्होंने राज्य आदि भोगोंमें अपना चित्त नहीं लगाया॥ ९॥ हे मुने! वे निर्मलचित्त और कर्म-फलकी इच्छासे रहित थे तथा समस्त विषयोंमें सदा न्यायानुकूल ही प्रवृत्त होते थे॥ १०॥

हे मुनिश्रेष्ठ! राजा प्रियव्रतने अपने शेष सात महात्मा पुत्रोंको सात द्वीप बाँट दिये॥ ११॥ हे महाभाग! पिता प्रियव्रतने आग्नीध्रको जम्बूद्वीप और मेधातिथिको प्लक्ष नामक दूसरा द्वीप दिया॥ १२॥ उन्होंने शाल्मलद्वीपमें वपुष्मान्‌को अभिषिक्त किया; ज्योतिष्मान्‌को कुशद्वीपका राजा बनाया॥ १३॥ द्युतिमान्‌को क्रौंचद्वीपके शासनपर नियुक्त किया, भव्यको प्रियव्रतने शाकद्वीपका स्वामी बनाया और सवनको पुष्करद्वीपका अधिपति किया॥ १४॥

हे मुनिसत्तम! उनमें जो जम्बूद्वीपके अधीश्वर राजा आग्नीध्र थे उनके प्रजापतिके समान नौ पुत्र हुए। वे नाभि, किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्य, हिरण्वान्, कुरु, भद्राश्व और सत्कर्मशील राजा केतुमाल थे॥ १५—१७॥ हे विप्र! अब उनके जम्बूद्वीपके विभाग सुनो। पिता आग्नीध्रने दक्षिणकी ओरका हिमवर्ष [जिसे अब भारतवर्ष कहते हैं] नाभिको दिया॥ १८॥ इसी प्रकार किम्पुरुषको हेमकूटवर्ष तथा हरिवर्षको तीसरा नैषधवर्ष दिया॥ १९॥ जिसके मध्यमें मेरुपर्वत है वह इलावृतवर्ष उन्होंने इलावृतको दिया तथा नीलाचलसे लगा हुआ वर्ष रम्यको दिया॥ २०॥

पिता आग्नीध्रने उसका उत्तरवर्ती श्वेतवर्ष हिरण्वान्‌को दिया तथा जो वर्ष शृंगवान्‌पर्वतके उत्तरमें स्थित है वह कुरुको और जो मेरुके पूर्वमें स्थित है वह भद्राश्वको दिया तथा केतुमालको गन्धमादनवर्ष दिया। इस प्रकार राजा आग्नीध्रने अपने पुत्रोंको ये वर्ष दिये॥ २१—२३॥ हे मैत्रेय! अपने पुत्रोंको इन वर्षोंमें अभिषिक्त कर वे तपस्याके लिये शालग्राम नामक महापवित्र क्षेत्रको चले गये॥ २४॥

हे महामुने! किम्पुरुष आदि जो आठ वर्ष हैं उनमें सुखकी बहुलता है और बिना यत्नके स्वभावसे ही समस्त भोग-सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं॥ २५॥ उनमें किसी प्रकारके विपर्यय (असुख या अकाल-मृत्यु आदि) तथा जरा-मृत्यु आदिका कोई भय नहीं होता और न धर्म, अधर्म अथवा उत्तम, अधम और मध्यम आदिका ही भेद है। उन आठ वर्षोंमें कभी कोई युगपरिवर्तन भी नहीं होता॥ २६॥

महात्मा नाभिका हिम नामक वर्ष था; उनके मेरुदेवीसे अतिशय कान्तिमान् ऋषभ नामक पुत्र हुआ॥ २७॥ ऋषभजीसे भरतका जन्म हुआ जो उनके सौ पुत्रोंमें सबसे बड़े थे। महाभाग पृथिवीपति ऋषभदेवजी धर्मपूर्वक राज्य-शासन तथा विविध यज्ञोंका अनुष्ठान करनेके अनन्तर अपने वीर पुत्र भरतको राज्याधिकार सौंपकर तपस्याके लिये पुलहाश्रमको चले गये॥ २८-२९॥ महाराज ऋषभने वहाँ भी वानप्रस्थ-आश्रमकी विधिसे रहते हुए निश्चयपूर्वक तपस्या की तथा नियमानुकूल यज्ञानुष्ठान किये॥ ३०॥ वे तपस्याके कारण सूखकर अत्यन्त कृश हो गये और उनके शरीरकी शिराएँ (रक्तवाहिनी नाड़ियाँ) दिखायी देने लगीं। अन्तमें अपने मुखमें एक पत्थरकी बटिया रखकर उन्होंने नग्नावस्थामें महाप्रस्थान किया॥ ३१॥

पिता ऋषभदेवजीने वन जाते समय अपना राज्य भरतजीको दिया था; अतः तबसे यह (हिमवर्ष) इस लोकमें भारतवर्ष नामसे प्रसिद्ध हुआ॥ ३२॥ भरतजीके सुमति नामक परम धार्मिक पुत्र हुआ। पिता भरतने यज्ञानुष्ठानपूर्वक यथेच्छ राज्य-सुख भोगकर उसे सुमतिको सौंप दिया॥ ३३॥ हे मुने! महाराज भरतने पुत्रको राज्यलक्ष्मी सौंपकर योगाभ्यासमें तत्पर हो अन्तमें शालग्रामक्षेत्रमें अपने प्राण छोड़ दिये॥ ३४॥ फिर इन्होंने योगियोंके पवित्र कुलमें ब्राह्मणरूपसे जन्म लिया। हे मैत्रेय! इनका वह चरित्र मैं तुमसे फिर कहूँगा॥ ३५॥

तदनन्तर सुमतिके वीर्यसे इन्द्रद्युम्नका जन्म हुआ, उससे परमेष्ठी और परमेष्ठीका पुत्र प्रतिहार हुआ॥ ३६॥ प्रतिहारके प्रतिहर्ता नामसे विख्यात पुत्र उत्पन्न हुआ तथा प्रतिहर्ताका पुत्र भव, भवका उद्‌गीथ और उद्‌गीथका पुत्र अति समर्थ प्रस्ताव हुआ॥ ३७॥ प्रस्तावका पृथु, पृथुका नक्त और नक्तका पुत्र गय हुआ। गयके नर और उसके विराट् नामक पुत्र हुआ॥ ३८॥ उसका पुत्र महावीर्य था, उससे धीमान्‌का जन्म हुआ तथा धीमान्‌का पुत्र महान्त और उसका पुत्र मनस्यु हुआ॥ ३९॥ मनस्युका पुत्र त्वष्टा, त्वष्टाका विरज और विरजका पुत्र रज हुआ। हे मुने! रजके पुत्र शतजित्‌के सौ पुत्र उत्पन्न हुए॥ ४०॥ उनमें विष्वग्ज्योति प्रधान था। उन सौ पुत्रोंसे यहाँकी प्रजा बहुत बढ़ गयी। तब उन्होंने इस भारतवर्षको नौ विभागोंसे विभूषित किया। [अर्थात् वे सब इसको नौ भागोंमें बाँटकर भोगने लगे]॥ ४१॥ उन्हींके वंशधरोंने

पूर्वकालमें कृत-त्रेतादि युगक्रमसे इकहत्तर युगपर्यन्त इस भारतभूमिको भोगा था॥ ४२॥ हे मुने! यही इस वाराहकल्पमें सबसे पहले मन्वन्तराधिप स्वायम्भुवमनुका वंश है, जिसने उस समय इस सम्पूर्ण संसारको व्याप्त किया हुआ था॥ ४३॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके दूसरे अंशमें पहला अध्याय समाप्त॥ १॥

दूसरा अध्याय

भूगोलका विवरण

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे ब्रह्मन्! आपने मुझसे स्वायम्भुवमनुके वंशका वर्णन किया। अब मैं आपके मुखारविन्दसे सम्पूर्ण पृथिवीमण्डलका विवरण सुनना चाहता हूँ॥ १॥ हे मुने! जितने भी सागर, द्वीप, वर्ष, पर्वत, वन, नदियाँ और देवता आदिकी पुरियाँ हैं, उन सबका जितना-जितना परिमाण है, जो आधार है, जो उपादान-कारण है और जैसा आकार है, वह सब आप यथावत् वर्णन कीजिये॥ २-३॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! सुनो, मैं इन सब बातोंका संक्षेपसे वर्णन करता हूँ, इनका विस्तारपूर्वक वर्णन तो सौ वर्षमें भी नहीं हो सकता॥ ४॥ हे द्विज! जम्बू, प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौंच, शाक और सातवाँ पुष्कर—ये सातों द्वीप चारों ओरसे खारे पानी, इक्षुरस, मदिरा, घृत, दधि, दुग्ध और मीठे जलके सात समुद्रोंसे घिरे हुए हैं॥ ५-६॥

हे मैत्रेय! जम्बूद्वीप इन सबके मध्यमें स्थित है और उसके भी बीचोबीचमें सुवर्णमय सुमेरुपर्वत है॥ ७॥ इसकी ऊँचाई चौरासी हजार योजन है और नीचेकी ओर यह सोलह हजार योजन पृथिवीमें घुसा हुआ है। इसका विस्तार ऊपरी भागमें बत्तीस हजार योजन है तथा नीचे (तलैटीमें) केवल सोलह हजार योजन है। इस प्रकार यह पर्वत इस पृथिवीरूप कमलकी कर्णिका (कोश)-के समान है॥ ८—१०॥ इसके दक्षिणमें हिमवान्, हेमकूट और निषध तथा उत्तरमें नील, श्वेत और शृंगी नामक वर्षपर्वत हैं [जो भिन्न-भिन्न वर्षोंका विभाग करते हैं]॥ ११॥ उनमें बीचके दो पर्वत [निषध और नील] एक-एक लाख योजनतक फैले हुए हैं, उनसे दूसरे-दूसरे दस-दस हजार योजन कम हैं। [अर्थात् हेमकूट और श्वेत नब्बे-नब्बे हजार योजन तथा हिमवान् और शृंगी अस्सी-अस्सी सहस्र योजनतक फैले हुए हैं।] वे सभी दो-दो सहस्र योजन ऊँचे और इतने ही चौड़े हैं॥ १२॥

हे द्विज! मेरुपर्वतके दक्षिणकी ओर पहला भारतवर्ष है तथा दूसरा किम्पुरुषवर्ष और तीसरा हरिवर्ष है॥ १३॥ उत्तरकी ओर प्रथम रम्यक, फिर हिरण्मय और तदनन्तर उत्तरकुरुवर्ष है जो [द्वीपमण्डलकी सीमापर होनेके कारण] भारतवर्षके समान [धनुषाकार] है॥ १४॥ हे द्विजश्रेष्ठ! इनमेंसे प्रत्येकका विस्तार नौ-नौ हजार योजन है तथा इन सबके बीचमें इलावृतवर्ष है जिसमें सुवर्णमय सुमेरुपर्वत खड़ा हुआ है॥ १५॥ हे महाभाग! यह इलावृतवर्ष सुमेरुके चारों ओर नौ हजार योजनतक फैला हुआ है। इसके चारों ओर चार पर्वत हैं॥ १६॥ ये चारों पर्वत मानो सुमेरुको धारण करनेके लिये ईश्वरकृत कीलियाँ हैं [क्योंकि इनके बिना ऊपरसे विस्तृत और मूलमें

संकुचित होनेके कारण सुमेरुके गिरनेकी सम्भावना है]। इनमेंसे मन्दराचल पूर्वमें, गन्धमादन दक्षिणमें, विपुल पश्चिममें और सुपार्श्व उत्तरमें है। ये सभी दस-दस हजार योजन ऊँचे हैं॥ १७-१८॥ इनपर पर्वतोंकी ध्वजाओंके समान क्रमशः ग्यारह-ग्यारह सौ योजन ऊँचे कदम्ब, जम्बू, पीपल और वटके वृक्ष हैं॥ १९॥

हे महामुने! इनमें जम्बू (जामुन) वृक्ष जम्बूद्वीपके नामका कारण है। उसके फल महान् गजराजके समान बड़े होते हैं। जब वे पर्वतपर गिरते हैं तो फटकर सब ओर फैल जाते हैं॥ २०॥ उनके रससे निकली जम्बू नामकी प्रसिद्ध नदी वहाँ बहती है, जिसका जल वहाँके रहनेवाले पीते हैं॥ २१॥ उसका पान करनेसे वहाँके शुद्धचित्त लोगोंको पसीना, दुर्गन्ध, बुढ़ापा अथवा इन्द्रियक्षय नहीं होता॥ २२॥ उसके किनारेकी मृत्तिका उस रससे मिलकर मन्द-मन्द वायुसे सूखनेपर जाम्बूनद नामक सुवर्ण हो जाती है, जो सिद्ध पुरुषोंका भूषण है॥ २३॥ मेरुके पूर्वमें भद्राश्ववर्ष और पश्चिममें केतुमालवर्ष है तथा हे मुनिश्रेष्ठ! इन दोनोंके बीचमें इलावृतवर्ष है॥ २४॥ इसी प्रकार उसके पूर्वकी ओर चैत्ररथ, दक्षिणकी ओर गन्धमादन, पश्चिमकी ओर वैभ्राज और उत्तरकी ओर नन्दन नामक वन है॥ २५॥ तथा सर्वदा देवताओंसे सेवनीय अरुणोद, महाभद्र, असितोद और मानस—ये चार सरोवर हैं॥ २६॥

हे मैत्रेय! शीताम्भ, कुमुन्द, कुररी, माल्यवान् तथा वैकंक आदि पर्वत [भूपद्मकी कर्णिकारूप] मेरुके पूर्व-दिशाके केसराचल हैं॥ २७॥ त्रिकूट, शिशिर, पतंग, रुचक और निषाद आदि केसराचल उसके दक्षिण ओर हैं॥ २८॥ शिखिवासा, वैडूर्य, कपिल, गन्धमादन और जारुधि आदि उसके पश्चिमीय केसरपर्वत हैं॥ २९॥ तथा मेरुके अति समीपस्थ इलावृतवर्षमें और जठरादि देशोंमें स्थित शंखकूट, ऋषभ, हंस, नाग तथा कालंज आदि पर्वत उत्तरदिशाके केसराचल हैं॥ ३०॥

हे मैत्रेय! मेरुके ऊपर अन्तरिक्षमें चौदह सहस्र योजनके विस्तारवाली ब्रह्माजीकी महापुरी (ब्रह्मपुरी) है॥ ३१॥ उसके सब ओर दिशा एवं विदिशाओंमें इन्द्रादि लोकपालोंके आठ अति रमणीक और विख्यात नगर हैं॥ ३२॥ विष्णुपादोद्भवा श्रीगंगाजी चन्द्रमण्डलको चारों ओरसे आप्लावित कर स्वर्गलोकसे ब्रह्मपुरीमें गिरती हैं॥ ३३॥ वहाँ गिरनेपर वे चारों दिशाओंमें क्रमसे सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा नामसे चार भागोंमें विभक्त हो जाती हैं॥ ३४॥ उनमेंसे सीता पूर्वकी ओर आकाश-मार्गसे एक पर्वतसे दूसरे पर्वतपर जाती हुई अन्तमें पूर्वस्थित भद्राश्ववर्षको पारकर समुद्रमें मिल जाती है॥ ३५॥ इसी प्रकार, हे महामुने! अलकनन्दा दक्षिण-दिशाकी ओर भारतवर्षमें आती है और सात भागोंमें विभक्त होकर समुद्रमें मिल जाती है॥ ३६॥ चक्षु पश्चिमदिशाके समस्त पर्वतोंको पारकर केतुमाल नामक वर्षमें बहती हुई अन्तमें सागरमें जा गिरती है॥ ३७॥ तथा हे महामुने! भद्रा उत्तरके पर्वतों और उत्तरकुरुवर्षको पार करती हुई उत्तरीय समुद्रमें मिल जाती है॥ ३८॥ माल्यवान् और गन्धमादनपर्वत उत्तर तथा दक्षिणकी ओर नीलाचल और निषधपर्वततक फैले हुए हैं। उन दोनोंके बीचमें कर्णिकाकार मेरुपर्वत स्थित है॥ ३९॥

हे मैत्रेय! मर्यादापर्वतोंके बहिर्भागमें स्थित भारत, केतुमाल, भद्राश्व और कुरुवर्ष इस लोकपद्मके पत्तोंके समान हैं॥ ४०॥ जठर और देवकूट—ये दोनों मर्यादापर्वत हैं जो उत्तर और दक्षिणकी ओर नील तथा निषधपर्वततक फैले हुए हैं॥ ४१॥ पूर्व और पश्चिमकी ओर फैले हुए

गन्धमादन और कैलास—ये दो पर्वत जिनका विस्तार अस्सी योजन है, समुद्रके भीतर स्थित हैं॥ ४२॥ पूर्वके समान मेरुकी पश्चिम ओर भी निषध और पारियात्र नामक दो मर्यादापर्वत स्थित हैं॥ ४३॥ उत्तरकी ओर त्रिशृंग और जारुधि नामक वर्षपर्वत हैं। ये दोनों पूर्व और पश्चिमकी ओर समुद्रके गर्भमें स्थित हैं॥ ४४॥ इस प्रकार, हे मुनिवर! तुमसे जठर आदि मर्यादापर्वतोंका वर्णन किया, जिनमेंसे दो-दो मेरुकी चारों दिशाओंमें स्थित हैं॥ ४५॥

हे मुने! मेरुके चारों ओर स्थित जिन शीतान्त आदि केसरपर्वतोंके विषयमें तुमसे कहा था, उनके बीचमें सिद्ध-चारणादिसे सेवित अति सुन्दर कन्दराएँ हैं॥ ४६॥ हे मुनिसत्तम! उनमें सुरम्य नगर तथा उपवन हैं और लक्ष्मी, विष्णु, अग्नि एवं सूर्य आदि देवताओंके अत्यन्त सुन्दर मन्दिर हैं जो सदा किन्नरश्रेष्ठोंसे सेवित रहते हैं॥ ४७॥ उन सुन्दर पर्वत-द्रोणियोंमें गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, दैत्य और दानवादि अहर्निश क्रीडा करते हैं॥ ४८॥ हे मुने! ये सम्पूर्ण स्थान भौम (पृथिवीके) स्वर्ग कहलाते हैं; ये धार्मिक पुरुषोंके निवासस्थान हैं। पापकर्मा पुरुष इनमें सौ जन्ममें भी नहीं जा सकते॥ ४९॥

हे द्विज! श्रीविष्णुभगवान् भद्राश्ववर्षमें हयग्रीवरूपसे, केतुमालवर्षमें वराहरूपसे और भारतवर्षमें कूर्मरूपसे रहते हैं॥ ५०॥ तथा वे भक्तप्रतिपालक श्रीगोविन्द कुरुवर्षमें मत्स्यरूपसे रहते हैं। इस प्रकार वे सर्वमय सर्वगामी हरि विश्वरूपसे सर्वत्र ही रहते हैं। हे मैत्रेय! वे सबके आधारभूत और सर्वात्मक हैं॥ ५१-५२॥ हे महामुने! किम्पुरुष आदि जो आठ वर्ष हैं उनमें शोक, श्रम, उद्वेग और क्षुधाका भय आदि कुछ भी नहीं है॥ ५३॥ वहाँकी प्रजा स्वस्थ, आतंकहीन और समस्त दुःखोंसे रहित है तथा वहाँके लोग दस-बारह हजार वर्षकी स्थिर आयुवाले होते हैं॥ ५४॥ उनमें वर्षा कभी नहीं होती, केवल पार्थिव जल ही है और न उन स्थानोंमें कृतत्रेतादि युगोंकी ही कल्पना है॥ ५५॥ हे द्विजोत्तम! इन सभी वर्षोंमें सात-सात कुलपर्वत हैं और उनसे निकली हुई सैकड़ों नदियाँ हैं॥ ५६॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके दूसरे अंशमें दूसरा अध्याय समाप्त॥ २॥

तीसरा अध्याय

भारतादि नौ खण्डोंका विभाग

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! जो समुद्रके उत्तर तथा हिमालयके दक्षिणमें स्थित है वह देश भारतवर्ष कहलाता है। उसमें भरतकी सन्तान बसी हुई है॥ १॥ हे महामुने! इसका विस्तार नौ हजार योजन है। यह स्वर्ग और अपवर्ग प्राप्त करनेवालोंकी कर्मभूमि है॥ २॥ इसमें महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्ष, विन्ध्य और पारियात्र—ये सात कुलपर्वत हैं॥ ३॥ हे मुने! इसी देशमें मनुष्य शुभकर्मोंद्वारा स्वर्ग अथवा मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं और यहींसे [पाप-कर्मोंमें प्रवृत्त होनेपर] वे नरक अथवा तिर्यग्योनिमें पड़ते हैं॥ ४॥ यहींसे [कर्मानुसार] स्वर्ग, मोक्ष, अन्तरिक्ष अथवा पाताल आदि लोकोंको प्राप्त किया जा सकता है, पृथिवीमें यहाँके सिवा और कहीं भी मनुष्यके लिये कर्मकी विधि नहीं है॥ ५॥

इस भारतवर्षके नौ भाग हैं; उनके नाम ये हैं—इन्द्रद्वीप, कसेरु, ताम्रपर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गन्धर्व और वारुण तथा यह समुद्रसे घिरा हुआ द्वीप उनमें नवाँ है॥ ६-७॥ यह द्वीप उत्तरसे दक्षिणतक सहस्र योजन है। इसके पूर्वीय भागमें किरातलोग और पश्चिमीयमें यवन बसे हुए हैं॥ ८॥ तथा यज्ञ, युद्ध और व्यापार आदि अपने-अपने कर्मोंकी व्यवस्थाके अनुसार आचरण करते हुए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रगण वर्णविभागानुसार मध्यमें रहते हैं॥ ९॥ हे मुने! इसकी शतद्रू और चन्द्रभागा आदि नदियाँ हिमालयकी तलैटीसे वेद और स्मृति आदि पारियात्र पर्वतसे, नर्मदा और सुरसा आदि विन्ध्याचलसे तथा तापी, पयोष्णी और निर्विन्ध्या आदि ऋक्षगिरिसे निकली हैं॥ १०-११॥ गोदावरी, भीमरथी और कृष्णवेणी आदि पापहारिणी नदियाँ सह्यपर्वतसे उत्पन्न हुई कही जाती हैं॥ १२॥ कृतमाला और ताम्रपर्णी आदि मलयाचलसे, त्रिसामा और आर्यकुल्या आदि महेन्द्रगिरिसे तथा ऋषिकुल्या और कुमारी आदि नदियाँ शुक्तिमान् पर्वतसे निकली हैं। इनकी और भी सहस्रों शाखा नदियाँ और उपनदियाँ हैं॥ १३-१४॥

इन नदियोंके तटपर कुरु, पांचाल और मध्यदेशादिके रहनेवाले, पूर्वदेश और कामरूपके निवासी, पुण्ड्र, कलिंग, मगध और दाक्षिणात्यलोग, अपरान्तदेशवासी, सौराष्ट्रगण तथा शूर, आभीर और अर्बुदगण, कारूष, मालव और पारियात्रनिवासी, सौवीर, सैन्धव, हूण, साल्व और कोशल-देशवासी तथा माद्र, आराम, अम्बष्ठ और पारसीगण रहते हैं॥ १५—१७॥ हे महाभाग! वे लोग सदा आपसमें मिलकर रहते हैं और इन्हींका जल पान करते हैं। इनकी सन्निधिके कारण वे बड़े हृष्ट-पुष्ट रहते हैं॥ १८॥

हे मुने! इस भारतवर्षमें ही सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि नामक चार युग हैं, अन्यत्र कहीं नहीं॥ १९॥ इस देशमें परलोकके लिये मुनिजन तपस्या करते हैं, याज्ञिकलोग यज्ञानुष्ठान करते हैं और दानीजन आदरपूर्वक दान देते हैं॥ २०॥ जम्बूद्वीपमें यज्ञमय यज्ञपुरुष भगवान् विष्णुका सदा यज्ञोंद्वारा यजन किया जाता है, इसके अतिरिक्त अन्य द्वीपोंमें उनकी और-और प्रकारसे उपासना होती है॥ २१॥ हे महामुने! इस जम्बूद्वीपमें भी भारतवर्ष सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि यह कर्मभूमि है इसके अतिरिक्त अन्यान्य देश भोग-भूमियाँ हैं॥ २२॥ हे सत्तम! जीवको सहस्रों जन्मोंके अनन्तर महान् पुण्योंका उदय होनेपर ही कभी इस देशमें मनुष्य-जन्म प्राप्त होता है॥ २३॥ देवगण भी निरन्तर यही गान करते हैं कि 'जिन्होंने स्वर्ग और अपवर्गके मार्गभूत भारतवर्षमें जन्म लिया है वे पुरुष हम देवताओंकी अपेक्षा भी अधिक धन्य (बड़भागी) हैं॥ २४॥ जो लोग इस कर्मभूमिमें जन्म लेकर अपने फलाकांक्षासे रहित कर्मोंको परमात्मस्वरूप श्रीविष्णुभगवान्‌को अर्पण करनेसे निर्मल (पापपुण्यसे रहित) होकर उन अनन्तमें ही लीन हो जाते हैं [वे धन्य हैं!]॥ २५॥

'पता नहीं, अपने स्वर्गप्रदकर्मोंका क्षय होनेपर हम कहाँ जन्म ग्रहण करेंगे! धन्य तो वे ही मनुष्य हैं जो भारतभूमिमें उत्पन्न होकर इन्द्रियोंकी शक्तिसे हीन नहीं हुए हैं'॥ २६॥

हे मैत्रेय! इस प्रकार लाख योजनके विस्तारवाले नववर्ष-विशिष्ट इस जम्बूद्वीपका मैंने तुमसे संक्षेपसे वर्णन किया॥ २७॥ हे मैत्रेय! इस जम्बूद्वीपको बाहर चारों ओरसे लाख योजनके विस्तारवाले वलयाकार खारे पानीके समुद्रने घेरा हुआ है॥ २८॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके दूसरे अंशमें तीसरा अध्याय समाप्त॥ ३॥

चौथा अध्याय

प्लक्ष तथा शाल्मल आदि द्वीपोंका विशेष वर्णन

श्रीपराशरजी बोले—जिस प्रकार जम्बूद्वीप क्षारसमुद्रसे घिरा हुआ है उसी प्रकार क्षारसमुद्रको घेरे हुए प्लक्षद्वीप स्थित है॥ १॥ जम्बूद्वीपका विस्तार एक लक्ष योजन है; और हे ब्रह्मन्! प्लक्षद्वीपका उससे दूना कहा जाता है॥ २॥ प्लक्षद्वीपके स्वामी मेधातिथिके सात पुत्र हुए। उनमें सबसे बड़ा शान्तहय था और उससे छोटा शिशिर॥ ३॥ उनके अनन्तर क्रमश: सुखोदय, आनन्द, शिव और क्षेमक थे तथा सातवाँ ध्रुव था। ये सब प्लक्षद्वीपके अधीश्वर हुए॥ ४॥ [उनके अपने-अपने अधिकृत वर्षोंमें] प्रथम शान्तहयवर्ष है तथा अन्य शिशिरवर्ष, सुखोदयवर्ष, आनन्दवर्ष, शिववर्ष, क्षेमकवर्ष और ध्रुववर्ष हैं॥ ५॥ तथा उनकी मर्यादा निश्चित करनेवाले अन्य सात पर्वत हैं। हे मुनिश्रेष्ठ! उनके नाम ये हैं, सुनो— ॥ ६॥ गोमेद, चन्द्र, नारद, दुन्दुभि, सोमक, सुमना और सातवाँ वैभ्राज॥ ७॥

इन अति सुरम्य वर्ष-पर्वतों और वर्षोंमें देवता और गन्धर्वोंके सहित सदा निष्पाप प्रजा निवास करती है॥ ८॥ वहाँके निवासीगण पुण्यवान् होते हैं और वे चिरकालतक जीवित रहकर मरते हैं; उनको किसी प्रकारकी आधि-व्याधि नहीं होती, निरन्तर सुख ही रहता है॥ ९॥ उन वर्षोंकी सात ही समुद्रगामिनी नदियाँ हैं। उनके नाम मैं तुम्हें बतलाता हूँ जिनके श्रवणमात्रसे वे पापोंको दूर कर देती हैं॥ १०॥ वहाँ अनुतप्ता, शिखी, विपाशा, त्रिदिवा, अक्लमा, अमृता और सुकृता— ये ही सात नदियाँ हैं॥ ११॥

यह मैंने तुमसे प्रधान-प्रधान पर्वत और नदियोंका वर्णन किया है; वहाँ छोटे-छोटे पर्वत और नदियाँ तो और भी सहस्रों हैं। उस देशके हृष्ट-पुष्ट लोग सदा उन नदियोंका जल पान करते हैं॥ १२॥ हे द्विज! उन लोगोंमें ह्रास अथवा वृद्धि नहीं होती और न उन सात वर्षोंमें युगकी ही कोई अवस्था है॥ १३॥ हे महामते! हे ब्रह्मन्! प्लक्षद्वीपसे लेकर शाकद्वीपपर्यन्त छहों द्वीपोंमें सदा त्रेतायुगके समान समय रहता है॥ १४॥ इन द्वीपोंके मनुष्य सदा नीरोग रहकर पाँच हजार वर्षतक जीते हैं और इनमें वर्णाश्रम-विभागानुसार पाँचों धर्म (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह) वर्तमान रहते हैं॥ १५॥

वहाँ जो चार वर्ण हैं वह मैं तुमको सुनाता हूँ॥ १६॥ हे मुनिसत्तम! उस द्वीपमें जो आर्यक, कुरर, विदिश्य और भावी नामक जातियाँ हैं; वे ही क्रमसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं॥ १७॥ हे द्विजोत्तम! उसीमें जम्बूवृक्षके ही परिमाणवाला एक प्लक्ष (पाकर)-का वृक्ष है, जिसके नामसे उसकी संज्ञा प्लक्षद्वीप हुई है॥ १८॥ वहाँ आर्यकादि वर्णोंद्वारा जगत्स्रष्टा, सर्वरूप, सर्वेश्वर भगवान् हरिका सोमरूपसे यजन किया जाता है॥ १९॥ प्लक्षद्वीप अपने ही बराबर परिमाणवाले वृत्ताकार इक्षुरसके समुद्रसे घिरा हुआ है॥ २०॥ हे मैत्रेय! इस प्रकार मैंने तुमसे संक्षेपमें प्लक्षद्वीपका वर्णन किया, अब तुम शाल्मलद्वीपका विवरण सुनो॥ २१॥

शाल्मलद्वीपके स्वामी वीरवर वपुष्मान् थे। उनके पुत्रोंके नाम सुनो—हे महामुने! वे श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित, वैद्युत, मानस और सुप्रभ थे। उनके सात वर्ष उन्हींके नामानुसार संज्ञावाले हैं॥ २२-२३॥ यह (प्लक्षद्वीपको घेरनेवाला) इक्षुरसका समुद्र अपनेसे दूने विस्तारवाले इस शाल्मलद्वीपसे चारों ओरसे घिरा हुआ है॥ २४॥

वहाँ भी रत्नोंके उद्भवस्थानरूप सात पर्वत हैं, जो उसके सातों वर्षोंके विभाजक हैं तथा सात नदियाँ हैं॥ २५ ॥ पर्वतोंमें पहला कुमुद, दूसरा उन्नत और तीसरा बलाहक है तथा चौथा द्रोणाचल है, जिसमें नाना प्रकारकी महौषधियाँ हैं॥ २६ ॥ पाँचवाँ कंक, छठा महिष और सातवाँ गिरिवर ककुद्मान् है। अब नदियोंके नाम सुनो॥ २७ ॥

वे योनि, तोया, वितृष्णा, चन्द्रा, मुक्ता, विमोचनी और निवृत्ति हैं तथा स्मरणमात्रसे ही सारे पापोंको शान्त कर देनेवाली हैं॥ २८ ॥ श्वेत, हरित, वैद्युत, मानस, जीमूत, रोहित और अति शोभायमान सुप्रभ—ये उसके चारों वर्णोंसे युक्त सात वर्ष हैं॥ २९ ॥ हे महामुने! शाल्मलद्वीपमें कपिल, अरुण, पीत और कृष्ण—ये चार वर्ण निवास करते हैं जो पृथक्-पृथक् क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं। ये यजनशील लोग सबके आत्मा, अव्यय और यज्ञके आश्रय वायुरूप विष्णुभगवान्‌का श्रेष्ठ यज्ञोंद्वारा यजन करते हैं॥ ३०-३१ ॥ इस अत्यन्त मनोहर द्वीपमें देवगण सदा विराजमान रहते हैं। इसमें शाल्मल (सेमल)-का एक महान् वृक्ष है जो अपने नामसे ही अत्यन्त शान्तिदायक है॥ ३२ ॥ यह द्वीप अपने समान ही विस्तारवाले एक मदिराके समुद्रसे सब ओरसे पूर्णतया घिरा हुआ है॥ ३३ ॥ और यह सुरासमुद्र शाल्मलद्वीपसे दूने विस्तारवाले कुशद्वीपद्वारा सब ओरसे परिवेष्टित है॥ ३४ ॥

कुशद्वीपमें [वहाँके अधिपति] ज्योतिष्मान्‌के सात पुत्र थे, उनके नाम सुनो। वे उद्भिद, वेणुमान्, वैरथ, लम्बन, धृति, प्रभाकर और कपिल थे। उनके नामानुसार ही वहाँके वर्षोंके नाम पड़े॥ ३५-३६ ॥ उसमें दैत्य और दानवोंके सहित मनुष्य तथा देव, गन्धर्व, यक्ष और किन्नर आदि निवास करते हैं॥ ३७ ॥ हे महामुने! वहाँ भी अपने-अपने कर्मोंमें तत्पर दमी, शुष्मी, स्नेह और मन्देह नामक चार ही वर्ण हैं, जो क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ही हैं॥ ३८-३९ ॥ अपने प्रारब्धक्षयके निमित्त शास्त्रानुकूल कर्म करते हुए वहाँ कुशद्वीपमें ही वे ब्रह्मरूप जनार्दनकी उपासनाद्वारा अपने प्रारब्धफलके देनेवाले अत्युग्र अहंकारका क्षय करते हैं॥ ४० ॥ हे महामुने! उस द्वीपमें विद्रुम, हेमशैल, द्युतिमान्, पुष्पवान्, कुशेशय, हरि और सातवाँ मन्दराचल—ये सात वर्षपर्वत हैं। तथा उसमें सात ही नदियाँ हैं, उनके नाम क्रमशः सुनो— ॥ ४१-४२ ॥ वे धूतपापा, शिवा, पवित्रा, सम्मति, विद्युत्, अम्भा और मही हैं। ये सम्पूर्ण पापोंको हरनेवाली हैं॥ ४३ ॥ वहाँ और भी सहस्रों छोटी-छोटी नदियाँ और पर्वत हैं। कुशद्वीपमें एक कुशका झाड़ है। उसीके कारण इसका यह नाम पड़ा है॥ ४४ ॥ यह द्वीप अपने ही बराबर विस्तारवाले घीके समुद्रसे घिरा हुआ है और वह घृत-समुद्र क्रौंचद्वीपसे परिवेष्टित है॥ ४५ ॥

हे महाभाग! अब इसके अगले क्रौंचनामक महाद्वीपके विषयमें सुनो, जिसका विस्तार कुशद्वीपसे दूना है॥ ४६ ॥ क्रौंचद्वीपमें महात्मा द्युतिमान्‌के जो पुत्र थे; उनके नामानुसार ही महाराज द्युतिमान्‌ने उनके वर्षोंके नाम रखे॥ ४७ ॥ हे मुने! उसके कुशल, मन्दग, उष्ण, पीवर, अन्धकारक, मुनि और दुन्दुभि—ये सात पुत्र थे॥ ४८ ॥ वहाँ भी देवता और गन्धर्वोंसे सेवित अति मनोहर सात वर्षपर्वत हैं। हे महाबुद्धे! उनके नाम सुनो— ॥ ४९ ॥ उनमें पहला क्रौंच, दूसरा वामन, तीसरा अन्धकारक, चौथा घोड़ीके मुखके समान रत्नमय स्वाहिनी पर्वत, पाँचवाँ दिवावृत्, छठा पुण्डरीकवान् और सातवाँ महापर्वत दुन्दुभि है। वे द्वीप परस्पर एक-दूसरेसे दूने हैं; और उन्हींकी भाँति उनके पर्वत भी [उत्तरोत्तर द्विगुण] हैं॥ ५०-५१ ॥ इन सुरम्य वर्षों और पर्वतश्रेष्ठोंमें

देवगणोंके सहित सम्पूर्ण प्रजा निर्भय होकर रहती है॥ ५२॥ हे महामुने! वहाँके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र क्रमसे पुष्कर, पुष्कल, धन्य और तिष्य कहलाते हैं॥ ५३॥ हे मैत्रेय! वहाँ जिनका जल पान किया जाता है उन नदियोंका विवरण सुनो। उस द्वीपमें सात प्रधान तथा अन्य सैकड़ों क्षुद्र नदियाँ हैं॥ ५४॥ वे सात वर्षनदियाँ गौरी, कुमुद्वती, सन्ध्या, रात्रि, मनोजवा, क्षान्ति और पुण्डरीका हैं॥ ५५॥ वहाँ भी रुद्ररूपी जनार्दन भगवान् विष्णुकी पुष्करादि वर्णोंद्वारा यज्ञादिसे पूजा की जाती है॥ ५६॥ यह क्रौंचद्वीप चारों ओरसे अपने तुल्य परिमाणवाले दधिमण्ड (मट्ठे)-के समुद्रसे घिरा हुआ है॥ ५७॥ और हे महामुने! यह मट्ठेका समुद्र भी शाकद्वीपसे घिरा हुआ है, जो विस्तारमें क्रौंचद्वीपसे दूना है॥ ५८॥

शाकद्वीपके राजा महात्मा भव्यके भी सात ही पुत्र थे। उनको भी उन्होंने पृथक्-पृथक् सात वर्ष दिये॥ ५९॥ वे सात पुत्र जलद, कुमार, सुकुमार, मरीचक, कुसुमोद, मौदाकि और महाद्रुम थे। उन्हींके नामानुसार वहाँ क्रमशः सात वर्ष हैं और वहाँ भी वर्षोंका विभाग करनेवाले सात ही पर्वत हैं॥ ६०-६१॥ हे द्विज! वहाँ पहला पर्वत उदयाचल है और दूसरा जलाधार; तथा अन्य पर्वत रैवतक, श्याम, अस्ताचल, आम्बिकेय और अति सुरम्य गिरिश्रेष्ठ केसरी हैं॥ ६२॥ वहाँ सिद्ध और गन्धर्वोंसे सेवित एक अति महान् शाकवृक्ष है, जिसके वायुका स्पर्श करनेसे हृदयमें परम आह्लाद उत्पन्न होता है॥ ६३॥ वहाँ चातुर्वर्ण्यसे युक्त अति पवित्र देश और समस्त पाप तथा भयको दूर करनेवाली सुकुमारी, कुमारी, नलिनी, धेनुका, इक्षु, वेणुका और गभस्ती—ये सात महापवित्र नदियाँ हैं॥ ६४-६५॥ हे महामुने! इनके सिवा उस द्वीपमें और भी सैकड़ों छोटी-छोटी नदियाँ और सैकड़ों-हजारों पर्वत हैं॥ ६६॥ स्वर्ग-भोगके अनन्तर जिन्होंने पृथिवी-तलपर आकर जलद आदि वर्षोंमें जन्म ग्रहण किया है वे लोग प्रसन्न होकर उनका जल पान करते हैं॥ ६७॥ उन सातों वर्षोंमें धर्मका ह्रास पारस्परिक संघर्ष (कलह) अथवा मर्यादाका उल्लंघन कभी नहीं होता॥ ६८॥ वहाँ मग, मागध, मानस और मन्दग—ये चार वर्ण हैं। इनमें मग सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण हैं, मागध क्षत्रिय हैं, मानस वैश्य हैं तथा मन्दग शूद्र हैं॥ ६९॥ हे मुने! शाकद्वीपमें शास्त्रानुकूल कर्म करनेवाले पूर्वोक्त चारों वर्णोंद्वारा संयत चित्तसे विधिपूर्वक सूर्यरूपधारी भगवान् विष्णुकी उपासना की जाती है॥ ७०॥ हे मैत्रेय! वह शाकद्वीप अपने ही बराबर विस्तारवाले मण्डलाकार दुग्धके समुद्रसे घिरा हुआ है॥ ७१॥ और हे ब्रह्मन्! वह क्षीर-समुद्र शाकद्वीपसे दूने परिमाणवाले पुष्करद्वीपसे परिवेष्टित है॥ ७२॥

पुष्करद्वीपमें वहाँके अधिपति महाराज सवनके महावीर और धातकि नामक दो पुत्र हुए। अतः उन दोनोंके नामानुसार उसमें महावीर-खण्ड और धातकी-खण्ड नामक दो वर्ष हैं॥ ७३॥ हे महाभाग! इसमें मानसोत्तर नामक एक ही वर्षपर्वत कहा जाता है जो इसके मध्यमें वलयाकार स्थित है तथा पचास सहस्र योजन ऊँचा और इतना ही सब ओर गोलाकार फैला हुआ है॥ ७४-७५॥ यह पर्वत पुष्करद्वीपरूप गोलेको मानो बीचमेंसे विभक्त कर रहा है और इससे विभक्त होनेसे उसमें दो वर्ष हो गये हैं; उनमेंसे प्रत्येक वर्ष और वह पर्वत वलयाकार ही है॥ ७६-७७॥ वहाँके मनुष्य रोग, शोक और राग-द्वेषादिसे रहित हुए दस सहस्र वर्षतक जीवित रहते हैं॥ ७८॥ हे द्विज! उनमें उत्तम-अधम अथवा वध्य-वधक आदि (विरोधी) भाव नहीं हैं और न उनमें

ईर्ष्या, असूया, भय, द्वेष और लोभादि दोष ही हैं॥ ७९॥ महावीरवर्ष मानसोत्तर पर्वतके बाहरकी ओर है और धातकी-खण्ड भीतरकी ओर। इनमें देव और दैत्य आदि निवास करते हैं॥ ८०॥ दो खण्डोंसे युक्त उस पुष्करद्वीपमें सत्य और मिथ्याका व्यवहार नहीं है और न उसमें पर्वत तथा नदियाँ ही हैं॥ ८१॥ वहाँके मनुष्य और देवगण समान वेष और समान रूपवाले होते हैं। हे मैत्रेय! वर्णाश्रमाचारसे हीन, काम्य कर्मोंसे रहित तथा वेदत्रयी, कृषि, दण्डनीति और शुश्रूषा आदिसे शून्य वे दोनों वर्ष तो मानो अत्युत्तम भौम (पृथिवीके) स्वर्ग हैं॥ ८२-८३॥ हे मुने! उन महावीर और धातकी-खण्ड नामक वर्षोंमें काल (समय) समस्त ऋतुओंमें सुखदायक और जरा तथा रोगादिसे रहित रहता है॥ ८४॥ पुष्करद्वीपमें ब्रह्माजीका उत्तम निवासस्थान एक न्यग्रोध (वट)-का वृक्ष है, जहाँ देवता और दानवादिसे पूजित श्रीब्रह्माजी विराजते हैं॥ ८५॥ पुष्करद्वीप चारों ओरसे अपने ही समान विस्तारवाले मीठे पानीके समुद्रसे मण्डलके समान घिरा हुआ है॥ ८६॥

इस प्रकार सातों द्वीप सात समुद्रोंसे घिरे हुए हैं और वे द्वीप तथा [उन्हें घेरनेवाले] समुद्र परस्पर समान हैं, और उत्तरोत्तर दूने होते गये हैं॥ ८७॥ सभी समुद्रोंमें सदा समान जल रहता है, उसमें कभी न्यूनता अथवा अधिकता नहीं होती॥ ८८॥ हे मुनिश्रेष्ठ! पात्रका जल जिस प्रकार अग्निका संयोग होनेसे उबलने लगता है उसी प्रकार चन्द्रमाकी कलाओंके बढ़नेसे समुद्रका जल भी बढ़ने लगता है॥ ८९॥ शुक्ल और कृष्ण पक्षोंमें चन्द्रमाके उदय और अस्तसे न्यूनाधिक न होते हुए ही जल घटता और बढ़ता है॥ ९०॥ हे महामुने! समुद्रके जलकी वृद्धि और क्षय पाँच सौ दस (५१०) अंगुलतक देखी जाती है॥ ९१॥ हे विप्र! पुष्करद्वीपमें सम्पूर्ण प्रजावर्ग सर्वदा [बिना प्रयत्नके] अपने-आप ही प्राप्त हुए षड्रस भोजनका आहार करते हैं॥ ९२॥

स्वादूदक (मीठे पानीके) समुद्रके चारों ओर लोकनिवाससे शून्य और समस्त जीवोंसे रहित उससे दूनी सुवर्णमयी भूमि दिखायी देती है॥ ९३॥ वहाँ दस सहस्र योजन विस्तारवाला लोकालोक-पर्वत है। वह पर्वत ऊँचाईमें भी उतने ही सहस्र योजन है॥ ९४॥ उसके आगे उस पर्वतको सब ओरसे आवृतकर घोर अन्धकार छाया हुआ है तथा वह अन्धकार चारों ओरसे ब्रह्माण्ड-कटाहसे आवृत है॥ ९५॥ हे महामुने! अण्डकटाहके सहित द्वीप, समुद्र और पर्वतादियुक्त यह समस्त भूमण्डल पचास करोड़ योजन विस्तारवाला है॥ ९६॥ हे मैत्रेय! आकाशादि समस्त भूतोंसे अधिक गुणवाली यह पृथिवी सम्पूर्ण जगत्‌की आधारभूता और उसका पालन तथा उद्भव करनेवाली है॥ ९७॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके दूसरे अंशमें चौथा अध्याय समाप्त॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

सात पाताललोकोंका वर्णन

श्रीपराशरजी बोले—हे द्विज! मैंने तुमसे यह पृथिवीका विस्तार कहा; इसकी ऊँचाई भी सत्तर सहस्र योजन कही जाती है॥ १॥ हे मुनिसत्तम! अतल, वितल, नितल, गभस्तिमान्, महातल, सुतल और पाताल—इन सातोंमेंसे प्रत्येक दस-दस सहस्र योजनकी दूरीपर है॥ २॥

हे मैत्रेय! सुन्दर महलोंसे सुशोभित वहाँकी भूमियाँ शुक्ल, कृष्ण, अरुण और पीत वर्णकी तथा शर्करामयी (कँकरीली), शैली (पत्थरकी) और सुवर्णमयी है॥ ३॥ हे महामुने! उनमें दानव, दैत्य, यक्ष और बड़े-बड़े नाग आदिकोंकी सैकड़ों जातियाँ निवास करती हैं॥ ४॥

एक बार नारदजीने पाताललोकसे स्वर्गमें आकर वहाँके निवासियोंसे कहा था कि 'पाताल तो स्वर्गसे भी अधिक सुन्दर है'॥ ५॥ जहाँ नागगणके आभूषणोंमें सुन्दर प्रभायुक्त आह्लादकारिणी शुभ्र मणियाँ जड़ी हुई हैं उस पातालको किसके समान कहें?॥ ६॥ जहाँ-तहाँ दैत्य और दानवोंकी कन्याओंसे सुशोभित पाताललोकमें किस मुक्त पुरुषकी भी प्रीति न होगी॥ ७॥ जहाँ दिनमें सूर्यकी किरणें केवल प्रकाश ही करती हैं, घाम नहीं करतीं; तथा रातमें चन्द्रमाकी किरणोंसे शीत नहीं होता, केवल चाँदनी ही फैलती है॥ ८॥ जहाँ भक्ष्य, भोज्य और महापानादिके भोगोंसे आनन्दित सर्पों तथा दानवादिकोंको समय जाता हुआ भी प्रतीत नहीं होता॥ ९॥ जहाँ सुन्दर वन, नदियाँ, रमणीय सरोवर और कमलोंके वन हैं, जहाँ नरकोकिलोंकी सुमधुर कूक गूँजती है एवं आकाश मनोहारी है॥ १०॥ और हे द्विज! जहाँ पातालनिवासी दैत्य, दानव एवं नागगणद्वारा अति स्वच्छ आभूषण, सुगन्धमय अनुलेपन, वीणा, वेणु और मृदंगादिके स्वर तथा तूर्य—ये सब एवं भाग्यशालियोंके भोगनेयोग्य और भी अनेक भोग भोगे जाते हैं॥ ११-१२॥

पातालोंके नीचे विष्णुभगवान्‌का शेष नामक जो तमोमय विग्रह है उसके गुणोंका दैत्य अथवा दानवगण भी वर्णन नहीं कर सकते॥ १३॥ जिन देवर्षिपूजित देवका सिद्धगण 'अनन्त' कहकर बखान करते हैं वे अति निर्मल, स्पष्ट स्वस्तिक चिह्नोंसे विभूषित तथा सहस्र सिरवाले हैं॥ १४॥ जो अपने फणोंकी सहस्र मणियोंसे सम्पूर्ण दिशाओंको देदीप्यमान करते हुए संसारके कल्याणके लिये समस्त असुरोंको वीर्यहीन करते रहते हैं॥ १५॥ मदके कारण अरुणनयन, सदैव एक ही कुण्डल पहने हुए तथा मुकुट और माला आदि धारण किये जो अग्नियुक्त श्वेत पर्वतके समान सुशोभित हैं॥ १६॥ मदसे उन्मत्त हुए जो नीलाम्बर तथा श्वेत हारोंसे सुशोभित होकर मेघमाला और गंगाप्रवाहसे युक्त दूसरे कैलास-पर्वतके समान विराजमान हैं॥ १७॥ जो अपने हाथोंमें हल और उत्तम मूसल धारण किये हैं तथा जिनकी उपासना शोभा और वारुणी देवी स्वयं मूर्तिमती होकर करती हैं॥ १८॥ कल्पान्तमें जिनके मुखोंसे विषाग्निशिखाके समान देदीप्यमान संकर्षण नामक रुद्र निकलकर तीनो लोकोंका भक्षण कर जाता है॥ १९॥ व समस्त देवगणोंसे वन्दित शेषभगवान् अशेष भूमण्डलको मुकुटवत् धारण किये हुए पाताल-तलमें विराजमान हैं॥ २०॥ उनका बल-वीर्य, प्रभाव, स्वरूप (तत्त्व) और रूप (आकार) देवताओंसे भी नहीं जाना और कहा जा सकता॥ २१॥ जिनके फणोंकी मणियोंकी आभासे अरुण वर्ण हुई यह समस्त पृथिवी फूलोंकी मालाके समान रखी हुई है उनके बल-वीर्यका वर्णन भला कौन करेगा?॥ २२॥

जिस समय मदमत्तनयन शेषजी जमुहाई लेते हैं उस समय समुद्र और वन आदिके सहित यह सम्पूर्ण पृथिवी चलायमान हो जाती है॥ २३॥ इनके गुणोंका अन्त गन्धर्व, अप्सरा, सिद्ध, किन्नर, नाग और चारण आदि कोई भी नहीं पा सकते; इसलिये ये अविनाशी देव 'अनन्त' कहलाते हैं॥ २४॥ जिनका नाग-वधुओंद्वारा लेपित हरिचन्दन पुनः-पुनः श्वास-वायुसे छूट-छूटकर दिशाओंको सुगन्धित करता

रहता है॥ २५॥ जिनकी आराधनासे पूर्वकालीन महर्षि गर्गने समस्त ज्योतिर्मण्डल (ग्रह-नक्षत्रादि) और शकुन-अपशकुनादि नैमित्तिक फलोंको तत्त्वत: जाना था॥ २६॥ उन नागश्रेष्ठ शेषजीने इस पृथिवीको अपने मस्तकपर धारण किया हुआ है, जो स्वयं भी देव, असुर और मनुष्योंके सहित सम्पूर्ण लोकमाला (पातालादि समस्त लोकों)-को धारण किये हुए हैं॥ २७॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके दूसरे अंशमें पाँचवाँ अध्याय समाप्त॥ ५॥

छठा अध्याय

भिन्न-भिन्न नरकोंका तथा भगवन्नामके माहात्म्यका वर्णन

श्रीपराशरजी बोले—हे विप्र! तदनन्तर पृथिवी और जलके नीचे नरक हैं जिनमें पापी लोग गिराये जाते हैं। हे महामुने! उनका विवरण सुनो॥ १॥ रौरव, सूकर, रोध, ताल, विशसन, महाज्वाल, तप्तकुम्भ, लवण, विलोहित, रुधिराम्भ, वैतरणि, कृमीश, कृमिभोजन, असिपत्रवन, कृष्ण, लालाभक्ष, दारुण, पूयवह, पाप, वह्निज्वाल, अध:शिरा, सन्दंश, कालसूत्र, तमस्, आवीचि, श्वभोजन, अप्रतिष्ठ और अप्रचि—ये सब तथा इनके सिवा और भी अनेकों महाभयंकर नरक हैं, जो यमराजके शासनाधीन हैं और अति दारुण शस्त्रभय तथा अग्निभय देनेवाले हैं और जिनमें जो पुरुष पापरत होते हैं वे ही गिरते हैं॥ २—६॥

जो पुरुष कूटसाक्षी (झूठा गवाह अर्थात् जानकर भी न बतलानेवाला या कुछ-का-कुछ कहनेवाला) होता है अथवा जो पक्षपातसे यथार्थ नहीं बोलता और जो मिथ्याभाषण करता है वह रौरवनरकमें जाता है॥ ७॥ हे मुनिसत्तम! भ्रूण (गर्भ) नष्ट करनेवाले, ग्रामनाशक और गो-हत्यारे लोग रोध नामक नरकमें जाते हैं जो श्वासोच्छ्वासको रोकनेवाला है॥ ८॥ मद्य-पान करनेवाला, ब्रह्मघाती, सुवर्ण चुरानेवाला तथा जो पुरुष इनका संग करता है ये सब सूकरनरकमें जाते हैं॥ ९॥ क्षत्रिय अथवा वैश्यका वध करनेवाला तालनरकमें तथा गुरुस्त्रीके साथ गमन करनेवाला, भगिनीगामी और राजदूतोंको मारनेवाला पुरुष तप्तकुण्डनरकमें पड़ता है॥ १०॥ सती स्त्रीको बेचनेवाला, कारागृहरक्षक, अश्वविक्रेता और भक्तपुरुषका त्याग करनेवाला—ये सब लोग तप्तलोहनरकमें गिरते हैं॥ ११॥ पुत्रवधू और पुत्रीके साथ विषय करनेवाला पुरुष महाज्वालनरकमें गिराया जाता है, तथा जो नराधम गुरुजनोंका अपमान करनेवाला और उनसे दुर्वचन बोलनेवाला होता है तथा जो वेदकी निन्दा करनेवाला, वेद बेचनेवाला या अगम्या स्त्रीसे सम्भोग करता है, हे द्विज! वे सब लवणनरकमें जाते हैं॥ १२-१३॥ चोर तथा मर्यादाका उल्लंघन करनेवाला पुरुष विलोहितनरकमें गिरता है॥ १४॥ देव, द्विज और पितृगणसे द्वेष करनेवाला तथा रत्नको दूषित करनेवाला कृमिभक्षनरकमें और अनिष्ट यज्ञ करनेवाला कृमीशनरकमें जाता है॥ १५॥

जो नराधम पितृगण, देवगण और अतिथियोंको छोड़कर उनसे पहले भोजन कर लेता है वह अति उग्र लालाभक्षनरकमें पड़ता है; और बाण बनानेवाला वेधकनरकमें जाता है॥ १६॥ जो मनुष्य कर्णी नामक बाण बनाते हैं और जो खड्गादि शस्त्र बनानेवाले हैं वे अति दारुण विशसननरकमें गिरते हैं॥ १७॥ असत्-प्रतिग्रह (दूषित उपायोंसे

धन-संग्रह) करनेवाला, अयाज्य-याजक और नक्षत्रोपजीवी (नक्षत्र-विद्याको न जानकर भी उसका ढोंग रचनेवाला) पुरुष अधोमुखनरकमें पड़ता है॥ १८॥ साहस (निष्ठुर कर्म) करनेवाला पुरुष पूयवहनरकमें जाता है, तथा [पुत्र-मित्रादिकी वंचना करके] अकेले ही स्वादु भोजन करनेवाला और लाख, मांस, रस, तिल तथा लवण आदि बेचनेवाला ब्राह्मण भी उसी (पूयवह) नरकमें गिरता है॥ १९-२०॥ हे द्विजश्रेष्ठ! बिलाव, कुक्कुट, छाग, अश्व, शूकर तथा पक्षियोंको [जीविकाके लिये] पालनेसे भी पुरुष उसी नरकमें जाता है॥ २१॥ नट या मल्लवृत्तिसे रहनेवाला, धीवरका कर्म करनेवाला, कुण्ड (उपपतिसे उत्पन्न सन्तान)-का अन्न खानेवाला, विष देनेवाला, चुगलखोर, स्त्रीकी असद्वृत्तिके आश्रय रहनेवाला, धन आदिके लोभसे बिना पर्वके अमावास्या आदि पर्वदिनोंका कार्य करानेवाला द्विज, घरमें आग लगानेवाला, मित्रकी हत्या करनेवाला, शकुन आदि बतानेवाला, ग्रामका पुरोहित तथा सोम (मदिरा) बेचने-वाला—ये सब रुधिरान्धनरकमें गिरते हैं॥ २२-२३॥ यज्ञ अथवा ग्रामको नष्ट करनेवाला पुरुष वैतरणीनरकमें जाता है, तथा जो लोग वीर्यपातादि करनेवाले, खेतोंकी बाड़ तोड़नेवाले, अपवित्र और छलवृत्तिके आश्रय रहनेवाले होते हैं वे कृष्णनरकमें गिरते हैं॥ २४-२५॥

जो वृथा ही वनोंको काटता है वह असिपत्रवननरकमें जाता है। मेषोपजीवी (गड़रिये) और व्याधगण वह्निज्वालनरकमें गिरते हैं तथा हे द्विज! जो कच्चे घड़ों अथवा ईंट आदिको पकानेके लिये उनमें अग्नि डालते हैं, वे भी उस (वह्निज्वालनरक)-में ही जाते हैं॥ २६-२७॥ व्रतोंको लोप करनेवाले तथा अपने आश्रमसे पतित दोनों ही प्रकारके पुरुष सन्दंश नामक नरकमें गिरते हैं॥ २८॥ जिन ब्रह्मचारियोंका दिनमें तथा सोते समय [बुरी भावनासे] वीर्यपात हो जाता है, अथवा जो अपने ही पुत्रोंसे पढ़ते हैं वे लोग श्वभोजननरकमें गिरते हैं॥ २९॥

इस प्रकार, ये तथा अन्य सैकड़ों-हजारों नरक हैं, जिनमें दुष्कर्मी लोग नाना प्रकारकी यातनाएँ भोगा करते हैं॥ ३०॥ इन उपर्युक्त पापोंके समान और भी सहस्रों पाप-कर्म हैं, उनके फल मनुष्य भिन्न-भिन्न नरकोंमें भोगा करते हैं॥ ३१॥ जो लोग अपने वर्णाश्रम-धर्मके विरुद्ध मन, वचन अथवा कर्मसे कोई आचरण करते हैं वे नरकमें गिरते हैं॥ ३२॥ अधोमुखनरकनिवासियोंको स्वर्गलोकमें देवगण दिखायी दिया करते हैं और देवता लोग नीचेके लोकोंमें नारकी जीवोंको देखते हैं॥ ३३॥ पापी लोग नरकभोगके अनन्तर क्रमसे स्थावर, कृमि, जलचर, पक्षी, पशु, मनुष्य, धार्मिक पुरुष, देवगण तथा मुमुक्षु होकर जन्म ग्रहण करते हैं॥ ३४॥ हे महाभाग! मुमुक्षुपर्यन्त इन सबमें दूसरोंकी अपेक्षा पहले प्राणी [संख्यामें] सहस्र गुण अधिक हैं॥ ३५॥ जितने जीव स्वर्गमें हैं उतने ही नरकमें हैं, जो पापी पुरुष [अपने पापका] प्रायश्चित्त नहीं करते वे ही नरकमें जाते हैं॥ ३६॥

भिन्न-भिन्न पापोंके अनुरूप जो-जो प्रायश्चित्त हैं उन्हीं-उन्हींको महर्षियोंने वेदार्थका स्मरण करके बताया है॥ ३७॥ हे मैत्रेय! स्वायम्भुवमनु आदि स्मृतिकारोंने महान् पापोंके लिये महान् और अल्पोंके लिये अल्प प्रायश्चित्तोंकी व्यवस्था की है॥ ३८॥ किन्तु जितने भी तपस्यात्मक और कर्मात्मक प्रायश्चित्त हैं उन सबमें श्रीकृष्णस्मरण सर्वश्रेष्ठ है॥ ३९॥ जिस पुरुषके चित्तमें पाप-कर्मके अनन्तर पश्चात्ताप होता है उसके लिये ही प्रायश्चित्तोंका विधान है। किंतु यह हरिस्मरण तो एकमात्र स्वयं ही परम प्रायश्चित्त है॥ ४०॥

प्रात:काल, सायंकाल, रात्रिमें अथवा मध्याह्नमें किसी भी समय श्रीनारायणका स्मरण करनेसे पुरुषके समस्त पाप तत्काल क्षीण हो जाते हैं॥ ४१॥ श्रीविष्णुभगवान्‌के स्मरणसे समस्त पापराशिके भस्म हो जानेसे पुरुष मोक्षपद प्राप्त कर लेता है, स्वर्ग-लाभ तो उसके लिये विघ्नरूप माना जाता है॥ ४२॥ हे मैत्रेय! जिसका चित्त जप, होम और अर्चनादि करते हुए निरन्तर भगवान् वासुदेवमें लगा रहता है उसके लिये इन्द्रपद आदि फल तो अन्तराय (विघ्न) हैं॥ ४३॥ कहाँ तो पुनर्जन्मके चक्रमें डालनेवाली स्वर्ग-प्राप्ति और कहाँ मोक्षका सर्वोत्तम बीज 'वासुदेव' नामका जप!॥ ४४॥

इसलिये हे मुने! श्रीविष्णुभगवान्‌का अहर्निश स्मरण करनेसे सम्पूर्ण पाप क्षीण हो जानेके कारण मनुष्य फिर नरकमें नहीं जाता॥ ४५॥ चित्तको प्रिय लगनेवाला ही स्वर्ग है और उसके विपरीत (अप्रिय लगनेवाला) ही नरक है। हे द्विजोत्तम! पाप और पुण्यहीके दूसरे नाम नरक और स्वर्ग हैं॥ ४६॥ जब कि एक ही वस्तु सुख और दु:ख तथा ईर्ष्या और कोपका कारण हो जाती है तो उसमें वस्तुता (नियतस्वभावत्व) ही कहाँ है?॥ ४७॥ क्योंकि एक ही वस्तु कभी प्रीतिकी कारण होती है तो वही दूसरे समय दु:खदायिनी हो जाती है और वही कभी क्रोधकी हेतु होती है तो कभी प्रसन्नता देनेवाली हो जाती है॥ ४८॥ अत: कोई भी पदार्थ दु:खमय नहीं है और न कोई सुखमय है। ये सुख-दु:ख तो मनके ही विकार हैं॥ ४९॥ [परमार्थत:] ज्ञान ही परब्रह्म है और [अविद्याकी उपाधिसे] वही बन्धनका कारण है। यह सम्पूर्ण विश्व ज्ञानमय ही है; ज्ञानसे भिन्न और कोई वस्तु नहीं है। हे मैत्रेय! विद्या और अविद्याको भी तुम ज्ञान ही समझो॥ ५०-५१॥

हे द्विज! इस प्रकार मैंने तुमसे समस्त भूमण्डल, सम्पूर्ण पाताललोक और नरकोंका वर्णन कर दिया॥ ५२॥ समुद्र, पर्वत, द्वीप, वर्ष और नदियाँ—इन सभीकी मैंने संक्षेपसे व्याख्या कर दी; अब, तुम और क्या सुनना चाहते हो?॥ ५३॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके दूसरे अंशमें छठा अध्याय समाप्त॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

भूर्भुव: आदि सात ऊर्ध्वलोकोंका वृत्तान्त

श्रीमैत्रेयजी बोले—ब्रह्मन्! आपने मुझसे समस्त भूमण्डलका वर्णन किया। हे मुने! अब मैं भुवर्लोक आदि समस्त लोकोंके विषयमें सुनना चाहता हूँ॥ १॥ हे महाभाग! मुझ जिज्ञासुसे आप ग्रहगणकी स्थिति तथा उनके परिमाण आदिका यथावत् वर्णन कीजिये॥ २॥

श्रीपराशरजी बोले—जितनी दूरतक सूर्य और चन्द्रमाकी किरणोंका प्रकाश जाता है; समुद्र, नदी और पर्वतादिसे युक्त उतना प्रदेश पृथिवी कहलाता है॥ ३॥ हे द्विज! जितना पृथिवीका विस्तार और परिमण्डल (घेरा) है उतना ही विस्तार और परिमण्डल भुवर्लोकका भी है॥ ४॥ हे मैत्रेय! पृथिवीसे एक लाख योजन दूर सूर्यमण्डल है और सूर्यमण्डलसे भी एक लक्ष योजनके अन्तरपर चन्द्रमण्डल है॥ ५॥ चन्द्रमासे पूरे सौ हजार (एक लाख) योजन ऊपर सम्पूर्ण नक्षत्रमण्डल प्रकाशित हो रहा है॥ ६॥

हे ब्रह्मन्! नक्षत्रमण्डलसे दो लाख योजन

ऊपर बुध और बुधसे भी दो लक्ष योजन ऊपर शुक्र स्थित हैं॥ ७॥ शुक्रसे इतनी ही दूरीपर मंगल हैं और मंगलसे भी दो लाख योजन ऊपर बृहस्पतिजी हैं ॥ ८॥ हे द्विजोत्तम! बृहस्पतिजीसे दो लाख योजन ऊपर शनि हैं और शनिसे एक लक्ष योजनके अन्तरपर सप्तर्षिमण्डल है॥ ९॥ तथा सप्तर्षियोंसे भी सौ हजार योजन ऊपर समस्त ज्योतिश्चक्रकी नाभिरूप ध्रुवमण्डल स्थित है॥ १०॥ हे महामुने! मैंने तुमसे यह त्रिलोकीकी उच्चताके विषयमें वर्णन किया। यह त्रिलोकी यज्ञफलकी भोग-भूमि है और यज्ञानुष्ठानकी स्थिति इस भारतवर्षमें ही है॥ ११॥

ध्रुवसे एक करोड़ योजन ऊपर महर्लोक है, जहाँ कल्पान्तपर्यन्त रहनेवाले भृगु आदि सिद्धगण रहते हैं॥ १२॥ हे मैत्रेय! उससे भी दो करोड़ योजन ऊपर जनलोक है जिसमें ब्रह्माजीके प्रख्यात पुत्र निर्मलचित्त सनकादि रहते हैं॥ १३॥ जनलोकसे चौगुना अर्थात् आठ करोड़ योजन ऊपर तपलोक है; वहाँ वैराज नामक देवगणोंका निवास है जिनका कभी दाह नहीं होता॥ १४॥

तपलोकसे छ:गुना अर्थात् बारह करोड़ योजनके अन्तरपर सत्यलोक सुशोभित है जो ब्रह्मलोक भी कहलाता है और जिसमें फिर न मरनेवाले अमरगण निवास करते हैं॥ १५॥ जो भी पार्थिव वस्तु चरणसंचारके योग्य है वह भूर्लोक ही है। उसका विस्तार मैं कह चुका॥ १६॥ हे मुनिश्रेष्ठ! पृथिवी और सूर्यके मध्यमें जो सिद्धगण और मुनिगण-सेवित स्थान है, वही दूसरा भुवर्लोक है॥ १७॥ सूर्य और ध्रुवके बीचमें जो चौदह लक्ष योजनका अन्तर है, उसीको लोकस्थितिका विचार करनेवालोंने स्वर्लोक कहा है॥ १८॥ हे मैत्रेय! ये **(भूः, भुवः, स्वः)** 'कृतक' त्रैलोक्य कहलाते हैं और जन, तप तथा सत्य—ये तीनों 'अकृतक' लोक हैं॥ १९॥ इन कृतक और अकृतक त्रिलोकियोंके मध्यमें महर्लोक कहा जाता है, जो कल्पान्तमें केवल जनशून्य हो जाता है, अत्यन्त नष्ट नहीं होता [इसलिये यह 'कृतकाकृत' कहलाता है]॥ २०॥

हे मैत्रेय! इस प्रकार मैंने तुमसे ये सात लोक और सात ही पाताल कहे। इस ब्रह्माण्डका बस इतना ही विस्तार है॥ २१॥ यह ब्रह्माण्ड कपित्थ (कैथे)-के बीजके समान ऊपर-नीचे सब ओर अण्डकटाहसे घिरा हुआ है॥ २२॥ हे मैत्रेय! यह अण्ड अपनेसे दसगुने जलसे आवृत है और वह जलका सम्पूर्ण आवरण अग्निसे घिरा हुआ है॥ २३॥ अग्नि वायुसे और वायु आकाशसे परिवेष्टित है तथा आकाश भूतोंके कारण तामस अहंकार और अहंकार महत्तत्त्वसे घिरा हुआ है। हे मैत्रेय! ये सातों उत्तरोत्तर एक-दूसरेसे दसगुने हैं॥ २४॥ महत्तत्त्वको भी प्रधानने आवृत कर रखा है। वह अनन्त है; तथा उसका न कभी अन्त (नाश) होता है और न कोई संख्या ही है; क्योंकि हे मुने! वह अनन्त, असंख्येय, अपरिमेय और सम्पूर्ण जगत्‌का कारण है और वही परा प्रकृति है॥ २५-२६॥ उसमें ऐसे-ऐसे हजारों, लाखों तथा सैकड़ों करोड़ ब्रह्माण्ड हैं॥ २७॥ जिस प्रकार काष्ठमें अग्नि और तिलमें तैल रहता है उसी प्रकार स्वप्रकाश चेतनात्मा व्यापक पुरुष प्रधानमें स्थित है॥ २८॥ हे महाबुद्धे! ये संश्रयशील (आपसमें मिले हुए) प्रधान और पुरुष भी समस्त भूतोंकी स्वरूपभूता विष्णु-शक्तिसे आवृत हैं॥ २९॥

हे महामते! वह विष्णु-शक्ति ही [प्रलयके समय] उनके पार्थक्य और [स्थितिके समय] उनके सम्मिलनकी हेतु है तथा सर्गारम्भके समय वही उनके क्षोभकी कारण है॥ ३०॥ जिस प्रकार जलके संसर्गसे वायु सैकड़ों जल-कणोंको धारण करता है उसी प्रकार भगवान्

विष्णुकी शक्ति भी प्रधान-पुरुषमय जगत्को धारण करती है॥ ३१॥

हे मुने! जिस प्रकार आदि-बीजसे ही मूल, स्कन्ध और शाखा आदिके सहित वृक्ष उत्पन्न होता है और तदनन्तर उससे और भी बीज उत्पन्न होते हैं, तथा उन बीजोंसे अन्यान्य वृक्ष उत्पन्न होते हैं और वे भी उन्हीं लक्षण, द्रव्य और कारणोंसे युक्त होते हैं, उसी प्रकार पहले अव्याकृत (प्रधान)-से महत्तत्त्वसे लेकर पंचभूतपर्यन्त [सम्पूर्ण विकार] उत्पन्न होते हैं तथा उनसे देव, असुर आदिका जन्म होता है और फिर उनके पुत्र तथा उन पुत्रोंके अन्य पुत्र होते हैं॥ ३२—३४॥ अपने बीजसे अन्य वृक्षके उत्पन्न होनेसे जिस प्रकार पूर्ववृक्षकी कोई क्षति नहीं होती उसी प्रकार अन्य प्राणियोंके उत्पन्न होनेसे उनके जन्मदाता प्राणियोंका ह्रास नहीं होता॥ ३५॥

जिस प्रकार आकाश और काल आदि सन्निधिमात्रसे ही वृक्षके कारण होते हैं उसी प्रकार भगवान् श्रीहरि भी बिना परिणामके ही विश्वके कारण हैं॥ ३६॥ हे मुनिसत्तम! जिस प्रकार धानके बीजमें मूल, नाल, पत्ते, अंकुर, तना, कोष, पुष्प, क्षीर, तण्डुल, तुष और कण सभी रहते हैं; तथा अंकुरोत्पत्तिकी हेतुभूत [भूमि एवं जल आदि] सामग्रीके प्राप्त होनेपर वे प्रकट हो जाते हैं, उसी प्रकार अपने अनेक पूर्वकर्मोंमें स्थित देवता आदि विष्णु-शक्तिका आश्रय पानेपर आविर्भूत हो जाते हैं॥ ३७—३९॥ जिससे यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है, जो स्वयं जगत्रूपसे स्थित है, जिसमें यह स्थित है तथा जिसमें यह लीन हो जायगा वह परब्रह्म ही विष्णुभगवान् हैं॥ ४०॥ वह ब्रह्म ही उन (विष्णु)-का परमधाम (परस्वरूप) है, वह पद सत् और असत् दोनोंसे विलक्षण है तथा उससे अभिन्न हुआ ही यह सम्पूर्ण चराचर जगत् उससे उत्पन्न हुआ है॥ ४१॥ वही अव्यक्त मूलप्रकृति है, वही व्यक्तस्वरूप संसार है, उसीमें यह सम्पूर्ण जगत् लीन होता है तथा उसीके आश्रय स्थित है॥ ४२॥ यज्ञादि क्रियाओंका कर्ता वही है, यज्ञरूपसे उसीका यजन किया जाता है, और उन यज्ञादिका फलस्वरूप भी वही है तथा यज्ञके साधनरूप जो स्रुवा आदि हैं वे सब भी हरिसे अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं॥ ४३॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके दूसरे अंशमें सातवाँ अध्याय समाप्त॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

सूर्य, नक्षत्र एवं राशियोंकी व्यवस्था तथा कालचक्र, लोकपाल और गंगाविर्भावका वर्णन

श्रीपराशरजी बोले—हे सुव्रत! मैंने तुमसे यह ब्रह्माण्डकी स्थिति कही, अब सूर्य आदि ग्रहोंकी स्थिति और उनके परिमाण सुनो॥ १॥ हे मुनिश्रेष्ठ! सूर्यदेवके रथका विस्तार नौ हजार योजन है तथा इससे दूना उसका ईषा-दण्ड (जूआ और रथके बीचका भाग) है॥ २॥ उसका धुरा डेढ़ करोड़ सात लाख योजन लम्बा है जिसमें उसका पहिया लगा हुआ है॥ ३॥ उस पूर्वाह्ण, मध्याह्न और पराह्णरूप तीन नाभि, परिवत्सरादि पाँच अरे और षड्-ऋतुरूप छः नेमिवाले अक्षयस्वरूप संवत्सरात्मक चक्रमें सम्पूर्ण कालचक्र स्थित है॥ ४॥ सात छन्द ही उसके घोड़े हैं, उनके नाम सुनो—गायत्री, बृहती, उष्णिक्, जगती, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् और पंक्ति—

ये छन्द ही सूर्यके सात घोड़े कहे गये हैं॥ ५॥ हे महामते! भगवान् सूर्यके रथका दूसरा धुरा साढ़े पैंतालीस सहस्र योजन लम्बा है॥ ६॥ दोनों धुरोंके परिमाणके तुल्य ही उसके युगार्द्धों (जूओं)-का परिमाण है, इनमेंसे छोटा धुरा उस रथके एक युगार्द्ध (जूए)-के सहित ध्रुवके आधारपर स्थित है और दूसरे धुरेका चक्र मानसोत्तरपर्वतपर स्थित है॥ ७॥

इस मानसोत्तरपर्वतके पूर्वमें इन्द्रकी, दक्षिणमें यमकी, पश्चिममें वरुणकी और उत्तरमें चन्द्रमाकी पुरी है; उन पुरियोंके नाम सुनो॥ ८॥ इन्द्रकी पुरी वस्वौकसारा है, यमकी संयमनी है, वरुणकी सुखा है तथा चन्द्रमाकी विभावरी है॥ ९॥ हे मैत्रेय! ज्योतिश्चक्रके सहित भगवान् भानु दक्षिण-दिशामें प्रवेशकर छोड़े हुए बाणके समान तीव्र वेगसे चलते हैं॥ १०॥

भगवान् सूर्यदेव दिन और रात्रिकी व्यवस्थाके कारण हैं और रागादि क्लेशोंके क्षीण हो जानेपर वे ही क्रममुक्तिभागी योगिजनोंके देवयान नामक श्रेष्ठ मार्ग हैं॥ ११॥ हे मैत्रेय! सभी द्वीपोंमें सर्वदा मध्याह्न तथा मध्यरात्रिके समय सूर्यदेव मध्य आकाशमें सामनेकी ओर रहते हैं[१]॥ १२॥

इसी प्रकार उदय और अस्त भी सदा एक-दूसरेके सम्मुख ही होते हैं। हे ब्रह्मन्! समस्त दिशा और विदिशाओंमें जहाँके लोग [रात्रिका अन्त होनेपर] सूर्यको जिस स्थानपर देखते हैं उनके लिये वहाँ उसका उदय होता है और जहाँ दिनके अन्तमें सूर्यका तिरोभाव होता है वहीं उसका अस्त कहा जाता है॥ १३-१४॥ सर्वदा एक रूपसे स्थित सूर्यदेवका वास्तवमें न उदय होता है और न अस्त; बस, उनका देखना और न देखना ही उनके उदय और अस्त हैं॥ १५॥ मध्याह्नकालमें इन्द्रादिमेंसे किसीकी पुरीपर प्रकाशित होते हुए सूर्यदेव [पार्श्ववर्ती दो पुरियोंके सहित] तीन पुरियों और दो कोणों (विदिशाओं)-को प्रकाशित करते हैं, इसी प्रकार अग्नि आदि कोणोंमेंसे किसी एक कोणमें प्रकाशित होते हुए वे [पार्श्ववर्ती दो कोणोंके सहित] तीन कोण और दो पुरियोंको प्रकाशित करते हैं॥ १६॥ सूर्यदेव उदय होनेके अनन्तर मध्याह्नपर्यन्त अपनी बढ़ती हुई किरणोंसे तपते हैं और फिर क्षीण होती हुई किरणोंसे अस्त हो जाते हैं[२]॥ १७॥

सूर्यके उदय और अस्तसे ही पूर्व तथा पश्चिम दिशाओंकी व्यवस्था हुई है। वास्तवमें तो, वे जिस प्रकार पूर्वमें प्रकाश करते हैं उसी प्रकार पश्चिम तथा पार्श्ववर्तिनी [उत्तर और दक्षिण] दिशाओंमें भी करते हैं॥ १८॥ सूर्यदेव देवपर्वत सुमेरुके ऊपर स्थित ब्रह्माजीकी सभाके अतिरिक्त और सभी स्थानोंको प्रकाशित करते हैं; उनकी जो किरणें ब्रह्माजीकी सभामें जाती हैं वे उसके तेजसे निरस्त होकर उलटी लौट आती हैं॥ १९॥ सुमेरुपर्वत समस्त द्वीप और वर्षोंके उत्तरमें है इसलिये उत्तरदिशामें (मेरुपर्वतपर) सदा [एक ओर] दिन और [दूसरी ओर] रात रहते हैं॥ २०॥ रात्रिके समय सूर्यके अस्त हो जानेपर उसका तेज अग्निमें प्रविष्ट हो जाता है; इसलिये उस समय अग्नि दूरहीसे प्रकाशित होने लगता है॥ २१॥ इसी प्रकार, हे द्विज!

१. अर्थात् जिस द्वीप या खण्डमें सूर्यदेव मध्याह्नके समय सम्मुख पड़ते हैं उसकी समान रेखापर दूसरी ओर स्थित द्वीपान्तरमें वे उसी प्रकार मध्यरात्रिके समय रहते हैं।

२. किरणोंकी वृद्धि, ह्रास एवं तीव्रता-मन्दता आदि सूर्यके समीप और दूर होनेसे मनुष्यके अनुभवके अनुसार कही गयी हैं।

दिनके समय अग्निका तेज सूर्यमें प्रविष्ट हो जाता है; अतः अग्निके संयोगसे ही सूर्य अत्यन्त प्रखरतासे प्रकाशित होता है॥ २२॥ इस प्रकार सूर्य और अग्निके प्रकाश तथा उष्णतामय तेज परस्पर मिलकर दिन-रातमें वृद्धिको प्राप्त होते रहते हैं॥ २३॥

मेरुके दक्षिणी और उत्तरी भूम्यर्द्धमें सूर्यके प्रकाशित होते समय अन्धकारमयी रात्रि और प्रकाशमय दिन क्रमशः जलमें प्रवेश कर जाते हैं॥ २४॥ दिनके समय रात्रिके प्रवेश करनेसे ही जल कुछ ताम्रवर्ण दिखायी देता है, किन्तु सूर्य-अस्त हो जानेपर उसमें दिनका प्रवेश हो जाता है; इसलिये दिनके प्रवेशके कारण ही रात्रिके समय वह शुक्लवर्ण हो जाता है॥ २५॥

इस प्रकार जब सूर्य पुष्करद्वीपके मध्यमें पहुँचकर पृथ्वीका तीसवाँ भाग पार कर लेता है तो उसकी वह गति एक मुहूर्तकी होती है। [अर्थात् उतने भागके अतिक्रमण करनेमें उसे जितना समय लगता है वही मुहूर्त कहलाता है]॥ २६॥ हे द्विज! कुलाल-चक्र (कुम्हारके चाक) के सिरेपर घूमते हुए जीवके समान भ्रमण करता हुआ यह सूर्य पृथिवीके तीसों भागोंका अतिक्रमण करनेपर एक दिन-रात्रि करता है॥ २७॥ हे द्विज! उत्तरायणके आरम्भमें सूर्य सबसे पहले मकरराशिमें जाता है, उसके पश्चात् वह कुम्भ और मीन राशियोंमें एक राशिसे दूसरी राशिमें जाता है॥ २८॥ इन तीनों राशियोंको भोग चुकनेपर सूर्य रात्रि और दिनको समान करता हुआ वैषुवती गतिका अवलम्बन करता है, [अर्थात् वह भूमध्य-रेखाके बीचमें ही चलता है]॥ २९॥ उसके अनन्तर नित्यप्रति रात्रि क्षीण होने लगती है और दिन बढ़ने लगता है। फिर [मेष तथा वृष राशिका अतिक्रमण कर] मिथुनराशिसे निकलकर उत्तरायणकी अन्तिम सीमापर उपस्थित हो वह कर्कराशिमें पहुँचकर दक्षिणायनका आरम्भ करता है॥ ३०-३१॥ जिस प्रकार कुलाल-चक्रके सिरेपर स्थित जीव अति शीघ्रतासे घूमता है उसी प्रकार सूर्य भी दक्षिणायनको पार करनेमें अति शीघ्रतासे चलता है॥ ३२॥ अतः वह अति शीघ्रतापूर्वक वायुवेगसे चलते हुए अपने उत्कृष्ट मार्गको थोड़े समयमें ही पार कर लेता है॥ ३३॥ हे द्विज! दक्षिणायनमें दिनके समय शीघ्रतापूर्वक चलनेसे उस समयके साढ़े तेरह नक्षत्रोंको सूर्य बारह मुहूर्तोंमें पार कर लेता है, किन्तु रात्रिके समय (मन्दगामी होनेसे) उतने ही नक्षत्रोंको अठारह मुहूर्तोंमें पार करता है॥ ३४॥ कुलाल-चक्रके मध्यमें स्थित जीव जिस प्रकार धीरे-धीरे चलता है उसी प्रकार उत्तरायणके समय सूर्य मन्दगतिसे चलता है॥ ३५॥ इसलिये उस समय वह थोड़ी-सी भूमि भी अति दीर्घकालमें पार करता है, अतः उत्तरायणका अन्तिम दिन अठारह मुहूर्तका होता है, उस दिन भी सूर्य अति मन्दगतिसे चलता है और ज्योतिश्चक्रार्धके साढ़े तेरह नक्षत्रोंको एक दिनमें पार करता है किन्तु रात्रिके समय वह उतने ही (साढ़े तेरह) नक्षत्रोंको बारह मुहूर्तोंमें ही पार कर लेता है॥ ३६—३८॥ अतः जिस प्रकार नाभिदेशमें चक्रके मन्द-मन्द घूमनेसे वहाँका मृत्-पिण्ड भी मन्दगतिसे घूमता है उसी प्रकार ज्योतिश्चक्रके मध्यमें स्थित ध्रुव अति मन्द गतिसे घूमता है॥ ३९॥ हे मैत्रेय! जिस प्रकार कुलाल-चक्रकी नाभि अपने स्थानपर ही घूमती रहती है, उसी प्रकार ध्रुव भी अपने स्थानपर ही घूमता रहता है॥ ४०॥

इस प्रकार उत्तर तथा दक्षिण सीमाओंके मध्यमें मण्डलाकार घूमते रहनेसे सूर्यकी गति दिन अथवा रात्रिके समय मन्द अथवा शीघ्र हो जाती है॥ ४१॥ जिस अयनमें सूर्यकी गति दिनके

समय मन्द होती है उसमें रात्रिके समय शीघ्र होती है तथा जिस समय रात्रि-कालमें शीघ्र होती है उस समय दिनमें मन्द हो जाती है॥ ४२॥ हे द्विज! सूर्यको सदा एक बराबर मार्ग ही पार करना पड़ता है; एक दिन-रात्रिमें यह समस्त राशियोंका भोग कर लेता है॥ ४३॥ सूर्य छः राशियोंको रात्रिके समय भोगता है और छःको दिनके समय। राशियोंके परिमाणानुसार ही दिनका बढ़ना-घटना होता है तथा रात्रिकी लघुता-दीर्घता भी राशियोंके परिमाणसे ही होती है॥ ४४-४५॥ राशियोंके भोगानुसार ही दिन अथवा रात्रिकी लघुता अथवा दीर्घता होती है। उत्तरायणमें सूर्यकी गति रात्रिकालमें शीघ्र होती है तथा दिनमें मन्द। दक्षिणायनमें उसकी गति इसके विपरीत होती है॥ ४६-४७॥

रात्रि उषा कहलाती है तथा दिन व्युष्टि (प्रभात) कहा जाता है; इन उषा तथा व्युष्टिके बीचके समयको सन्ध्या कहते हैं*॥ ४८॥ इस अति दारुण और भयानक सन्ध्याकालके उपस्थित होनेपर मन्देहा नामक भयंकर राक्षसगण सूर्यको खाना चाहते हैं॥ ४९॥ हे मैत्रेय! उन राक्षसोंको प्रजापतिका यह शाप है कि उनका शरीर अक्षय रहकर भी मरण नित्यप्रति हो॥ ५०॥ अतः सन्ध्याकालमें उनका सूर्यसे अति भीषण युद्ध होता है; हे महामुने! उस समय द्विजोत्तमगण जो ब्रह्मस्वरूप ॐकार तथा गायत्रीसे अभिमन्त्रित जल छोड़ते हैं, उस वज्रस्वरूप जलसे वे दुष्ट राक्षस दग्ध हो जाते हैं॥ ५१-५२॥ अग्निहोत्रमें जो '**सूर्यो ज्योतिः०**' इत्यादि मन्त्रसे प्रथम आहुति दी जाती है उससे सहस्रांशु दिननाथ देदीप्यमान हो जाते हैं॥ ५३॥ ॐकार विश्व, तैजस् और प्राज्ञरूप तीन धामोंसे युक्त भगवान् विष्णु है तथा सम्पूर्ण वाणियों (वेदों)-का अधिपति है, उसके उच्चारणमात्रसे ही वे राक्षसगण नष्ट हो जाते हैं॥ ५४॥ सूर्य विष्णुभगवान्का अति श्रेष्ठ अंश और विकाररहित अन्तर्ज्योतिःस्वरूप है। ॐकार उसका वाचक है और वह उसे उन राक्षसोंके वधमें अत्यन्त प्रेरित करनेवाला है॥ ५५॥

उस ॐकारकी प्रेरणासे अति प्रदीप्त होकर वह ज्योति मन्देहा नामक सम्पूर्ण पापी राक्षसोंको दग्ध कर देती है॥ ५६॥ इसलिये सन्ध्योपासन-कर्मका उल्लंघन कभी न करना चाहिये। जो पुरुष सन्ध्योपासन नहीं करता वह भगवान् सूर्यका घात करता है॥ ५७॥ तदनन्तर [उन राक्षसोंका वध करनेके पश्चात्] भगवान् सूर्य संसारके पालनमें प्रवृत्त हो बालखिल्यादि ब्राह्मणोंसे सुरक्षित होकर गमन करते हैं॥ ५८॥

पन्द्रह निमेषकी एक काष्ठा होती है और तीस काष्ठाकी एक कला गिनी जाती है। तीस कलाओंका एक मुहूर्त होता है और तीस मुहूर्तोंके सम्पूर्ण रात्रि-दिन होते हैं॥ ५९॥ दिनोंका ह्रास अथवा वृद्धि क्रमशः प्रातःकाल, मध्याह्नकाल आदि दिवसांशोंके ह्रास-वृद्धिके कारण होते हैं; किन्तु दिनोंके घटते-बढ़ते रहनेपर भी सन्ध्या सर्वदा समान भावसे एक मुहूर्तकी ही होती है॥ ६०॥ उदयसे लेकर सूर्यकी तीन मुहूर्तकी गतिके कालको 'प्रातःकाल' कहते हैं, यह सम्पूर्ण दिनका पाँचवाँ भाग होता है॥ ६१॥ इस प्रातःकालके अनन्तर तीन मुहूर्तका समय 'संगव' कहलाता है तथा संगवकालके पश्चात् तीन मुहूर्तका 'मध्याह्न' होता है॥ ६२॥ मध्याह्नकालसे पीछेका समय 'अपराह्न' कहलाता है इस काल-भागको भी बुधजन तीन मुहूर्तका ही बताते हैं॥ ६३॥ अपराह्नके बीतनेपर 'सायाह्न' आता

* 'व्युष्टि' और 'उषा' दिन और रात्रिके वैदिक नाम हैं; यथा—'रात्रिर्वा उषा अहर्व्युष्टिः।'

है। इस प्रकार [सम्पूर्ण दिनमें] पन्द्रह मुहूर्त और [प्रत्येक दिवसांशमें] तीन मुहूर्त होते हैं॥ ६४॥

वैषुवत दिवस पन्द्रह मुहूर्तका होता है, किन्तु उत्तरायण और दक्षिणायनमें क्रमश: उसके वृद्धि और ह्रास होने लगते हैं। इस प्रकार उत्तरायणमें दिन रात्रिका ग्रास करने लगता है और दक्षिणायनमें रात्रि दिनका ग्रास करती रहती है॥ ६५-६६॥ शरद् और वसन्त-ऋतुके मध्यमें सूर्यके तुला अथवा मेषराशिमें जानेपर 'विषुव' होता है। उस समय दिन और रात्रि समान होते हैं॥ ६७॥ सूर्यके कर्कराशिमें उपस्थित होनेपर दक्षिणायन कहा जाता है और उसके मकरराशिपर आनेसे उत्तरायण कहलाता है॥ ६८॥

हे ब्रह्मन्! मैंने जो तीस मुहूर्तके एक रात्रि-दिन कहे हैं, ऐसे पन्द्रह रात्रि-दिवसका एक 'पक्ष' कहा जाता है॥ ६९॥ दो पक्षका एक मास होता है, दो सौरमासकी एक ऋतु और तीन ऋतुका एक अयन होता है तथा दो अयन ही [मिलाकर] एक वर्ष कहे जाते हैं॥ ७०॥ [सौर, सावन, चान्द्र तथा नाक्षत्र—इन] चार प्रकारके मासोंके अनुसार विविधरूपसे कल्पित संवत्सरादि पाँच प्रकारके वर्ष 'युग' कहलाते हैं यह युग ही [मलमासादि] सब प्रकारके काल-निर्णयका कारण कहा जाता है॥ ७१॥ उनमें पहला संवत्सर, दूसरा परिवत्सर, तीसरा इद्वत्सर, चौथा अनुवत्सर और पाँचवाँ वत्सर है। यह काल 'युग' नामसे विख्यात है॥ ७२॥

श्वेतवर्षके उत्तरमें जो शृंगवान् नामसे विख्यात पर्वत है उसके तीन शृंग हैं, जिनके कारण यह शृंगवान् कहा जाता है॥ ७३॥ उनमेंसे एक शृंग उत्तरमें, एक दक्षिणमें तथा एक मध्यमें है। मध्यशृंग ही 'वैषुवत' है। शरद् और वसन्त-ऋतुके मध्यमें सूर्य इस वैषुवतशृंगपर आते हैं; अत: हे मैत्रेय! मेष अथवा तुलाराशिके आरम्भमें तिमिरापहारी सूर्यदेव विषुवत्पर स्थित होकर दिन और रात्रिको समान परिमाण कर देते हैं। उस समय ये दोनों पन्द्रह-पन्द्रह मुहूर्तके होते हैं॥ ७४-७५॥ हे मुने! जिस समय सूर्य कृत्तिकानक्षत्रके प्रथम भाग अर्थात् मेषराशिके अन्तमें तथा चन्द्रमा निश्चय ही विशाखाके चतुर्थांश [अर्थात् वृश्चिकके आरम्भ]-में हों; अथवा जिस समय सूर्य विशाखाके तृतीय भाग अर्थात् तुलाके अन्तिमांशका भोग करते हों और चन्द्रमा कृत्तिकाके प्रथम भाग अर्थात् मेषान्तमें स्थित जान पड़ें तभी यह 'विषुव' नामक अति पवित्र काल कहा जाता है; इस समय देवता, ब्राह्मण और पितृगणके उद्देश्यसे संयतचित्त होकर दानादि देने चाहिये। यह समय दानग्रहणके लिये मानो देवताओंके खुले हुए मुखके समान है। अत: 'विषुव' कालमें दान करनेवाला मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है॥ ७६—७९॥ यागादिके काल-निर्णयके लिये दिन, रात्रि, पक्ष, कला, काष्ठा और क्षण आदिका विषय भली प्रकार जानना चाहिये। राका और अनुमति दो प्रकारकी पूर्णमासी[१] तथा सिनीवाली और कुहू दो प्रकारकी अमावास्या[२] होती हैं॥ ८०॥ माघ-फाल्गुन, चैत्र-वैशाख तथा ज्येष्ठ-आषाढ़—ये छ: मास उत्तरायण होते हैं और श्रावण-भाद्र, आश्विन-कार्तिक तथा अगहन-पौष—ये छ: दक्षिणायन कहलाते हैं॥ ८१॥

मैंने पहले तुमसे जिस लोकालोकपर्वतका

१-जिस पूर्णिमामें पूर्णचन्द्र विराजमान होता है वह 'राका' कहलाती है तथा जिसमें एक कलाहीन होती है वह 'अनुमति' कही जाती है।

२-दृष्टचन्द्रा अमावास्याका नाम 'सिनीवाली' है और नष्टचन्द्राका नाम 'कुहू' है।

वर्णन किया है, उसीपर चार व्रतशील लोकपाल निवास करते हैं॥ ८२ ॥ हे द्विज! सुधामा, कर्दमके पुत्र शंखपाद और हिरण्यरोमा तथा केतुमान्—ये चारों निर्द्वन्द्व, निरभिमान, निरालस्य और निष्परिग्रह लोकपालगण लोकालोक-पर्वतकी चारों दिशाओंमें स्थित हैं॥ ८३-८४ ॥

जो अगस्त्यके उत्तर तथा अजवीथिके दक्षिणमें वैश्वानरमार्गसे भिन्न [मृगवीथि नामक] मार्ग है वही पितृयानपथ है॥ ८५ ॥ उस पितृयानमार्गमें महात्मामुनिजन रहते हैं। जो लोग अग्निहोत्री होकर प्राणियोंकी उत्पत्तिके आरम्भक ब्रह्म (वेद)-की स्तुति करते हुए यज्ञानुष्ठानके लिये उद्यत हो कर्मका आरम्भ करते हैं वह (पितृयान) उनका दक्षिणमार्ग है॥ ८६ ॥ वे युग-युगान्तरमें विच्छिन्न हुए वैदिक धर्मकी सन्तान, तपस्या, वर्णाश्रम-मर्यादा और विविध शास्त्रोंके द्वारा पुनः स्थापना करते हैं॥ ८७ ॥ पूर्वतन धर्मप्रवर्तक ही अपनी उत्तरकालीन सन्तानके यहाँ उत्पन्न होते हैं और फिर उत्तरकालीन धर्म-प्रचारकगण अपने यहाँ सन्तानरूपसे उत्पन्न हुए अपने पितृगणके कुलोंमें जन्म लेते हैं॥ ८८ ॥ इस प्रकार, वे व्रतशील महर्षिगण चन्द्रमा और तारागणकी स्थितिपर्यन्त सूर्यके दक्षिणमार्गमें पुनः-पुनः आते-जाते रहते हैं॥ ८९ ॥

नागवीथिके उत्तर और सप्तर्षियोंके दक्षिणमें जो सूर्यका उत्तरीय मार्ग है उसे देवयानमार्ग कहते हैं॥ ९० ॥ उसमें जो प्रसिद्ध निर्मलस्वभाव और जितेन्द्रिय ब्रह्मचारिगण निवास करते हैं वे सन्तानकी इच्छा नहीं करते, अतः उन्होंने मृत्युको जीत लिया है॥ ९१ ॥ सूर्यके उत्तरमार्गमें अस्सी हजार ऊर्ध्वरेता मुनिगण प्रलयकालपर्यन्त निवास करते हैं॥ ९२ ॥ उन्होंने लोभके असंयोग, मैथुनके त्याग, इच्छा और द्वेषकी अप्रवृत्ति, कर्मानुष्ठानके त्याग, काम-वासनाके असंयोग और शब्दादि विषयोंके दोषदर्शन इत्यादि कारणोंसे शुद्धचित्त होकर अमरता प्राप्त कर ली है॥ ९३-९४॥ भूतोंके प्रलयपर्यन्त स्थिर रहनेको ही अमरता कहते हैं। त्रिलोकीकी स्थितितकके इस कालको ही अपुनर्मार (पुनर्मृत्युरहित) कहा जाता है॥ ९५ ॥ हे द्विज! ब्रह्महत्या और अश्वमेधयज्ञसे जो पाप और पुण्य होते हैं उनका फल प्रलयपर्यन्त कहा गया है॥ ९६ ॥

हे मैत्रेय! जितने प्रदेशमें ध्रुव स्थित है, पृथिवीसे लेकर उस प्रदेशपर्यन्त सम्पूर्ण देश प्रलयकालमें नष्ट हो जाता है॥ ९७ ॥ सप्तर्षियोंसे उत्तर-दिशामें ऊपरकी ओर जहाँ ध्रुव स्थित है वह अति तेजोमय स्थान ही आकाशमें विष्णुभगवान्का तीसरा दिव्यधाम है॥ ९८ ॥ हे विप्र! पुण्य-पापके क्षीण हो जानेपर दोष-पंकशून्य संयतात्मा मुनिजनोंका यही परमस्थान है॥ ९९ ॥ पाप-पुण्यके निवृत्त हो जाने तथा देह-प्राप्तिके सम्पूर्ण कारणोंके नष्ट हो जानेपर प्राणिगण जिस स्थानपर जाकर फिर शोक नहीं करते वही भगवान् विष्णुका परमपद है॥ १०० ॥ जहाँ भगवान्की समान ऐश्वर्यतासे प्राप्त हुए योगद्वारा सतेज होकर धर्म और ध्रुव आदि लोक-साक्षिगण निवास करते हैं वही भगवान् विष्णुका परमपद है॥ १०१ ॥ हे मैत्रेय! जिसमें यह भूत, भविष्यत् और वर्तमान चराचर जगत् ओत-प्रोत हो रहा है वही भगवान् विष्णुका परमपद है॥ १०२॥ जो तल्लीन योगिजनोंको आकाश-मण्डलमें देदीप्यमान सूर्यके समान सबके प्रकाशकरूपसे प्रतीत होता है तथा जिसका विवेक-ज्ञानसे ही प्रत्यक्ष होता है वही भगवान् विष्णुका परमपद है॥ १०३॥ हे द्विज! उस विष्णुपदमें ही सबके आधारभूत परम तेजस्वी ध्रुव स्थित हैं, तथा ध्रुवजीमें समस्त नक्षत्र,

नक्षत्रोंमें मेघ और मेघोंमें वृष्टि आश्रित है। हे महामुने! उस वृष्टिसे ही समस्त सृष्टिका पोषण और सम्पूर्ण देव-मनुष्यादि प्राणियोंकी पुष्टि होती है॥ १०४-१०५ ॥ तदनन्तर गौ आदि प्राणियोंसे उत्पन्न दुग्ध और घृत आदिकी आहुतियोंसे परितुष्ट अग्निदेव ही प्राणियोंकी स्थितिके लिये पुनः वृष्टिके कारण होते हैं॥ १०६ ॥ इस प्रकार विष्णुभगवान्का यह निर्मल तृतीय लोक (ध्रुव) ही त्रिलोकीका आधारभूत और वृष्टिका आदिकारण है॥ १०७ ॥

हे ब्रह्मन्! इस विष्णुपदसे ही देवांगनाओंके अंगरागसे पाण्डुरवर्ण हुई-सी सर्वपापापहारिणी श्रीगंगाजी उत्पन्न हुई हैं॥ १०८ ॥ विष्णुभगवान्के वाम चरण-कमलके अँगूठेके नखरूप स्रोतसे निकली हुई उन गंगाजीको ध्रुव दिन-रात अपने मस्तकपर धारण करता है॥ १०९ ॥ तदनन्तर जिनके जलमें खड़े होकर प्राणायाम-परायण सप्तर्षिगण उनकी तरंगभंगीसे जटाकलापके कम्पायमान होते हुए, अघमर्षण-मन्त्रका जप करते हैं तथा जिनके विस्तृत जलसमूहसे आप्लावित होकर चन्द्रमण्डल क्षयके अनन्तर पुनः पहलेसे भी अधिक कान्ति धारण करता है, वे श्रीगंगाजी चन्द्रमण्डलसे निकलकर मेरुपर्वतके ऊपर गिरती हैं और संसारको पवित्र करनेके लिये चारों दिशाओंमें जाती हैं॥ ११०—११२ ॥ चारों दिशाओंमें जानेसे वे एक ही सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा— इन चार भेदोंवाली हो जाती हैं॥ ११३ ॥ जिसके अलकनन्दा नामक दक्षिणीय भेदको भगवान् शंकरने अत्यन्त प्रीतिपूर्वक सौ वर्षसे भी अधिक अपने मस्तकपर धारण किया था, जिसने श्रीशंकरके जटाकलापसे निकलकर पापी सगरपुत्रोंके अस्थिचूर्णको आप्लावित कर उन्हें स्वर्गमें पहुँचा दिया। हे मैत्रेय! जिसके जलमें स्नान करनेसे शीघ्र ही समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं और अपूर्व पुण्यकी प्राप्ति होती है॥ ११४—११६ ॥ जिसके प्रवाहमें पुत्रोंद्वारा पितरोंके लिये श्रद्धापूर्वक किया हुआ एक दिनका भी तर्पण उन्हें सौ वर्षतक दुर्लभ तृप्ति देता है॥ ११७ ॥ हे द्विज! जिसके तटपर राजाओंने महायज्ञोंसे यज्ञेश्वर भगवान् पुरुषोत्तमका यजन करके इहलोक और स्वर्गलोकमें परमसिद्धि लाभ की है॥ ११८ ॥ जिसके जलमें स्नान करनेसे निष्पाप हुए यतिजनोंने भगवान् केशवमें चित्त लगाकर अत्युत्तम निर्वाणपद प्राप्त किया है॥ ११९ ॥ जो अपना श्रवण, इच्छा, दर्शन, स्पर्श, जलपान, स्नान तथा यशोगान करनेसे ही नित्यप्रति प्राणियोंको पवित्र करती रहती है॥ १२० ॥ तथा जिसका 'गंगा, गंगा' ऐसा नाम सौ योजनकी दूरीसे भी उच्चारण किये जानेपर [जीवके] तीन जन्मोंके संचित पापोंको नष्ट कर देता है॥ १२१ ॥ त्रिलोकीको पवित्र करनेमें समर्थ वह गंगा जिससे उत्पन्न हुई है, वही भगवान्का तीसरा परमपद है॥ १२२ ॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके दूसरे अंशमें आठवाँ अध्याय समाप्त॥ ८ ॥

नवाँ अध्याय

ज्योतिश्चक्र और शिशुमारचक्र

श्रीपराशरजी बोले—आकाशमें भगवान् विष्णुका जो शिशुमार (गिरगिट अथवा गोधा)-के समान आकारवाला तारामय स्वरूप देखा जाता है, उसके पुच्छ-भागमें ध्रुव अवस्थित है॥ १ ॥ यह ध्रुव स्वयं घूमता हुआ चन्द्रमा और सूर्य आदि ग्रहोंको घुमाता है। उस भ्रमणशील

ध्रुवके साथ नक्षत्रगण भी चक्रके समान घूमते रहते हैं॥ २॥

सूर्य, चन्द्रमा, तारे, नक्षत्र और अन्यान्य समस्त ग्रहगण वायु-मण्डलमयी डोरीसे ध्रुवके साथ बँधे हुए हैं॥ ३॥

मैंने तुमसे आकाशमें ग्रहगणके जिस शिशुमार-स्वरूपका वर्णन किया है, अनन्त तेजके आश्रय स्वयं भगवान् नारायण ही उसके हृदयस्थित आधार हैं॥ ४॥ उत्तानपादके पुत्र ध्रुवने उन जगत्पतिकी आराधना करके तारामय शिशुमारके पुच्छस्थानमें स्थिति प्राप्त की है॥ ५॥ शिशुमारके आधार सर्वेश्वर श्रीनारायण हैं, शिशुमार ध्रुवका आश्रय है और ध्रुवमें सूर्यदेव स्थित हैं तथा हे विप्र! जिस प्रकार देव, असुर और मनुष्यादिके सहित यह सम्पूर्ण जगत् सूर्यके आश्रित है, वह तुम एकाग्र होकर सुनो।

सूर्य आठ मासतक अपनी किरणोंसे छः रसोंसे युक्त जलको ग्रहण करके उसे चार महीनोंमें बरसा देता है उससे अन्नकी उत्पत्ति होती है और अन्नहीसे सम्पूर्ण जगत् पोषित होता है॥ ६—८॥ सूर्य अपनी तीक्ष्ण रश्मियोंसे संसारका जल खींचकर उससे चन्द्रमाका पोषण करता है और चन्द्रमा आकाशमें वायुमयी नाड़ियोंके मार्गसे उसे धूम, अग्नि और वायुमय मेघोंमें पहुँचा देता है॥ ९॥ यह चन्द्रमाद्वारा प्राप्त जल मेघोंसे तुरन्त ही भ्रष्ट नहीं होता इसलिये 'अभ्र' कहलाता है। हे मैत्रेय! कालजनित संस्कारके प्राप्त होनेपर यह अभ्रस्थ जल निर्मल होकर वायुकी प्रेरणासे पृथिवीपर बरसने लगता है॥ १०॥

हे मुने! भगवान् सूर्यदेव नदी, समुद्र, पृथिवी तथा प्राणियोंसे उत्पन्न—इन चार प्रकारके जलोंका आकर्षण करते हैं॥ ११॥ तथा आकाशगंगाके जलको ग्रहण करके वे उसे बिना मेघादिके अपनी किरणोंसे ही तुरन्त पृथिवीपर बरसा देते हैं॥ १२॥ हे द्विजोत्तम! उसके स्पर्शमात्रसे पाप-पंकके धुल जानेसे मनुष्य नरकमें नहीं जाता। अतः वह दिव्य-स्नान कहलाता है॥ १३॥ सूर्यके दिखलायी देते हुए, बिना मेघोंके ही जो जल बरसता है वह सूर्यकी किरणोंद्वारा बरसाया हुआ आकाशगंगाका ही जल होता है॥ १४॥ कृत्तिका आदि विषम (अयुग्म) नक्षत्रोंमें जो जल सूर्यके प्रकाशित रहते हुए बरसता है उसे दिग्गजोंद्वारा बरसाया हुआ आकाशगंगाका जल समझना चाहिये॥ १५॥ [रोहिणी और आर्द्रा आदि] सम संख्यावाले नक्षत्रोंमें जिस जलको सूर्य बरसाता है वह सूर्यरश्मियोंद्वारा [आकाशगंगासे] ग्रहण करके ही बरसाया जाता है॥ १६॥ हे महामुने! आकाशगंगाके ये [सम तथा विषम नक्षत्रोंमें बरसनेवाले] दोनों प्रकारके जलमय दिव्य स्नान अत्यन्त पवित्र और मनुष्योंके पाप-भयको दूर करनेवाले हैं॥ १७॥

हे द्विज! जो जल मेघोंद्वारा बरसाया जाता है वह प्राणियोंके जीवनके लिये अमृतरूप होता है और ओषधियोंका पोषण करता है॥ १८॥ हे विप्र! उस वृष्टिके जलसे परम वृद्धिको प्राप्त होकर समस्त ओषधियाँ और फल पकनेपर सूख जानेवाले [गोधूम, यव आदि अन्न] प्रजावर्गके [शरीरकी उत्पत्ति एवं पोषण आदिके] साधक होते हैं॥ १९॥ उनके द्वारा शास्त्रविद् मनीषिगण नित्यप्रति यथाविधि यज्ञानुष्ठान करके देवताओंको सन्तुष्ट करते हैं॥ २०॥ इस प्रकार सम्पूर्ण यज्ञ, वेद, ब्राह्मणादि वर्ण, समस्त देवसमूह और प्राणिगण वृष्टिके ही आश्रित हैं॥ २१॥ हे मुनिश्रेष्ठ! अन्नको उत्पन्न करनेवाली वृष्टि ही इन सबको धारण करती है तथा उस वृष्टिकी उत्पत्ति सूर्यसे होती है॥ २२॥

हे मुनिवरोत्तम! सूर्यका आधार ध्रुव है,

ध्रुवका शिशुमार है तथा शिशुमारके आश्रय श्रीनारायण हैं॥ २३॥ उस शिशुमारके हृदयमें श्रीनारायण स्थित हैं जो समस्त प्राणियोंके पालनकर्ता तथा आदिभूत सनातन पुरुष हैं॥ २४॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके दूसरे अंशमें नवाँ अध्याय समाप्त॥ ९॥

दसवाँ अध्याय

द्वादश सूर्योंके नाम एवं अधिकारियोंका वर्णन

श्रीपराशरजी बोले—आरोह और अवरोहके द्वारा सूर्यकी एक वर्षमें जितनी गति है उस सम्पूर्ण मार्गकी दोनों काष्ठाओंका अन्तर एक सौ अस्सी मण्डल है॥ १॥ सूर्यका रथ [प्रति मास] भिन्न-भिन्न आदित्य, ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, सर्प और राक्षसगणोंसे अधिष्ठित होता है॥ २॥ हे मैत्रेय! मधुमास चैत्रमें सूर्यके रथमें सर्वदा धाता नामक आदित्य, क्रतुस्थला अप्सरा, पुलस्त्य ऋषि, वासुकि सर्प, रथभृत् यक्ष, हेति राक्षस और तुम्बुरु गन्धर्व—ये सात मासाधिकारी रहते हैं॥ ३-४॥ तथा अर्यमा नामक आदित्य, पुलह ऋषि, रथौजा यक्ष, पुंजिकस्थला अप्सरा, प्रहेति राक्षस, कच्छवीर सर्प और नारद नामक गन्धर्व—ये वैशाख-मासमें सूर्यके रथपर निवास करते हैं। हे मैत्रेय! अब ज्येष्ठ-मासमें [निवास करनेवालोंके नाम] सुनो॥ ५-६॥

उस समय मित्र नामक आदित्य, अत्रि ऋषि, तक्षक सर्प, पौरुषेय राक्षस, मेनका अप्सरा, हाहा गन्धर्व और रथस्वन नामक यक्ष—ये उस रथमें वास करते हैं॥ ७॥ तथा आषाढ़-मासमें वरुण नामक आदित्य, वसिष्ठ ऋषि, नाग सर्प, सहजन्या अप्सरा, हूहू गन्धर्व, रथ राक्षस और रथचित्र नामक यक्ष उसमें रहते हैं॥ ८॥

श्रावण-मासमें इन्द्र नामक आदित्य, विश्वावसु गन्धर्व, स्रोत यक्ष, एलापुत्र सर्प, अंगिरा ऋषि, प्रम्लोचा अप्सरा और सर्पि नामक राक्षस सूर्यके रथमें बसते हैं॥ ९॥ तथा भाद्रपदमें विवस्वान् नामक आदित्य, उग्रसेन गन्धर्व, भृगु ऋषि, आपूरण यक्ष, अनुम्लोचा अप्सरा, शंखपाल सर्प और व्याघ्र नामक राक्षसका उसमें निवास होता है॥ १०॥

आश्विन-मासमें पूषा नामक आदित्य, वसुरुचि गन्धर्व, वात राक्षस, गौतम ऋषि, धनंजय सर्प, सुषेण गन्धर्व और घृताची नामकी अप्सराका उसमें वास होता है॥ ११॥ कार्तिक-मासमें उसमें विश्वावसु नामक गन्धर्व, भरद्वाज ऋषि, पर्जन्य आदित्य, ऐरावत सर्प, विश्वाची अप्सरा, सेनजित् यक्ष तथा आप नामक राक्षस रहते हैं॥ १२॥

मार्गशीर्षके अधिकारी अंश नामक आदित्य, काश्यप ऋषि, तार्क्ष्य यक्ष, महापद्म सर्प, उर्वशी अप्सरा, चित्रसेन गन्धर्व और विद्युत् नामक राक्षस हैं॥ १३॥ हे विप्रवर! पौष-मासमें क्रतु ऋषि, भग आदित्य, ऊर्णायु गन्धर्व, स्फूर्ज राक्षस, कर्कोटक सर्प, अरिष्टनेमि यक्ष तथा पूर्वचित्ति अप्सरा जगत्को प्रकाशित करनेके लिये सूर्यमण्डलमें रहते हैं॥ १४-१५॥

हे मैत्रेय! त्वष्टा नामक आदित्य, जमदग्नि ऋषि,कम्बल सर्प, तिलोत्तमा अप्सरा, ब्रह्मोपेत राक्षस, ऋतजित् यक्ष और धृतराष्ट्र गन्धर्व—ये सात माघ-मासमें भास्करमण्डलमें रहते हैं। अब, जो फाल्गुन-मासमें सूर्यके रथमें रहते हैं उनके नाम सुनो॥ १६-१७॥ हे महामुने! वे विष्णु नामक आदित्य, अश्वतर सर्प, रम्भा अप्सरा, सूर्यवर्चा गन्धर्व, सत्यजित् यक्ष, विश्वामित्र ऋषि और यज्ञोपेत नामक राक्षस हैं॥ १८॥

हे ब्रह्मन्! इस प्रकार विष्णुभगवान्‌की शक्तिसे तेजोमय हुए ये सात-सात गण एक-एक मासतक सूर्यमण्डलमें रहते हैं॥ १९ ॥ मुनिगण सूर्यकी स्तुति करते हैं, गन्धर्व सम्मुख रहकर उनका यशोगान करते हैं, अप्सराएँ नृत्य करती हैं, राक्षस रथके पीछे चलते हैं, सर्प वहन करनेके अनुकूल रथको सुसज्जित करते हैं और यक्षगण रथकी बागडोर सँभालते हैं तथा नित्यसेवक बालखिल्यादि इसे सब ओरसे घेरे रहते हैं॥ २०—२२ ॥ हे मुनिसत्तम! सूर्यमण्डलके ये सात-सात गण ही अपने-अपने समयपर उपस्थित होकर शीत, ग्रीष्म और वर्षा आदिके कारण होते हैं॥ २३ ॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके दूसरे अंशमें दसवाँ अध्याय समाप्त॥ १० ॥

ग्यारहवाँ अध्याय

सूर्यशक्ति एवं वैष्णवी शक्तिका वर्णन

श्रीमैत्रेयजी बोले—भगवन्! आपने जो कहा कि सूर्यमण्डलमें स्थित सातों गण शीत-ग्रीष्म आदिके कारण होते हैं, सो मैंने सुना॥ १ ॥ हे गुरो! आपने सूर्यके रथमें स्थित और विष्णु-शक्तिसे प्रभावित गन्धर्व, सर्प, राक्षस, ऋषि, बालखिल्यादि, अप्सरा तथा यक्षोंके तो पृथक्-पृथक् व्यापार बतलाये, किंतु हे मुने! यह नहीं बतलाया कि सूर्यका कार्य क्या है?॥ २-३ ॥ यदि सातों गण ही शीत, ग्रीष्म और वर्षाके करनेवाले हैं तो फिर सूर्यका क्या प्रयोजन है? और यह कैसे कहा जाता है कि वृष्टि सूर्यसे होती है?॥ ४॥ यदि सातों गणोंका यह वृष्टि आदि कार्य समान ही है तो 'सूर्य उदय हुआ, अब मध्यमें है, अब अस्त होता है' ऐसा लोग क्यों कहते हैं?॥ ५ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! जो कुछ तुमने पूछा है उसका उत्तर सुनो, सूर्य सात गणोंमेंसे ही एक हैं तथापि उनमें प्रधान होनेसे उनकी विशेषता है॥ ६ ॥ भगवान् विष्णुकी जो सर्वशक्तिमयी ऋक्, यजुः, साम नामकी परा शक्ति है वह वेदत्रयी ही सूर्यको ताप प्रदान करती है और [उपासना किये जानेपर] संसारके समस्त पापोंको नष्ट कर देती है॥ ७॥ हे द्विज! जगत्‌की स्थिति और पालनके लिये वे ऋक्, यजुः और सामरूप विष्णु सूर्यके भीतर निवास करते हैं॥ ८॥ प्रत्येक मासमें जो-जो सूर्य होता है उसी-उसीमें वह वेदत्रयीरूपिणी विष्णुकी परा शक्ति निवास करती है॥ ९ ॥ पूर्वाह्णमें ऋक्, मध्याह्नमें बृहद्रथन्तरादि यजुः तथा सायंकालमें सामश्रुतियाँ सूर्यकी स्तुति करती हैं*॥ १० ॥

यह ऋक्-यजुः-सामस्वरूपिणी वेदत्रयी भगवान् विष्णुका ही अंग है। यह विष्णु-शक्ति सर्वदा आदित्यमें रहती है॥ ११ ॥

यह त्रयीमयी वैष्णवी शक्ति केवल सूर्यहीकी अधिष्ठात्री हो, सो नहीं; बल्कि ब्रह्मा, विष्णु और महादेव भी त्रयीमय ही हैं॥ १२ ॥ सर्गके आदिमें ब्रह्मा ऋङ्मय हैं, उसकी स्थितिके समय विष्णु यजुर्मय हैं तथा अन्तकालमें रुद्र साममय

* इस विषयमें यह श्रुति भी है—
'ऋचः पूर्वाह्णे दिवि देव ईयते यजुर्वेदे तिष्ठति मध्ये अह्नः सामवेदेनास्तमये महीयते।'

हैं। इसीलिये सामगानकी ध्वनि अपवित्र* मानी गयी है॥ १३॥ इस प्रकार वह त्रयीमयी सात्त्विकी वैष्णवी शक्ति अपने सप्तगणोंमें स्थित आदित्यमें ही [अतिशयरूपसे] अवस्थित होती है॥ १४॥ उससे अधिष्ठित सूर्यदेव भी अपनी प्रखर रश्मियोंसे अत्यन्त प्रज्वलित होकर संसारके सम्पूर्ण अन्धकारको नष्ट कर देते हैं॥ १५॥

उन सूर्यदेवकी मुनिगण स्तुति करते हैं, गन्धर्वगण उनके सम्मुख यशोगान करते हैं। अप्सराएँ नृत्य करती हुई चलती हैं, राक्षस रथके पीछे रहते हैं, सर्पगण रथका साज सजाते हैं और यक्ष घोड़ोंकी बागडोर सँभालते हैं तथा बालखिल्यादि रथको सब ओरसे घेरे रहते हैं॥ १६-१७॥ त्रयीशक्तिरूप भगवान् विष्णुका न कभी उदय होता है और न अस्त [अर्थात् वे स्थायीरूपसे सदा विद्यमान रहते हैं]; ये सात प्रकारके गण तो उनसे पृथक् हैं॥ १८॥ स्तम्भमें लगे हुए दर्पणके निकट जो कोई जाता है उसीको अपनी छाया दिखायी देने लगती है॥ १९॥ हे द्विज! इसी प्रकार वह वैष्णवी शक्ति सूर्यके रथसे कभी चलायमान नहीं होती और प्रत्येक मासमें पृथक्-पृथक् सूर्यके [परिवर्तित होकर] उसमें स्थित होनेपर वह उसकी अधिष्ठात्री होती है॥ २०॥

हे द्विज! दिन और रात्रिके कारणस्वरूप भगवान् सूर्य पितृगण, देवगण और मनुष्यादिको सदा तृप्त करते घूमते रहते हैं॥ २१॥ सूर्यकी जो सुषुम्ना नामकी किरण है उससे शुक्लपक्षमें चन्द्रमाका पोषण होता है और फिर कृष्णपक्षमें उस अमृतमय चन्द्रमाकी एक-एक कलाका देवगण निरन्तर पान करते हैं॥ २२॥ हे द्विज! कृष्णपक्षके क्षय होनेपर [चतुर्दशीके अनन्तर] दो कलायुक्त चन्द्रमाका पितृगण पान करते हैं। इस प्रकार सूर्यद्वारा पितृगणका तर्पण होता है॥ २३॥

सूर्य अपनी किरणोंसे पृथिवीसे जितना जल खींचता है उस सबको प्राणियोंकी पुष्टि और अन्नकी वृद्धिके लिये बरसा देता है॥ २४॥ उससे भगवान् सूर्य समस्त प्राणियोंको आनन्दित कर देते हैं और इस प्रकार वे देव, मनुष्य और पितृगण आदि सभीका पोषण करते हैं॥ २५॥ हे मैत्रेय! इस रीतिसे सूर्यदेव देवताओंकी पाक्षिक, पितृगणकी मासिक तथा मनुष्योंकी नित्यप्रति तृप्ति करते रहते हैं॥ २६॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके दूसरे अंशमें ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त॥ ११॥

बारहवाँ अध्याय

नवग्रहोंका वर्णन तथा लोकान्तरसम्बन्धी व्याख्यानका उपसंहार

श्रीपराशरजी बोले—चन्द्रमाका रथ तीन पहियोंवाला है, उसके वाम तथा दक्षिण ओर कुन्द-कुसुमके समान श्वेतवर्ण दस घोड़े जुते हुए हैं। ध्रुवके आधारपर स्थित उस वेगशाली रथसे चन्द्रदेव भ्रमण करते हैं और नागवीथिपर आश्रित अश्विनी आदि नक्षत्रोंका भोग करते हैं। सूर्यके समान इनकी किरणोंके भी घटने-बढ़नेका निश्चित क्रम है॥ १-२॥ हे मुनिश्रेष्ठ!

* रुद्रके नाशकारी होनेसे उनका साम अपवित्र माना गया है अत: सामगानके समय (रातमें) ऋक् तथा यजुर्वेदके अध्ययनका निषेध किया गया है। इसमें गौतमकी स्मृति प्रमाण है—'न सामध्वनावृग्यजुषी' अर्थात् सामगानके समय ऋक्-यजु:का अध्ययन न करे।

सूर्यके समान समुद्रगर्भसे उत्पन्न हुए उसके घोड़े भी एक बार जोत दिये जानेपर एक कल्पपर्यन्त रथ खींचते रहते हैं॥ ३॥ हे मैत्रेय! सुरगणके पान करते रहनेसे क्षीण हुए कलामात्र चन्द्रमाका प्रकाशमय सूर्यदेव अपनी एक किरणसे पुनः पोषण करते हैं॥ ४॥ जिस क्रमसे देवगण चन्द्रमाका पान करते हैं उसी क्रमसे जलापहारी सूर्यदेव उन्हें शुक्ला प्रतिपदासे प्रतिदिन पुष्ट करते हैं॥ ५॥ हे मैत्रेय! इस प्रकार आधे महीनेमें एकत्रित हुए चन्द्रमाके अमृतको देवगण फिर पीने लगते हैं क्योंकि देवताओंका आहार तो अमृत ही है॥ ६॥ तैंतीस हजार, तैंतीस सौ, तैंतीस (३६३३३) देवगण चन्द्रस्थ अमृतका पान करते हैं॥ ७॥ जिस समय दो कलामात्र रहा हुआ चन्द्रमा सूर्यमण्डलमें प्रवेश करके उसकी अमा नामक किरणमें रहता है वह तिथि अमावास्या कहलाती है॥ ८॥ उस दिन रात्रिमें वह पहले तो जलमें प्रवेश करता है, फिर वृक्ष-लता आदिमें निवास करता है और तदनन्तर क्रमसे सूर्यमें चला जाता है॥ ९॥ वृक्ष और लता आदिमें चन्द्रमाकी स्थितिके समय [अमावास्याको] जो उन्हें काटता है अथवा उनका एक पत्ता भी तोड़ता है उसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है॥ १०॥ केवल पन्द्रहवीं कलारूप यत्किंचित् भागके बच रहनेपर उस क्षीण चन्द्रमाको पितृगण मध्याह्नोत्तर कालमें चारों ओरसे घेर लेते हैं॥ ११॥ हे मुने! उस समय उस द्विकलाकार चन्द्रमाकी बची हुई अमृतमयी एक कलाका वे पितृगण पान करते हैं॥ १२॥ अमावास्याके दिन चन्द्र-रश्मिसे निकले हुए उस सुधामृतका पान करके अत्यन्त तृप्त हुए सौम्य, बर्हिषद् और अग्निष्वात्ता तीन प्रकारके पितृगण एक मासपर्यन्त सन्तुष्ट रहते हैं॥ १३॥ इस प्रकार चन्द्रदेव शुक्लपक्षमें देवताओंकी और कृष्णपक्षमें पितृगणकी पुष्टि करते हैं तथा अमृतमय शीतल जलकणोंसे लता-वृक्षादिका और लता-ओषधि आदि उत्पन्न करके तथा अपनी चन्द्रिकाद्वारा आह्लादित करके वे मनुष्य, पशु एवं कीट-पतंगादि सभी प्राणियोंका पोषण करते हैं॥ १४-१५॥

चन्द्रमाके पुत्र बुधका रथ वायु और अग्निमय द्रव्यका बना हुआ है और उसमें वायुके समान वेगशाली आठ पिशंगवर्ण घोड़े जुते हैं॥ १६॥ वरूथ[1], अनुकर्ष[2], उपासंग[3] और पताका तथा पृथिवीसे उत्पन्न हुए घोड़ोंके सहित शुक्रका रथ भी अति महान् है॥ १७॥ तथा मंगलका अति शोभायमान सुवर्ण-निर्मित महान् रथ भी अग्निसे उत्पन्न हुए, पद्मराग-मणिके समान, अरुणवर्ण, आठ घोड़ोंसे युक्त है॥ १८॥ जो आठ पाण्डुरवर्ण घोड़ोंसे युक्त सुवर्णका रथ है उसमें वर्षके अन्तमें प्रत्येक राशिमें बृहस्पतिजी विराजमान होते हैं॥ १९॥ आकाशसे उत्पन्न हुए विचित्रवर्ण घोड़ोंसे युक्त रथमें आरूढ़ होकर मन्दगामी शनैश्चरजी धीरे-धीरे चलते हैं॥ २०॥

राहुका रथ धूसर (मटियाले) वर्णका है, उसमें भ्रमरके समान कृष्णवर्ण आठ घोड़े जुते हुए हैं। हे मैत्रेय! एक बार जोत दिये जानेपर वे घोड़े निरन्तर चलते रहते हैं॥ २१॥ चन्द्रपर्वों (पूर्णिमा)-पर यह राहु सूर्यसे निकलकर चन्द्रमाके पास आता है तथा सौरपर्वों (अमावास्या)-पर यह चन्द्रमासे निकलकर सूर्यके निकट जाता है॥ २२॥ इसी प्रकार केतुके रथके वायुवेगशाली आठ घोड़े भी पुआलके धुएँकी-सी आभावाले तथा लाखके समान लाल रंगके हैं॥ २३॥

हे महाभाग! मैंने तुमसे यह नवों ग्रहोंके

१. रथकी रक्षाके लिये बना हुआ लोहेका आवरण। २. रथका नीचेका भाग। ३. शस्त्र रखनेका स्थान।

रथोंका वर्णन किया; ये सभी वायुमयी डोरीसे ध्रुवके साथ बँधे हुए हैं॥ २४॥ हे मैत्रेय! समस्त ग्रह, नक्षत्र और तारामण्डल वायुमयी रज्जुसे ध्रुवके साथ बँधे हुए यथोचित प्रकारसे घूमते रहते हैं॥ २५॥ जितने तारागण हैं उतनी ही वायुमयी डोरियाँ हैं। उनसे बँधकर वे सब स्वयं घूमते तथा ध्रुवको घुमाते रहते हैं॥ २६॥ जिस प्रकार तेली लोग स्वयं घूमते हुए कोल्हूको भी घुमाते रहते हैं उसी प्रकार समस्त ग्रहगण वायुसे बँधकर घूमते रहते हैं॥ २७॥ क्योंकि इस वायुचक्रसे प्रेरित होकर समस्त ग्रहगण अलातचक्र (बनैती)-के समान घूमा करते हैं, इसलिये यह 'प्रवह' कहलाता है॥ २८॥

जिस शिशुमारचक्रका पहले वर्णन कर चुके हैं, तथा जहाँ ध्रुव स्थित है, हे मुनिश्रेष्ठ! अब तुम उसकी स्थितिका वर्णन सुनो॥ २९॥ रात्रिके समय उनका दर्शन करनेसे मनुष्य दिनमें जो कुछ पापकर्म करता है उनसे मुक्त हो जाता है तथा आकाशमण्डलमें जितने तारे इसके आश्रित हैं उतने ही अधिक वर्ष वह जीवित रहता है॥ ३०॥ उत्तानपाद उसकी ऊपरकी हनु (ठोड़ी) है और यज्ञ नीचेकी तथा धर्मने उसके मस्तकपर अधिकार कर रखा है॥ ३१॥ उसके हृदय-देशमें नारायण हैं, दोनों चरणोंमें अश्विनीकुमार हैं तथा जंघाओंमें वरुण और अर्यमा हैं॥ ३२॥ संवत्सर उसका शिश्न है, मित्रने उसके अपान-देशको आश्रित कर रखा है, तथा अग्नि, महेन्द्र, कश्यप और ध्रुव पुच्छभागमें स्थित हैं। शिशुमारके पुच्छभागमें स्थित ये अग्नि आदि चार तारे कभी अस्त नहीं होते॥ ३३-३४॥ इस प्रकार मैंने तुमसे पृथिवी, ग्रहगण, द्वीप, समुद्र, पर्वत, वर्ष और नदियोंका तथा जो-जो उनमें बसते हैं उन सभीके स्वरूपका वर्णन कर दिया। अब इसे संक्षेपसे फिर सुनो॥ ३५-३६॥

हे विप्र! भगवान् विष्णुका जो मूर्तरूप जल है उससे पर्वत और समुद्रादिके सहित कमलके समान आकारवाली पृथिवी उत्पन्न हुई॥ ३७॥ हे विप्रवर्य! तारागण, त्रिभुवन, वन, पर्वत, दिशाएँ, नदियाँ और समुद्र सभी भगवान् विष्णु ही हैं तथा और भी जो कुछ है अथवा नहीं है वह सब भी एकमात्र वे ही हैं॥ ३८॥ क्योंकि भगवान् विष्णु ज्ञानस्वरूप हैं इसलिये वे सर्वमय हैं, परिच्छिन्न पदार्थाकार नहीं हैं। अत: इन पर्वत, समुद्र और पृथिवी आदि भेदोंको तुम एकमात्र विज्ञानका ही विलास जानो॥ ३९॥ जिस समय जीव आत्मज्ञानके द्वारा दोषरहित होकर सम्पूर्ण कर्मोंका क्षय हो जानेसे अपने शुद्ध-स्वरूपमें स्थित हो जाता है उस समय आत्मवस्तुमें संकल्पवृक्षके फलरूप पदार्थ-भेदोंकी प्रतीति नहीं होती॥ ४०॥

हे द्विज! कोई भी घटादि वस्तु है ही कहाँ? आदि, मध्य और अन्तसे रहित नित्य एकरूप चित् ही तो सर्वत्र व्याप्त है। जो वस्तु पुन:-पुन: बदलती रहती है, पूर्ववत् नहीं रहती, उसमें वास्तविकता ही क्या है?॥ ४१॥ देखो, मृत्तिका ही घटरूप हो जाती है और फिर वही घटसे कपाल, कपालसे चूर्णरज और रजसे अणुरूप हो जाती है। तो फिर बताओ अपने कर्मोंके वशीभूत हुए मनुष्य आत्मस्वरूपको भूलकर इसमें कौन-सी सत्य वस्तु देखते हैं॥ ४२॥ अत: हे द्विज! विज्ञानसे अतिरिक्त कभी कहीं कोई पदार्थादि नहीं हैं। अपने-अपने कर्मोंके भेदसे भिन्न-भिन्न चित्तोंद्वारा एक ही विज्ञान नाना प्रकारसे मान लिया गया है॥ ४३॥ वह विज्ञान अति विशुद्ध, निर्मल, नि:शोक और लोभादि समस्त दोषोंसे रहित है। वही एक सत्स्वरूप परम परमेश्वर वासुदेव है, जिससे पृथक् और कोई पदार्थ नहीं है॥ ४४॥

इस प्रकार मैंने तुमसे यह परमार्थका वर्णन किया है, केवल एक ज्ञान ही सत्य है, उससे भिन्न और सब असत्य है। इसके अतिरिक्त जो केवल व्यवहारमात्र है उस त्रिभुवनके विषयमें भी मैं तुमसे कह चुका॥ ४५॥ [इस ज्ञान-मार्गके अतिरिक्त] मैंने कर्म-मार्ग-सम्बन्धी यज्ञ, पशु, वह्नि, समस्त ऋत्विक्, सोम, सुरगण तथा स्वर्गमय कामना आदिका भी दिग्दर्शन करा दिया। भूर्लोकादिके सम्पूर्ण भोग इन कर्म-कलापोंके ही फल हैं॥ ४६॥ यह जो मैंने तुमसे त्रिभुवनगत लोकोंका वर्णन किया है इन्हींमें जीव कर्मवश घूमा करता है, ऐसा जानकर इससे विरक्त हो मनुष्यको वही करना चाहिये जिससे ध्रुव, अचल एवं सदा एकरूप भगवान् वासुदेवमें लीन हो जाय॥ ४७॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके दूसरे अंशमें बारहवाँ अध्याय समाप्त॥ १२॥

तेरहवाँ अध्याय

भरत-चरित्र

श्रीमैत्रेयजी बोले— हे भगवन्! मैंने पृथिवी, समुद्र, नदियों और ग्रहगणकी स्थिति आदिके विषयमें जो कुछ पूछा था सो सब आपने वर्णन कर दिया॥ १॥ उसके साथ ही आपने यह भी बतला दिया कि किस प्रकार यह समस्त त्रिलोकी भगवान् विष्णुके ही आश्रित है और कैसे परमार्थस्वरूप ज्ञान ही सबमें प्रधान है॥ २॥ किन्तु भगवन्! आपने पहले जिसकी चर्चा की थी वह राजा भरतका चरित्र मैं सुनना चाहता हूँ, कृपा करके कहिये॥ ३॥ कहते हैं, वे राजा भरत निरन्तर योगयुक्त होकर भगवान् वासुदेवमें चित्त लगाये शालग्रामक्षेत्रमें रहा करते थे॥ ४॥ इस प्रकार पुण्यदेशके प्रभाव और हरिचिन्तनसे भी उनकी मुक्ति क्यों नहीं हुई, जिससे उन्हें फिर ब्राह्मणका जन्म लेना पड़ा॥ ५॥ हे मुनिश्रेष्ठ! ब्राह्मण होकर भी उन महात्मा भरतजीने फिर जो कुछ किया वह सब आप कृपा करके मुझसे कहिये॥ ६॥

श्रीपराशरजी बोले— हे मैत्रेय! वे महाभाग पृथिवीपति भरतजी भगवान्‌में चित्त लगाये चिरकालतक शालग्रामक्षेत्रमें रहे॥ ७॥ गुणवानोंमें श्रेष्ठ उन भरतजीने अहिंसा आदि सम्पूर्ण गुण और मनके संयममें परम उत्कर्ष लाभ किया॥ ८॥ 'हे यज्ञेश! हे अच्युत! हे गोविन्द! हे माधव! हे अनन्त! हे केशव! हे कृष्ण! हे विष्णो! हे हृषीकेश! हे वासुदेव! आपको नमस्कार है'—इस प्रकार राजा भरत निरन्तर केवल भगवन्नामोंका ही उच्चारण किया करते थे। हे मैत्रेय! वे स्वप्नमें भी इस पदके अतिरिक्त और कुछ नहीं कहते थे और न कभी इसके अर्थके अतिरिक्त और कुछ चिन्तन ही करते थे॥ ९-१०॥ वे निःसंग, योगयुक्त और तपस्वी राजा भगवान्‌की पूजाके लिये केवल समिध, पुष्प और कुशाका ही संचय करते थे। इसके अतिरिक्त वे और कोई कर्म नहीं करते थे॥ ११॥

एक दिन वे स्नानके लिये नदीपर गये और वहाँ स्नान करनेके अनन्तर उन्होंने स्नानोत्तर क्रियाएँ कीं॥ १२॥ हे ब्रह्मन्! इतनेहीमें उस नदी-तीरपर एक आसन्नप्रसवा (शीघ्र ही बच्चा जननेवाली) प्यासी हरिणी वनमेंसे जल पीनेके लिये आयी॥ १३॥ उस समय जब वह प्रायः जल पी चुकी थी, वहाँ सब प्राणियोंको भयभीत कर देनेवाली सिंहकी गम्भीर गर्जना सुनायी

पड़ी॥ १४॥ तब वह अत्यन्त भयभीत हो अकस्मात् उछलकर नदीके तटपर चढ़ गयी; अत: अत्यन्त उच्च स्थानपर चढ़नेके कारण उसका गर्भ नदीमें गिर गया॥ १५॥

नदीकी तरंगमालाओंमें पड़कर बहते हुए उस गर्भ-भ्रष्ट मृगबालकको राजा भरतने पकड़ लिया॥ १६॥ हे मैत्रेय! गर्भपातके दोषसे तथा बहुत ऊँचे उछलनेके कारण वह हरिणी भी पछाड़ खाकर गिर पड़ी और मर गयी॥ १७॥ उस हरिणीको मरी हुई देख तपस्वी भरत उसके बच्चेको अपने आश्रमपर ले आये॥ १८॥

हे मुने! फिर राजा भरत उस मृगछौनेका नित्यप्रति पालन-पोषण करने लगे और वह भी उनसे पोषित होकर दिन-दिन बढ़ने लगा॥ १९॥ वह बच्चा कभी तो उस आश्रमके आस-पास ही घास चरता रहता और कभी वनमें दूरतक जाकर फिर सिंहके भयसे लौट आता॥ २०॥ प्रात:काल वह बहुत दूर भी चला जाता, तो भी सायंकालको फिर आश्रममें ही लौट आता और भरतजीके आश्रमकी पर्णशालाके आँगनमें पड़ रहता॥ २१॥

हे द्विज! इस प्रकार कभी पास और कभी दूर रहनेवाले उस मृगमें ही राजाका चित्त सर्वदा आसक्त रहने लगा, वह अन्य विषयोंकी ओर जाता ही नहीं था॥ २२॥ जिन्होंने सम्पूर्ण राज-पाट और अपने पुत्र तथा बन्धु-बान्धवोंको छोड़ दिया था वे ही भरतजी उस हरिणके बच्चेपर अत्यन्त ममता करने लगे॥ २३॥ उसे बाहर जानेके अनन्तर यदि लौटनेमें देरी हो जाती तो वे मन-ही-मन सोचने लगते—'अहो! उस बच्चेको आज किसी भेड़ियेने तो नहीं खा लिया? किसी सिंहके पंजेमें तो आज वह नहीं पड़ गया?॥ २४॥ देखो, उसके खुरोंके चिह्नोंसे यह पृथिवी कैसी चित्रित हो रही है? मेरी ही प्रसन्नताके लिये उत्पन्न हुआ वह मृगछौना न जाने आज कहाँ रह गया है?॥ २५॥ क्या वह वनसे कुशलपूर्वक लौटकर अपने सींगोंसे मेरी भुजाको खुजलाकर मुझे आनन्दित करेगा?॥ २६॥ देखो, उसके नवजात दाँतोंसे कटी हुई शिखावाले ये कुश और काश सामाध्यायी [शिखाहीन] ब्रह्मचारियोंके समान कैसे सुशोभित हो रहे हैं?॥ २७॥ देरके गये हुए उस बच्चेके निमित्त भरत मुनि इसी प्रकार चिन्ता करने लगते थे और जब वह उनके निकट आ जाता तो उसके प्रेमसे उनका मुख खिल जाता था॥ २८॥ इस प्रकार उसीमें आसक्तचित्त रहनेसे, राज्य, भोग, समृद्धि और स्वजनोंको त्याग देनेवाले भी राजा भरतकी समाधि भंग हो गयी॥ २९॥ उस राजाका स्थिरचित्त उस मृगके चंचल होनेपर चंचल हो जाता और दूर चले जानेपर दूर चला जाता॥ ३०॥

कालान्तरमें राजा भरतने, उस मृगबालकद्वारा पुत्रके सजल नयनोंसे देखे जाते हुए पिताके समान अपने प्राणोंका त्याग किया॥ ३१॥ हे मैत्रेय! राजा भी प्राण छोड़ते समय स्नेहवश उस मृगको ही देखता रहा तथा उसीमें तन्मय रहनेसे उसने और कुछ भी चिन्तन नहीं किया॥ ३२॥ तदनन्तर, उस समयकी सुदृढ़ भावनाके कारण वह जम्बूमार्ग (कालंजरपर्वत)-के घोर वनमें अपने पूर्वजन्मकी स्मृतिसे युक्त एक मृग हुआ॥ ३३॥ हे द्विजोत्तम! अपने पूर्वजन्मका स्मरण रहनेके कारण वह संसारसे उपरत हो गया और अपनी माताको छोड़कर फिर शालग्रामक्षेत्रमें आकर ही रहने लगा॥ ३४॥ वहाँ सूखे घास-फूँस और पत्तोंसे ही अपना शरीर-पोषण करता हुआ वह अपने मृगत्व-प्राप्तिके हेतुभूत कर्मोंका निराकरण करने लगा॥ ३५॥

तदनन्तर, उस शरीरको छोड़कर उसने सदाचार-सम्पन्न योगियोंके पवित्र कुलमें ब्राह्मण-जन्म ग्रहण किया। उस देहमें भी उसे अपने पूर्वजन्मका स्मरण बना रहा॥ ३६॥ हे मैत्रेय! वह

सर्वविज्ञानसम्पन्न और समस्त शास्त्रोंके मर्मको जाननेवाला था तथा अपने आत्माको निरन्तर प्रकृतिसे परे देखता था॥ ३७॥ हे महामुने! आत्मज्ञानसम्पन्न होनेके कारण वह देवता आदि सम्पूर्ण प्राणियोंको अपनेसे अभिन्नरूपसे देखता था॥ ३८॥ उपनयन-संस्कार हो जानेपर वह गुरुके पढ़ानेपर भी वेद-पाठ नहीं करता था तथा न किसी कर्मकी ओर ध्यान देता और न कोई अन्य शास्त्र ही पढ़ता था॥ ३९॥ जब कोई उससे बहुत पूछताछ करता तो जडके समान कुछ असंस्कृत, असार एवं ग्रामीण वाक्योंसे मिले हुए वचन बोल देता॥ ४०॥ निरन्तर मैला-कुचैला शरीर, मलिन वस्त्र और अपरिमार्जित दन्तयुक्त रहनेके कारण वह ब्राह्मण सदा अपने नगरनिवासियोंसे अपमानित होता रहता था॥ ४१॥

हे मैत्रेय! योगश्रीके लिये सबसे अधिक हानिकारक सम्मान ही है, जो योगी अन्य मनुष्योंसे अपमानित होता है वह शीघ्र ही सिद्धि लाभ कर लेता है॥ ४२॥ अत: योगीको सन्मार्गको दूषित न करते हुए ऐसा आचरण करना चाहिये जिससे लोग अपमान करें और संगतिसे दूर रहें॥ ४३॥ हिरण्यगर्भके इस सारयुक्त वचनको स्मरण रखते हुए वे महामति विप्रवर अपने-आपको लोगोंमें जड और उन्मत्त-सा ही प्रकट करते थे॥ ४४॥ कुल्माष (जौ आदि) धान, शाक, जंगली फल अथवा कण आदि जो कुछ भक्ष्य मिल जाता उस थोड़े-सेको भी बहुत मानकर वे उसीको खा लेते और अपना कालक्षेप करते रहते॥ ४५॥

फिर पिताके शान्त हो जानेपर उनके भाई-बन्धु उनका सड़े-गले अन्नसे पोषण करते हुए उनसे खेती-बारीका कार्य कराने लगे॥ ४६॥ वे बैलके समान पुष्ट शरीरवाले और कर्ममें जडवत् निश्चेष्ट थे। अत: केवल आहारमात्रसे ही वे सब लोगोंके यन्त्र बन जाते थे। [अर्थात् सभी लोग उन्हें आहारमात्र देकर अपना-अपना काम निकाल लिया करते थे]॥ ४७॥

उन्हें इस प्रकार संस्कारशून्य और ब्राह्मणवेषके विरुद्ध आचरणवाला देख रात्रिके समय पृषतराजके सेवकोंने बलिकी विधिसे सुसज्जितकर कालीका बलिपशु बनाया। किन्तु इस प्रकार एक परम-योगीश्वरको बलिके लिये उपस्थित देख महाकालीने एक तीक्ष्ण खड्ग ले उस क्रूरकर्मा राजसेवकका गला काट डाला और अपने पार्षदोंसहित उसका तीखा रुधिर पान किया॥ ४८—५०॥

तदनन्तर, एक दिन महात्मा सौवीरराज कहीं जा रहे थे। उस समय उनके बेगारियोंने समझा कि यह भी बेगारके ही योग्य है॥ ५१॥ राजाके सेवकोंने भी भस्ममें छिपे हुए अग्निके समान उन महात्माका रङ्ग-ढङ्ग देखकर उन्हें बेगारके योग्य समझा॥ ५२॥ हे द्विज! उन सौवीरराजने मोक्षधर्मके ज्ञाता महामुनि कपिलसे यह पूछनेके लिये कि 'इस दु:खमय संसारमें मनुष्योंका श्रेय किसमें है' शिबिकापर चढ़कर इक्षुमती नदीके किनारे उन महर्षिके आश्रमपर जानेका विचार किया॥ ५३-५४॥

तब राजसेवकके कहनेसे भरत मुनि भी उसकी पालकीको अन्य बेगारियोंके बीचमें लगकर वहन करने लगे॥ ५५॥

इस प्रकार बेगारमें पकड़े जाकर अपने पूर्वजन्मका स्मरण रखनेवाले, सम्पूर्ण विज्ञानके एकमात्र पात्र वे विप्रवर अपने पापमय प्रारब्धका क्षय करनेके लिये उस शिबिकाको उठाकर चलने लगे॥ ५६॥ वे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ द्विजवर तो चार हाथ भूमि देखते हुए मन्द-गतिसे चलते थे, किन्तु उनके अन्य साथी जल्दी-जल्दी चल रहे थे॥ ५७॥

इस प्रकार शिबिकाकी विषम-गति देखकर

राजाने कहा—''अरे शिबिकावाहको! यह क्या करते हो? समान गतिसे चलो'' ॥ ५८ ॥ किन्तु फिर भी उसकी गति उसी प्रकार विषम देखकर राजाने फिर कहा—''अरे क्या है? इस प्रकार असमान भावसे क्यों चलते हो?'' ॥ ५९ ॥ राजाके बार-बार ऐसे वचन सुनकर वे शिबिकावाहक [भरतजीको दिखाकर] कहने लगे—''हममेंसे एक यही धीरे-धीरे चलता है'' ॥ ६० ॥

राजाने कहा—अरे, तूने तो अभी मेरी शिबिकाको थोड़ी ही दूर वहन किया है; क्या इतनेहीमें थक गया? तू वैसे तो बहुत मोटा-मुष्टण्डा दिखायी देता है, फिर क्या तुझसे इतना भी श्रम नहीं सहा जाता? ॥ ६१ ॥

ब्राह्मण बोले—राजन्! मैं न मोटा हूँ और न मैंने आपकी शिबिका ही उठा रखी है। मैं थका भी नहीं हूँ और न मुझे श्रम सहन करनेकी ही आवश्यकता है ॥ ६२ ॥

राजा बोले—अरे, तू तो प्रत्यक्ष ही मोटा दिखायी दे रहा है, इस समय भी शिबिका तेरे कन्धेपर रखी हुई है और बोझा ढोनेसे देहधारियोंको श्रम होता ही है ॥ ६३ ॥

ब्राह्मण बोले—राजन्! तुम्हें प्रत्यक्ष क्या दिखायी दे रहा है, मुझे पहले यही बताओ। उसके 'बलवान्' अथवा 'अबलवान्' आदि विशेषणोंकी बात तो पीछे करना ॥ ६४ ॥ 'तूने मेरी शिबिकाका वहन किया है, इस समय भी वह तेरे ही कन्धोंपर रखी हुई है'—तुम्हारा ऐसा कहना सर्वथा मिथ्या है, अच्छा मेरी बात सुनो— ॥ ६५ ॥ देखो, पृथिवीपर तो मेरे पैर रखे हैं, पैरोंके ऊपर जंघाएँ हैं और जंघाओंके ऊपर दोनों ऊरु तथा ऊरुओंके ऊपर उदर है ॥ ६६ ॥ उदरके ऊपर वक्ष:स्थल, बाहु और कन्धोंकी स्थिति है तथा कन्धोंके ऊपर यह शिबिका रखी है। इसमें मेरे ऊपर कैसे बोझा रहा? ॥ ६७ ॥ इस शिबिकामें जिसे तुम्हारा कहा जाता है वह शरीर रखा हुआ है। वास्तवमें तो 'तुम वहाँ (शिबिकामें) हो और मैं यहाँ (पृथिवीपर) हूँ'—ऐसा कहना सर्वथा मिथ्या है ॥ ६८ ॥ हे राजन्! मैं, तुम और अन्य भी समस्त जीव पंचभूतोंसे ही वहन किये जाते हैं। तथा यह भूतवर्ग भी गुणोंके प्रवाहमें पड़कर ही बहा जा रहा है ॥ ६९ ॥ हे पृथिवीपते! ये सत्त्वादि गुण भी कर्मोंके वशीभूत हैं और समस्त जीवोंमें कर्म अविद्याजन्य ही हैं ॥ ७० ॥ आत्मा तो शुद्ध, अक्षर, शान्त, निर्गुण और प्रकृतिसे परे है तथा समस्त जीवोंमें वह एक ही ओत-प्रोत है। अत: उसके वृद्धि अथवा क्षय कभी नहीं होते ॥ ७१ ॥ हे नृप! जब उसके उपचय (वृद्धि), अपचय (क्षय) ही नहीं होते तो तुमने यह बात किस युक्तिसे कही कि 'तू मोटा है?' ॥ ७२ ॥ यदि क्रमश: पृथिवी, पाद, जंघा, कटि, ऊरु और उदरपर स्थित कन्धोंपर रखी हुई यह शिबिका मेरे लिये भाररूप हो सकती है तो उसी प्रकार तुम्हारे लिये भी तो हो सकती है? [क्योंकि ये पृथिवी आदि तो जैसे तुमसे पृथक् हैं वैसे ही मुझ आत्मासे भी सर्वथा भिन्न हैं] ॥ ७३ ॥ तथा इस युक्तिसे तो अन्य समस्त जीवोंने भी केवल शिबिका ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण पर्वत, वृक्ष, गृह और पृथिवी आदिका भार उठा रखा है ॥ ७४ ॥ हे राजन्! जब प्रकृतिजन्य कारणोंसे पुरुष सर्वथा भिन्न है तो उसका परिश्रम भी मुझको कैसे हो सकता है? ॥ ७५ ॥ और जिस द्रव्यसे यह शिबिका बनी हुई है उसीसे यह आपका, मेरा अथवा और सबका शरीर भी बना है; जिसमें कि ममत्वका आरोप किया हुआ है ॥ ७६ ॥

श्रीपराशरजी बोले—ऐसा कह वे द्विजवर शिबिकाको धारण किये हुए ही मौन हो गये; और राजाने भी तुरन्त पृथिवीपर उतरकर उनके चरण पकड़ लिये ॥ ७७ ॥

राजा बोला—अहो द्विजराज! इस शिबिकाको छोड़कर आप मेरे ऊपर कृपा कीजिये। प्रभो! कृपया बताइये, इस जडवेषको धारण किये आप कौन हैं?॥ ७८ ॥ हे विद्वन्! आप कौन हैं? किस निमित्तसे यहाँ आपका आना हुआ? तथा आनेका क्या कारण है? यह सब आप मुझसे कहिये। मुझे आपके विषयमें सुननेकी बड़ी उत्कण्ठा हो रही है॥ ७९ ॥

ब्राह्मण बोले—हे राजन्! सुनो, मैं अमुक हूँ—यह बात कही नहीं जा सकती और तुमने जो मेरे यहाँ आनेका कारण पूछा सो आना-जाना आदि सभी क्रियाएँ कर्मफलके उपभोगके लिये ही हुआ करती हैं॥ ८० ॥ सुख-दुःखका भोग ही देह आदिकी प्राप्ति करानेवाला है तथा धर्माधर्मजन्य सुख-दुःखोंको भोगनेके लिये ही जीव देहादि धारण करता है॥ ८१ ॥ हे भूपाल! समस्त जीवोंकी सम्पूर्ण अवस्थाओंके कारण ये धर्म और अधर्म ही हैं, फिर विशेषरूपसे मेरे आगमनका कारण तुम क्यों पूछते हो?॥ ८२ ॥

राजा बोला—अवश्य ही, समस्त कार्योंमें धर्म और अधर्म ही कारण हैं और कर्मफलके उपभोगके लिये ही एक देहसे दूसरे देहमें जाना होता है॥ ८३ ॥ किन्तु आपने जो कहा कि 'मैं कौन हूँ—यह नहीं बताया जा सकता' इसी बातको सुननेकी मुझे इच्छा हो रही है॥ ८४ ॥ हे ब्रह्मन्! 'जो है [अर्थात् जो आत्मा कर्ता-भोक्तारूपसे प्रतीत होता हुआ सदा सत्तारूपसे वर्तमान है] वही मैं हूँ'—ऐसा क्यों नहीं कहा जा सकता? हे द्विज! यह '**अहम्**' शब्द तो आत्मामें किसी प्रकारके दोषका कारण नहीं होता॥ ८५ ॥

ब्राह्मण बोले—हे राजन्! तुमने जो कहा कि '**अहम्**' शब्दसे आत्मामें कोई दोष नहीं आता सो ठीक ही है, किन्तु अनात्मामें ही आत्मत्वका ज्ञान करानेवाला भ्रान्तिमूलक '**अहम्**' शब्द ही दोषका कारण है॥ ८६ ॥ हे नृप! '**अहम्**' शब्दका उच्चारण जिह्वा, दन्त, ओष्ठ और तालुसे ही होता है, किन्तु ये सब उस शब्दके उच्चारणके कारण हैं, '**अहम्**' (मैं) नहीं॥ ८७॥ तो क्या जिह्वादि कारणोंके द्वारा यह वाणी ही स्वयं अपनेको '**अहम्**' कहती है? नहीं। अतः ऐसी स्थितिमें 'तू मोटा है' ऐसा कहना भी उचित नहीं है॥ ८८ ॥ सिर तथा कर-चरणादिरूप यह शरीर भी आत्मासे पृथक् ही है। अतः हे राजन्! इस '**अहम्**' शब्दका मैं कहाँ प्रयोग करूँ?॥ ८९ ॥ तथा हे नृपश्रेष्ठ! यदि मुझसे भिन्न कोई और भी सजातीय आत्मा हो तो भी 'यह मैं हूँ और यह अन्य है'—ऐसा कहा जा सकता था॥ ९० ॥ किन्तु, जब समस्त शरीरोंमें एक ही आत्मा विराजमान है तब 'आप कौन हैं? मैं वह हूँ।' ये सब वाक्य निष्फल ही हैं॥ ९१ ॥

'तू राजा है, यह शिबिका है, ये सामने शिबिकावाहक हैं तथा ये सब तेरी प्रजा हैं'—हे नृप! इनमेंसे कोई भी बात परमार्थतः सत्य नहीं है॥ ९२ ॥ हे राजन्! वृक्षसे लकड़ी हुई और उससे तेरी यह शिबिका बनी; तो बता इसे लकड़ी कहा जाय या वृक्ष?॥ ९३ ॥ किन्तु 'महाराज वृक्षपर बैठे हैं' ऐसा कोई नहीं कहता और न कोई तुझे लकड़ीपर बैठा हुआ ही बताता है! सब लोग शिबिकामें बैठा हुआ ही कहते हैं॥ ९४॥ हे नृपश्रेष्ठ! रचनाविशेषमें स्थित लकड़ियोंका समूह ही तो शिबिका है। यदि वह उससे कोई भिन्न वस्तु है तो काष्ठको अलग करके उसे ढूँढ़ो॥ ९५ ॥ इसी प्रकार छत्रकी शलाकाओंको अलग रखकर छत्रका विचार करो कि वह कहाँ रहता है। यही न्याय तुममें और मुझमें लागू होता है [अर्थात् मेरे और तुम्हारे शरीर भी पंचभूतसे अतिरिक्त और

कोई वस्तु नहीं हैं] ॥ ९६ ॥ पुरुष, स्त्री, गौ, अज (बकरा), अश्व, गज, पक्षी और वृक्ष आदि लौकिक संज्ञाओंका प्रयोग कर्महेतुक शरीरोंमें ही जानना चाहिये ॥ ९७ ॥ हे राजन्! पुरुष (जीव) तो न देवता है, न मनुष्य है, न पशु है और न वृक्ष है। ये सब तो कर्मजन्य शरीरोंकी आकृतियोंके ही भेद हैं ॥ ९८ ॥

लोकमें धन, राजा, राजाके सैनिक तथा और भी जो-जो वस्तुएँ हैं, हे राजन्! वे परमार्थतः सत्य नहीं हैं, केवल कल्पनामय ही हैं ॥ ९९ ॥ जिस वस्तुकी परिणामादिके कारण होनेवाली कोई संज्ञा कालान्तरमें भी नहीं होती, वही परमार्थ-वस्तु है। हे राजन्! ऐसी वस्तु कौन-सी है? ॥ १०० ॥ [तू अपनेहीको देख] समस्त प्रजाके लिये तू राजा है, पिताके लिये पुत्र है, शत्रुके लिये शत्रु है, पत्नीका पति है और पुत्रका पिता है। हे राजन्! बतला, मैं तुझे क्या कहूँ? ॥ १०१ ॥ हे महीपते! तू क्या यह सिर है, अथवा ग्रीवा है या पेट अथवा पादादिमेंसे कोई है? तथा ये सिर आदि भी 'तेरे' क्या हैं? ॥ १०२ ॥ हे पृथिवीश्वर! तू इन समस्त अवयवोंसे पृथक् है; अतः सावधान होकर विचार कि 'मैं कौन हूँ' ॥ १०३ ॥ हे महाराज! आत्मतत्त्व इस प्रकार व्यवस्थित है। उसे सबसे पृथक् करके ही बताया जा सकता है। तो फिर, मैं उसे '**अहम्**' शब्दसे कैसे बतला सकता हूँ? ॥ १०४ ॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके दूसरे अंशमें तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३ ॥

चौदहवाँ अध्याय

जडभरत और सौवीरनरेशका संवाद

श्रीपराशरजी बोले—उनके ये परमार्थमय वचन सुनकर राजाने विनयावनत होकर उन विप्रवरसे कहा ॥ १ ॥

राजा बोले—भगवन्! आपने जो परमार्थमय वचन कहे हैं उन्हें सुनकर मेरी मनोवृत्तियाँ भ्रान्त-सी हो गयी हैं ॥ २ ॥ हे विप्र! आपने सम्पूर्ण जीवोंमें व्याप्त जिस असंग विज्ञानका दिग्दर्शन कराया है वह प्रकृतिसे परे ब्रह्म ही है [इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं है] ॥ ३ ॥ परंतु आपने जो कहा कि मैं शिबिकाको वहन नहीं कर रहा हूँ, शिबिका मेरे ऊपर नहीं है, जिसने इसे उठा रखा है वह शरीर मुझसे अत्यन्त पृथक् है। जीवोंकी प्रवृत्ति गुणों (सत्त्व, रज, तम)-की प्रेरणासे होती है और गुण कर्मोंसे प्रेरित होकर प्रवृत्त होते हैं—इसमें मेरा कर्तृत्व कैसे माना जा सकता है? ॥ ४-५ ॥ हे परमार्थज्ञ! यह बात मेरे कानोंमें पड़ते ही मेरा मन परमार्थका जिज्ञासु होकर बड़ा उतावला हो रहा है ॥ ६ ॥

हे द्विज! मैं तो पहले ही महाभाग कपिल मुनिसे यह पूछनेके लिये कि बताइये 'संसारमें मनुष्योंका श्रेय किसमें है' उनके पास जानेको तत्पर हुआ हूँ ॥ ७ ॥ किन्तु बीचहीमें, आपने जो वाक्य कहे हैं उन्हें सुनकर मेरा चित्त परमार्थ-श्रवण करनेके लिये आपकी ओर झुक गया है ॥ ८ ॥ हे द्विज! ये कपिल मुनि सर्वभूत भगवान् विष्णुके ही अंश हैं। इन्होंने संसारका मोह दूर करनेके लिये ही पृथिवीपर अवतार लिया है ॥ ९ ॥ किन्तु आप जो इस प्रकार भाषण कर रहे हैं उससे मुझे निश्चय होता है कि वे ही भगवान् कपिलदेव मेरे हितकी कामनासे यहाँ आपके रूपमें प्रकट हो गये हैं ॥ १० ॥ अतः हे द्विज! हमारा जो परम श्रेय हो वह आप मुझ

विनीतसे कहिये। हे प्रभो! आप सम्पूर्ण विज्ञान-तरंगोंके मानो समुद्र ही हैं॥ ११॥

ब्राह्मण बोले—हे राजन्! तुम श्रेय पूछना चाहते हो या परमार्थ? क्योंकि हे भूपते! श्रेय तो सब अपारमार्थिक ही हैं॥ १२॥ हे नृप! जो पुरुष देवताओंकी आराधना करके धन, सम्पत्ति, पुत्र और राज्यादिकी इच्छा करता है उसके लिये तो वे ही परम श्रेय हैं॥ १३॥ जिसका फल स्वर्गलोककी प्राप्ति है वह यज्ञात्मक कर्म भी श्रेय है; किन्तु प्रधान श्रेय तो उसके फलकी इच्छा न करनेमें ही है॥ १४॥ अतः हे राजन्! योगयुक्त पुरुषोंको प्रकृति आदिसे अतीत उस आत्माका ही ध्यान करना चाहिये, क्योंकि उस परमात्माका संयोगरूप श्रेय ही वास्तविक श्रेय है॥ १५॥

इस प्रकार श्रेय तो सैकड़ों-हजारों प्रकारके अनेकों हैं, किंतु ये सब परमार्थ नहीं हैं। अब जो परमार्थ है सो सुनो— ॥ १६॥ यदि धन ही परमार्थ है तो धर्मके लिये उसका त्याग क्यों किया जाता है? तथा इच्छित भोगोंकी प्राप्तिके लिये उसका व्यय क्यों किया जाता है? [अतः वह परमार्थ नहीं है]॥ १७॥ हे नरेश्वर! यदि पुत्रको परमार्थ कहा जाय तो वह तो अन्य (अपने पिता)-का परमार्थभूत है, तथा उसका पिता भी दूसरेका पुत्र होनेके कारण उस (अपने पिता)-का परमार्थ होगा॥ १८॥ अतः इस चराचर जगत्में पिताका कार्यरूप पुत्र भी परमार्थ नहीं है। क्योंकि फिर तो सभी कारणोंके कार्य परमार्थ हो जायँगे॥ १९॥ यदि संसारमें राज्यादिकी प्राप्तिको परमार्थ कहा जाय तो ये कभी रहते हैं और कभी नहीं रहते। अतः परमार्थ भी आगमापायी हो जायगा। [इसलिये राज्यादि भी परमार्थ नहीं हो सकते]॥ २०॥ यदि ऋक्, यजुः और सामरूप वेदत्रयीसे सम्पन्न होनेवाले यज्ञकर्मको परमार्थ मानते हो तो उसके विषयमें मेरा ऐसा विचार है— ॥ २१॥ हे नृप! जो वस्तु कारणरूपा मृत्तिकाका कार्य होती है वह कारणकी अनुगामिनी होनेसे मृत्तिकारूप ही जानी जाती है॥ २२॥ अतः जो क्रिया समिध, घृत और कुशा आदि नाशवान् द्रव्योंसे सम्पन्न होती है वह भी नाशवान् ही होगी॥ २३॥ किन्तु परमार्थको तो प्राज्ञ पुरुष अविनाशी बतलाते हैं और नाशवान् द्रव्योंसे निष्पन्न होनेके कारण कर्म [अथवा उनसे निष्पन्न होनेवाले स्वर्गादि] नाशवान् ही हैं— इसमें सन्देह नहीं॥ २४॥ यदि फलाशासे रहित निष्कामकर्मको परमार्थ मानते हो तो वह तो मुक्तिरूप फलका साधन होनेसे साधन ही है, परमार्थ नहीं॥ २५॥ यदि देहादिसे आत्माका पार्थक्य विचारकर उसके ध्यान करनेको परमार्थ कहा जाय तो वह तो अनात्मासे आत्माका भेद करनेवाला है और परमार्थमें भेद है नहीं [अतः वह भी परमार्थ नहीं हो सकता]॥ २६॥ यदि परमात्मा और जीवात्माके संयोगको परमार्थ कहें तो ऐसा कहना सर्वथा मिथ्या है, क्योंकि अन्य द्रव्यसे अन्य द्रव्यकी एकता कभी नहीं हो सकती*॥ २७॥

अतः हे राजन्! निःसन्देह ये सब श्रेय ही हैं, [परमार्थ नहीं] अब जो परमार्थ है वह मैं संक्षेपसे सुनाता हूँ, श्रवण करो॥ २८॥ आत्मा एक, व्यापक, सम, शुद्ध, निर्गुण और प्रकृतिसे परे है; वह जन्म-वृद्धि आदिसे रहित, सर्वव्यापी और अव्यय है॥ २९॥ हे राजन्! वह परम ज्ञानमय है, असत् नाम और जाति आदिसे उस सर्वव्यापकका संयोग न कभी हुआ, न है और न होगा॥ ३०॥ 'वह, अपने और अन्य प्राणियोंके

* अर्थात् यदि आत्मा परमात्मासे भिन्न है तब तो गौ और अश्वके समान उनकी एकता हो नहीं सकती और यदि बिम्ब-प्रतिबिम्बकी भाँति अभिन्न है तो उपाधिके निराकरणके अतिरिक्त और उनका संयोग ही क्या होगा?

शरीरमें विद्यमान रहते हुए भी, एक ही है'—इस प्रकारका जो विशेष ज्ञान है वही परमार्थ है; द्वैत भावनावाले पुरुष तो अपरमार्थदर्शी हैं॥ ३१॥ जिस प्रकार अभिन्न भावसे व्याप्त एक ही वायुके बाँसुरीके छिद्रोंके भेदसे षड्ज आदि भेद होते हैं उसी प्रकार [शरीरादि उपाधियोंके कारण] एक ही परमात्माके [देवता-मनुष्यादि] अनेक भेद प्रतीत होते हैं॥ ३२॥ एकरूप आत्माके जो नाना भेद हैं वे बाह्य देहादिकी कर्मप्रवृत्तिके कारण ही हुए हैं। देवादि शरीरोंके भेदका निराकरण हो जानेपर वह नहीं रहता। उसकी स्थिति तो अविद्याके आवरणतक ही है॥ ३३॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके दूसरे अंशमें चौदहवाँ अध्याय समाप्त॥ १४॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

ऋभुका निदाघको अद्वैतज्ञानोपदेश

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! ऐसा कहनेपर, राजाको मौन होकर मन-ही-मन सोच-विचार करते देख वे विप्रवर यह अद्वैत-सम्बन्धिनी कथा सुनाने लगे॥ १॥

ब्राह्मण बोले—हे राजशार्दूल! पूर्वकालमें महर्षि ऋभुने महात्मा निदाघको उपदेश करते हुए जो कुछ कहा था वह सुनो॥ २॥ हे भूपते! परमेष्ठी श्रीब्रह्माजीका ऋभु नामक एक पुत्र था, वह स्वभावसे ही परमार्थतत्त्वको जाननेवाला था॥ ३॥ पूर्वकालमें महर्षि पुलस्त्यका पुत्र निदाघ उन ऋभुका शिष्य था। उसे उन्होंने अति प्रसन्न होकर सम्पूर्ण तत्त्वज्ञानका उपदेश दिया था॥ ४॥ हे नरेश्वर! ऋभुने देखा कि सम्पूर्ण शास्त्रोंका ज्ञान होते हुए भी निदाघकी अद्वैतमें निष्ठा नहीं है॥ ५॥

उस समय देविकानदीके तीरपर पुलस्त्यजीका बसाया हुआ वीरनगर नामक एक अति रमणीक और समृद्धि-सम्पन्न नगर था॥ ६॥ हे पार्थिवोत्तम! रम्य उपवनोंसे सुशोभित उस पुरमें पूर्वकालमें ऋभुका शिष्य योगवेत्ता निदाघ रहता था॥ ७॥ महर्षि ऋभु अपने शिष्य निदाघको देखनेके लिये एक सहस्र दिव्यवर्ष बीतनेपर उस नगरमें गये॥ ८॥ जिस समय निदाघ बलिवैश्वदेवके अनन्तर अपने द्वारपर [अतिथियोंकी] प्रतीक्षा कर रहा था, वे उसके दृष्टिगोचर हुए और वह उन्हें द्वारपर पहुँच अर्घ्यदानपूर्वक अपने घरमें ले गया॥ ९॥ उस द्विजश्रेष्ठने उनके हाथ-पैर धुलाये और फिर आसनपर बिठाकर आदरपूर्वक कहा—'भोजन कीजिये'॥ १०॥

ऋभु बोले—हे विप्रवर! आपके यहाँ क्या-क्या अन्न भोजन करना होगा—यह बताइये, क्योंकि कुत्सित अन्नमें मेरी रुचि नहीं है॥ ११॥

निदाघने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ! मेरे घरमें सत्तू, जौकी लप्सी, कन्द-मूल-फलादि तथा पूए बने हैं। आपको इनमेंसे जो कुछ रुचे वही भोजन कीजिये॥ १२॥

ऋभु बोले—हे द्विज! ये तो सभी कुत्सित अन्न हैं, मुझे तो तुम हलवा, खीर तथा मट्ठा और खाँड़से बने स्वादिष्ट भोजन कराओ॥ १३॥

तब निदाघने [अपनी स्त्रीसे] कहा—हे गृहदेवि! हमारे घरमें जो अच्छी-से-अच्छी वस्तु हो उसीसे इनके लिये अति स्वादिष्ट भोजन बनाओ॥ १४॥

ब्राह्मण (जडभरत)-ने कहा—उसके ऐसा कहनेपर उसकी पत्नीने अपने पतिकी आज्ञासे

उन विप्रवरके लिये अति स्वादिष्ट अन्न तैयार किया॥ १५॥

हे राजन्! ऋभुके यथेच्छ भोजन कर चुकनेपर निदाघने अति विनीत होकर उन महामुनिसे कहा॥ १६॥

निदाघ बोले—हे द्विज! कहिये भोजन करके आपका चित्त स्वस्थ हुआ न? आप पूर्णतया तृप्त और सन्तुष्ट हो गये न?॥ १७॥ हे विप्रवर! कहिये आप कहाँ रहनेवाले हैं? कहाँ जानेकी तैयारीमें हैं? और कहाँसे पधारे हैं?॥ १८॥

ऋभु बोले—हे ब्राह्मण! जिसको क्षुधा लगती है उसीकी तृप्ति भी हुआ करती है। मुझको तो कभी क्षुधा ही नहीं लगी, फिर तृप्तिके विषयमें तुम क्या पूछते हो?॥ १९॥ जठराग्निके द्वारा पार्थिव (ठोस) धातुओंके क्षीण हो जानेसे मनुष्यको क्षुधाकी प्रतीति होती है और जलके क्षीण होनेसे तृषाका अनुभव होता है॥ २०॥ हे द्विज! ये क्षुधा और तृषा तो देहके ही धर्म हैं, मेरे नहीं; अतः कभी क्षुधित न होनेके कारण मैं तो सर्वदा तृप्त ही हूँ॥ २१॥ स्वस्थता और तुष्टि भी मनहीमें होते हैं, अतः ये मनहीके धर्म हैं; पुरुष (आत्मा)-से इनका कोई सम्बन्ध नहीं है। इसलिये हे द्विज! ये जिसके धर्म हैं उसीसे इनके विषयमें पूछो॥ २२॥ और तुमने जो पूछा कि 'आप कहाँ रहनेवाले हैं? कहाँ जा रहे हैं? तथा कहाँसे आये हैं' सो इन तीनोंके विषयमें मेरा मत सुनो—॥ २३॥ आत्मा सर्वगत है, क्योंकि यह आकाशके समान व्यापक है; अतः 'कहाँसे आये हो, कहाँ रहते हो और कहाँ जाओगे?' यह कथन भी कैसे सार्थक हो सकता है?॥ २४॥ मैं तो न कहीं जाता हूँ, न आता हूँ और न किसी एक स्थानपर रहता हूँ। [तू, मैं और अन्य पुरुष भी देहादिके कारण जैसे पृथक्-पृथक् दिखायी देते हैं वास्तवमें वैसे नहीं हैं] वस्तुतः तू तू नहीं है, अन्य अन्य नहीं है और मैं मैं नहीं हूँ॥ २५॥

वास्तवमें मधुर मधुर है भी नहीं; देखो, मैंने तुमसे जो मधुर अन्नकी याचना की थी उससे भी मैं यही देखना चाहता था कि 'तुम क्या कहते हो।' हे द्विजश्रेष्ठ! भोजन करनेवालेके लिये स्वादु और अस्वादु भी क्या है? क्योंकि स्वादिष्ट पदार्थ ही जब समयान्तरसे अस्वादु हो जाता है तो वही उद्वेगजनक होने लगता है॥ २६-२७॥

इसी प्रकार कभी अरुचिकर पदार्थ रुचिकर हो जाते हैं और रुचिकर पदार्थोंसे मनुष्यको उद्वेग हो जाता है। ऐसा अन्न भला कौन-सा है जो आदि, मध्य और अन्त तीनों कालमें रुचिकर ही हो?॥ २८॥ जिस प्रकार मिट्टीका घर मिट्टीसे लीपने-पोतनेसे दृढ़ होता है, उसी प्रकार यह पार्थिव देह पार्थिव अन्नके परमाणुओंसे पुष्ट हो जाता है॥ २९॥ जौ, गेहूँ, मूँग, घृत, तैल, दूध, दही, गुड़ और फल आदि सभी पदार्थ पार्थिव परमाणु ही तो हैं। [इनमेंसे किसको स्वादु कहें और किसको अस्वादु?]॥ ३०॥ अतः ऐसा जानकर तुम्हें इस स्वादु-अस्वादुका विचार करनेवाले चित्तको समदर्शी बनाना चाहिये, क्योंकि मोक्षका एकमात्र उपाय समता ही है॥ ३१॥

ब्राह्मण बोले—हे राजन्! उनके ऐसे परमार्थमय वचन सुनकर महाभाग निदाघने उन्हें प्रणाम करके कहा—॥ ३२॥ "प्रभो! आप प्रसन्न होइये! कृपया बतलाइये, मेरे कल्याणकी कामनासे आये हुए आप कौन हैं? हे द्विज! आपके इन वचनोंको सुनकर मेरा सम्पूर्ण मोह नष्ट हो गया है"॥ ३३॥

ऋभु बोले—हे द्विज! मैं तेरा गुरु ऋभु हूँ; तुझको सदसद्विवेकिनी बुद्धि प्रदान करनेके लिये मैं यहाँ आया था। अब मैं जाता हूँ; जो कुछ परमार्थ है वह मैंने तुझसे कह ही दिया है॥ ३४॥ इस परमार्थतत्त्वका विचार करते हुए तू इस सम्पूर्ण

जगत्को एक वासुदेव परमात्माहीका स्वरूप जान; इसमें भेद-भाव बिलकुल नहीं है॥ ३५॥

ब्राह्मण बोले—तदनन्तर निदाघने 'बहुत अच्छा' कह उन्हें प्रणाम किया और फिर उससे परम भक्तिपूर्वक पूजित हो ऋभु स्वेच्छानुसार चले गये॥ ३६॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके दूसरे अंशमें पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त॥ १५॥

सोलहवाँ अध्याय

ऋभुकी आज्ञासे निदाघका अपने घरको लौटना

ब्राह्मण बोले—हे नरेश्वर! तदनन्तर सहस्र वर्ष व्यतीत होनेपर महर्षि ऋभु निदाघको ज्ञानोपदेश करनेके लिये फिर उसी नगरको गये॥ १॥

वहाँ पहुँचनेपर उन्होंने देखा कि वहाँका राजा बहुत-सी सेना आदिके साथ बड़ी धूम-धामसे नगरमें प्रवेश कर रहा है और वनसे कुशा तथा समिध लेकर आया हुआ महाभाग निदाघ जनसमूहसे हटकर भूखा-प्यासा दूर खड़ा है॥ २-३॥

निदाघको देखकर ऋभु उसके निकट गये और उसका अभिवादन करके बोले—'हे द्विज! यहाँ एकान्तमें आप कैसे खड़े हैं'॥ ४॥

निदाघ बोले—हे विप्रवर! आज इस अति रमणीक नगरमें राजा जाना चाहता है, सो मार्गमें बड़ी भीड़ हो रही है; इसलिये मैं यहाँ खड़ा हूँ॥ ५॥

ऋभु बोले—हे द्विजश्रेष्ठ! मालूम होता है आप यहाँकी सब बातें जानते हैं। अतः कहिये इनमें राजा कौन है? और अन्य पुरुष कौन हैं?॥ ६॥

निदाघ बोले—यह जो पर्वतके समान ऊँचे मत्त गजराजपर चढ़ा हुआ है वही राजा है तथा दूसरे लोग परिजन हैं॥ ७॥

ऋभु बोले—आपने राजा और गज, दोनों एक साथ ही दिखाये, किंतु इन दोनोंके पृथक्-पृथक् विशेष चिह्न अथवा लक्षण नहीं बतलाये॥ ८॥ अतः हे महाभाग! इन दोनोंमें क्या-क्या विशेषताएँ हैं, यह बतलाइये। मैं यह जानना चाहता हूँ कि इनमें कौन राजा है और कौन गज है?॥ ९॥

निदाघ बोले—इनमें जो नीचे है वह गज है और उसके ऊपर राजा है। हे द्विज! इन दोनोंका वाह्य-वाहक-सम्बन्ध है—इस बातको कौन नहीं जानता?॥ १०॥

ऋभु बोले—[ठीक है, किन्तु] हे ब्रह्मन्! मुझे इस प्रकार समझाइये, जिससे मैं यह जान सकूँ कि 'नीचे' इस शब्दका वाच्य क्या है? और 'ऊपर' किसे कहते हैं॥ ११॥

ब्राह्मणने कहा—ऋभुके ऐसा कहनेपर निदाघने अकस्मात् उनके ऊपर चढ़कर कहा—"सुनिये, आपने जो पूछा है वही बतलाता हूँ—॥ १२॥ इस समय राजाकी भाँति मैं तो ऊपर हूँ और गजकी भाँति आप नीचे हैं। हे ब्रह्मन्! आपको समझानेके लिये ही मैंने यह दृष्टान्त दिखलाया है"॥ १३॥

ऋभु बोले—हे द्विजश्रेष्ठ! यदि आप राजाके समान हैं और मैं गजके समान हूँ तो यह बताइये कि आप कौन हैं? और मैं कौन हूँ?॥ १४॥

ब्राह्मणने कहा—ऋभुके ऐसा कहनेपर निदाघने तुरन्त ही उनके दोनों चरण पकड़ लिये और कहा—'निश्चय ही आप आचार्यचरण महर्षि ऋभु हैं॥ १५॥ हमारे आचार्यजीके समान अद्वैत-

संस्कारयुक्त चित्त और किसीका नहीं है; अतः मेरा विचार है कि आप हमारे गुरुजी ही आकर उपस्थित हुए हैं'॥ १६॥

ऋभु बोले—हे निदाघ! पहले तुमने सेवा-शुश्रूषा करके मेरा बहुत आदर किया था, अतः तुम्हारे स्नेहवश मैं ऋभु नामक तुम्हारा गुरु ही तुमको उपदेश देनेके लिये आया हूँ॥ १७॥ हे महामते! 'समस्त पदार्थोंमें अद्वैत-आत्म-बुद्धि रखना' यही परमार्थका सार है जो मैंने तुम्हें संक्षेपमें उपदेश कर दिया॥ १८॥

ब्राह्मण बोले—निदाघसे ऐसा कह परम विद्वान् गुरुवर भगवान् ऋभु चले गये और उनके उपदेशसे निदाघ भी अद्वैत-चिन्तनमें तत्पर हो गया॥ १९॥ और समस्त प्राणियोंको अपनेसे अभिन्न देखने लगा हे धर्मज्ञ! हे पृथिवीपते! जिस प्रकार उस ब्रह्मपरायण ब्राह्मणने परम मोक्षपद प्राप्त किया, उसी प्रकार तू भी आत्मा, शत्रु और मित्रादिमें समान भाव रखकर अपनेको सर्वगत जानता हुआ मुक्ति लाभ कर ॥ २०-२१॥ जिस प्रकार एक ही आकाश श्वेत-नील आदि भेदोंवाला दिखायी देता है, उसी प्रकार भ्रान्तदृष्टियोंको एक ही आत्मा पृथक्-पृथक् दीखता है॥ २२॥ इस संसारमें जो कुछ है वह सब एक आत्मा ही है और वह अविनाशी है, उससे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है; मैं, तू और ये सब आत्मस्वरूप ही हैं। अतः भेद-ज्ञानरूप मोहको छोड़॥ २३॥

श्रीपराशरजी बोले—उनके ऐसा कहनेपर सौवीरराजने परमार्थदृष्टिका आश्रय लेकर भेद-बुद्धिको छोड़ दिया और वे जातिस्मर ब्राह्मणश्रेष्ठ भी बोधयुक्त होनेसे उसी जन्ममें मुक्त हो गये॥ २४॥ इस प्रकार महाराज भरतके इतिहासके इस सारभूत वृत्तान्तको जो पुरुष भक्तिपूर्व कहता या सुनता है उसकी बुद्धि निर्मल हो जाती है, उसे कभी आत्म-विस्मृति नहीं होती और वह जन्म-जन्मान्तरमें मुक्तिकी योग्यता प्राप्त कर लेता है॥ २५॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके दूसरे अंशमें सोलहवाँ अध्याय समाप्त॥ १६॥

इस प्रकार श्रीपराशरमुनिद्वारा विरचित श्रीविष्णुपरत्वनिर्णायक श्रीविष्णुमहापुराणका दूसरा अंश समाप्त।

ॐ

श्रीमन्नारायणाय नमः

श्रीविष्णुपुराण

तीसरा अंश

पहला अध्याय

पहले सात मन्वन्तरोंके मनु, इन्द्र, देवता, सप्तर्षि और मनुपुत्रोंका वर्णन

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे गुरुदेव! आपने पृथिवी और समुद्र आदिकी स्थिति तथा सूर्य आदि ग्रहगणके संस्थानका मुझसे भली प्रकार अति विस्तारपूर्वक वर्णन किया॥ १॥ आपने देवता आदि और ऋषिगणोंकी सृष्टि तथा चातुर्वर्ण्य एवं तिर्यक्-योनिगत जीवोंकी उत्पत्तिका भी वर्णन किया॥ २॥ ध्रुव और प्रह्लादके चरित्रोंको भी आपने विस्तारपूर्वक सुना दिया। अतः हे गुरो! अब मैं आपके मुखारविन्दसे सम्पूर्ण मन्वन्तर तथा इन्द्र और देवताओंके सहित मन्वन्तरोंके अधिपति समस्त मनुओंका वर्णन सुनना चाहता हूँ [आप वर्णन कीजिये]॥ ३-४॥

श्रीपराशरजी बोले—भूतकालमें जितने मन्वन्तर हुए हैं तथा आगे भी जो-जो होंगे, उन सबका मैं तुमसे क्रमशः वर्णन करता हूँ॥ ५॥ प्रथम मनु स्वायम्भुव थे। उनके अनन्तर क्रमशः स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत और चाक्षुष हुए॥ ६॥ ये छः मनु पूर्वकालमें हो चुके हैं। इस समय सूर्यपुत्र वैवस्वत मनु हैं, जिनका यह सातवाँ मन्वन्तर वर्तमान है॥ ७॥

कल्पके आदिमें जिस स्वायम्भुव-मन्वन्तरके विषयमें मैंने कहा है, उसके देवता और सप्तर्षियोंका तो मैं पहले ही यथावत् वर्णन कर चुका हूँ॥ ८॥ अब आगे मैं स्वारोचिष मनुके मन्वन्तराधिकारी देवता, ऋषि और मनुपुत्रोंका स्पष्टतया वर्णन करूँगा॥ ९॥ हे मैत्रेय! स्वारोचिषमन्वन्तरमें पारावत और तुषितगण देवता थे, महाबली विपश्चित् देवराज इन्द्र थे॥ १०॥ ऊर्ज्ज, स्तम्भ, प्राण, वात, पृषभ, निरय और परीवान्—ये उस समय सप्तर्षि थे॥ ११॥ तथा चैत्र और किम्पुरुष आदि स्वारोचिषमनुके पुत्र थे। इस प्रकार तुमसे द्वितीय मन्वन्तरका वर्णन कर दिया। अब उत्तम-मन्वन्तरका विवरण सुनो॥ १२॥

हे ब्रह्मन्! तीसरे मन्वन्तरमें उत्तम नामक मनु और सुशान्ति नामक देवाधिपति इन्द्र थे॥ १३॥ उस समय सुधाम, सत्य, जप, प्रतर्दन और वशवर्ती—ये पाँच बारह-बारह देवताओंके गण थे॥ १४॥ तथा वसिष्ठजीके सात पुत्र सप्तर्षिगण और अज, परशु एवं दीप्त आदि उत्तममनुके पुत्र थे॥ १५॥

तामस-मन्वन्तरमें सुपार, हरि, सत्य और सुधि—ये चार देवताओंके वर्ग थे और इनमेंसे प्रत्येक वर्गमें सत्ताईस-सत्ताईस देवगण थे॥ १६॥ सौ अश्वमेधयज्ञवाला राजा शिबि इन्द्र था, तथा उस समय जो सप्तर्षिगण थे उनके नाम मुझसे सुनो—॥ १७॥ ज्योतिर्धामा, पृथु, काव्य, चैत्र, अग्नि, वनक और पीवर—ये उस मन्वन्तरके सप्तर्षि थे॥ १८॥ तथा नर, ख्याति, केतुरूप और जानुजंघ आदि तामसमनुके महाबली पुत्र ही उस समय राज्याधिकारी थे॥ १९॥

हे मैत्रेय! पाँचवें मन्वन्तरमें रैवत नामक मनु और विभु नामक इन्द्र हुए तथा उस समय जो देवगण हुए उनके नाम सुनो— ॥ २० ॥ इस मन्वन्तरमें चौदह-चौदह देवताओंके अमिताभ, भूतरय, वैकुण्ठ और सुमेधा नामक गण थे ॥ २१ ॥ हे विप्र! इस रैवत-मन्वन्तरमें हिरण्यरोमा, वेदश्री, ऊर्ध्वबाहु, वेदबाहु, सुधामा, पर्जन्य और महामुनि— ये सात सप्तर्षिगण थे ॥ २२ ॥ हे मुनिसत्तम! उस समय रैवतमनुके महावीर्यशाली पुत्र बलबन्धु, सम्भाव्य और सत्यक आदि राजा थे ॥ २३ ॥

हे मैत्रेय! स्वारोचिष, उत्तम, तामस और रैवत—ये चार मनु, राजा प्रियव्रतके वंशधर कहे जाते हैं ॥ २४ ॥ राजर्षि प्रियव्रतने तपस्याद्वारा भगवान् विष्णुकी आराधना करके अपने वंशमें उत्पन्न हुए इन चार मन्वन्तराधिपोंको प्राप्त किया था ॥ २५ ॥

छठे मन्वन्तरमें चाक्षुष नामक मनु और मनोजव नामक इन्द्र थे। उस समय जो देवगण थे उनके नाम सुनो— ॥ २६ ॥ उस समय आप्य, प्रसूत, भव्य, पृथुक और लेख—ये पाँच प्रकारके महानुभाव देवगण वर्तमान थे और इनमेंसे प्रत्येक गणमें आठ-आठ देवता थे ॥ २७ ॥

उस मन्वन्तरमें सुमेधा, विरजा, हविष्मान्, उत्तम, मधु, अतिनामा और सहिष्णु—ये सात सप्तर्षि थे ॥ २८ ॥ तथा चाक्षुषके अति बलवान् पुत्र ऊरु, पूरु और शतद्युम्न आदि राज्याधिकारी थे ॥ २९ ॥

हे विप्र! इस समय इस सातवें मन्वन्तरमें सूर्यके पुत्र महातेजस्वी और बुद्धिमान् श्राद्धदेवजी मनु हैं ॥ ३० ॥ हे महामुने! इस मन्वन्तरमें आदित्य, वसु और रुद्र आदि देवगण हैं तथा पुरन्दर नामक इन्द्र है ॥ ३१ ॥ इस समय वसिष्ठ, काश्यप, अत्रि, जमदग्नि, गौतम, विश्वामित्र और भरद्वाज—ये सात सप्तर्षि हैं ॥ ३२ ॥ तथा वैवस्वत मनुके इक्ष्वाकु, नृग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभाग, अरिष्ट, करूष और पृषध्र—ये अत्यन्त लोकप्रसिद्ध और धर्मात्मा नौ पुत्र हैं ॥ ३३-३४ ॥

समस्त मन्वन्तरोंमें देवरूपसे स्थित भगवान् विष्णुकी अनुपम और सत्त्वप्रधाना शक्ति ही संसारकी स्थितिमें उसकी अधिष्ठात्री होती है ॥ ३५ ॥ सबसे पहले स्वायम्भुव-मन्वन्तरमें मानसदेव यज्ञपुरुष उस विष्णुशक्तिके अंशसे ही आकूतिके गर्भसे उत्पन्न हुए थे ॥ ३६ ॥ फिर स्वारोचिष-मन्वन्तरके उपस्थित होनेपर वे मानसदेव श्रीअजित ही तुषित नामक देवगणोंके साथ तुषितासे उत्पन्न हुए ॥ ३७ ॥ फिर उत्तम-मन्वन्तरमें वे तुषितदेव ही देवश्रेष्ठ सत्यगणके सहित सत्यरूपसे सत्याके उदरसे प्रकट हुए ॥ ३८ ॥ तामस-मन्वन्तरके प्राप्त होनेपर वे हरि-नाम देवगणके सहित हरिरूपसे हर्याके गर्भसे उत्पन्न हुए ॥ ३९ ॥ तत्पश्चात् वे देवश्रेष्ठ हरि, रैवत-मन्वन्तरमें तत्कालीन देवगणके सहित सम्भूतिके उदरसे प्रकट होकर मानस नामसे विख्यात हुए ॥ ४० ॥ तथा चाक्षुष-मन्वन्तरमें वे पुरुषोत्तमभगवान् वैकुण्ठ नामक देवगणोंके सहित विकुण्ठासे उत्पन्न होकर वैकुण्ठ कहलाये ॥ ४१ ॥ और हे द्विज! इस वैवस्वत-मन्वन्तरके प्राप्त होनेपर भगवान् विष्णु कश्यपजीद्वारा अदितिके गर्भसे वामनरूप होकर प्रकट हुए ॥ ४२ ॥ उन महात्मा वामनजीने अपनी तीन डगोंसे सम्पूर्ण लोकोंको जीतकर यह निष्कण्टक त्रिलोकी इन्द्रको दे दी थी ॥ ४३ ॥

हे विप्र! इस प्रकार सातों मन्वन्तरोंमें भगवान्की ये सात मूर्तियाँ प्रकट हुईं, जिनसे (भविष्यमें) सम्पूर्ण प्रजाकी वृद्धि हुई ॥ ४४ ॥ यह सम्पूर्ण विश्व उन परमात्माकी ही शक्तिसे व्याप्त है; अतः वे 'विष्णु' कहलाते हैं, क्योंकि

'विश्' धातुका अर्थ प्रवेश करना है॥ ४५॥ समस्त देवता, मनु, सप्तर्षि तथा मनुपुत्र और देवताओंके अधिपति इन्द्रगण—ये सब भगवान् विष्णुकी ही विभूतियाँ हैं॥ ४६॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके तीसरे अंशमें पहला अध्याय समाप्त॥ १॥

दूसरा अध्याय

सावर्णिमनुकी उत्पत्ति तथा आगामी सात मन्वन्तरोंके मनु, मनुपुत्र, देवता, इन्द्र और सप्तर्षियोंका वर्णन

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे विप्रर्षे! आपने यह सात अतीत मन्वन्तरोंकी कथा कही, अब आप मुझसे आगामी मन्वन्तरोंका भी वर्णन कीजिये॥ १॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मुने! विश्वकर्माकी पुत्री संज्ञा सूर्यकी भार्या थी। उससे उनके मनु, यम और यमी—तीन सन्तानें हुईं॥ २॥ कालान्तरमें पतिका तेज सहन न कर सकनेके कारण संज्ञा छायाको पतिकी सेवामें नियुक्त कर स्वयं तपस्याके लिये वनको चली गयी॥ ३॥ सूर्यदेवने यह समझकर कि यह संज्ञा ही है, छायासे शनैश्चर, एक और मनु तथा तपती—ये तीन सन्तानें उत्पन्न कीं॥ ४॥

एक दिन जब छायारूपिणी संज्ञाने क्रोधित होकर [अपने पुत्रके पक्षपातसे] यमको शाप दिया, तब सूर्य और यमको विदित हुआ कि यह तो कोई और है॥ ५॥ तब छायाके द्वारा ही सारा रहस्य खुल जानेपर सूर्यदेवने समाधिमें स्थित होकर देखा कि संज्ञा घोड़ीका रूप धारण कर वनमें तपस्या कर रही है॥ ६॥ अतः उन्होंने भी अश्वरूप होकर उससे दो अश्विनीकुमार और रेतःस्रावके अनन्तर ही रेवन्तको उत्पन्न किया॥ ७॥

फिर भगवान् सूर्य संज्ञाको अपने स्थानपर ले आये तथा विश्वकर्माने उनके तेजको शान्त कर दिया॥ ८॥ उन्होंने सूर्यको भ्रमियन्त्र (सान)-पर चढ़ाकर उनका तेज छाँटा, किन्तु वे उस अक्षुण्ण तेजका केवल अष्टमांश ही क्षीण कर सके॥ ९॥ हे मुनिसत्तम! सूर्यके जिस जाज्वल्यमान वैष्णव-तेजको विश्वकर्माने छाँटा था वह पृथिवीपर गिरा॥ १०॥ उस पृथिवीपर गिरे हुए सूर्य-तेजसे ही विश्वकर्माने विष्णुभगवान्का चक्र, शंकरका त्रिशूल, कुबेरका विमान, कार्तिकेयकी शक्ति बनायी तथा अन्य देवताओंके भी जो-जो शस्त्र थे उन्हें उससे पुष्ट किया॥ ११-१२॥ जिस छायासंज्ञाके पुत्र दूसरे मनुका ऊपर वर्णन कर चुके हैं वह अपने अग्रज मनुका सवर्ण होनेसे सावर्णि कहलाया॥ १३॥

हे महाभाग! सुनो, अब मैं उनके इस सावर्णिकनाम आठवें मन्वन्तरका, जो आगे होनेवाला है, वर्णन करता हूँ॥ १४॥ हे मैत्रेय! यह सावर्णि ही उस समय मनु होंगे तथा सुतप, अमिताभ और मुख्यगण देवता होंगे॥ १५॥ उन देवताओंका प्रत्येक गण बीस-बीसका समूह कहा जाता है। हे मुनिसत्तम! अब मैं आगे होनेवाले सप्तर्षि भी बतलाता हूँ॥ १६॥ उस समय दीप्तिमान्, गालव, राम, कृप, द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा, मेरे पुत्र व्यास और सातवें ऋष्यशृंग—ये सप्तर्षि होंगे॥ १७॥ तथा पाताल-लोकवासी विरोचनके पुत्र बलि श्रीविष्णुभगवान्की कृपासे तत्कालीन इन्द्र और

सावर्णिमनुके पुत्र विरजा, उर्वरीवान् एवं निर्मोक आदि तत्कालीन राजा होंगे॥ १८-१९॥

हे मुने! नवें मनु दक्षसावर्णि होंगे। उनके समय पार, मरीचिगर्भ और सुधर्मा नामक तीन देववर्ग होंगे, जिनमेंसे प्रत्येक वर्गमें बारह-बारह देवता होंगे; तथा हे द्विज! उनका नायक महापराक्रमी अद्भुत नामक इन्द्र होगा॥ २०—२२॥ सवन, द्युतिमान्, भव्य, वसु, मेधातिथि, ज्योतिष्मान् और सातवें सत्य—ये उस समयके सप्तर्षि होंगे तथा धृतकेतु, दीप्तिकेतु, पंचहस्त, निरामय और पृथुश्रवा आदि दक्षसावर्णिमनुके पुत्र होंगे॥ २३-२४॥

हे मुने! दसवें मनु ब्रह्मसावर्णि होंगे। उनके समय सुधामा और विशुद्ध नामक सौ-सौ देवताओंके दो गण होंगे॥ २५॥ महाबलवान् शान्ति उनका इन्द्र होगा तथा उस समय जो सप्तर्षिगण होंगे उनके नाम सुनो— ॥ २६॥ उनके नाम हविष्मान्, सुकृत, सत्य, तपोमूर्ति, नाभाग, अप्रतिमौजा और सत्यकेतु हैं॥ २७॥ उस समय ब्रह्मसावर्णिमनुके सुक्षेत्र, उत्तमौजा और भूरिषेण आदि दस पुत्र पृथिवीकी रक्षा करेंगे॥ २८॥

ग्यारहवाँ मनु धर्मसावर्णि होगा। उस समय होनेवाले देवताओंके विहंगम, कामगम और निर्वाणरति नामक मुख्य गण होंगे—इनमेंसे प्रत्येकमें तीस-तीस देवता रहेंगे और वृष नामक इन्द्र होगा॥ २९-३०॥ उस समय होनेवाले सप्तर्षियोंके नाम नि:स्वर, अग्नितेजा, वपुष्मान्, घृणि, आरुणि, हविष्मान् और अनघ हैं॥ ३१॥ तथा धर्मसावर्णि मनुके सर्वत्रग, सुधर्मा और देवानीक आदि पुत्र उस समयके राज्याधिकारी पृथिवीपति होंगे॥ ३२॥

रुद्रपुत्र सावर्णि बारहवाँ मनु होगा। उसके समय ऋतुधामा नामक इन्द्र होगा तथा तत्कालीन देवताओंके नाम ये हैं सुनो— ॥ ३३॥ हे द्विज! उस समय दस-दस देवताओंके हरित, रोहित, सुमना, सुकर्मा और सुराप नामक पाँच गण होंगे॥ ३४॥ तपस्वी, सुतपा, तपोमूर्ति, तपोरति, तपोधृति, तपोद्युति तथा तपोधन—ये सात सप्तर्षि होंगे। अब मनुपुत्रोंके नाम सुनो— ॥ ३५॥ उस समय उस मनुके देववान्, उपदेव और देवश्रेष्ठ आदि महावीर्यशाली पुत्र तत्कालीन सम्राट् होंगे॥ ३६॥

हे मुने! तेरहवाँ रुचि नामक मनु होगा। इस मन्वन्तरमें सुत्रामा, सुकर्मा और सुधर्मा नामक देवगण होंगे इनमेंसे प्रत्येकमें तैंतीस-तैंतीस देवता रहेंगे; तथा महाबलवान् दिवस्पति उनका इन्द्र होगा॥ ३७—३९॥ निर्मोह, तत्त्वदर्शी, निष्प्रकम्प, निरुत्सुक, धृतिमान्, अव्यय और सुतपा—ये तत्कालीन सप्तर्षि होंगे। अब मनुपुत्रोंके नाम भी सुनो॥ ४०॥ उस मन्वन्तरमें चित्रसेन और विचित्र आदि मनुपुत्र राजा होंगे॥ ४१॥

हे मैत्रेय! चौदहवाँ मनु भौम होगा। उस समय शुचि नामक इन्द्र और पाँच देवगण होंगे; उनके नाम सुनो—वे चाक्षुष, पवित्र, कनिष्ठ, भ्राजिक और वाचावृद्ध नामक देवता हैं। अब तत्कालीन सप्तर्षियोंके नाम भी सुनो॥ ४२-४३॥ उस समय अग्निबाहु, शुचि, शुक्र, मागध, अग्निध्र, युक्त और जित—ये सप्तर्षि होंगे। अब मनुपुत्रोंके विषयमें सुनो॥ ४४॥ हे मुनिशार्दूल! कहते हैं, उस मनुके ऊरु और गम्भीरबुद्धि आदि पुत्र होंगे जो राज्याधिकारी होकर पृथिवीका पालन करेंगे॥ ४५॥

प्रत्येक चतुर्युगके अन्तमें वेदोंका लोप हो जाता है, उस समय सप्तर्षिगण ही स्वर्गलोकसे पृथिवीमें अवतीर्ण होकर उनका प्रचार करते हैं॥ ४६॥ प्रत्येक सत्ययुगके आदिमें [मनुष्योंकी धर्म-मर्यादा स्थापित करनेके लिये] स्मृति-

शास्त्रके रचयिता मनुका प्रादुर्भाव होता है; और उस मन्वन्तरके अन्त-पर्यन्त तत्कालीन देवगण यज्ञ-भागोंको भोगते हैं॥ ४७॥ तथा मनुके पुत्र और उनके वंशधर मन्वन्तरके अन्ततक पृथिवीका पालन करते रहते हैं॥ ४८॥ इस प्रकार मनु सप्तर्षि, देवता, इन्द्र तथा मनु-पुत्र राजागण—ये प्रत्येक मन्वन्तरके अधिकारी होते हैं॥ ४९॥

हे द्विज! इन चौदह मन्वन्तरोंके बीत जानेपर एक सहस्र युग रहनेवाला कल्प समाप्त हुआ कहा जाता है॥ ५०॥ हे साधुश्रेष्ठ! फिर इतने ही समयकी रात्रि होती है। उस समय ब्रह्मरूपधारी श्रीविष्णुभगवान् प्रलयकालीन जलके ऊपर शेष-शय्यापर शयन करते हैं॥ ५१॥ हे विप्र! तब आदिकर्ता सर्वव्यापक सर्वभूत भगवान् जनार्दन सम्पूर्ण त्रिलोकीका ग्रास कर अपनी मायामें स्थित रहते हैं॥ ५२॥ फिर [प्रलय-रात्रिका अन्त होनेपर] प्रत्येक कल्पके आदिमें अव्ययात्मा भगवान् जाग्रत् होकर रजोगुणका आश्रय कर सृष्टिकी रचना करते हैं॥ ५३॥ हे द्विजश्रेष्ठ! मनु, मनु-पुत्र राजागण, इन्द्र देवता तथा सप्तर्षि—ये सब जगत्का पालन करनेवाले भगवान्के सात्त्विक अंश हैं॥ ५४॥

हे मैत्रेय! स्थितिकारक भगवान् विष्णु चारों युगोंमें जिस प्रकार व्यवस्था करते हैं, सो सुनो—॥ ५५॥ समस्त प्राणियोंके कल्याणमें तत्पर वे सर्वभूतात्मा सत्ययुगमें कपिल आदिरूप धारणकर परम ज्ञानका उपदेश करते हैं॥ ५६॥ त्रेतायुगमें वे सर्वसमर्थ प्रभु चक्रवर्ती भूपाल होकर दुष्टोंका दमन करके त्रिलोकीकी रक्षा करते हैं॥ ५७॥ तदनन्तर द्वापरयुगमें वे वेदव्यासरूप धारणकर एक वेदके चार विभाग करते हैं और सैकड़ों शाखाओंमें बाँटकर उसका बहुत विस्तार कर देते हैं॥ ५८॥ इस प्रकार द्वापरमें वेदोंका विस्तार कर कलियुगके अन्तमें भगवान् कल्किरूप धारणकर दुराचारी लोगोंको सन्मार्गमें प्रवृत्त करते हैं॥ ५९॥ इसी प्रकार अनन्तात्मा प्रभु निरन्तर इस सम्पूर्ण जगत्के उत्पत्ति, पालन और नाश करते रहते हैं। इस संसारमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो उनसे भिन्न हो॥ ६०॥ हे विप्र! इहलोक और परलोकमें भूत, भविष्यत् और वर्तमान जितने भी पदार्थ हैं वे सब महात्मा भगवान् विष्णुसे ही उत्पन्न हुए हैं—यह सब मैं तुमसे कह चुका हूँ॥ ६१॥ मैंने तुमसे सम्पूर्ण मन्वन्तरों और मन्वन्तराधिकारियोंका वर्णन कर दिया। कहो, अब और क्या सुनाऊँ?॥ ६२॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके तीसरे अंशमें दूसरा अध्याय समाप्त॥ २॥

तीसरा अध्याय

चतुर्युगानुसार भिन्न-भिन्न व्यासोंके नाम तथा ब्रह्मज्ञानके माहात्म्यका वर्णन

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे भगवन्! आपके कथनसे मैं यह जान गया कि किस प्रकार यह सम्पूर्ण जगत् विष्णुरूप है, विष्णुमें ही स्थित है, विष्णुसे ही उत्पन्न हुआ है तथा विष्णुसे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है?॥ १॥ अब मैं यह सुनना चाहता हूँ कि भगवान्ने वेदव्यासरूपसे युग-युगमें किस प्रकार वेदोंका विभाग किया॥ २॥ हे महामुने! हे भगवन्! जिस-जिस युगमें जो-जो वेदव्यास हुए उनका तथा वेदोंके सम्पूर्ण शाखा-भेदोंका आप मुझसे वर्णन कीजिये॥ ३॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! वेदरूप वृक्षके सहस्रों शाखा-भेद हैं, उनका विस्तारसे वर्णन करनेमें तो कोई भी समर्थ नहीं है, अतः संक्षेपसे सुनो॥ ४॥ हे महामुने ! प्रत्येक द्वापरयुगमें भगवान् विष्णु व्यासरूपसे अवतीर्ण होते हैं और संसारके कल्याणके लिये एक वेदके अनेक भेद कर देते हैं॥ ५॥ मनुष्योंके बल, वीर्य और तेजको अल्प जानकर वे समस्त प्राणियोंके हितके लिये वेदोंका विभाग करते हैं॥ ६ ॥ जिस शरीरके द्वारा वे प्रभु एक वेदके अनेक विभाग करते हैं भगवान् मधुसूदनकी उस मूर्तिका नाम वेदव्यास है॥ ७॥

हे मुने! जिस-जिस मन्वन्तरमें जो-जो व्यास होते हैं और वे जिस-जिस प्रकार शाखाओंका विभाग करते हैं—वह मुझसे सुनो॥ ८॥ इस वैवस्वत-मन्वन्तरके प्रत्येक द्वापरयुगमें व्यास महर्षियोंने अबतक पुनः-पुनः अट्ठाईस बार वेदोंके विभाग किये हैं॥ ९॥ हे साधुश्रेष्ठ! जिन्होंने पुनः-पुनः द्वापरयुगमें वेदोंके चार-चार विभाग किये हैं उन अट्ठाईस व्यासोंका विवरण सुनो— ॥ १० ॥ पहले द्वापरमें स्वयं भगवान् ब्रह्माजीने वेदोंका विभाग किया था। दूसरे द्वापरके वेदव्यास प्रजापति हुए॥ ११ ॥ तीसरे द्वापरमें शुक्राचार्यजी और चौथेमें बृहस्पतिजी व्यास हुए तथा पाँचवेंमें सूर्य और छठेमें भगवान् मृत्यु व्यास कहलाये॥ १२॥ सातवें द्वापरके वेदव्यास इन्द्र, आठवेंके वसिष्ठ, नवेंके सारस्वत और दसवेंके त्रिधामा कहे जाते हैं॥ १३॥ ग्यारहवेंमें त्रिशिख, बारहवेंमें भरद्वाज, तेरहवेंमें अन्तरिक्ष और चौदहवेंमें वर्णी नामक व्यास हुए॥ १४॥ पन्द्रहवेंमें त्रय्यारुण, सोलहवेंमें धनंजय, सत्रहवेंमें क्रतुंजय और तदनन्तर अठारहवेंमें जय नामक व्यास हुए॥ १५॥ फिर उन्नीसवें व्यास भरद्वाज हुए, भरद्वाजके पीछे गौतम हुए और गौतमके पीछे जो व्यास हुए वे हर्यात्मा कहे जाते हैं॥ १६॥ हर्यात्माके अनन्तर वाजश्रवामुनि व्यास हुए तथा उनके पश्चात् सोमशुष्मवंशी तृणबिन्दु (तेईसवें) वेदव्यास कहलाये॥ १७॥ उनके पीछे भृगुवंशी ऋक्ष व्यास हुए जो वाल्मीकि कहलाये, तदनन्तर हमारे पिता शक्ति हुए और फिर मैं हुआ॥ १८॥ मेरे अनन्तर जातुकर्ण व्यास हुए और फिर कृष्णद्वैपायन—इस प्रकार ये अट्ठाईस व्यास प्राचीन हैं। इन्होंने द्वापरादि युगोंमें एक ही वेदके चार-चार विभाग किये हैं॥ १९-२०॥ हे मुने! मेरे पुत्र कृष्णद्वैपायनके अनन्तर आगामी द्वापरयुगमें द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा वेदव्यास होंगे॥ २१॥

ॐ यह अविनाशी एकाक्षर ही ब्रह्म है। यह बृहत् और व्यापक है; इसलिये 'ब्रह्म' कहलाता है॥ २२॥ भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक—ये तीनों प्रणवरूप ब्रह्ममें ही स्थित हैं तथा प्रणव ही ऋक्, यजुः, साम और अथर्वरूप है; अतः उस ओंकाररूप ब्रह्मको नमस्कार है॥ २३॥

जो संसारके उत्पत्ति और प्रलयका कारण कहलाता है तथा महत्तत्त्वसे भी परम गुह्य (सूक्ष्म) है उस ओंकाररूप ब्रह्मको नमस्कार है॥ २४॥ जो अगाध, अपार और अक्षय है, संसारको मोहित करनेवाले तमोगुणका आश्रय है, तथा प्रकाशमय सत्त्वगुण और प्रवृत्तिरूप रजोगुणके द्वारा पुरुषोंके भोग और मोक्षरूप परमपुरुषार्थका हेतु है॥ २५॥ जो सांख्यज्ञानियोंकी परमनिष्ठा है, शम-दमशालियोंका गन्तव्य स्थान है, जो अव्यक्त और अविनाशी है तथा जो सक्रिय ब्रह्म होकर भी सदा रहनेवाला है॥ २६॥ जो स्वयम्भू, प्रधान और अन्तर्यामी कहलाता है तथा जो अविभाग, दीप्तिमान्, अक्षय और अनेक रूप है॥ २७॥ और जो परमात्मस्वरूप

भगवान् वासुदेवका ही रूप (प्रतीक) है, उस ओंकाररूप परब्रह्मको सर्वदा बारम्बार नमस्कार है॥ २८॥ यह ओंकाररूप ब्रह्म अभिन्न होकर भी [अकार, उकार और मकाररूपसे] तीन भेदोंवाला है। यह समस्त भेदोंमें अभिन्नरूपसे स्थित है तथापि भेदबुद्धिसे भिन्न-भिन्न प्रतीत होता है॥ २९॥ वह सर्वात्मा ऋङ्मय, साममय और यजुर्मय है तथा ऋग्यजुः-सामका साररूप वह ओंकार ही सब शरीरधारियोंका आत्मा है॥ ३०॥ वह वेदमय है, वही ऋग्वेदादिरूपसे भिन्न हो जाता है और वही अपने वेदरूपको नाना शाखाओंमें विभक्त करता है तथा वह असंग भगवान् ही समस्त शाखाओंका रचयिता और उनका ज्ञानस्वरूप है॥ ३१॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके तीसरे अंशमें तीसरा अध्याय समाप्त॥ ३॥

चौथा अध्याय

ऋग्वेदकी शाखाओंका विस्तार

श्रीपराशरजी बोले—सृष्टिके आदिमें ईश्वरसे आविर्भूत वेद ऋक्-यजुः आदि चार पादोंसे युक्त और एक लक्ष मन्त्रवाला था। उसीसे समस्त कामनाओंको देनेवाले अग्निहोत्रादि दस प्रकारके यज्ञोंका प्रचार हुआ॥ १॥ तदनन्तर अट्ठाईसवें द्वापरयुगमें मेरे पुत्र कृष्णद्वैपायनने इस चतुष्पादयुक्त एक ही वेदके चार भाग किये॥ २॥ परम बुद्धिमान् वेदव्यासने उनका जिस प्रकार विभाग किया है, ठीक उसी प्रकार अन्यान्य वेदव्यासोंने तथा मैंने भी पहले किया था॥ ३॥ अतः हे द्विज! समस्त चतुर्युगोंमें इन्हीं शाखाभेदोंसे वेदका पाठ होता है—ऐसा जानो॥ ४॥ भगवान् कृष्णद्वैपायनको तुम साक्षात् नारायण ही समझो, क्योंकि हे मैत्रेय! संसारमें नारायणके अतिरिक्त और कौन महाभारतका रचयिता हो सकता है?॥ ५॥

हे मैत्रेय! द्वापरयुगमें मेरे पुत्र महात्मा कृष्णद्वैपायनने जिस प्रकार वेदोंका विभाग किया था वह यथावत् सुनो॥ ६॥ जब ब्रह्माजीकी प्रेरणासे व्यासजीने वेदोंका विभाग करनेका उपक्रम किया, तो उन्होंने वेदका अन्ततक अध्ययन करनेमें समर्थ चार ऋषियोंको शिष्य बनाया॥ ७॥ उनमेंसे उन महामुनिने पैलको ऋग्वेद, वैशम्पायनको यजुर्वेद और जैमिनिको सामवेद पढ़ाया तथा उन मतिमान् व्यासजीका सुमन्तु नामक शिष्य अथर्ववेदका ज्ञाता हुआ॥ ८-९॥ इनके सिवा सूतजातीय महाबुद्धिमान् रोमहर्षणको महामुनि व्यासजीने अपने इतिहास और पुराणके विद्यार्थीरूपसे ग्रहण किया॥ १०॥

पूर्वकालमें यजुर्वेद एक ही था। उसके उन्होंने चार विभाग किये, अतः उसमें चातुर्होत्रकी प्रवृत्ति हुई और इस चातुर्होत्र-विधिसे ही उन्होंने यज्ञानुष्ठानकी व्यवस्था की॥ ११॥ व्यासजीने यजुःसे अध्वर्युके, ऋक्से होताके, सामसे उद्गाताके तथा अथर्ववेदसे ब्रह्माके कर्मकी स्थापना की॥ १२॥ तदनन्तर उन्होंने ऋक् तथा यजुःश्रुतियोंका उद्धार करके ऋग्वेद एवं यजुर्वेदकी और सामश्रुतियोंसे सामवेदकी रचना की॥ १३॥ हे मैत्रेय! अथर्ववेदके द्वारा भगवान् व्यासजीने सम्पूर्ण राज-कर्म और ब्रह्मत्वकी यथावत् व्यवस्था की॥ १४॥ इस प्रकार व्यासजीने वेदरूप एक वृक्षके चार विभाग कर दिये फिर विभक्त हुए उन चारोंसे वेदरूपी वृक्षोंका वन उत्पन्न हुआ॥ १५॥

हे विप्र! पहले पैलने ऋग्वेदरूप वृक्षके दो

विभाग किये और उन दोनों शाखाओंको अपने शिष्य इन्द्रप्रमिति और बाष्कलको पढ़ाया॥ १६॥ फिर बाष्कलने भी अपनी शाखाके चार भाग किये और उन्हें बोध्य आदि अपने शिष्योंको दिया॥ १७॥ हे मुने! बाष्कलकी शाखाकी उन चारों प्रतिशाखाओंको उनके शिष्य बोध्य, आग्निमाढक, याज्ञवल्क्य और पराशरने ग्रहण किया॥ १८॥ हे मैत्रेयजी! इन्द्रप्रमितिने अपनी प्रतिशाखाको अपने पुत्र महात्मा माण्डुकेयको पढ़ाया॥ १९॥ इस प्रकार शिष्य-प्रशिष्य-क्रमसे उस शाखाका उनके पुत्र और शिष्योंमें प्रचार हुआ। इस शिष्य-परम्परासे ही शाकल्य वेदमित्रने उस संहिताको पढ़ा और उसको पाँच अनुशाखाओंमें विभक्त कर अपने पाँच शिष्योंको पढ़ाया॥ २०-२१॥ उसके जो पाँच शिष्य थे उनके नाम सुनो। हे मैत्रेय! वे मुद्गल, गोमुख, वात्स्य और शालीय तथा पाँचवें महामति शरीर थे॥ २२॥ हे मुनिसत्तम! उनके एक दूसरे शिष्य शाकपूर्णने तीन वेदसंहिताओंकी तथा चौथे एक निरुक्त-ग्रन्थकी रचना की॥ २३॥ [उन संहिताओंका अध्ययन करनेवाले उनके शिष्य] महामुनि क्रौंच, वैतालिक और बलाक थे तथा [निरुक्तका अध्ययन करनेवाले] एक चौथे शिष्य वेद-वेदांगके पारगामी निरुक्तकार हुए॥ २४॥ इस प्रकार वेदरूपी वृक्षकी प्रतिशाखाओंसे अनुशाखाओंकी उत्पत्ति हुई। हे द्विजोत्तम! बाष्कलने और भी तीन संहिताओंकी रचना की। उनके [उन संहिताओंको पढ़नेवाले] शिष्य कालायनि, गार्ग्य तथा कथाजव थे। इस प्रकार जिन्होंने संहिताओंकी रचना की वे बह्वृच कहलाये॥ २५-२६॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके तीसरे अंशमें चौथा अध्याय समाप्त॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

शुक्लयजुर्वेद तथा तैत्तिरीय यजुःशाखाओंका वर्णन

श्रीपराशरजी बोले—हे महामुने! व्यासजीके शिष्य वैशम्पायनने यजुर्वेदरूपी वृक्षकी सत्ताईस शाखाओंकी रचना की; और उन्हें अपने शिष्योंको पढ़ाया तथा शिष्योंने भी क्रमशः ग्रहण किया॥ १-२॥ हे द्विज! उनका एक परम धार्मिक और सदैव गुरुसेवामें तत्पर रहनेवाला शिष्य ब्रह्मरातका पुत्र याज्ञवल्क्य था॥ ३॥ [एक समय समस्त ऋषिगणने मिलकर यह नियम किया कि] जो कोई महामेरुपर स्थित हमारे इस समाजमें सम्मिलित न होगा उसको सात रात्रियोंके भीतर ही ब्रह्महत्या लगेगी॥ ४॥ हे द्विज! इस प्रकार मुनियोंने पहले जिस समयको नियत किया था उसका केवल एक वैशम्पायनने ही अतिक्रमण कर दिया॥ ५॥ इसके पश्चात् उन्होंने [प्रमादवश] पैरसे छूए हुए अपने भानजेकी हत्या कर डाली; तब उन्होंने अपने शिष्योंसे कहा—'हे शिष्यगण! तुम सब लोग किसी प्रकारका विचार न करके मेरे लिये ब्रह्महत्याको दूर करनेवाला व्रत करो'॥ ६-७॥

तब याज्ञवल्क्य बोले—"भगवन्! ये सब ब्राह्मण अत्यन्त निस्तेज हैं, इन्हें कष्ट देनेकी क्या आवश्यकता है? मैं अकेला ही इस व्रतका अनुष्ठान करूँगा"॥ ८॥ इससे गुरु वैशम्पायनजीने क्रोधित होकर महामुनि याज्ञवल्क्यसे कहा—"अरे ब्राह्मणोंका अपमान करनेवाले! तूने मुझसे जो कुछ पढ़ा है, वह सब त्याग दे॥ ९॥ तू इन समस्त द्विजश्रेष्ठोंको निस्तेज बताता है, मुझे तुझ-जैसे आज्ञा-भंगकारी शिष्यसे कोई प्रयोजन नहीं है"॥ १०॥ याज्ञवल्क्यने कहा—"हे द्विज!

मैंने तो भक्तिवश आपसे ऐसा कहा था, मुझे भी आपसे कोई प्रयोजन नहीं है; लीजिये, मैंने आपसे जो कुछ पढ़ा है वह यह मौजूद है"॥ ११ ॥

श्रीपराशरजी बोले—ऐसा कह महामुनि याज्ञवल्क्यजीने रुधिरसे भरा हुआ मूर्तिमान् यजुर्वेद वमन करके उन्हें दे दिया; और स्वेच्छानुसार चले गये॥ १२ ॥ हे द्विज! याज्ञवल्क्यद्वारा वमन की हुई उन यजुःश्रुतियोंको अन्य शिष्योंने तित्तिर (तीतर) होकर ग्रहण कर लिया, इसलिये वे सब तैत्तिरीय कहलाये॥ १३ ॥ हे मुनिसत्तम! जिन विप्रगणने गुरुकी प्रेरणासे ब्रह्महत्या विनाशकव्रतका अनुष्ठान किया था, वे सब व्रताचरणके कारण यजुःशाखाध्यायी चरकाध्वर्यु हुए ॥ १४॥ तदनन्तर याज्ञवल्क्यने भी यजुर्वेदकी प्राप्तिकी इच्छासे प्राणोंका संयम कर संयतचित्तसे सूर्यभगवान्‌की स्तुति की ॥ १५ ॥

याज्ञवल्क्यजी बोले—अतुलित तेजस्वी, मुक्तिके द्वारस्वरूप तथा वेदत्रयरूप तेजसे सम्पन्न एवं ऋक्, यजुः तथा सामस्वरूप सवितादेवको नमस्कार है॥ १६ ॥ जो अग्नि और चन्द्रमारूप, जगत्‌के कारण और सुषुम्न नामक परमतेजको धारण करनेवाले हैं, उन भगवान् भास्करको नमस्कार है॥ १७ ॥ कला, काष्ठा, निमेष आदि कालज्ञानके कारण तथा ध्यान करनेयोग्य परब्रह्मस्वरूप विष्णुमय श्रीसूर्यदेवको नमस्कार है॥ १८ ॥ जो अपनी किरणोंसे चन्द्रमाको पोषित करते हुए देवताओंको तथा स्वधारूप अमृतसे पितृगणको तृप्त करते हैं, उन तृप्तिरूप सूर्यदेवको नमस्कार है॥ १९ ॥ जो हिम, जल और उष्णताके कर्ता [अर्थात् शीत, वर्षा और ग्रीष्म आदि ऋतुओंके कारण] हैं और [जगत्‌का] पोषण करनेवाले हैं, उन त्रिकालमूर्ति विधाता भगवान् सूर्यको नमस्कार है॥ २० ॥ जो जगत्पति इस सम्पूर्ण जगत्‌के अन्धकारको दूर करते हैं, उन सत्त्वमूर्तिधारी विवस्वान्‌को नमस्कार है॥ २१ ॥ जिनके उदित हुए बिना मनुष्य सत्कर्ममें प्रवृत्त नहीं हो सकते और जल शुद्धिका कारण नहीं हो सकता, उन भास्वान्देवको नमस्कार है॥ २२ ॥

जिनके किरण-समूहका स्पर्श होनेपर लोक कर्मानुष्ठानके योग्य होता है, उन पवित्रताके कारण, शुद्धस्वरूप सूर्यदेवको नमस्कार है॥ २३ ॥ भगवान् सविता, सूर्य, भास्कर और विवस्वान्‌को नमस्कार है; देवता आदि समस्त भूतोंके आदिभूत आदित्यदेवको बारम्बार नमस्कार है॥ २४ ॥ जिनका तेजोमय रथ है, [प्रज्ञारूप] ध्वजाएँ हैं, जिन्हें [छन्दोमय] अमर अश्वगण वहन करते हैं तथा जो त्रिभुवनको प्रकाशित करनेवाले नेत्ररूप हैं, उन सूर्यदेवको मैं नमस्कार करता हूँ॥ २५ ॥

श्रीपराशरजी बोले—उनके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् सूर्य अश्वरूपसे प्रकट होकर बोले—'तुम अपना अभीष्ट वर माँगो'॥ २६ ॥ तब याज्ञवल्क्यजीने उन्हें प्रणाम करके कहा—"आप मुझे उन यजुःश्रुतियोंका उपदेश कीजिये जिन्हें मेरे गुरुजी भी न जानते हों"॥ २७ ॥ उनके ऐसा कहनेपर भगवान् सूर्यने उन्हें अयातयाम नामक यजुःश्रुतियोंका उपदेश दिया जिन्हें उनके गुरु वैशम्पायनजी भी नहीं जानते थे॥ २८ ॥ हे द्विजोत्तम! उन श्रुतियोंको जिन ब्राह्मणोंने पढ़ा था वे वाजी-नामसे विख्यात हुए क्योंकि उनका उपदेश करते समय सूर्य भी अश्वरूप हो गये थे॥ २९ ॥ हे महाभाग! उन वाजिश्रुतियोंकी काण्व आदि पन्द्रह शाखाएँ हैं; वे सब शाखाएँ महर्षि याज्ञवल्क्यकी प्रवृत्त की हुई कही जाती हैं॥ ३० ॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके तीसरे अंशमें पाँचवाँ अध्याय समाप्त॥ ५ ॥

छठा अध्याय

सामवेदकी शाखा, अठारह पुराण और चौदह विद्याओंके विभागका वर्णन

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! जिस क्रमसे व्यासजीके शिष्य जैमिनिने सामवेदकी शाखाओंका विभाग किया था, वह मुझसे सुनो॥ १॥ जैमिनिका पुत्र सुमन्तु था और उसका पुत्र सुकर्मा हुआ। उन दोनों महामति पुत्र-पौत्रोंने सामवेदकी एक-एक शाखाका अध्ययन किया॥ २॥ तदनन्तर सुमन्तुके पुत्र सुकर्माने अपनी सामवेदसंहिताके एक सहस्र शाखाभेद किये और हे द्विजोत्तम! उन्हें उसके कौसल्य हिरण्यनाभ तथा पौष्पिञ्जि नामक दो महाव्रती शिष्योंने ग्रहण किया। हिरण्यनाभके पाँच सौ शिष्य थे जो उदीच्य सामग कहलाये॥ ३-४॥

इसी प्रकार जिन अन्य द्विजोत्तमोंने इतनी ही संहिताएँ हिरण्यनाभसे और ग्रहण कीं उन्हें पण्डितजन प्राच्य सामग कहते हैं॥ ५॥ पौष्पिञ्जिके शिष्य लोकाक्षि, नौधमि, कक्षीवान् और लांगलि थे। उनके शिष्य-प्रशिष्योंने अपनी-अपनी संहिताओंके विभाग करके उन्हें बहुत बढ़ा दिया॥ ६॥ महामुनि कृति नामक हिरण्यनाभके एक और शिष्यने अपने शिष्योंको सामवेदकी चौबीस संहिताएँ पढ़ायीं॥ ७॥ फिर उन्होंने भी इस सामवेदका शाखाओंद्वारा खूब विस्तार किया। अब मैं अथर्ववेदकी संहिताओंके समुच्चयका वर्णन करता हूँ॥ ८॥

अथर्ववेदको सर्वप्रथम अमिततेजोमय सुमन्तु मुनिने अपने शिष्य कबन्धको पढ़ाया था, फिर कबन्धने उसके दो भाग कर उन्हें देवदर्श और पथ्य नामक अपने शिष्योंको दिया॥ ९॥ हे द्विजसत्तम! देवदर्शके शिष्य मेध, ब्रह्मबलि, शौल्कायनि और पिप्पल थे॥ १०॥ हे द्विज! पथ्यके भी जाबालि, कुमुदादि और शौनक नामक तीन शिष्य थे, जिन्होंने संहिताओंका विभाग किया॥ ११॥ शौनकने भी अपनी संहिताके दो विभाग करके उनमेंसे एक वभ्रुको तथा दूसरी सैन्धव नामक अपने शिष्यको दी॥ १२॥ सैन्धवसे पढ़कर मुञ्जिकेशने अपनी संहिताके पहले दो और फिर तीन [इस प्रकार पाँच] विभाग किये। नक्षत्रकल्प, वेदकल्प, संहिताकल्प, आंगिरसकल्प और शान्तिकल्प—उनके रचे हुए ये पाँच विकल्प अथर्ववेद-संहिताओंमें सर्वश्रेष्ठ हैं॥ १३-१४॥

तदनन्तर पुराणार्थविशारद व्यासजीने आख्यान, उपाख्यान, गाथा और कल्पशुद्धिके सहित पुराणसंहिताकी रचना की॥ १५॥ रोमहर्षण सूत व्यासजीके प्रसिद्ध शिष्य थे। महामति व्यासजीने उन्हें पुराणसंहिताका अध्ययन कराया॥ १६॥ उन सूतजीके सुमति, अग्निवर्चा, मित्रायु, शांसपायन, अकृतव्रण और सावर्णि—ये छः शिष्य थे॥ १७॥ काश्यपगोत्रीय अकृतव्रण, सावर्णि और शांसपायन—ये तीनों संहिताकर्ता हैं। उन तीनों संहिताओंका आधार एक रोमहर्षणजीकी संहिता है। हे मुने! इन चारों संहिताओंकी सारभूत मैंने यह विष्णुपुराणसंहिता बनायी है॥ १८-१९॥ पुराणज्ञ पुरुष कुल अठारह पुराण बतलाते हैं; उन सबमें प्राचीनतम ब्रह्मपुराण है॥ २०॥

प्रथम पुराण ब्राह्म है, दूसरा पाद्म, तीसरा वैष्णव, चौथा शैव, पाँचवाँ भागवत, छठा नारदीय और सातवाँ मार्कण्डेय है॥ २१॥ इसी प्रकार आठवाँ आग्नेय, नवाँ भविष्यत्, दसवाँ ब्रह्मवैवर्त्त और ग्यारहवाँ पुराण लैङ्ग कहा जाता है॥ २२॥ तथा बारहवाँ वाराह, तेरहवाँ स्कान्द, चौदहवाँ

वामन, पन्द्रहवाँ कौर्म तथा इनके पश्चात् मात्स्य, गारुड और ब्रह्माण्डपुराण हैं। हे महामुने! ये ही अठारह महापुराण हैं॥ २३-२४॥ इनके अतिरिक्त मुनिजनोंने और भी अनेक उपपुराण बतलाये हैं। इन सभीमें सृष्टि, प्रलय, देवता आदिकोंके वंश, मन्वन्तर और भिन्न-भिन्न राजवंशोंके चरित्रोंका वर्णन किया गया है॥ २५॥

हे मैत्रेय! जिस पुराणको मैं तुम्हें सुना रहा हूँ वह पाद्मपुराणके अनन्तर कहा हुआ वैष्णव नामक महापुराण है॥ २६॥ हे साधुश्रेष्ठ! इसमें सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश और मन्वन्तरादिका वर्णन करते हुए सर्वत्र केवल विष्णुभगवान्‌का ही वर्णन किया गया है॥ २७॥

छः वेदांग, चार वेद, मीमांसा, न्याय, पुराण और धर्मशास्त्र—ये ही चौदह विद्याएँ हैं॥ २८॥ इन्हींमें आयुर्वेद, धनुर्वेद और गान्धर्व इन तीनोंको तथा चौथे अर्थशास्त्रको मिला लेनेसे कुल अठारह विद्याएँ हो जाती हैं। ऋषियोंके तीन भेद हैं—प्रथम ब्रह्मर्षि, द्वितीय देवर्षि और फिर राजर्षि॥ २९-३०॥ इस प्रकार मैंने तुमसे वेदोंकी शाखा, शाखाओंके भेद, उनके रचयिता तथा शाखाभेदके कारणोंका भी वर्णन कर दिया॥ ३१॥ इसी प्रकार समस्त मन्वन्तरोंमें एक-से शाखाभेद रहते हैं; हे द्विज! प्रजापति ब्रह्माजीसे प्रकट होनेवाली श्रुति तो नित्य है, ये तो उसके विकल्पमात्र हैं॥ ३२॥ हे मैत्रेय! वेदके सम्बन्धमें तुमने मुझसे जो कुछ पूछा था वह मैंने सुना दिया; अब और क्या कहूँ?॥ ३३॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके तीसरे अंशमें छठा अध्याय समाप्त॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

यमगीता

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे गुरो! मैंने जो कुछ पूछा था वह सब आपने यथावत् वर्णन किया। अब मैं एक बात और सुनना चाहता हूँ, वह आप मुझसे कहिये॥ १॥ हे महामुने! सातों द्वीप, सातों पाताल और सातों लोक—ये सभी स्थान जो इस ब्रह्माण्डके अन्तर्गत हैं, स्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, सूक्ष्मातिसूक्ष्म तथा स्थूल और स्थूलतर जीवोंसे भरे हुए हैं॥ २-३॥ हे मुनिसत्तम! एक अंगुलका आठवाँ भाग भी कोई ऐसा स्थान नहीं है जहाँ कर्म-बन्धनसे बँधे हुए जीव न रहते हों॥ ४॥ किंतु हे भगवन्! आयुके समाप्त होनेपर ये सभी यमराजके वशीभूत हो जाते हैं और उन्हींके आदेशानुसार नरक आदि नाना प्रकारकी यातनाएँ भोगते हैं॥ ५॥ तदनन्तर पाप-भोगके समाप्त होनेपर वे देवादि योनियोंमें घूमते रहते हैं—सकल शास्त्रोंका ऐसा ही मत है॥ ६॥ अतः आप मुझे वह कर्म बताइये जिसे करनेसे मनुष्य यमराजके वशीभूत नहीं होता; मैं आपसे यही सुनना चाहता हूँ॥ ७॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मुने! यही प्रश्न महात्मा नकुलने पितामह भीष्मसे पूछा था। उसके उत्तरमें उन्होंने जो कुछ कहा था वह सुनो॥ ८॥

भीष्मजीने कहा—हे वत्स! पूर्वकालमें मेरे पास एक कलिंगदेशीय ब्राह्मण-मित्र आया और मुझसे बोला—'मेरे पूछनेपर एक जातिस्मर मुनिने बतलाया था कि ये सब बातें अमुक-अमुक प्रकार ही होंगी।' हे वत्स! उस बुद्धिमान्‌ने जो-जो बातें जिस-जिस प्रकार होनेको कही थीं वे

सब ज्यों-की-त्यों हुईं॥ ९-१०॥ इस प्रकार उसमें श्रद्धा हो जानेसे मैंने उससे फिर कुछ और भी प्रश्न किये और उनके उत्तरमें उस द्विजश्रेष्ठने जो-जो बातें बतलायीं उनके विपरीत मैंने कभी कुछ नहीं देखा॥ ११॥ एक दिन, जो बात तुम मुझसे पूछते हो वही मैंने उस कालिंग ब्राह्मणसे पूछी। उस समय उसने उस मुनिके वचनोंको याद करके कहा कि उस जातिस्मर ब्राह्मणने, यम और उनके दूतोंके बीचमें जो संवाद हुआ था, वह अति गूढ़ रहस्य मुझे सुनाया था। वही मैं तुमसे कहता हूँ॥ १२-१३॥

कालिंग बोला—अपने अनुचरको हाथमें पाश लिये देखकर यमराजने उसके कानमें कहा—'भगवान् मधुसूदनके शरणागत व्यक्तियोंको छोड़ देना, क्योंकि मैं वैष्णवोंसे अतिरिक्त और सब मनुष्योंका ही स्वामी हूँ॥ १४॥ देव-पूज्य विधाताने मुझे 'यम' नामसे लोकोंके पाप-पुण्यका विचार करनेके लिये नियुक्त किया है। मैं अपने गुरु श्रीहरिके वशीभूत हूँ, स्वतन्त्र नहीं हूँ। भगवान् विष्णु मेरा भी नियन्त्रण करनेमें समर्थ हैं॥ १५॥ जिस प्रकार सुवर्ण भेदरहित और एक होकर भी कटक, मुकुट तथा कर्णिका आदिके भेदसे नानारूप प्रतीत होता है उसी प्रकार एक ही हरिका देवता, मनुष्य और पशु आदि नाना-विध कल्पनाओंसे निर्देश किया जाता है॥ १६॥

जिस प्रकार वायुके शान्त होनेपर उसमें उड़ते हुए परमाणु पृथिवीसे मिलकर एक हो जाते हैं उसी प्रकार गुण-क्षोभसे उत्पन्न हुए समस्त देवता, मनुष्य और पशु आदि [उसका अन्त हो जानेपर] उस सनातन परमात्मामें लीन हो जाते हैं॥ १७॥ जो भगवान्के सुरवरवन्दित चरण-कमलोंकी परमार्थ-बुद्धिसे वन्दना करता है, घृताहुतिसे प्रज्वलित अग्निके समान समस्त पाप-बन्धनसे मुक्त हुए उस पुरुषको तुम दूरहीसे छोड़कर निकल जाना'॥ १८॥

यमराजके ऐसे वचन सुनकर पाशहस्त यमदूतने उनसे पूछा—'प्रभो! सबके विधाता भगवान् हरिका भक्त कैसा होता है, यह आप मुझसे कहिये'॥ १९॥

यमराज बोले—जो पुरुष अपने वर्ण-धर्मसे विचलित नहीं होता, अपने सुहृद् और विपक्षियोंके प्रति समान भाव रखता है, किसीका द्रव्य हरण नहीं करता तथा किसी जीवकी हिंसा नहीं करता उस अत्यन्त रागादि-शून्य और निर्मलचित्त व्यक्तिको भगवान् विष्णुका भक्त जानो॥ २०॥ जिस निर्मलमतिका चित्त कलि-कल्मषरूप मलसे मलिन नहीं हुआ और जिसने अपने हृदयमें श्रीजनार्दनको बसाया हुआ है उस मनुष्यको भगवान्का अतीव भक्त समझो॥ २१॥

जो एकान्तमें पड़े हुए दूसरेके सोनेको देखकर भी उसे अपनी बुद्धिद्वारा तृणके समान समझता है और निरन्तर भगवान्का अनन्यभावसे चिन्तन करता है उस नरश्रेष्ठको विष्णुका भक्त जानो॥ २२॥ कहाँ तो स्फटिकगिरि-शिलाके समान अति निर्मल भगवान् विष्णु और कहाँ मनुष्योंके चित्तमें रहनेवाले राग-द्वेषादि दोष? [इन दोनोंका संयोग किसी प्रकार नहीं हो सकता] हिमकर (चन्द्रमा)-के किरण जालमें अग्नि-तेजकी उष्णता कभी नहीं रह सकती है॥ २३॥ जो व्यक्ति निर्मल-चित्त, मात्सर्यरहित, प्रशान्त, शुद्ध-चरित्र, समस्त जीवोंका सुहृद्, प्रिय और हितवादी तथा अभिमान एवं मायासे रहित होता है उसके हृदयमें भगवान् वासुदेव सर्वदा विराजमान रहते हैं॥ २४॥ उन सनातन भगवान्के हृदयमें विराजमान

होनेपर पुरुष इस जगत्में सौम्यमूर्ति हो जाता है, जिस प्रकार नवीन शालवृक्ष अपने सौन्दर्यसे ही भीतर भरे हुए अति सुन्दर पार्थिव रसको बतला देता है॥ २५॥

हे दूत! यम और नियमके द्वारा जिनकी पापराशि दूर हो गयी है, जिनका हृदय निरन्तर श्रीअच्युतमें ही आसक्त रहता है, तथा जिनमें गर्व, अभिमान और मात्सर्यका लेश भी नहीं रहा है; उन मनुष्योंको तुम दूरहीसे त्याग देना॥ २६॥ यदि खड्ग, शंख और गदाधारी अव्ययात्मा भगवान् हरि हृदयमें विराजमान हैं तो उन पापनाशक भगवान्के द्वारा उसके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। सूर्यके रहते हुए भला अन्धकार कैसे ठहर सकता है?॥ २७॥ जो पुरुष दूसरोंका धन हरण करता है, जीवोंकी हिंसा करता है, तथा मिथ्या और कटुभाषण करता है उस अशुभ कर्मोन्मत्त दुष्टबुद्धिके हृदयमें भगवान् अनन्त नहीं टिक सकते॥ २८॥ जो कुमति दूसरोंके वैभवको नहीं देख सकता, जो दूसरोंकी निन्दा करता है, साधुजनोंका अपकार करता है तथा [सम्पन्न होकर भी] न तो श्रीविष्णुभगवान्की पूजा ही करता है और न [उनके भक्तोंको] दान ही देता है; उस अधमके हृदयमें श्रीजनार्दनका निवास कभी नहीं हो सकता॥ २९॥

जो दुष्टबुद्धि अपने परम सुहृद्, बन्धु-बान्धव, स्त्री, पुत्र, कन्या, पिता तथा भृत्यवर्गके प्रति अर्थतृष्णा प्रकट करता है उस पापाचारीको भगवान्का भक्त मत समझो॥ ३०॥ जो दुर्बुद्धि पुरुष असत्कर्मोंमें लगा रहता है, नीच पुरुषोंके आचार और उन्हींके संगमें उन्मत्त रहता है तथा नित्यप्रति पापमय कर्मबन्धनसे ही बँधता जाता है वह मनुष्यरूप पशु ही है; वह भगवान् वासुदेवका भक्त नहीं हो सकता॥ ३१॥ यह सकल प्रपंच और मैं एक परमपुरुष परमेश्वर वासुदेव ही हैं, हृदयमें भगवान् अनन्तके स्थित होनेसे जिनकी ऐसी स्थिर बुद्धि हो गयी हो, उन्हें तुम दूरहीसे छोड़कर चले जाना॥ ३२॥ 'हे कमलनयन! हे वासुदेव! हे विष्णो! हे धरणिधर! हे अच्युत! हे शंख-चक्र-पाणे! आप हमें शरण दीजिये'—जो लोग इस प्रकार पुकारते हों उन निष्पाप व्यक्तियोंको तुम दूरसे ही त्याग देना॥ ३३॥

जिस पुरुषश्रेष्ठके अन्त:करणमें वे अव्ययात्मा भगवान् विराजते हैं, उसका जहाँतक दृष्टिपात होता है वहाँतक भगवान्के चक्रके प्रभावसे अपने बल-वीर्य नष्ट हो जानेके कारण तुम्हारी अथवा मेरी गति नहीं हो सकती। वह (महापुरुष) तो अन्य (वैकुण्ठादि) लोकोंका पात्र है॥ ३४॥

कालिंग बोला—हे कुरुवर! अपने दूतको शिक्षा देनेके लिये सूर्यपुत्र धर्मराजने उससे इस प्रकार कहा। मुझसे यह प्रसंग उस जातिस्मर मुनिने कहा था और मैंने यह सम्पूर्ण कथा तुमको सुना दी है॥ ३५॥

श्रीभीष्मजी बोले—हे नकुल! पूर्वकालमें कलिंगदेशसे आये हुए उस महात्मा ब्राह्मणने प्रसन्न होकर मुझे यह सब विषय सुनाया था॥ ३६॥ हे वत्स! वही सम्पूर्ण वृत्तान्त, जिस प्रकार कि इस संसार-सागरमें एक विष्णुभगवान्को छोड़कर जीवका और कोई भी रक्षक नहीं है, मैंने ज्यों-का-त्यों तुम्हें सुना दिया॥ ३७॥ जिसका हृदय निरन्तर भगवत्परायण रहता है उसका यम, यमदूत, यमपाश, यमदण्ड अथवा यम-यातना कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते॥ ३८॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मुने! तुम्हारे प्रश्नके अनुसार जो कुछ यमने कहा था, वह सब मैंने तुम्हें भली प्रकार सुना दिया, अब और क्या सुनना चाहते हो?॥ ३९॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके तीसरे अंशमें सातवाँ अध्याय समाप्त॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

विष्णुभगवान्‌की आराधना और चातुर्वर्ण्य-धर्मका वर्णन

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे भगवन्! जो लोग संसारको जीतना चाहते हैं, वे जिस प्रकार जगत्पति भगवान् विष्णुकी उपासना करते हैं, वह वर्णन कीजिये॥ १॥ और हे महामुने! उन गोविन्दकी आराधना करनेपर आराधन-परायण पुरुषोंको जो फल मिलता है, वह भी मैं सुनना चाहता हूँ॥ २॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! तुम जो कुछ पूछते हो यही बात महात्मा सगरने और्वसे पूछी थी। उसके उत्तरमें उन्होंने जो कुछ कहा वह मैं तुमको सुनाता हूँ, श्रवण करो॥ ३॥ हे मुनिश्रेष्ठ! सगरने भृगुवंशी महात्मा और्वको प्रणाम करके उनसे भगवान् विष्णुकी आराधनाके उपाय और विष्णुकी उपासना करनेसे मनुष्यको जो फल मिलता है उसके विषयमें पूछा था। उनके पूछनेपर और्वने यत्नपूर्वक जो कुछ कहा था वह सब सुनो॥ ४-५॥

और्व बोले—भगवान् विष्णुकी आराधना करनेसे मनुष्य भूमण्डल-सम्बन्धी समस्त मनोरथ, स्वर्ग, स्वर्गसे भी श्रेष्ठ ब्रह्मपद और परम निर्वाण-पद भी प्राप्त कर लेता है॥ ६॥ हे राजेन्द्र! वह जिस-जिस फलकी जितनी-जितनी इच्छा करता है, अल्प हो या अधिक, श्रीअच्युतकी आराधनासे निश्चय ही वह सब प्राप्त कर लेता है॥ ७॥ और हे भूपाल! तुमने जो पूछा कि हरिकी आराधना किस प्रकार की जाय, सो सब मैं तुमसे कहता हूँ, सावधान होकर सुनो॥ ८॥ जो पुरुष वर्णाश्रम-धर्मका पालन करनेवाला है वही परमपुरुष विष्णुकी आराधना कर सकता है; उनको सन्तुष्ट करनेका और कोई मार्ग नहीं है॥ ९॥ हे नृप! यज्ञोंका यजन करनेवाला पुरुष उन (विष्णु)-हीका यजन करता है, जप करनेवाला उन्हींका जप करता है और दूसरोंकी हिंसा करनेवाला उन्हींकी हिंसा करता है; क्योंकि भगवान् हरि सर्वभूतमय हैं॥ १०॥

अतः सदाचारयुक्त पुरुष अपने वर्णके लिये विहित धर्मका आचरण करते हुए श्रीजनार्दनहीकी उपासना करता है॥ ११॥ हे पृथिवीपते! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपने-अपने धर्मका पालन करते हुए ही विष्णुकी आराधना करते हैं, अन्य प्रकारसे नहीं॥ १२॥

जो पुरुष दूसरोंकी निन्दा, चुगली अथवा मिथ्याभाषण नहीं करता तथा ऐसा वचन भी नहीं बोलता जिससे दूसरोंको खेद हो, उससे निश्चय ही भगवान् केशव प्रसन्न रहते हैं॥ १३॥ हे राजन्! जो पुरुष दूसरोंकी स्त्री, धन और हिंसामें रुचि नहीं करता उससे सर्वदा ही भगवान् केशव सन्तुष्ट रहते हैं॥ १४॥ हे नरेन्द्र! जो मनुष्य किसी प्राणी अथवा [वृक्षादि]अन्य देहधारियोंको पीड़ित अथवा नष्ट नहीं करता उससे श्रीकेशव सन्तुष्ट रहते हैं॥ १५॥ जो पुरुष देवता, ब्राह्मण और गुरुजनोंकी सेवामें सदा तत्पर रहता है, हे नरेश्वर! उससे गोविन्द सदा प्रसन्न रहते हैं॥ १६॥ जो व्यक्ति स्वयं अपने और अपने पुत्रोंके समान

ही समस्त प्राणियोंका भी हित-चिन्तक होता है वह सुगमतासे ही श्रीहरिको प्रसन्न कर लेता है॥ १७॥ हे नृप! जिसका चित्त रागादि दोषोंसे दूषित नहीं है उस विशुद्ध-चित्त पुरुषसे भगवान् विष्णु सदा सन्तुष्ट रहते हैं॥ १८॥ हे नृपश्रेष्ठ! शास्त्रोंमें जो-जो वर्णाश्रम-धर्म कहे हैं उन-उनका ही आचरण करके पुरुष विष्णुकी आराधना कर सकता है; और किसी प्रकार नहीं॥ १९॥

सगर बोले—हे द्विजश्रेष्ठ! अब मैं सम्पूर्ण वर्णधर्म और आश्रमधर्मोंको सुनना चाहता हूँ, कृपा करके वर्णन कीजिये॥ २०॥

और्व बोले—जिनका मैं वर्णन करता हूँ, उन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंके धर्मोंका तुम एकाग्रचित्त होकर क्रमशः श्रवण करो॥ २१॥ ब्राह्मणका कर्तव्य है कि दान दे, यज्ञोंद्वारा देवताओंका यजन करे, स्वाध्यायशील हो, नित्य स्नान-तर्पण करे और अग्न्याधान आदि कर्म करता रहे॥ २२॥ ब्राह्मणको उचित है कि वृत्तिके लिये दूसरोंसे यज्ञ करावे, औरोंको पढ़ावे और न्यायोपार्जित शुद्ध धनमेंसे न्यायानुकूल द्रव्य-संग्रह करे॥ २३॥ ब्राह्मणको कभी किसीका अहित नहीं करना चाहिये और सर्वदा समस्त प्राणियोंके हितमें तत्पर रहना चाहिये। सम्पूर्ण प्राणियोंमें मैत्री रखना ही ब्राह्मणका परम धन है॥ २४॥ पत्थरमें और पराये रत्नमें ब्राह्मणको समान-बुद्धि रखनी चाहिये। हे राजन्! पत्नीके विषयमें ऋतुगामी होना ही ब्राह्मणके लिये प्रशंसनीय कर्म है॥ २५॥

क्षत्रियको उचित है कि ब्राह्मणोंको यथेच्छ दान दे, विविध यज्ञोंका अनुष्ठान करे और अध्ययन करे॥ २६॥ शस्त्र धारण करना और पृथिवीकी रक्षा करना ही क्षत्रियकी उत्तम आजीविका है; इनमें भी पृथिवी-पालन ही उत्कृष्टतर है॥ २७॥ पृथिवी-पालनसे ही राजालोग कृतकृत्य हो जाते हैं, क्योंकि पृथिवीमें होनेवाले यज्ञादि कर्मोंका अंश राजाको मिलता है॥ २८॥ जो राजा अपने वर्णधर्मको स्थिर रखता है वह दुष्टोंको दण्ड देने और साधुजनोंका पालन करनेसे अपने अभीष्ट लोकोंको प्राप्त कर लेता है॥ २९॥

हे नरनाथ! लोकपितामह ब्रह्माजीने वैश्योंको पशु-पालन, वाणिज्य और कृषि—ये जीविकारूपसे दिये हैं॥ ३०॥ अध्ययन, यज्ञ, दान और नित्य-नैमित्तिकादि कर्मोंका अनुष्ठान—ये कर्म उसके लिये भी विहित हैं॥ ३१॥

शूद्रका कर्तव्य यही है कि द्विजातियोंकी प्रयोजन-सिद्धिके लिये कर्म करे और उसीसे अपना पालन-पोषण करे, अथवा [आपत्कालमें, जब उक्त उपायसे जीविका-निर्वाह न हो सके तो] वस्तुओंके लेने-बेचने अथवा कारीगरीके कामोंसे निर्वाह करे॥ ३२॥ अति नम्रता, शौच, निष्कपट स्वामि-सेवा, मन्त्रहीन यज्ञ, अस्तेय, सत्संग और ब्राह्मणकी रक्षा करना—ये शूद्रके प्रधान कर्म हैं॥ ३३॥ हे राजन्! शूद्रको भी उचित है कि दान दे, बलिवैश्वदेव अथवा नमस्कार आदि अल्प यज्ञोंका अनुष्ठान करे, पितृश्राद्ध आदि कर्म करे, अपने आश्रित कुटुम्बियोंके भरण-पोषणके लिये सकल वर्णोंसे द्रव्य-संग्रह करे और ऋतुकालमें अपनी ही स्त्रीसे प्रसंग करे॥ ३४-३५॥ हे नरेश्वर! इनके अतिरिक्त समस्त प्राणियोंपर दया, सहनशीलता, अमानिता, सत्य, शौच, अधिक परिश्रम न करना, मंगलाचरण, प्रियवादिता, मैत्री, निष्कामता, अकृपणता और किसीके दोष न देखना—ये समस्त वर्णोंके सामान्य गुण हैं॥ ३६-३७॥

सब वर्णोंके सामान्य लक्षण इसी प्रकार हैं। अब इन ब्राह्मणादि चारों वर्णोंके आपद्धर्म और गुणोंका श्रवण करो॥ ३८॥ आपत्तिके समय

ब्राह्मणको क्षत्रिय और वैश्य-वर्णोंकी वृत्तिका अवलम्बन करना चाहिये तथा क्षत्रियको केवल वैश्यवृत्तिका ही आश्रय लेना चाहिये। ये दोनों शूद्रका कर्म (सेवा आदि) कभी न करें॥ ३९॥ हे राजन्! इन उपरोक्त वृत्तियोंको भी सामर्थ्य होनेपर त्याग दे; केवल आपत्कालमें ही इनका आश्रय ले, कर्म-संकरता (कर्मोंका मेल) न करे॥ ४०॥ हे राजन्! इस प्रकार वर्णधर्मोंका वर्णन तो मैंने तुमसे कर दिया; अब आश्रम-धर्मोंका निरूपण और करता हूँ, सावधान होकर सुनो॥ ४१॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके तीसरे अंशमें आठवाँ अध्याय समाप्त॥ ८॥

नवाँ अध्याय

ब्रह्मचर्य आदि आश्रमोंका वर्णन

और्व बोले—हे भूपते! बालकको चाहिये कि उपनयन-संस्कारके अनन्तर वेदाध्ययनमें तत्पर होकर ब्रह्मचर्यका अवलम्बन कर सावधानतापूर्वक गुरुगृहमें निवास करे॥ १॥ वहाँ रहकर उसे शौच और आचार-व्रतका पालन करते हुए गुरुकी सेवा-शुश्रूषा करनी चाहिये तथा व्रतादिका आचरण करते हुए स्थिर-बुद्धिसे वेदाध्ययन करना चाहिये॥ २॥ हे राजन्! [प्रातःकाल और सायंकाल] दोनों सन्ध्याओंमें एकाग्र होकर सूर्य और अग्निकी उपासना करे तथा गुरुका अभिवादन करे॥ ३॥ गुरुके खड़े होनेपर खड़ा हो जाय, चलनेपर पीछे-पीछे चलने लगे तथा बैठ जानेपर नीचे बैठ जाय। हे नृपश्रेष्ठ! इस प्रकार कभी गुरुके विरुद्ध कोई आचरण न करे॥ ४॥ गुरुजीके कहनेपर ही उनके सामने बैठकर एकाग्रचित्तसे वेदाध्ययन करे और उनकी आज्ञा होनेपर ही भिक्षान्न भोजन करे॥ ५॥ जलमें प्रथम आचार्यके स्नान कर चुकनेपर फिर स्वयं स्नान करे तथा प्रतिदिन प्रातःकाल गुरुजीके लिये समिधा, जल, कुश और पुष्पादि लाकर जुटा दे॥ ६॥

इस प्रकार अपना अभिमत वेदपाठ समाप्त कर चुकनेपर बुद्धिमान् शिष्य गुरुजीकी आज्ञासे उन्हें गुरु-दक्षिणा देकर गृहस्थाश्रममें प्रवेश करे॥ ७॥ हे राजन्! फिर विधिपूर्वक पाणिग्रहण कर अपनी वर्णानुकूल वृत्तिसे द्रव्योपार्जन करता हुआ सामर्थ्यानुसार समस्त गृहकार्य करता रहे॥ ८॥ पिण्ड-दानादिसे पितृगणकी, यज्ञादिसे देवताओंकी, अन्नदानसे अतिथियोंकी, स्वाध्यायसे ऋषियोंकी, पुत्रोत्पत्तिसे प्रजापतिकी, बलियों (अन्नभाग)-से भूतगणकी तथा वात्सल्यभावसे सम्पूर्ण जगत्की पूजा करते हुए पुरुष अपने कर्मोंद्वारा मिले हुए उत्तमोत्तम लोकोंको प्राप्त कर लेता है॥ ९-१०॥

जो केवल भिक्षावृत्तिसे ही रहनेवाले परिव्राजक और ब्रह्मचारी आदि हैं उनका आश्रय भी गृहस्थाश्रम ही है, अतः यह सर्वश्रेष्ठ है॥ ११॥ हे राजन्! विप्रगण वेदाध्ययन, तीर्थस्नान और देश-दर्शनके लिये पृथिवी-पर्यटन किया करते हैं॥ १२॥ उनमेंसे जिनका कोई निश्चित गृह अथवा भोजन प्रबन्ध नहीं होता और जो जहाँ सायंकाल हो जाता है वहीं ठहर जाते हैं, उन सबका आधार और मूल गृहस्थाश्रम ही है॥ १३॥ हे राजन्! ऐसे लोग जब घर आवें तो उनका कुशल-प्रश्न और मधुर वचनोंसे स्वागत करे तथा शय्या, आसन और भोजनके द्वारा उनका यथाशक्ति सत्कार करे॥ १४॥ जिसके घरसे अतिथि निराश होकर लौट जाता है उसे अपने समस्त दुष्कर्म देकर वह (अतिथि)

उसके पुण्यकर्मोंको स्वयं ले जाता है॥ १५॥ गृहस्थके लिये अतिथिके प्रति अपमान, अहंकार और दम्भका आचरण करना, उसे देकर पछताना, उसपर प्रहार करना अथवा उससे कटुभाषण करना उचित नहीं है॥ १६॥ इस प्रकार जो गृहस्थ अपने परम धर्मका पूर्णतया पालन करता है वह समस्त बन्धनोंसे मुक्त होकर अत्युत्तम लोकोंको प्राप्त कर लेता है॥ १७॥

हे राजन्! इस प्रकार गृहस्थोचित कार्य करते-करते जिसकी अवस्था ढल गयी हो उस गृहस्थको उचित है कि स्त्रीको पुत्रोंके प्रति सौंपकर अथवा अपने साथ लेकर वनको चला जाय॥ १८॥ वहाँ पत्र, मूल, फल आदिका आहार करता हुआ, लोम, श्मश्रु (दाढ़ी-मूँछ) और जटाओंको धारण कर पृथिवीपर शयन करे और मुनिवृत्तिका अवलम्बन कर सब प्रकार अतिथिकी सेवा करे॥ १९॥ उसे चर्म, काश और कुशाओंसे अपना बिछौना तथा ओढ़नेका वस्त्र बनाना चाहिये। हे नरेश्वर! उस मुनिके लिये त्रिकाल-स्नानका विधान है॥ २०॥ इसी प्रकार देवपूजन, होम, सब अतिथियोंका सत्कार, भिक्षा और बलिवैश्वदेव भी उसके विहित कर्म हैं॥ २१॥ हे राजेन्द्र! वन्य तैलादिको शरीरमें मलना और शीतोष्णका सहन करते हुए तपस्यामें लगे रहना उसके प्रशस्त कर्म हैं॥ २२॥ जो वानप्रस्थ मुनि इन नियत कर्मोंका आचरण करता है वह अपने समस्त दोषोंको अग्निके समान भस्म कर देता है और नित्य-लोकोंको प्राप्त कर लेता है॥ २३॥

हे नृप! पण्डितगण जिस चतुर्थ आश्रमको भिक्षु-आश्रम कहते हैं अब मैं उसके स्वरूपका वर्णन करता हूँ, सावधान होकर सुनो॥ २४॥ हे नरेन्द्र! तृतीय आश्रमके अनन्तर पुत्र, द्रव्य और स्त्री आदिके स्नेहको सर्वथा त्यागकर तथा मात्सर्यको छोड़कर चतुर्थ आश्रममें प्रवेश करे॥ २५॥ हे पृथिवीपते! भिक्षुको उचित है कि अर्थ, धर्म और कामरूप त्रिवर्गसम्बन्धी समस्त कर्मोंको छोड़ दे, शत्रु-मित्रादिमें समान भाव रखे और सभी जीवोंका सुहृद् हो॥ २६॥ निरन्तर समाहित रहकर जरायुज, अण्डज और स्वेदज आदि समस्त जीवोंसे मन, वाणी अथवा कर्मद्वारा कभी द्रोह न करे तथा सब प्रकारकी आसक्तियोंको त्याग दे॥ २७॥ ग्राममें एक रात और पुरमें पाँच रात्रितक रहे तथा इतने दिन भी तो इस प्रकार रहे जिससे किसीसे प्रेम अथवा द्वेष न हो॥ २८॥ जिस समय घरोंमें अग्नि शान्त हो जाय और लोग भोजन कर चुकें, उस समय प्राणरक्षाके लिये उत्तम वर्णोंमें भिक्षाके लिये जाय॥ २९॥ परिव्राजकको चाहिये कि काम, क्रोध तथा दर्प, लोभ और मोह आदि समस्त दुर्गुणोंको छोड़कर ममताशून्य होकर रहे॥ ३०॥ जो मुनि समस्त प्राणियोंको अभयदान देकर विचरता है; उसको भी किसीसे कभी कोई भय नहीं होता॥ ३१॥ जो ब्राह्मण चतुर्थ आश्रममें अपने शरीरमें स्थित प्राणादिसहित जठराग्निके उद्देश्यसे अपने मुखमें भिक्षान्नरूप हविसे हवन करता है, वह ऐसा अग्निहोत्र करके अग्निहोत्रियोंके लोकोंको प्राप्त हो जाता है॥ ३२॥ जो ब्राह्मण [ब्रह्मसे भिन्न सभी मिथ्या है, सम्पूर्ण जगत् भगवान्का ही संकल्प है—ऐसे] बुद्धियोगसे युक्त होकर, यथाविधि आचरण करता हुआ इस मोक्षाश्रमका पवित्रता और सुखपूर्वक आचरण करता है, वह निरिन्धन अग्निके समान शान्त होता है और अन्तमें ब्रह्मलोक प्राप्त करता है॥ ३३॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके तीसरे अंशमें नवाँ अध्याय समाप्त॥ ९॥

दसवाँ अध्याय

जातकर्म, नामकरण और विवाह-संस्कारकी विधि

सगर बोले—हे द्विजश्रेष्ठ! आपने चारों आश्रम और चारों वर्णोंके कर्मोंका वर्णन किया। अब मैं आपके द्वारा मनुष्योंके (षोडश संस्काररूप) कर्मोंको सुनना चाहता हूँ॥ १॥ हे भृगुश्रेष्ठ! मेरा विचार है कि आप सर्वज्ञ हैं। अतएव आप मनुष्योंके नित्य-नैमित्तिक और काम्य आदि सब प्रकारके कर्मोंका निरूपण कीजिये॥ २॥

और्व बोले—हे राजन्! आपने जो नित्य-नैमित्तिक आदि क्रियाकलापके विषयमें पूछा सो मैं सबका वर्णन करता हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुनो॥ ३॥

पुत्रके उत्पन्न होनेपर पिताको चाहिये कि उसके जातकर्म आदि सकल क्रियाकाण्ड और आभ्युदयिक श्राद्ध करे॥ ४॥ हे नरेश्वर! पूर्वाभिमुख बिठाकर युग्म ब्राह्मणोंको भोजन करावे तथा द्विजातियोंके व्यवहारके अनुसार देव और पितृपक्षकी तृप्तिके लिये श्राद्ध करे॥ ५॥ और हे राजन्! प्रसन्नतापूर्वक दैवतीर्थ (अँगुलियोंके अग्रभाग)-द्वारा नान्दीमुख पितृगणको दही, जौ और बदरीफल मिलाकर बनाये हुए पिण्ड दे॥ ६॥ अथवा प्राजापत्यतीर्थ (कनिष्ठिकाके मूल)-द्वारा सम्पूर्ण उपचारद्रव्योंका दान करे। इसी प्रकार [कन्या अथवा पुत्रोंके विवाह आदि] समस्त वृद्धिकालोंमें भी करे॥ ७॥

तदनन्तर, पुत्रोत्पत्तिके दसवें दिन पिता नामकरण-संस्कार करे। पुरुषका नाम पुरुषवाचक होना चाहिये। उसके पूर्वमें देववाचक शब्द हो तथा पीछे शर्मा, वर्मा आदि होने चाहिये॥ ८॥ ब्राह्मणके नामके अन्तमें शर्मा, क्षत्रियके अन्तमें वर्मा तथा वैश्य और शूद्रोंके नामान्तमें क्रमशः गुप्त और दास शब्दोंका प्रयोग करना चाहिये॥ ९॥ नाम अर्थहीन, अविहित, अपशब्दयुक्त, अमांगलिक और निन्दनीय न होना चाहिये तथा उसके अक्षर समान होने चाहिये॥ १०॥ अति दीर्घ, अति लघु अथवा कठिन अक्षरोंसे युक्त नाम न रखे। जो सुखपूर्वक उच्चारण किया जा सके और जिसके पीछेके वर्ण लघु हों ऐसे नामका व्यवहार करे॥ ११॥

तदनन्तर उपनयन-संस्कार हो जानेपर गुरुगृहमें रहकर विधिपूर्वक विद्याध्ययन करे॥ १२॥ हे भूपाल! फिर विद्याध्ययन कर चुकनेपर गुरुको दक्षिणा देकर यदि गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेकी इच्छा हो तो विवाह कर ले॥ १३॥ या दृढ़ संकल्पपूर्वक नैष्ठिक ब्रह्मचर्य ग्रहणकर गुरु अथवा गुरुपुत्रोंकी सेवा-शुश्रूषा करता रहे॥ १४॥ अथवा अपनी इच्छानुसार वानप्रस्थ या संन्यास ग्रहण कर ले। हे राजन् ! पहले जैसा संकल्प किया हो वैसा ही करे॥ १५॥

[यदि विवाह करना हो तो] अपनेसे तृतीयांश अवस्थावाली कन्यासे विवाह करे तथा अधिक या अल्प केशवाली अथवा अति साँवली या पाण्डुवर्णा (भूरे रंगकी) स्त्रीसे सम्बन्ध न करे॥ १६॥ जिसके जन्मसे ही अधिक या न्यून अंग हों, जो अपवित्र, रोमयुक्त, अकुलीना अथवा रोगिणी हो उस स्त्रीसे पाणिग्रहण न करे॥ १७॥ बुद्धिमान् पुरुषको उचित है कि जो दुष्ट स्वभाववाली हो, कटुभाषिणी हो, माता अथवा पिताके अनुसार अंगहीना हो, जिसके श्मश्रु (मूँछोंके) चिह्न हों, जो पुरुषके-से आकारवाली हो अथवा घर्घर शब्द करनेवाले अति मन्द या कौएके समान (कर्णकटु) स्वरवाली हो तथा पक्ष्मशून्या

या गोल नेत्रोंवाली हो उस स्त्रीसे विवाह न करे॥ १८-१९॥ जिसकी जंघाओंपर रोम हों, जिसके गुल्फ (टखने) ऊँचे हों तथा हँसते समय जिसके कपोलोंमें गड्ढे पड़ते हों उस कन्यासे विवाह न करे॥ २०॥ जिसकी कान्ति अत्यन्त उदासीन न हो, नख पाण्डुवर्ण हों, नेत्र लाल हों तथा हाथ-पैर कुछ भारी हों, बुद्धिमान् पुरुष उस कन्यासे सम्बन्ध न करे॥ २१॥ जो अति वामन (नाटी) अथवा अति दीर्घ (लम्बी) हो, जिसकी भृकुटियाँ जुड़ी हुई हों, जिसके दाँतोंमें अधिक अन्तर हो तथा जो दन्तुर (आगेको दाँत निकले हुए) मुखवाली हो उस स्त्रीसे कभी विवाह न करे॥ २२॥ हे राजन्! मातृपक्षसे पाँचवीं पीढ़ीतक और पितृपक्षसे सातवीं पीढ़ीतक जिस कन्याका सम्बन्ध न हो, गृहस्थ पुरुषको नियमानुसार उसीसे विवाह करना चाहिये॥ २३॥ ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच—ये आठ प्रकारके विवाह हैं॥ २४॥ इनमेंसे जिस विवाहको जिस वर्णके लिये महर्षियोंने धर्मानुकूल कहा है उसीके द्वारा दार-परिग्रह करे, अन्य विधियोंको छोड़ दे॥ २५॥ इस प्रकार सहधर्मिणीको प्राप्तकर उसके साथ गार्हस्थ्यधर्मका पालन करे, क्योंकि उसका पालन करनेपर वह महान् फल देनेवाला होता है॥ २६॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके तीसरे अंशमें दसवाँ अध्याय समाप्त॥ १०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

गृहस्थसम्बन्धी सदाचारका वर्णन

सगर बोले—हे मुने! मैं गृहस्थके सदाचारोंको सुनना चाहता हूँ, जिनका आचरण करनेसे वह इहलोक और परलोक दोनों जगह पतित नहीं होता॥ १॥

और्व बोले—हे पृथिवीपाल! तुम सदाचारके लक्षण सुनो। सदाचारी पुरुष इहलोक और परलोक दोनोंहीको जीत लेता है॥ २॥ 'सत्' शब्दका अर्थ साधु है, और साधु वही है जो दोषरहित हो। उस साधु पुरुषका जो आचरण होता है उसीको सदाचार कहते हैं॥ ३॥ हे राजन्! इस सदाचारके वक्ता और कर्ता सप्तर्षिगण, मनु एवं प्रजापति हैं॥ ४॥

हे नृप! बुद्धिमान् पुरुष स्वस्थ चित्तसे ब्राह्ममुहूर्तमें जगकर अपने धर्म और धर्माविरोधी अर्थका चिन्तन करे॥ ५॥ तथा जिसमें धर्म और अर्थकी क्षति न हो ऐसे कामका भी चिन्तन करे। इस प्रकार दृष्ट और अदृष्ट अनिष्टकी निवृत्तिके लिये धर्म, अर्थ और काम इस त्रिवर्गके प्रति समान भाव रखना चाहिये॥ ६॥ हे नृप! धर्मविरुद्ध अर्थ और काम दोनोंका त्याग कर दे तथा ऐसे धर्मका भी आचरण न करे जो उत्तरकालमें दुःखमय अथवा समाज-विरुद्ध हो॥ ७॥

हे नरेश्वर! तदनन्तर ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर प्रथम मूत्रत्याग करे। ग्रामसे नैर्ऋत्यकोणमें जितनी दूर बाण जा सकता है उससे आगे बढ़कर अथवा अपने निवास-स्थानसे दूर जाकर मल-मूत्र त्याग करे। पैर धोया हुआ और जूठा जल अपने घरके आँगनमें न डाले॥ ८—१०॥ अपनी या वृक्षकी छायाके ऊपर तथा गौ, सूर्य, अग्नि, वायु, गुरु और द्विजातीय पुरुषके सामने बुद्धिमान् पुरुष कभी मल-मूत्र त्याग न करे॥ ११॥ इसी प्रकार हे पुरुषर्षभ! जुते हुए खेतमें, सस्यसम्पन्न भूमिमें,

गौओंके गोष्ठमें, जन-समाजमें, मार्गके बीचमें, नदी आदि तीर्थस्थानोंमें, जल अथवा जलाशयके तटपर और श्मशानमें भी कभी मल-मूत्रका त्याग न करे॥ १२-१३॥ हे राजन्! कोई विशेष आपत्ति न हो तो प्राज्ञ पुरुषको चाहिये कि दिनके समय उत्तर-मुख और रात्रिके समय दक्षिण-मुख होकर मूत्रत्याग करे॥ १४॥ मल-त्यागके समय पृथिवीको तिनकोंसे और सिरको वस्त्रसे ढाँप ले तथा उस स्थानपर अधिक समयतक न रहे और न कुछ बोले ही॥ १५॥

हे राजन्! बाँबीकी, चूहोंद्वारा बिलसे निकाली हुई, जलके भीतरकी, शौचकर्मसे बची हुई, घरके लीपनकी, चींटी आदि छोटे-छोटे जीवोंद्वारा निकाली हुई और हलसे उखाड़ी हुई—इन सब प्रकारकी मृत्तिकाओंका शौच कर्ममें उपयोग न करे॥ १६-१७॥ हे नृप! लिंगमें एक बार, गुदामें तीन बार, बायें हाथमें दस बार और दोनों हाथोंमें सात बार मृत्तिका लगानेसे शौच सम्पन्न होता है॥ १८॥ तदनन्तर गन्ध और फेनरहित स्वच्छ जलसे आचमन करे। तथा फिर सावधानतापूर्वक बहुत-सी मृत्तिका ले॥ १९॥ उससे चरण-शुद्धि करनेके अनन्तर फिर पैर धोकर तीन बार कुल्ला करे और दो बार मुख धोवे॥ २०॥ तत्पश्चात् जल लेकर शिरोदेशमें स्थित इन्द्रियरन्ध्र, मूर्द्धा, बाहु, नाभि और हृदयको स्पर्श करे॥ २१॥ फिर भली प्रकार स्नान करनेके अनन्तर केश सँवारे और दर्पण, अंजन तथा दूर्वा आदि मांगलिक द्रव्योंका यथाविधि व्यवहार करे॥ २२॥ तदनन्तर हे पृथिवीपते! अपने वर्णधर्मके अनुसार आजीविकाके लिये धनोपार्जन करे और श्रद्धापूर्वक यज्ञानुष्ठान करे॥ २३॥ सोमसंस्था, हविस्संस्था और पाकसंस्था—इन सब धर्म-कर्मोंका आधार धन ही है।* अतः मनुष्योंको धनोपार्जनका यत्न करना चाहिये॥ २४॥ नित्यकर्मोंके सम्पादनके लिये नदी, नद, तडाग, देवालयोंकी बावड़ी और पर्वतीय झरनोंमें स्नान करना चाहिये॥ २५॥ अथवा कुएँसे जल खींचकर उसके पासकी भूमिपर स्नान करे और यदि वहाँ भूमिपर स्नान करना सम्भव न हो तो कुएँसे खींचकर लाये हुए जलसे घरहीमें नहा ले॥ २६॥

स्नान करनेके अनन्तर शुद्ध वस्त्र धारण कर देवता, ऋषिगण और पितृगणका उन्हींके तीर्थोंसे तर्पण करे॥ २७॥ देवता और ऋषियोंके तर्पणके लिये तीन-तीन बार तथा प्रजापतिके लिये एक बार जल छोड़े॥ २८॥ हे पृथिवीपते! पितृगण और पितामहोंकी प्रसन्नताके लिये तीन बार जल छोड़े तथा इसी प्रकार प्रपितामहोंको भी सन्तुष्ट करे एवं मातामह (नाना) और उनके पिता तथा उनके पिताको भी सावधानतापूर्वक पितृ-तीर्थसे जलदान करे। अब काम्य तर्पणका वर्णन करता हूँ, श्रवण करो॥ २९-३०॥

'यह जल माताके लिये हो, यह प्रमाताके लिये हो, यह वृद्धाप्रमाताके लिये हो, यह

---

* गौतमस्मृतिके अष्टम अध्यायमें कहा है—

'औपासनमष्टका पार्वणश्राद्धः श्रावण्याग्रहायणी चैत्र्याश्वयुजीति सप्त पाकयज्ञसंस्थाः। अग्न्याधेयमग्निहोत्रं दर्शपूर्णमासावाग्रयणं चातुर्मास्यानि निरूढपशुबन्धस्सौत्रामणीति सप्त हविर्यज्ञसंस्थाः। अग्निष्टोमोऽत्यग्निष्टोम उक्थः षोडशी वाजपेयोऽतिरात्राप्तोर्यामा इति सप्त सोमसंस्थाः।'

औपासन, अष्टका श्राद्ध, पार्वण श्राद्ध तथा श्रावण अग्रहायण, चैत्र और आश्विन मासकी पूर्णिमाएँ—ये सात 'पाकयज्ञसंस्था' हैं। अग्न्याधेय, अग्निहोत्र, दर्श, पूर्णमास, आग्रयण, चातुर्मास्य, यज्ञपशुबन्ध और सौत्रामणी—ये सात 'हविर्यज्ञसंस्था' हैं, यथा अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और आप्तोर्याम—ये सात 'सोमयज्ञसंस्था' हैं।

गुरुपत्नीको, यह गुरुको, यह मामाको, यह प्रिय मित्रको तथा यह राजाको प्राप्त हो—हे राजन्! यह जपता हुआ समस्त भूतोंके हितके लिये देवादि तर्पण करके अपनी इच्छानुसार अभिलषित सम्बन्धीके लिये जलदान करे'॥ ३१-३२॥ [देवादि तर्पणके समय इस प्रकार कहे—] 'देव, असुर, यक्ष, नाग, गन्धर्व, राक्षस, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध, कूष्माण्ड, पशु, पक्षी, जलचर, स्थलचर और वायु-भक्षक आदि सभी प्रकारके जीव मेरे दिये हुए इस जलसे तृप्त हों॥ ३३-३४॥

जो प्राणी सम्पूर्ण नरकोंमें नाना प्रकारकी यातनाएँ भोग रहे हैं उनकी तृप्तिके लिये मैं यह जलदान करता हूँ॥ ३५॥ जो मेरे बन्धु अथवा अबन्धु हैं, तथा जो अन्य जन्मोंमें मेरे बन्धु थे एवं और भी जो-जो मुझसे जलकी इच्छा रखनेवाले हैं वे सब मेरे दिये हुए जलसे परितृप्त हों॥ ३६॥ क्षुधा और तृष्णासे व्याकुल जीव कहीं भी क्यों न हों मेरा दिया हुआ यह तिलोदक उनको तृप्ति प्रदान करे'॥ ३७॥ हे नृप! इस प्रकार मैंने तुमसे यह काम्य-तर्पणका निरूपण किया, जिसके करनेसे मनुष्य सकल संसारको तृप्त कर देता है और हे अनघ! इससे उसे जगत्‌की तृप्तिसे होनेवाला पुण्य प्राप्त होता है॥ ३८॥

इस प्रकार उपरोक्त जीवोंको श्रद्धापूर्वक काम्यजल-दान करनेके अनन्तर आचमन करे और फिर सूर्यदेवको जलांजलि दे॥ ३९॥ [उस समय इस प्रकार कहे—] 'भगवान् विवस्वान्‌को नमस्कार है जो वेद-वेद्य और विष्णुके तेजस्स्वरूप हैं तथा जगत्‌को उत्पन्न करनेवाले, अति पवित्र एवं कर्मोंके साक्षी हैं'॥ ४०॥

तदनन्तर जलाभिषेक और पुष्प तथा धूपादि निवेदन करता हुआ गृहदेव और इष्टदेवका पूजन करे॥ ४१॥ हे नृप! फिर अपूर्व अग्निहोत्र करे, उसमें पहले ब्रह्माको और तदनन्तर क्रमशः प्रजापति, गुह्य, काश्यप और अनुमतिको आदरपूर्वक आहुतियाँ दे॥ ४२-४३॥ उससे बचे हुए हव्यको पृथिवी और मेघके उद्देश्यसे उदकपात्रमें,* धाता और विधाताके उद्देश्यसे द्वारके दोनों ओर तथा ब्रह्माके उद्देश्यसे घरके मध्यमें छोड़ दे। हे पुरुषव्याघ्र! अब मैं दिक्पालगणकी पूजाका वर्णन करता हूँ, श्रवण करो॥ ४४-४५॥

बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशाओंमें क्रमशः इन्द्र, यम, वरुण और चन्द्रमाके लिये हुतशिष्ट सामग्रीसे बलि प्रदान करे॥ ४६॥ पूर्व और उत्तर-दिशाओंमें धन्वन्तरिके लिये बलि दे तथा इसके अनन्तर बलिवैश्वदेव-कर्म करे॥ ४७॥ बलिवैश्वदेवके समय वायव्यकोणमें वायुको तथा अन्य समस्त दिशाओंमें वायु एवं उन दिशाओंको बलि दे, इसी प्रकार ब्रह्मा, अन्तरिक्ष और सूर्यको भी उनकी दिशाओंके अनुसार [अर्थात् मध्यमें] बलि प्रदान करे॥ ४८॥

फिर हे नरेश्वर! विश्वेदेवों, विश्वभूतों, विश्वपतियों, पितरों और यक्षोंके उद्देश्यसे [यथास्थान] बलि प्रदान करे॥ ४९॥

तदनन्तर बुद्धिमान् व्यक्ति और अन्न लेकर पवित्र पृथिवीपर समाहित चित्तसे बैठकर स्वेच्छानुसार समस्त प्राणियोंको बलि प्रदान करे॥ ५०॥ [उस समय इस प्रकार कहे—] 'देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, सिद्ध, यक्ष, सर्प, दैत्य, प्रेत, पिशाच, वृक्ष तथा और भी चींटी आदि कीट-पतंग जो अपने कर्मबन्धनसे बँधे हुए क्षुधातुर होकर मेरे दिये हुए

* वह जल भरा पात्र जो अग्निहोत्र करते समय समीपमें रख लिया जाता है और जिसमें 'इदं न मम' कहकर आहुतिका शेष भाग छोड़ा जाता है।

अन्नकी इच्छा करते हैं, उन सबके लिये मैं यह अन्न दान करता हूँ। वे इससे परितृप्त और आनन्दित हों॥ ५१-५२॥ जिनके माता, पिता अथवा कोई और बन्धु नहीं हैं तथा अन्न प्रस्तुत करनेका साधन और अन्न भी नहीं है उनकी तृप्तिके लिये पृथिवीपर मैंने यह अन्न रखा है; वे इससे तृप्त होकर आनन्दित हों॥ ५३॥ सम्पूर्ण प्राणी, यह अन्न और मैं—सभी विष्णु हैं; क्योंकि उनसे भिन्न और कुछ है ही नहीं। अतः मैं समस्त भूतोंका शरीररूप यह अन्न उनके पोषणके लिये दान करता हूँ॥ ५४॥ यह जो चौदह प्रकारका* भूतसमुदाय है उसमें जितने भी प्राणिगण अवस्थित हैं उन सबकी तृप्तिके लिये मैंने यह अन्न प्रस्तुत किया है; वे इससे प्रसन्न हों'॥ ५५॥ इस प्रकार उच्चारण करके गृहस्थ पुरुष श्रद्धापूर्वक समस्त जीवोंके उपकारके लिये पृथिवीमें अन्नदान करे, क्योंकि गृहस्थ ही सबका आश्रय है॥ ५६॥ हे नरेश्वर! तदनन्तर कुत्ता, चाण्डाल, पक्षिगण तथा और भी जो कोई पतित एवं पुत्रहीन पुरुष हों उनकी तृप्तिके लिये पृथिवीमें बलिभाग रखे॥ ५७॥

फिर गो-दोहनकालपर्यन्त अथवा इच्छानुसार इससे भी कुछ अधिक देर अतिथि ग्रहण करनेके लिये घरके आँगनमें रहे॥ ५८॥ यदि अतिथि आ जाय तो उसका स्वागतादिसे तथा आसन देकर और चरण धोकर सत्कार करे॥ ५९॥ फिर श्रद्धापूर्वक भोजन कराकर मधुर वाणीसे प्रश्नोत्तर करके तथा उसके जानेके समय पीछे-पीछे जाकर उसको प्रसन्न करे॥ ६०॥ जिसके कुल और नामका कोई पता न हो तथा अन्य देशसे आया हो उसी अतिथिका सत्कार करे, अपने ही गाँवमें रहनेवाले पुरुषकी अतिथिरूपसे पूजा करनी उचित नहीं है॥ ६१॥ जिसके पास कोई सामग्री न हो, जिससे कोई सम्बन्ध न हो, जिसके कुल-शीलका कोई पता न हो और जो भोजन करना चाहता हो उस अतिथिका सत्कार किये बिना भोजन करनेसे मनुष्य अधोगतिको प्राप्त होता है॥ ६२॥ गृहस्थ पुरुषको चाहिये कि आये हुए अतिथिके अध्ययन, गोत्र, आचरण और कुल आदिके विषयमें कुछ भी न पूछकर हिरण्यगर्भ-बुद्धिसे उसकी पूजा करे॥ ६३॥ हे नृप! अतिथि-सत्कारके अनन्तर अपने ही देशके एक और पांचयज्ञिक ब्राह्मणको जिसके आचार और कुल आदिका ज्ञान हो पितृगणके लिये भोजन करावे॥ ६४॥ हे भूपाल! [मनुष्ययज्ञकी विधिसे **'मनुष्येभ्यो हन्त'** इत्यादि मन्त्रोच्चारणपूर्वक] पहले ही निकालकर अलग रखे हुए हन्तकार नामक अन्नसे उस श्रोत्रिय ब्राह्मणको भोजन करावे॥ ६५॥

इस प्रकार [देवता, अतिथि और ब्राह्मणको] ये तीन भिक्षाएँ देकर, यदि सामर्थ्य हो तो

* चौदह भूतसमुदायोंका वर्णन इस प्रकार किया गया है—

अष्टविधं दैवत्वं तैर्यग्योन्यश्च पञ्चधा भवति। मानुष्यं चैकविधं समासतो भौतिकः सर्गः॥

अर्थात् आठ प्रकारका देवसम्बन्धी, पाँच प्रकारका तिर्यग्योनिसम्बन्धी और एक प्रकारका मनुष्ययोनिसम्बन्धी— यह संक्षेपसे भौतिक सर्ग कहलाता है। इनका पृथक्-पृथक् विवरण इस प्रकार है—

सिद्धगुह्यकगन्धर्वयक्षराक्षसपन्नगाः । विद्याधराः पिशाचाश्च निर्दिष्टा देवयोनयः॥

सरीसृपा वानराश्च पशवो मृगपक्षिणः। तिर्यञ्च इति कथ्यन्ते पञ्चैताः प्राणिजातयः॥

सिद्ध, गुह्यक, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प, विद्याधर और पिशाच—ये आठ देवयोनियाँ मानी गयी हैं तथा सरीसृप, वानर, पशु, मृग, (जंगली प्राणी) और पक्षी—ये पाँच तिर्यग् योनियाँ कही गयी हैं।

परिव्राजक और ब्रह्मचारियोंको भी बिना लौटाये हुए इच्छानुसार भिक्षा दे॥ ६६॥ तीन पहले तथा भिक्षुगण—ये चारों अतिथि कहलाते हैं। हे राजन्! इन चारोंका पूजन करनेसे मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ६७॥ जिसके घरसे अतिथि निराश होकर लौट जाता है उसे वह अपने पाप देकर उसके शुभकर्मोंको ले जाता है॥ ६८॥ हे नरेश्वर! धाता, प्रजापति, इन्द्र, अग्नि, वसुगण और अर्यमा—ये समस्त देवगण अतिथिमें प्रविष्ट होकर अन्न भोजन करते हैं॥ ६९॥ अत: मनुष्यको अतिथि-पूजाके लिये निरन्तर प्रयत्न करना चाहिये। जो पुरुष अतिथिके बिना भोजन करता है वह तो केवल पाप ही भोग करता है॥ ७०॥ तदनन्तर गृहस्थ पुरुष पितृगृहमें रहनेवाली विवाहिता कन्या, दुखिया और गर्भिणी स्त्री तथा वृद्ध और बालकोंको संस्कृत अन्नसे भोजन कराकर अन्तमें स्वयं भोजन करे॥ ७१॥ इन सबको भोजन कराये बिना जो स्वयं भोजन कर लेता है वह पापमय भोजन करता है और अन्तमें मरकर नरकमें श्लेष्मभोजी कीट होता है॥ ७२॥ जो व्यक्ति स्नान किये बिना भोजन करता है वह मल भक्षण करता है, जप किये बिना भोजन करनेवाला रक्त और पूय पान करता है, संस्कारहीन अन्न खानेवाला मूत्र पान करता है तथा जो बालक-वृद्ध आदिसे पहले आहार करता है वह विष्ठाहारी है। इसी प्रकार बिना होम किये भोजन करनेवाला मानो कीड़ोंको खाता है और बिना दान किये खानेवाला विष-भोजी है॥ ७३-७४॥

अत: हे राजेन्द्र! गृहस्थको जिस प्रकार भोजन करना चाहिये—जिस प्रकार भोजन करनेसे पुरुषको पाप-बन्धन नहीं होता तथा इहलोकमें अत्यन्त आरोग्य, बल-बुद्धिकी प्राप्ति और अरिष्टोंकी शान्ति होती है और जो शत्रुपक्षका ह्रास करनेवाली है—वह भोजनविधि सुनो॥ ७५-७६॥ गृहस्थको चाहिये कि स्नान करनेके अनन्तर यथाविधि देव, ऋषि और पितृगणका तर्पण करके हाथमें उत्तम रत्न धारण किये पवित्रतापूर्वक भोजन करे॥ ७७॥ हे नृप! जप तथा अग्निहोत्रके अनन्तर शुद्ध वस्त्र धारण कर अतिथि, ब्राह्मण, गुरुजन और अपने आश्रित (बालक एवं वृद्धों)-को भोजन करा सुन्दर सुगन्धयुक्त उत्तम पुष्पमाला तथा एक ही वस्त्र धारण किये हाथ-पाँव और मुँह धोकर प्रीतिपूर्वक भोजन करे। हे राजन्! भोजनके समय इधर-उधर न देखे॥ ७८-७९॥ मनुष्यको चाहिये कि पूर्व अथवा उत्तरकी ओर मुख करके, अन्यमना न होकर उत्तम और पथ्य अन्नको प्रोक्षणके लिये रखे हुए मन्त्रपूत जलसे छिड़क कर भोजन करे॥ ८०॥ जो अन्न दुराचारी व्यक्तिका लाया हुआ हो, घृणाजनक हो अथवा बलिवैश्वदेव आदि संस्कारशून्य हो उसको ग्रहण न करे। हे द्विज! गृहस्थ पुरुष अपने खाद्यमेंसे कुछ अंश अपने शिष्य तथा अन्य भूखे-प्यासोंको देकर उत्तम और शुद्ध पात्रमें शान्तचित्तसे भोजन करे॥ ८१-८२॥ हे नरेश्वर! किसी बेत आदिके आसन (कुर्सी आदि)-पर रखे हुए पात्रमें, अयोग्य स्थानमें, असमय (सन्ध्या आदि काल)-में अथवा अत्यन्त संकुचित स्थानमें कभी भोजन न करे। मनुष्यको चाहिये कि [परोसे हुए भोजनका] अग्र-भाग अग्निको देकर भोजन करे॥ ८३॥ हे नृप! जो अन्न मन्त्रपूत और प्रशस्त हो तथा जो बासी न हो उसीको भोजन करे। परंतु फल, मूल और सूखी शाखाओंको तथा बिना पकाये हुए लेह्य (चटनी) आदि और गुड़के पदार्थोंके लिये ऐसा नियम

नहीं है। हे नरेश्वर! सारहीन पदार्थोंको कभी न खाय॥ ८४-८५॥ हे पृथिवीपते! विवेकी पुरुष मधु, जल, दही, घी और सत्तूके सिवा और किसी पदार्थको पूरा न खाय॥ ८६॥

भोजन एकाग्रचित्त होकर करे तथा प्रथम मधुररस, फिर लवण और अम्ल (खट्टा)-रस तथा अन्तमें कटु और तीखे पदार्थोंको खाय॥ ८७॥ जो पुरुष पहले द्रव पदार्थोंको, बीचमें कठिन वस्तुओंको तथा अन्तमें फिर द्रव पदार्थोंको ही खाता है वह कभी बल तथा आरोग्यसे हीन नहीं होता॥ ८८॥ इस प्रकार वाणीका संयम करके अनिषिद्ध अन्न भोजन करे। अन्नकी निन्दा न करे। प्रथम पाँच ग्रास अत्यन्त मौन होकर ग्रहण करे, उनसे पंचप्राणोंकी तृप्ति होती है॥ ८९॥ भोजनके अनन्तर भली प्रकार आचमन करे और फिर पूर्व या उत्तरकी ओर मुख करके हाथोंको उनके मूलदेशतक धोकर विधिपूर्वक आचमन करे॥ ९०॥

तदनन्तर स्वस्थ और शान्त-चित्तसे आसनपर बैठकर अपने इष्टदेवोंका चिन्तन करे॥ ९१॥ [और इस प्रकार कहे—] "[प्राणरूप] पवनसे प्रज्वलित हुआ जठराग्नि आकाशके द्वारा अवकाशयुक्त अन्नका परिपाक करे और [फिर अन्नरससे] मेरे शरीरके पार्थिव धातुओंको पुष्ट करे जिससे मुझे सुख प्राप्त हो॥ ९२॥ यह अन्न मेरे शरीरस्थ पृथिवी, जल, अग्नि और वायुका बल बढ़ानेवाला हो और इन चारों तत्त्वोंके रूपमें परिणत हुआ यह अन्न ही मुझे निरन्तर सुख देनेवाला हो॥ ९३॥ यह अन्न मेरे प्राण, अपान, समान, उदान और व्यानकी पुष्टि करे तथा मुझे भी निर्बाध सुखकी प्राप्ति हो॥ ९४॥ मेरे खाये हुए सम्पूर्ण अन्नका अगस्ति नामक अग्नि और बडवानल परिपाक करें, मुझे उसके परिणामसे होनेवाला सुख प्रदान करें और उससे मेरे शरीरको आरोग्यता प्राप्त हो॥ ९५॥ 'देह और इन्द्रियादिके अधिष्ठाता एकमात्र भगवान् विष्णु ही प्रधान हैं'— इस सत्यके बलसे मेरा खाया हुआ समस्त अन्न परिपक्व होकर मुझे आरोग्यता प्रदान करे॥ ९६॥ 'भोजन करनेवाला, भोज्य अन्न और उसका परिपाक—ये सब विष्णु ही है'—इस सत्य भावनाके बलसे मेरा खाया हुआ यह अन्न पच जाय"॥ ९७॥ ऐसा कहकर अपने उदरपर हाथ फेरे और सावधान होकर अधिक श्रम उत्पन्न न करनेवाले कार्योंमें लग जाय॥ ९८॥

सच्छास्त्रोंका अवलोकन आदि सन्मार्गके अविरोधी विनोदोंसे शेष दिनको व्यतीत करे और फिर सायंकालके समय सावधानतापूर्वक सन्ध्योपासन करे॥ ९९॥

हे राजन्! बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि सायंकालके समय सूर्यके रहते हुए और प्रातःकाल तारागणके चमकते हुए ही भली प्रकार आचमनादि करके विधिपूर्वक सन्ध्योपासन करे॥ १००॥ हे पार्थिव! सूतक (पुत्र-जन्मादिसे होनेवाली अशुचिता), अशौच (मृत्युसे होनेवाली अशुचिता), उन्माद, रोग और भय आदि कोई बाधा न हो तो प्रतिदिन ही सन्ध्योपासन करना चाहिये॥ १०१॥ जो पुरुष रुग्णावस्थाको छोड़कर और कभी सूर्यके उदय अथवा अस्तके समय सोता है वह प्रायश्चित्तका भागी होता है॥ १०२॥ अतः हे महीपते! गृहस्थ पुरुष सूर्योदयसे पूर्व ही उठकर प्रातःसन्ध्या करे और सायंकालमें भी तत्कालीन सन्ध्यावन्दन करे; सोवे नहीं॥ १०३॥ हे नृप! जो पुरुष प्रातः अथवा सायंकालीन सन्ध्योपासन नहीं करते वे दुरात्मा अन्धतामिस्र नरकमें पड़ते हैं॥ १०४॥

तदनन्तर, हे पृथिवीपते! सायंकालके समय

सिद्ध किये हुए अन्नसे गृहपत्नी मन्त्रहीन बलिवैश्वदेव करे; उस समय भी उसी प्रकार श्वपच आदिके लिये अन्नदान किया जाता है॥ १०५-१०६॥ बुद्धिमान् पुरुष उस समय आये हुए अतिथिका भी सामर्थ्यानुसार सत्कार करे। हे राजन्! प्रथम पाँव धुलाने, आसन देने और स्वागतसूचक विनम्र वचन कहनेसे तथा फिर भोजन कराने और शयन करानेसे अतिथिका सत्कार किया जाता है॥ १०७॥ हे नृप! दिनके समय अतिथिके लौट जानेसे जितना पाप लगता है उससे आठगुना पाप सूर्यास्तके समय लौटनेसे होता है॥ १०८॥ अत: हे राजेन्द्र! सूर्यास्तके समय आये हुए अतिथिका गृहस्थ पुरुष अपनी सामर्थ्यानुसार अवश्य सत्कार करे क्योंकि उसका पूजन करनेसे ही समस्त देवताओंका पूजन हो जाता है॥ १०९॥ मनुष्यको चाहिये कि अपनी शक्तिके अनुसार उसे भोजनके लिये अन्न, शाक या जल देकर तथा सोनेके लिये शय्या या घास-फूसका बिछौना अथवा पृथिवी ही देकर उसका सत्कार करे॥ ११०॥

हे नृप! तदनन्तर गृहस्थ पुरुष सायंकालका भोजन करके तथा हाथ-पाँव धोकर छिद्रादिहीन काष्ठमय शय्यापर लेट जाय॥ १११॥ जो काफी बड़ी न हो, टूटी हुई हो, ऊँची-नीची हो, मलिन हो अथवा जिसमें जीव हों या जिसपर कुछ बिछा हुआ न हो उस शय्यापर न सोवे॥ ११२॥ हे नृप! सोनेके समय सदा पूर्व अथवा दक्षिणकी ओर सिर रखना चाहिये। इनके विपरीत दिशाओंकी ओर सिर रखनेसे रोगोंकी उत्पत्ति होती है॥ ११३॥

हे पृथ्वीपते! ऋतुकालमें अपनी ही स्त्रीसे संग करना उचित है। पुल्लिंग नक्षत्रमें युग्म और उनमें भी पीछेकी रात्रियोंमें शुभ समयमें स्त्रीप्रसंग करे॥ ११४॥ किन्तु यदि स्त्री अप्रसन्ना, रोगिणी, रजस्वला, निरभिलाषिणी, क्रोधिता, दु:खिनी अथवा गर्भिणी हो तो उसका संग न करे॥ ११५॥ जो सीधे स्वभावकी न हो, पराभिलाषिणी अथवा निरभिलाषिणी हो, क्षुधार्ता हो, अधिक भोजन किये हुए हो अथवा परस्त्री हो उसके पास न जाय; और यदि अपनेमें ये दोष हों तो भी स्त्रीगमन न करे॥ ११६॥ पुरुषको उचित है कि स्नान करनेके अनन्तर माला और गन्ध धारण कर काम और अनुरागयुक्त होकर स्त्रीगमन करे। जिस समय अति भोजन किया हो अथवा क्षुधित हो उस समय उसमें प्रवृत्त न हो॥ ११७॥

हे राजेन्द्र! चतुर्दशी, अष्टमी, अमावास्या, पूर्णिमा और सूर्यकी संक्रान्ति—ये सब पर्वदिन हैं॥ ११८॥ इन पर्वदिनोंमें तैल, स्त्री अथवा मांसका भोग करनेवाला पुरुष मरनेपर विष्ठा और मूत्रसे भरे नरकमें पड़ता है॥ ११९॥ संयमी और बुद्धिमान् पुरुषोंको इन समस्त पर्वदिनोंमें सच्छास्त्रावलोकन, देवोपासना, यज्ञानुष्ठान, ध्यान और जप आदिमें लगे रहना चाहिये॥ १२०॥ गौ-छाग आदि अन्य योनियोंसे, अयोनियोंसे, औषध-प्रयोगसे अथवा ब्राह्मण, देवता और गुरुके आश्रमोंमें कभी मैथुन न करे॥ १२१॥ हे पृथिवीपते! चैत्यवृक्षके नीचे, आँगनमें, तीर्थमें, पशुशालामें, चौराहेपर, श्मशानमें, उपवनमें अथवा जलमें भी मैथुन करना उचित नहीं है॥ १२२॥ हे राजन्! पूर्वोक्त समस्त पर्वदिनोंमें प्रात:काल और सायंकालमें तथा मल-मूत्रके वेगके समय बुद्धिमान् पुरुष मैथुनमें प्रवृत्त न हो॥ १२३॥

हे नृप! पर्वदिनोंमें स्त्रीगमन करनेसे धनकी हानि होती है; दिनमें करनेसे पाप होता है, पृथिवीपर करनेसे रोग होते हैं और जलाशयमें स्त्रीप्रसंग करनेसे अमंगल होता है॥ १२४॥ परस्त्रीसे

तो वाणीसे क्या, मनसे भी प्रसंग न करे, क्योंकि उनसे मैथुन करनेवालोंको अस्थि-बन्धन भी नहीं होता [अर्थात् उन्हें अस्थिशून्य कीटादि होना पड़ता है] ॥ १२५ ॥

परस्त्रीकी आसक्ति पुरुषको इहलोक और परलोक दोनों जगह भय देनेवाली है; इहलोकमें उसकी आयु क्षीण हो जाती है और मरनेपर वह नरकमें जाता है ॥ १२६ ॥ ऐसा जानकर बुद्धिमान् पुरुष उपरोक्त दोषोंसे रहित अपनी स्त्रीसे ही ऋतुकालमें प्रसंग करे तथा उसकी विशेष अभिलाषा हो तो बिना ऋतुकालके भी गमन करे ॥ १२७ ॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके तीसरे अंशमें ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११ ॥

बारहवाँ अध्याय

गृहस्थसम्बन्धी सदाचारका वर्णन

और्व बोले—गृहस्थ पुरुषको नित्यप्रति देवता, गौ, ब्राह्मण, सिद्धगण, वयोवृद्ध तथा आचार्यकी पूजा करनी चाहिये और दोनों समय सन्ध्यावन्दन तथा अग्निहोत्रादि कर्म करने चाहिये ॥ १ ॥ गृहस्थ पुरुष सदा ही संयमपूर्वक रहकर बिना कहींसे कटे हुए दो वस्त्र, उत्तम ओषधियाँ और गारुड (मरकत आदि विष नष्ट करनेवाले) रत्न धारण करे ॥ २ ॥ वह केशोंको स्वच्छ और चिकना रखे तथा सर्वदा सुगन्धयुक्त सुन्दर वेष और मनोहर श्वेतपुष्प धारण करे ॥ ३ ॥ किसीका थोड़ा-सा भी धन हरण न करे और थोड़ा-सा भी अप्रिय भाषण न करे। जो मिथ्या हो ऐसा प्रिय वचन भी कभी न बोले और न कभी दूसरोंके दोषोंको ही कहे ॥ ४ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! दूसरोंकी स्त्री अथवा दूसरोंके साथ वैर करनेमें कभी रुचि न करे, निन्दित सवारीमें कभी न चढ़े और नदीतीरकी छायाका कभी आश्रय न ले ॥ ५ ॥ बुद्धिमान् पुरुष लोकविद्विष्ट, पतित, उन्मत्त और जिसके बहुत-से शत्रु हों ऐसे परपीडक पुरुषोंके साथ तथा कुलटा, कुलटाके स्वामी, क्षुद्र, मिथ्यावादी, अति व्ययशील, निन्दापरायण और दुष्ट पुरुषोंके साथ कभी मित्रता न करे और न कभी मार्गमें अकेला चले ॥ ६-७ ॥ हे नरेश्वर! जलप्रवाहके वेगमें सामने पड़कर स्नान न करे, जलते हुए घरमें प्रवेश न करे और वृक्षकी चोटीपर न चढ़े ॥ ८ ॥ दाँतोंको परस्पर न घिसे, नाकको न कुरेदे तथा मुखको बन्द किये हुए जमुहाई न ले और न बन्द मुखसे खाँसे या श्वास छोड़े ॥ ९ ॥ बुद्धिमान् पुरुष जोरसे न हँसे और शब्द करते हुए अधोवायु न छोड़े; तथा नखोंको न चबावे, तिनका न तोड़े और पृथिवीपर भी न लिखे ॥ १० ॥

हे प्रभो ! विचक्षण पुरुष मूँछ-दाढ़ीके बालोंको न चबावे, दो ढेलोंको परस्पर न रगड़े और अपवित्र एवं निन्दित नक्षत्रोंको न देखे ॥ ११ ॥ नग्न परस्त्रीको और उदय अथवा अस्त होते हुए सूर्यको न देखे तथा शव और शव-गन्धसे घृणा न करे, क्योंकि शव-गन्ध सोमका अंश है ॥ १२ ॥ चौराहा, चैत्यवृक्ष, श्मशान, उपवन और दुष्टा स्त्रीकी समीपता—इन सबका रात्रिके समय सर्वदा त्याग करे ॥ १३ ॥ बुद्धिमान् पुरुष अपने पूजनीय देवता, ब्राह्मण और तेजोमय पदार्थोंकी छायाको कभी न लाँघे तथा शून्य वनखण्डी और शून्य घरमें कभी अकेला न रहे ॥ १४ ॥ केश, अस्थि, कण्टक, अपवित्र वस्तु, बलि, भस्म, तुष

तथा स्नानके कारण भीगी हुई पृथिवीका दूरहीसे त्याग करे॥ १५॥ प्राज्ञ पुरुषको चाहिये कि अनार्य व्यक्तिका संग न करे, कुटिल पुरुषमें आसक्त न हो, सर्पके पास न जाय और जग पड़नेपर अधिक देरतक लेटा न रहे॥ १६॥ हे नरेश्वर! बुद्धिमान् पुरुष जागने, सोने, स्नान करने, बैठने, शय्यासेवन करने और व्यायाम करनेमें अधिक समय न लगावे॥ १७॥ हे राजेन्द्र! प्राज्ञ पुरुष दाँत और सींगवाले पशुओंको, ओसको तथा सामनेकी वायु और धूपका सर्वदा परित्याग करे॥ १८॥ नग्न होकर स्नान, शयन और आचमन न करे तथा केश खोलकर आचमन और देव-पूजन न करे॥ १९॥ होम तथा देवार्चन आदि क्रियाओंमें, आचमनमें, पुण्याहवाचनमें और जपमें एक वस्त्र धारण करके प्रवृत्त न हो॥ २०॥ संशयशील व्यक्तियोंके साथ कभी न रहे। सदाचारी पुरुषोंका तो आधे क्षणका संग भी अति प्रशंसनीय होता है॥ २१॥ बुद्धिमान् पुरुष उत्तम अथवा अधम व्यक्तियोंसे विरोध न करे। हे राजन्! विवाह और विवाद सदा समान व्यक्तियोंसे ही होना चाहिये॥ २२॥ प्राज्ञ पुरुष कलह न बढ़ावे तथा व्यर्थ वैरका भी त्याग करे। थोड़ी-सी हानि सह ले, किन्तु वैरसे कुछ लाभ होता हो तो उसे भी छोड़ दे॥ २३॥ स्नान करनेके अनन्तर स्नानसे भीगी हुई धोती अथवा हाथोंसे शरीरको न पोंछे तथा खड़े-खड़े केशोंको न झाड़े और आचमन भी न करे॥ २४॥ पैरके ऊपर पैर न रखे, गुरुजनोंके सामने पैर न फैलावे और धृष्टतापूर्वक उनके सामने कभी उच्चासनपर न बैठे॥ २५॥

देवालय, चौराहा, मांगलिक द्रव्य और पूज्य व्यक्ति—इन सबको बायीं ओर रखकर न निकले तथा इनके विपरीत वस्तुओंको दायीं ओर रखकर न जाय॥ २६॥ चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, जल, वायु और पूज्य व्यक्तियोंके सम्मुख पण्डित पुरुष मल-मूत्र-त्याग न करे और न थूके ही॥ २७॥ खड़े-खड़े अथवा मार्गमें मूत्र-त्याग न करे तथा श्लेष्मा (थूक), विष्ठा, मूत्र और रक्तको कभी न लाँघे॥ २८॥ भोजन, देव-पूजा, मांगलिक कार्य और जप-होमादिके समय तथा महापुरुषोंके सामने थूकना और छींकना उचित नहीं है॥ २९॥ बुद्धिमान् पुरुष स्त्रियोंका अपमान न करे, उनका विश्वास भी न करे तथा उनसे ईर्ष्या और उनका तिरस्कार भी कभी न करे॥ ३०॥ सदाचार-परायण प्राज्ञ पुरुष मांगलिक द्रव्य, पुष्प, रत्न, घृत और पूज्य व्यक्तियोंका अभिवादन किये बिना कभी अपने घरसे न निकले॥ ३१॥ चौराहोंको नमस्कार करे, यथासमय अग्निहोत्र करे, दीन-दुःखियोंका उद्धार करे और बहुश्रुत साधु पुरुषोंका सत्संग करे॥ ३२॥

जो पुरुष देवता और ऋषियोंकी पूजा करता है, पितृगणको पिण्डोदक देता है और अतिथिका सत्कार करता है वह पुण्यलोकोंको जाता है॥ ३३॥ जो व्यक्ति जितेन्द्रिय होकर समयानुसार हित, मित और प्रिय भाषण करता है, हे राजन्! वह आनन्दके हेतुभूत अक्षय लोकोंको प्राप्त होता है॥ ३४॥ बुद्धिमान्, लज्जावान्, क्षमाशील, आस्तिक और विनयी पुरुष विद्वान् और कुलीन पुरुषोंके योग्य उत्तम लोकोंमें जाता है॥ ३५॥ अकाल मेघगर्जनके समय, पर्व-दिनोंपर, अशौच कालमें तथा चन्द्र और सूर्यग्रहणके समय बुद्धिमान् पुरुष अध्ययन न करे॥ ३६॥ जो व्यक्ति क्रोधितको शान्त करता है, सबका बन्धु है, मत्सरशून्य है, भयभीतको सान्त्वना देनेवाला है और साधु-स्वभाव है उसके लिये स्वर्ग तो बहुत थोड़ा फल है॥ ३७॥ जिसे शरीर-रक्षाकी इच्छा हो वह पुरुष वर्षा और धूपमें छाता लेकर निकले, रात्रिके

समय और वनमें दण्ड लेकर जाय तथा जहाँ कहीं जाना हो सर्वदा जूते पहनकर जाय॥ ३८॥ बुद्धिमान् पुरुषको ऊपरकी ओर, इधर-उधर अथवा दूरके पदार्थोंको देखते हुए नहीं चलना चाहिये, केवल युगमात्र (चार हाथ) पृथिवीको देखता हुआ चले॥ ३९॥

जो जितेन्द्रिय दोषके समस्त हेतुओंको त्याग देता है उसके धर्म, अर्थ और कामकी थोड़ी-सी भी हानि नहीं होती॥ ४०॥ जो विद्या-विनय-सम्पन्न, सदाचारी प्राज्ञ पुरुष पापीके प्रति पापमय व्यवहार नहीं करता, कुटिल पुरुषोंसे प्रिय भाषण करता है तथा जिसका अन्त:करण मैत्रीसे द्रवीभूत रहता है, मुक्ति उसकी मुट्ठीमें रहती है॥ ४१॥

जो वीतरागमहापुरुष कभी काम, क्रोध और लोभादिके वशीभूत नहीं होते तथा सर्वदा सदाचारमें स्थित रहते हैं उनके प्रभावसे ही पृथिवी टिकी हुई है॥ ४२॥ अत: प्राज्ञ पुरुषको वही सत्य कहना चाहिये जो दूसरोंकी प्रसन्नताका कारण हो। यदि किसी सत्य वाक्यके कहनेसे दूसरोंको दु:ख होता जाने तो मौन रहे॥ ४३॥ यदि प्रिय वाक्यको भी अहितकर समझे तो उसे न कहे; उस अवस्थामें तो हितकर वाक्य ही कहना अच्छा है, भले ही वह अत्यन्त अप्रिय क्यों न हो॥ ४४॥ जो कार्य इहलोक और परलोकमें प्राणियोंके हितका साधक हो मतिमान् पुरुष मन, वचन और कर्मसे उसीका आचरण करे॥ ४५॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके तीसरे अंशमें बारहवाँ अध्याय समाप्त॥ १२॥

तेरहवाँ अध्याय

आभ्युदयिक श्राद्ध, प्रेतकर्म तथा श्राद्धादिका विचार

और्व बोले—पुत्रके उत्पन्न होनेपर पिताको सचैल (वस्त्रोंसहित) स्नान करना चाहिये। उसके पश्चात् जातकर्म-संस्कार और आभ्युदयिक श्राद्ध करने चाहिये॥ १॥ फिर तन्मयभावसे अनन्यचित्त होकर देवता और पितृगणके लिये क्रमश: दायीं और बायीं ओर बिठाकर दो-दो ब्राह्मणोंका पूजन करे और उन्हें भोजन करावे॥ २॥ हे राजन्! पूर्व अथवा उत्तरकी ओर मुख करके दधि, अक्षत और बदरीफलसे बने हुए पिण्डोंको देवतीर्थ[1] या प्रजापतितीर्थसे[2] दान करे॥ ३॥ हे पृथिवीनाथ! इस आभ्युदयिक श्राद्धसे नान्दीमुख नामक पितृगण प्रसन्न होते हैं, अत: सब प्रकारकी अभिवृद्धिके समय पुरुषोंको इसका अनुष्ठान करना चाहिये॥ ४॥ कन्या और पुत्रके विवाहमें, गृहप्रवेशमें, बालकोंके नामकरण तथा चूडाकर्म आदि संस्कारोंमें, सीमन्तोन्नयन-संस्कारमें और पुत्र आदिके मुख देखनेके समय गृहस्थ पुरुष एकाग्रचित्तसे नान्दीमुख नामक पितृगणका पूजन करे॥ ५-६॥ हे पृथिवीपाल! आभ्युदयिक श्राद्धमें पितृपूजाका यह सनातन क्रम तुमको सुनाया, अब प्रेतक्रियाकी विधि सुनो॥ ७॥

बन्धु-बान्धवोंको चाहिये कि भली प्रकार स्नान करानेके अनन्तर पुष्प-मालाओंसे विभूषित शवका गाँवके बाहर दाह करें और फिर जलाशयमें वस्त्रसहित स्नान कर दक्षिण-मुख होकर **'यत्र तत्र स्थितायैतदमुकाय'**[3] आदि वाक्यका उच्चारण करते हुए जलांजलि दें॥ ८-९॥

१- अँगुलियोंके अग्रभाग। २- कनिष्ठिकाका मूलभाग।

३- अर्थात् हमलोग अमुक नाम-गोत्रवाले प्रेतके निमित्त, वे जहाँ कहीं भी हों, यह जल देते हैं।

तदनन्तर गोधूलिके समय तारा-मण्डलके दीखने लगनेपर ग्राममें प्रवेश करें और कटकर्म (अशौच कृत्य) सम्पन्न करके पृथिवीपर तृणादिकी शय्यापर शयन करें॥ १०॥ हे पृथिवीपते! मृत पुरुषके लिये नित्यप्रति पृथिवीपर पिण्डदान करना चाहिये और हे पुरुषश्रेष्ठ! केवल दिनके समय मांसहीन भात खाना चाहिये॥ ११॥ अशौच कालमें, यदि ब्राह्मणोंकी इच्छा हो तो उन्हें भोजन कराना चाहिये, क्योंकि उस समय ब्राह्मण और बन्धुवर्गके भोजन करनेसे मृत जीवकी तृप्ति होती है॥ १२॥ अशौचके पहले, तीसरे, सातवें अथवा नवें दिन वस्त्र त्यागकर और बहिर्देशमें स्नान करके तिलोदक दे॥ १३॥

हे नृप! अशौचके चौथे दिन अस्थिचयन करना चाहिये; उसके अनन्तर अपने सपिण्ड बन्धुजनोंका अंग स्पर्श किया जा सकता है॥ १४॥ हे राजन्! उस समयसे समानोदक[१] पुरुष चन्दन और पुष्पधारण आदि क्रियाओंके सिवा [पंचयज्ञादि] और सब कर्म कर सकते हैं॥ १५॥ भस्म और अस्थिचयनके अनन्तर सपिण्ड पुरुषोंद्वारा शय्या और आसनका उपयोग तो किया जा सकता है, किन्तु स्त्री-संसर्ग नहीं किया जा सकता॥ १६॥ बालक, देशान्तरस्थित व्यक्ति, पतित और तपस्वीके मरनेपर तथा जल, अग्नि और उद्बन्धन (फाँसी लगाने) आदिद्वारा आत्मघात करनेपर शीघ्र ही अशौचकी निवृत्ति हो जाती है[२]॥ १७॥ मृतकके कुटुम्बका अन्न दस दिनतक न खाना चाहिये तथा अशौच कालमें दान, परिग्रह, होम और स्वाध्याय आदि कर्म भी न करने चाहिये॥ १८॥ यह [दस दिनका] अशौच ब्राह्मणका है; क्षत्रियका अशौच बारह दिन और वैश्यका पन्द्रह दिन रहता है तथा शूद्रकी अशौच-शुद्धि एक मासमें होती है॥ १९॥

अशौचके अन्तमें इच्छानुसार अयुग्म (तीन, पाँच, सात, नौ आदि) ब्राह्मणोंको भोजन करावे तथा उनकी उच्छिष्ट (जूठन)-के निकट प्रेतकी तृप्तिके लिये कुशापर पिण्डदान करे॥ २०॥ अशौच-शुद्धि हो जानेपर ब्रह्मभोजके अनन्तर ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंको क्रमशः जल, शस्त्र, प्रतोद (कोड़ा) और लाठीका स्पर्श करना चाहिये॥ २१॥

तदनन्तर, ब्राह्मण आदि वर्णोंके जो-जो जातीय धर्म बतलाये गये हैं उनका आचरण करे; और स्वधर्मानुसार उपार्जित जीविकासे निर्वाह करे॥ २२॥ फिर प्रतिमास मृत्युतिथिपर एकोद्दिष्ट श्राद्ध करे जो आवाहनादि क्रिया और विश्वेदेवसम्बन्धी ब्राह्मणके आमन्त्रण आदिसे रहित होने चाहिये॥ २३॥ उस समय एक अर्घ्य और एक पवित्रक देना चाहिये, तथा बहुत-से ब्राह्मणोंके भोजन करनेपर भी मृतकके लिये एक ही पिण्डदान करना चाहिये॥ २४॥ तदनन्तर यजमानके '**अभिरम्यताम्**' ऐसा कहनेपर ब्राह्मणगण

१- समानोदक (तर्पणादिमें समान जलाधिकारी अर्थात् सगोत्र) और सपिण्ड (पिण्डाधिकारी)-की व्याख्या कूर्मपुराणमें इस प्रकार की है—

'सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते। समानोदकभावस्तु जन्मनाम्नोरवेदने॥

अर्थात् सातवीं पीढ़ीमें पुरुषकी सपिण्डता निवृत्त हो जाती है, किन्तु समानोदकभाव उसके जन्म और नामका पता न रहनेपर दूर होता है।

२- परन्तु माता-पिताके विषयमें यह नियम नहीं है; जैसा कि कहा है—

पितरौ चेन्मृतौ स्यातां दूरस्थोऽपि हि पुत्रकः। श्रुत्वा तद्दिनमारभ्य दशाहं सूतकी भवेत्॥

'**अभिरताः स्मः**' ऐसा कहें और फिर पिण्डदान समाप्त होनेपर '**अमुकस्य अक्षय्यमिदमुपतिष्ठताम्**' इस वाक्यका उच्चारण करें॥ २५॥ इस प्रकार एक वर्षतक प्रतिमास एकोद्दिष्टकर्म करनेका विधान है। हे राजेन्द्र! वर्षके समाप्त होनेपर सपिण्डीकरण करे; उसकी विधि सुनो॥ २६॥

हे पार्थिव! इस सपिण्डीकरण कर्मको भी एक वर्ष, छः मास अथवा बारह दिनके अनन्तर एकोद्दिष्टश्राद्धकी विधिसे ही करना चाहिये॥ २७॥ इसमें तिल, गन्ध और जलसे युक्त चार पात्र रखे। इनमेंसे एक पात्र मृत-पुरुषका होता है तथा तीन पितृगणके होते हैं। फिर मृत-पुरुषके पात्रस्थित जलादिसे पितृगणके पात्रोंका सिंचन करे॥ २८-२९॥ इस प्रकार मृत-पुरुषको पितृत्व प्राप्त हो जानेपर सम्पूर्ण श्राद्धधर्मोंके द्वारा उस मृत-पुरुषसे ही आरम्भ कर पितृगणका पूजन करे॥ ३०॥ हे राजन्! पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, भाई, भतीजा अथवा अपनी सपिण्ड सन्ततिमें उत्पन्न हुआ पुरुष ही श्राद्धादि क्रिया करनेका अधिकारी होता है॥ ३१॥ यदि इन सबका अभाव हो तो समानोदककी सन्तति अथवा मातृपक्षके सपिण्ड अथवा समानोदकको इसका अधिकार है॥ ३२॥ हे राजन्! मातृकुल और पितृकुल दोनोंके नष्ट हो जानेपर स्त्री ही इस क्रियाको करे; अथवा [यदि स्त्री भी न हो तो] साथियोंमेंसे ही कोई करे या बान्धवहीन मृतकके धनसे राजा ही उसके सम्पूर्ण प्रेत-कर्म करे॥ ३३-३४॥

सम्पूर्ण प्रेत-कर्म तीन प्रकारके हैं—पूर्वकर्म, मध्यमकर्म तथा उत्तरकर्म। इनके पृथक्-पृथक् लक्षण सुनो॥ ३५॥ दाहसे लेकर जल और शस्त्र आदिके स्पर्शपर्यन्त जितने कर्म हैं उनको पूर्वकर्म कहते हैं तथा प्रत्येक मासमें जो एकोद्दिष्ट श्राद्ध किया जाता है वह मध्यमकर्म कहलाता है॥ ३६॥ और हे नृप! सपिण्डीकरणके पश्चात् मृतक व्यक्तिके पितृत्वको प्राप्त हो जानेपर जो पितृकर्म किये जाते हैं वे उत्तरकर्म कहलाते हैं॥ ३७॥ माता, पिता, सपिण्ड, समानोदक, समूहके लोग अथवा उसके धनका अधिकारी राजा पूर्वकर्म कर सकते हैं; किंतु उत्तरकर्म केवल पुत्र, दौहित्र आदि अथवा उनकी सन्तानको ही करना चाहिये॥ ३८-३९॥ हे राजन्! प्रतिवर्ष मरण-दिनपर स्त्रियोंका भी उत्तरकर्म एकोद्दिष्ट श्राद्धकी विधिसे अवश्य करना चाहिये॥ ४०॥ अतः हे अनघ! उन उत्तरक्रियाओंको जिस-जिसको जिस-जिस विधिसे करना चाहिये, वह सुनो॥ ४१॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके तीसरे अंशमें तेरहवाँ अध्याय समाप्त॥ १३॥

चौदहवाँ अध्याय

श्राद्ध-प्रशंसा, श्राद्धमें पात्रापात्रका विचार

औौर्व बोले—हे राजन्! श्रद्धासहित श्राद्धकर्म करनेसे मनुष्य ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, अश्विनीकुमार, सूर्य, अग्नि, वसुगण, मरुद्गण, विश्वेदेव, पितृगण, पक्षी, मनुष्य, पशु, सरीसृप, ऋषिगण तथा भूतगण आदि सम्पूर्ण जगत्‌को प्रसन्न कर देता है॥ १-२॥ हे नरेश्वर! प्रत्येक मासके कृष्णपक्षकी पंचदशी (अमावास्या) और अष्टका (हेमन्त और शिशिर ऋतुओंके चार महीनोंकी शुक्लाष्टमियों)-पर श्राद्ध करे। [यह नित्यश्राद्धकाल है] अब काम्यश्राद्धका काल बतलाता हूँ, श्रवण करो॥ ३॥

जिस समय श्राद्धयोग्य पदार्थ या किसी विशिष्ट ब्राह्मणको घरमें आया जाने, अथवा जब उत्तरायण या दक्षिणायनका आरम्भ या व्यतीपात हो तब काम्य-श्राद्धका अनुष्ठान करे॥ ४॥ विषुवसंक्रान्तिपर, सूर्य और चन्द्रग्रहणपर, सूर्यके प्रत्येक राशिमें प्रवेश करते समय, नक्षत्र अथवा ग्रहकी पीडा होनेपर, दु:स्वप्न देखनेपर और घरमें नवीन अन्न आनेपर भी काम्यश्राद्ध करे॥ ५-६॥

जो अमावास्या अनुराधा, विशाखा या स्वातिनक्षत्रयुक्ता हो उसमें श्राद्ध करनेसे पितृगण आठ वर्षतक तृप्त रहते हैं॥ ७॥ तथा जो अमावास्या पुष्य, आर्द्रा या पुनर्वसुनक्षत्रयुक्ता हो उसमें पूजित होनेसे पितृगण बारह वर्षतक तृप्त रहते हैं॥ ८॥

जो पुरुष पितृगण और देवगणको तृप्त करना चाहते हों उनके लिये धनिष्ठा, पूर्वाभाद्रपदा अथवा शतभिषानक्षत्रयुक्त अमावास्या अति दुर्लभ है॥ ९॥ हे पृथिवीपते! जब अमावास्या इन नौ नक्षत्रोंसे युक्त होती है उस समय किया हुआ श्राद्ध पितृगणको अत्यन्त तृप्तिदायक होता है। इनके अतिरिक्त पितृभक्त इलापुत्र महात्मा पुरूरवाके अति विनीत भावसे पूछनेपर श्रीसनत्कुमारजीने जिनका वर्णन किया था वे अन्य तिथियाँ भी सुनो॥ १०-११॥

श्रीसनत्कुमारजी बोले— वैशाखमासकी शुक्ला तृतीया, कार्तिक शुक्ला नवमी, भाद्रपद कृष्णा त्रयोदशी तथा माघमासकी अमावास्या—इन चार तिथियोंको पुराणोंमें 'युगाद्या' कहा है। ये चारों तिथियाँ अनन्त पुण्यदायिनी हैं। चन्द्रमा या सूर्यके ग्रहणके समय, तीन अष्टकाओंमें अथवा उत्तरायण या दक्षिणायनके आरम्भमें जो पुरुष एकाग्रचित्तसे पितृगणको तिलसहित जल भी दान करता है वह मानो एक सहस्र वर्षके लिये श्राद्ध कर देता है—यह परम रहस्य स्वयं पितृगण ही कहते हैं॥ १२—१४॥

यदि कदाचित् माघकी अमावास्याका शतभिषानक्षत्रसे योग हो जाय तो पितृगणकी तृप्तिके लिये यह परम उत्कृष्ट काल होता है। हे राजन्! अल्पपुण्यवान् पुरुषोंको ऐसा समय नहीं मिलता॥ १५॥ और यदि उस समय (माघकी अमावास्यामें) धनिष्ठानक्षत्रका योग हो तब तो अपने ही कुलमें उत्पन्न हुए पुरुषद्वारा दिये हुए अन्नोदकसे पितृगणकी दस सहस्र वर्षतक तृप्ति रहती है॥ १६॥ तथा यदि उसके साथ पूर्वाभाद्रपदनक्षत्रका योग हो और उस समय पितृगणके लिये श्राद्ध किया जाय तो उन्हें परम तृप्ति प्राप्त होती है और वे एक सहस्र युगतक शयन करते रहते हैं॥ १७॥ गंगा, शतद्रू, यमुना, विपाशा, सरस्वती और नैमिषारण्यस्थिता गोमतीमें स्नान करके पितृगणका आदरपूर्वक अर्चन करनेसे मनुष्य समस्त पापोंको नष्ट कर देता है॥ १८॥ पितृगण सर्वदा यह गान करते हैं कि वर्षाकाल (भाद्रपद शुक्ला त्रयोदशी)-के मघानक्षत्रमें तृप्त होकर फिर माघकी अमावास्याको अपने पुत्र-पौत्रादिद्वारा दी गयी पुण्यतीर्थोंकी जलांजलिसे हम कब तृप्ति लाभ करेंगे'॥ १९॥ विशुद्ध चित्त, शुद्ध धन, प्रशस्त काल, उपर्युक्त विधि, योग्य पात्र और परम भक्ति—ये सब मनुष्यको इच्छित फल देते हैं॥ २०॥

हे पार्थिव! अब तुम पितृगणके गाये हुए कुछ श्लोकोंका श्रवण करो, उन्हें सुनकर तुम्हें आदरपूर्वक वैसा ही आचरण करना चाहिये॥ २१॥ [पितृगण कहते हैं—] 'हमारे कुलमें क्या कोई ऐसा मतिमान् धन्य पुरुष उत्पन्न होगा जो वित्तलोलुपताको छोड़कर हमें पिण्डदान देगा॥ २२॥ जो सम्पत्ति होनेपर हमारे उद्देश्यसे ब्राह्मणोंको

रत्न, वस्त्र, यान और सम्पूर्ण भोगसामग्री देगा॥ २३॥ अथवा अन्न-वस्त्र मात्र वैभव होनेसे जो श्राद्धकालमें भक्ति-विनम्र चित्तसे उत्तम ब्राह्मणोंको यथाशक्ति अन्न ही भोजन करायेगा॥ २४॥ या अन्नदानमें भी असमर्थ होनेपर जो ब्राह्मणश्रेष्ठोंको कच्चा धान्य और थोड़ी-सी दक्षिणा ही देगा॥ २५॥ और यदि इसमें भी असमर्थ होगा तो किन्हीं द्विजश्रेष्ठको प्रणाम कर एक मुट्ठी तिल ही देगा॥ २६॥ अथवा हमारे उद्देश्यसे पृथिवीपर भक्ति-विनम्र चित्तसे सात-आठ तिलोंसे युक्त जलांजलि ही देगा॥ २७॥ और यदि इसका भी अभाव होगा तो कहीं-न-कहींसे एक दिनका चारा लाकर प्रीति और श्रद्धापूर्वक हमारे उद्देश्यसे गौको खिलायेगा॥ २८॥ तथा इन सभी वस्तुओंका अभाव होनेपर जो वनमें जाकर अपने कक्षमूल (बगल) को दिखाता हुआ सूर्य आदि दिक्पालोंसे उच्च स्वरसे यह कहेगा॥ २९॥

'मेरे पास श्राद्धकर्मके योग्य न वित्त है, न धन है और न कोई अन्य सामग्री है, अतः मैं अपने पितृगणको नमस्कार करता हूँ, वे मेरी भक्तिसे ही तृप्ति लाभ करें। मैंने अपनी दोनों भुजाएँ आकाशमें उठा रखी हैं''॥ ३०॥

और्व बोले—हे राजन्! धनके होने अथवा न होनेपर पितृगणने जिस प्रकार बतलाया है वैसा ही जो पुरुष आचरण करता है वह उस आचारसे विधिपूर्वक श्राद्ध ही कर देता है॥ ३१॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके तीसरे अंशमें चौदहवाँ अध्याय समाप्त॥ १४॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

श्राद्ध-विधि

और्व बोले—हे राजन्! श्राद्धकालमें जैसे गुणशील ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये वह बतलाता हूँ, सुनो। त्रिणाचिकेत[१], त्रिमधु[२], त्रिसुपर्ण[३], छहों वेदांगोंके जाननेवाले, वेदवेत्ता, श्रोत्रिय, योगी और ज्येष्ठसामग तथा ऋत्विक्, भानजे, दौहित्र, जामाता, श्वशुर, मामा, तपस्वी, पंचाग्नि तपनेवाले, शिष्य, सम्बन्धी और माता-पिताके प्रेमी इन ब्राह्मणोंको श्राद्धकर्ममें नियुक्त करे। इनमेंसे [त्रिणाचिकेत आदि] पहले कहे हुओंको पूर्वकालमें नियुक्त करे और [ऋत्विक् आदि] पीछे बतलाये हुओंको पितरोंकी तृप्तिके लिये उत्तरकर्ममें भोजन करावे॥ १—४॥ मित्रघाती, स्वभावसे ही विकृत नखोंवाला, नपुंसक, काले दाँतोंवाला, कन्यागामी, अग्नि और वेदका त्याग करनेवाला, सोमरस बेचनेवाला, लोकनिन्दित, चोर, चुगलखोर, ग्रामपुरोहित, वेतन लेकर पढ़ानेवाला अथवा पढ़नेवाला, पुनर्विवाहिताका पति, माता-पिताका त्याग करनेवाला, शूद्रकी सन्तानका पालन करनेवाला, शूद्राका पति तथा देवोपजीवी ब्राह्मण श्राद्धमें निमन्त्रण देनेयोग्य नहीं है॥ ५—८॥

श्राद्धके पहले दिन बुद्धिमान् पुरुष श्रोत्रिय आदि विहित ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे और

१-द्वितीय कठके अन्तर्गत 'अयं वाव यः पवते' इत्यादि तीन अनुवाकोंको 'त्रिणाचिकेत' कहते हैं, उसको पढ़नेवाला या उसका अनुष्ठान करनेवाला।

२-'मधुवाताः' इत्यादि ऋचाका अध्ययन और मधुव्रतका आचरण करनेवाला।

३-'ब्रह्ममेतु माम्' इत्यादि तीन अनुवाकोंका अध्ययन और तत्सम्बन्धी व्रत करनेवाला।

उनसे यह कह दे कि 'आपको पितृ-श्राद्धमें और आपको विश्वेदेव-श्राद्धमें नियुक्त होना है'॥ ९॥ उन निमन्त्रित ब्राह्मणोंके सहित श्राद्ध करनेवाला पुरुष उस दिन क्रोधादि तथा स्त्रीगमन और परिश्रम आदि न करे, क्योंकि श्राद्ध करनेमें यह महान् दोष माना गया है॥ १०॥ श्राद्धमें निमन्त्रित होकर या भोजन करके अथवा निमन्त्रण करके या भोजन कराकर जो पुरुष स्त्री-प्रसंग करता है वह अपने पितृगणको मानो वीर्यके कुण्डमें डुबोता है॥ ११॥ अत: श्राद्धके प्रथम दिन पहले तो उपरोक्त गुणविशिष्ट द्विजश्रेष्ठोंको निमन्त्रित करे और यदि उस दिन कोई अनिमन्त्रित तपस्वी ब्राह्मण घर आ जायँ तो उन्हें भी भोजन करावे॥ १२॥

घर आये हुए ब्राह्मणोंका पहले पाद-शुद्धि आदिसे सत्कार करे; फिर हाथ धोकर उन्हें आचमन करानेके अनन्तर आसनपर बिठावे। अपनी सामर्थ्यानुसार पितृगणके लिये अयुग्म और देवगणके लिये युग्म ब्राह्मण नियुक्त करे अथवा दोनों पक्षोंके लिये एक-एक ब्राह्मणकी ही नियुक्ति करे॥ १३—१५॥ और इसी प्रकार वैश्वदेवके सहित मातामह-श्राद्ध करे अथवा पितृपक्ष और मातामह-पक्ष दोनोंके लिये भक्तिपूर्वक एक ही वैश्वदेव-श्राद्ध करे॥ १६॥ देव-पक्षके ब्राह्मणोंको पूर्वाभिमुख बिठाकर और पितृ-पक्ष तथा मातामह-पक्षके ब्राह्मणोंको उत्तर-मुख बिठाकर भोजन करावे॥ १७॥ हे नृप! कोई तो पितृ-पक्ष और मातामह-पक्षके श्राद्धोंको अलग-अलग करनेके लिये कहते हैं और कोई महर्षि दोनोंका एक साथ एक पाकमें ही अनुष्ठान करनेके पक्षमें हैं॥ १८॥ विज्ञ व्यक्ति प्रथम निमन्त्रित ब्राह्मणोंके बैठनेके लिये कुशा बिछाकर फिर अर्घ्यदान आदिसे विधिपूर्वक पूजा कर उनकी अनुमतिसे देवताओंका आवाहन करे॥ १९॥ तदनन्तर श्राद्धविधिको जाननेवाला पुरुष यव-मिश्रित जलसे देवताओंको अर्घ्यदान करे और उन्हें विधिपूर्वक धूप, दीप, गन्ध तथा माला आदि निवेदन करे॥ २०॥ ये समस्त उपचार पितृगणके लिये अपसव्य भावसे* निवेदन करे; और फिर ब्राह्मणोंकी अनुमतिसे दो भागोंमें बँटे हुए कुशाओंका दान करके मन्त्रोच्चारणपूर्वक पितृगणका आवाहन करे, तथा हे राजन्! अपसव्य-भावसे तिलोदकसे अर्घ्यादि दे॥ २१-२२॥

हे नृप! उस समय यदि कोई भूखा पथिक अतिथि-रूपसे आ जाय तो निमन्त्रित ब्राह्मणोंकी आज्ञासे उसे भी यथेच्छ भोजन करावे॥ २३॥ अनेक अज्ञात-स्वरूप योगिगण मनुष्योंके कल्याणकी कामनासे नाना रूप धारणकर पृथिवीतलपर विचरते रहते हैं॥ २४॥ अत: विज्ञ पुरुष श्राद्धकालमें आये हुए अतिथिका अवश्य सत्कार करे। हे नरेन्द्र! उस समय अतिथिका सत्कार न करनेसे वह श्राद्ध-क्रियाके सम्पूर्ण फलको नष्ट कर देता है॥ २५॥

हे पुरुषश्रेष्ठ! तदनन्तर उन ब्राह्मणोंकी आज्ञासे शाक और लवणहीन अन्नसे अग्निमें तीन बार आहुति दे॥ २६॥ हे राजन्! उनमेंसे **'अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा'** इस मन्त्रसे पहली आहुति, **'सोमाय पितृमते स्वाहा'** इससे दूसरी और **'वैवस्वताय स्वाहा'** इस मन्त्रसे तीसरी आहुति दे। तदनन्तर आहुतियोंसे बचे हुए अन्नको थोड़ा-थोड़ा सब ब्राह्मणोंके पात्रोंमें परोस दे॥ २७-२८॥

फिर रुचिके अनुकूल अति संस्कारयुक्त मधुर अन्न सबको परोसे और अति मृदुल वाणीसे कहे कि 'आप भोजन कीजिये'॥ २९॥ ब्राह्मणोंको

* यज्ञोपवीतको दायें कन्धेपर करके।

भी तद्गतचित्त और मौन होकर प्रसन्नमुखसे सुखपूर्वक भोजन करना चाहिये तथा यजमानको क्रोध और उतावलेपनको छोड़कर भक्तिपूर्वक परोसते रहना चाहिये॥ ३०॥ फिर 'रक्षोघ्न'* मन्त्रका पाठ कर श्राद्धभूमिपर तिल छिड़के तथा अपने पितृरूपसे उन द्विजश्रेष्ठोंका ही चिन्तन करे॥ ३१॥ [और कहे कि] 'इन ब्राह्मणोंके शरीरोंमें स्थित मेरे पिता, पितामह और प्रपितामह आदि आज तृप्ति लाभ करें॥ ३२॥ होमद्वारा सबल होकर मेरे पिता, पितामह और प्रपितामह आज तृप्ति लाभ करें॥ ३३॥ मैंने जो पृथिवीपर पिण्डदान किया है उससे मेरे पिता, पितामह और प्रपितामह तृप्ति लाभ करें॥ ३४॥ [श्राद्धरूपसे कुछ भी निवेदन न कर सकनेके कारण] मैंने भक्तिपूर्वक जो कुछ कहा है उस मेरे भक्तिभावसे ही मेरे पिता, पितामह और प्रपितामह तृप्ति लाभ करें॥ ३५॥ मेरे मातामह (नाना), उनके पिता और उनके भी पिता तथा विश्वेदेवगण परम तृप्ति लाभ करें तथा समस्त राक्षसगण नष्ट हों॥ ३६॥ यहाँ समस्त हव्य-कव्यके भोक्ता यज्ञेश्वर भगवान् हरि विराजमान हैं, अतः उनकी सन्निधिके कारण समस्त राक्षस और असुरगण यहाँसे तुरन्त भाग जायँ'॥ ३७॥

तदनन्तर ब्राह्मणोंके तृप्त हो जानेपर थोड़ा-सा अन्न पृथिवीपर डाले और आचमनके लिये उन्हें एक-एक बार और जल दे॥ ३८॥ फिर भली प्रकार तृप्त हुए उन ब्राह्मणोंकी आज्ञा होनेपर समाहितचित्तसे पृथिवीपर अन्न और तिलके पिण्ड-दान करे॥ ३९॥ और पितृतीर्थसे तिलयुक्त जलांजलि दे तथा मातामह आदिको भी उस पितृतीर्थसे ही पिण्ड-दान करे॥ ४०॥ ब्राह्मणोंके उच्छिष्ट (जूठन)-के निकट दक्षिणकी ओर अग्रभाग करके बिछाये हुए कुशाओंपर पहले अपने पिताके लिये पुष्प-धूपादिसे पूजित पिण्डदान करे॥ ४१॥ तत्पश्चात् एक पिण्ड पितामहके लिये और एक प्रपितामहके लिये दे और फिर कुशाओंके मूलमें हाथमें लगे अन्नको पोंछकर [**'लेपभागभुजस्तृप्यन्ताम्'** ऐसा उच्चारण करते हुए] लेपभोजी पितृगणको तृप्त करे॥ ४२॥ इसी प्रकार गन्ध और मालादियुक्त पिण्डोंसे मातामह आदिका पूजन कर फिर द्विजश्रेष्ठोंको आचमन करावे॥ ४३॥ और हे नरेश्वर! इसके पीछे भक्तिभावसे तन्मय होकर पहले पितृपक्षीय ब्राह्मणोंका 'सुस्वधा' यह आशीर्वाद ग्रहण करता हुआ यथाशक्ति दक्षिणा दे॥ ४४॥ फिर वैश्वदेविक ब्राह्मणोंके निकट जा उन्हें दक्षिणा देकर कहे कि 'इस दक्षिणासे विश्वेदेवगण प्रसन्न हों'॥ ४५॥ उन ब्राह्मणोंके 'तथास्तु' कहनेपर उनसे आशीर्वादके लिये प्रार्थना करे और फिर पहले पितृपक्षके और पीछे देवपक्षके ब्राह्मणोंको विदा करे॥ ४६॥ विश्वेदेवगणके सहित मातामह आदिके श्राद्धमें भी ब्राह्मण-भोजन, दान और विसर्जन आदिकी यही विधि बतलायी गयी है॥ ४७॥ पितृ और मातामह दोनों ही पक्षोंके श्राद्धोंमें पादशौच आदि सभी कर्म पहले देवपक्षके ब्राह्मणोंके करे; परन्तु विदा पहले पितृपक्षीय अथवा मातामहपक्षीय ब्राह्मणोंकी ही करे॥ ४८॥

तदनन्तर प्रीतिवचन और सम्मानपूर्वक ब्राह्मणोंको विदा करे और उनके जानेके समय द्वारतक उनके पीछे-पीछे जाय तथा जब वे आज्ञा दें तो लौट आवे॥ ४९॥ फिर विज्ञ पुरुष वैश्वदेव नामक नित्यकर्म करे और अपने पूज्य पुरुष, बन्धुजन तथा भृत्यगणके सहित स्वयं भोजन करे॥ ५०॥

बुद्धिमान् पुरुष इस प्रकार पैत्र्य और

* 'ॐ अपहता असुरा रक्षाꣳसि वेदिषदः' इत्यादि।

मातामह-श्राद्धका अनुष्ठान करे। श्राद्धसे तृप्त होकर पितृगण समस्त कामनाओंको पूर्ण कर देते हैं॥ ५१॥

दौहित्र (लड़कीका लड़का), कुतप (दिनका आठवाँ मुहूर्त) और तिल—ये तीन तथा चाँदीका दान और उसकी बातचीत करना—ये सब श्राद्धकालमें पवित्र माने गये हैं॥ ५२॥ हे राजेन्द्र! श्राद्धकर्ताके लिये क्रोध, मार्गगमन और उतावलापन—ये तीन बातें वर्जित हैं; तथा श्राद्धमें भोजन करनेवालोंको भी इन तीनोंका करना उचित नहीं है॥ ५३॥

हे राजन्! श्राद्ध करनेवाले पुरुषसे विश्वेदेवगण, पितृगण, मातामह तथा कुटुम्बीजन—सभी सन्तुष्ट रहते हैं॥ ५४॥ हे भूपाल! पितृगणका आधार चन्द्रमा है और चन्द्रमाका आधार योग है, इसलिये श्राद्धमें योगिजनको नियुक्त करना अति उत्तम है॥ ५५॥ हे राजन्! यदि श्राद्धभोजी एक सहस्र ब्राह्मणोंके सम्मुख एक योगी भी हो तो वह यजमानके सहित उन सबका उद्धार कर देता है॥ ५६॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके तीसरे अंशमें पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त॥ १५॥

सोलहवाँ अध्याय

श्राद्ध-कर्ममें विहित और अविहित वस्तुओंका विचार

और्व बोले—हवि, मत्स्य, शशक (खरगोश), नकुल, शूकर, छाग, कस्तूरिया मृग, कृष्ण मृग, गवय (वनगाय) और मेषके मांसोंसे तथा गव्य (गौके दूध-घी आदि)-से पितृगण क्रमशः एक-एक मास अधिक तृप्ति लाभ करते हैं और वार्ध्रीणस पक्षीके मांससे सदा तृप्त रहते हैं॥ १-२॥ हे नरेश्वर! श्राद्धकर्ममें गेंडेका मांस, कालशाक और मधु अत्यन्त प्रशस्त और अत्यन्त तृप्तिदायक हैं *॥ ३॥

हे पृथिवीपते! जो पुरुष गयामें जाकर श्राद्ध करता है, उसका पितृगणको तृप्ति देनेवाला वह जन्म सफल हो जाता है॥ ४॥ हे पुरुषश्रेष्ठ!

* इन तीन श्लोकोंका मूलके अनुसार अनुवाद कर दिया गया है। समझमें नहीं आता, इस व्यवस्थाका क्या रहस्य है? मालूम होता है, श्रुति-स्मृतिमें जहाँ कहीं मांसका विधान है, वह स्वाभाविक मांसभोजी मनुष्योंकी प्रवृत्तिको संकुचित और नियमित करनेके लिये ही है। सभी जगह उत्कृष्ट धर्म तो मांसभक्षणका सर्वथा त्याग ही माना गया है। मनुस्मृति अ० ५ में मांसप्रकरणका उपसंहार करते हुए श्लोक ४५ से ५६ तक मांसभक्षणकी निन्दा और निरामिष आहारकी भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी है। श्राद्धकर्ममें मांस कितना निन्दनीय है, यह श्रीमद्भागवत सप्तम स्कन्ध अध्याय १५ के इन श्लोकोंसे स्पष्ट हो जाता है—

न दद्यादामिषं श्राद्धे न चाद्याद्धर्मतत्त्ववित्। मुन्यन्नैः स्यात्परा प्रीतिर्यथा न पशुहिंसया॥ ७॥
नैतादृशः परो धर्मो नृणां सद्धर्ममिच्छताम्। न्यासो दण्डस्य भूतेषु मनोवाक्कायजस्य यः॥ ८॥
द्रव्ययज्ञैर्यक्ष्यमाणं दृष्ट्वा भूतानि बिभ्यति। एष माऽकरुणो हन्यादतज्ज्ञो ह्यसुतृब् ध्रुवम्॥ १०॥

अर्थ-धर्मके मर्मको समझनेवाला पुरुष श्राद्धमें [खानेके लिये] मांस न दे और न स्वयं ही खाय, क्योंकि पितृगणकी तृप्ति जैसी मुनिजनोचित आहारसे होती है वैसी पशुहिंसासे नहीं होती॥ ७॥ सद्धर्मकी इच्छावाले पुरुषोंके लिये 'सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति मन, वाणी और शरीरसे दण्डका त्याग कर देना'—इसके समान और कोई श्रेष्ठ धर्म नहीं है॥ ८॥ पुरुषको द्रव्ययज्ञसे यजन करते देखकर जीव डरते हैं कि यह अपने ही प्राणोंका पोषण करनेवाला निर्दय अज्ञानी मुझे अवश्य मार डालेगा॥ १०॥

देवधान्य, नीवार और श्याम तथा श्वेत वर्णके श्यामाक (सावाँ) एवं प्रधान-प्रधान वनौषधियाँ श्राद्धके उपयुक्त द्रव्य हैं॥ ५॥ जौ, काँगनी, मूँग, गेहूँ, धान, तिल, मटर, कचनार और सरसों—इन सबका श्राद्धमें होना अच्छा है॥ ६॥

हे राजेश्वर! जिस अन्नसे नवान्न यज्ञ न किया गया हो तथा बड़े उड़द, छोटे उड़द, मसूर, कद्दू, गाजर, प्याज, शलजम, गान्धारक (शालिविशेष) बिना तुषके गिरे हुए धान्यका आटा, ऊसर भूमिमें उत्पन्न हुआ लवण, हींग आदि कुछ-कुछ लाल रंगकी वस्तुएँ, प्रत्यक्ष लवण और कुछ अन्य वस्तुएँ जिनका शास्त्रमें विधान नहीं है, श्राद्धकर्ममें त्याज्य हैं॥ ७—९॥ हे राजन्! जो रात्रिके समय लाया गया हो, अप्रतिष्ठित जलाशयका हो, जिसमें गौ तृप्त न हो सकती हो ऐसे गड्ढेका अथवा दुर्गन्ध या फेनयुक्त जल श्राद्धके योग्य नहीं होता॥ १०॥ एक खुरवालोंका, ऊँटनीका, भेड़का, मृगीका तथा भैंसका दूध श्राद्धकर्ममें काममें न ले॥ ११॥

हे पुरुषर्षभ! नपुंसक, अपविद्ध (सत्पुरुषोंद्वारा बहिष्कृत), चाण्डाल, पापी, पाषण्डी, रोगी, कुक्कुट, श्वान, नग्न (वैदिक कर्मको त्याग देनेवाला पुरुष) वानर, ग्राम्यशूकर, रजस्वला स्त्री, जन्म अथवा मरणके अशौचसे युक्त व्यक्ति और शव ले जानेवाले पुरुष—इनमेंसे किसीकी भी दृष्टि पड़ जानेसे देवगण अथवा पितृगण कोई भी श्राद्धमें अपना भाग नहीं लेते॥ १२-१३॥ अतः किसी घिरे हुए स्थानमें श्रद्धापूर्वक श्राद्धकर्म करे तथा पृथिवीमें तिल छिड़ककर राक्षसोंको निवृत्त कर दे॥ १४॥

हे राजन्! श्राद्धमें ऐसा अन्न न दे जिसमें नख, केश या कीड़े आदि हों या जो निचोड़कर निकाले हुए रससे युक्त हो या बासी हो॥ १५॥ श्रद्धायुक्त व्यक्तियोंद्वारा नाम और गोत्रके उच्चारणपूर्वक दिया हुआ अन्न पितृगणको वे जैसे आहारके योग्य होते हैं वैसा ही होकर उन्हें मिलता है॥ १६॥ हे राजन्! इस सम्बन्धमें एक गाथा सुनी जाती है जो पूर्वकालमें मनुपुत्र महाराज इक्ष्वाकुके प्रति पितृगणने कलाप उपवनमें कही थी॥ १७॥

'क्या हमारे कुलमें ऐसे सन्मार्ग-शील व्यक्ति होंगे जो गयामें जाकर हमारे लिये आदरपूर्वक पिण्डदान करेंगे?॥ १८॥ क्या हमारे कुलमें कोई ऐसा पुरुष होगा जो वर्षाकालकी मघानक्षत्रयुक्त त्रयोदशीको हमारे उद्देश्यसे मधु और घृतयुक्त पायस (खीर)-का दान करेगा?॥ १९॥ अथवा गौरी कन्यासे विवाह करेगा, नीला वृषभ छोड़ेगा या दक्षिणासहित विधिपूर्वक अश्वमेध यज्ञ करेगा?'॥ २०॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके तीसरे अंशमें सोलहवाँ अध्याय समाप्त॥ १६॥

सत्रहवाँ अध्याय

नग्नविषयक प्रश्न, देवताओंका पराजय, उनका भगवान्‌की शरणमें जाना और भगवान्‌का मायामोहको प्रकट करना

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! पूर्वकालमें महात्मा सगरसे उनके पूछनेपर भगवान् और्वने इस प्रकार गृहस्थके सदाचारका निरूपण किया था॥ १॥ हे द्विज! मैंने भी तुमसे इसका पूर्णतया वर्णन कर दिया। कोई भी पुरुष सदाचारका उल्लंघन करके सद्‌गति नहीं पा सकता॥ २॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—भगवन्! नपुंसक, अपविद्ध और रजस्वला आदिको तो मैं अच्छी तरह जानता हूँ [किन्तु यह नहीं जानता कि 'नग्न' किसको कहते हैं]। अतः इस समय मैं नग्नके विषयमें जानना चाहता हूँ॥ ३॥ नग्न कौन है? और किस प्रकारके आचरणवाला पुरुष नग्न-संज्ञा प्राप्त करता है? हे धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ! मैं आपके द्वारा नग्नके स्वरूपका यथावत् वर्णन सुनना चाहता हूँ; क्योंकि आपको कोई भी बात अविदित नहीं है॥ ४॥

श्रीपराशरजी बोले—हे द्विज! ऋक्, साम और यजुः यह वेदत्रयी वर्णोंका आवरणस्वरूप है। जो पुरुष मोहसे इसका त्याग कर देता है वह पापी 'नग्न' कहलाता है॥ ५॥ हे ब्रह्मन्! समस्त वर्णोंका संवरण (ढँकनेवाला वस्त्र) वेदत्रयी ही है; इसलिये उसका त्याग कर देनेपर पुरुष 'नग्न' हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं॥ ६॥ हमारे पितामह धर्मज्ञ वसिष्ठजीने इस विषयमें महात्मा भीष्मजीसे जो कुछ कहा था वह श्रवण करो॥ ७॥ हे मैत्रेय! तुमने जो मुझसे नग्नके विषयमें पूछा है, इस सम्बन्धमें भीष्मके प्रति वर्णन करते समय मैंने भी महात्मा वसिष्ठजीका कथन सुना था॥ ८॥

पूर्वकालमें किसी समय सौ दिव्यवर्षतक देवता और असुरोंका परस्पर युद्ध हुआ। उसमें ह्राद प्रभृति दैत्योंद्वारा देवगण पराजित हुए॥ ९॥ अतः देवगणने क्षीरसागरके उत्तरीय तटपर जाकर तपस्या की और भगवान् विष्णुकी आराधनाके लिये उस समय इस स्तवका गान किया॥ १०॥

देवगण बोले—हमलोग लोकनाथ भगवान् विष्णुकी आराधनाके लिये जिस वाणीका उच्चारण करते हैं, उससे वे आद्य-पुरुष श्रीविष्णुभगवान् प्रसन्न हों॥ ११॥ जिन परमात्मासे सम्पूर्ण भूत उत्पन्न हुए हैं और जिनमें वे सब अन्तमें लीन हो जायँगे, संसारमें उनकी स्तुति करनेमें कौन समर्थ है?॥ १२॥ हे प्रभो! यद्यपि आपका यथार्थ स्वरूप वाणीका विषय नहीं है तो भी शत्रुओंके हाथसे विध्वस्त होकर पराक्रमहीन हो जानेके कारण हम अभयप्राप्तिके लिये आपकी स्तुति करते हैं॥ १३॥ पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, अन्तःकरण, मूल-प्रकृति और प्रकृतिसे परे पुरुष—ये सब आप ही हैं॥ १४॥ हे सर्वभूतात्मन्! ब्रह्मासे लेकर स्तम्बपर्यन्त स्थान और कालादि भेदयुक्त यह मूर्त्तामूर्त्त-पदार्थमय सम्पूर्ण प्रपंच आपहीका शरीर है॥ १५॥ आपके नाभि-कमलसे विश्वके उपकारार्थ प्रकट हुआ जो आपका प्रथम रूप है, हे ईश्वर! उस ब्रह्मस्वरूपको नमस्कार है॥ १६॥ इन्द्र, सूर्य, रुद्र, वसु, अश्विनीकुमार, मरुद्‌गण और सोम आदि भेदयुक्त हमलोग भी आपहीका एक रूप हैं; अतः आपके उस देवरूपको नमस्कार है॥ १७॥ हे गोविन्द! जो दम्भमयी, अज्ञानमयी तथा तितिक्षा और दम्भसे शून्य है, आपकी उस दैत्य-मूर्तिको नमस्कार

है॥ १८ ॥ जिस मन्दसत्त्व स्वरूपमें हृदयकी नाड़ियाँ अत्यन्त ज्ञानवाहिनी नहीं होतीं तथा जो शब्दादि विषयोंका लोभी होता है, आपके उस यक्षरूपको नमस्कार है॥ १९ ॥ हे पुरुषोत्तम! आपका जो क्रूरता और मायासे युक्त घोर तमोमय रूप है, उस राक्षसस्वरूपको नमस्कार है॥ २० ॥ हे जनार्दन! जो स्वर्गमें रहनेवाले धार्मिक जनोंके यागादि सद्धर्मोंके फल (सुखादि)-की प्राप्ति करानेवाला आपका धर्म नामक रूप है उसे नमस्कार है॥ २१ ॥ जो जल-अग्नि आदि गमनीय स्थानोंमें जाकर भी सर्वदा निर्लिप्त और प्रसन्नतामय रहता है वह सिद्ध नामक रूप आपहीका है; ऐसे सिद्धस्वरूप आपको नमस्कार है॥ २२ ॥ हे हरे! जो अक्षमाका आश्रय अत्यन्त क्रूर और कामोपभोगमें समर्थ आपका द्विजिह्व (दो जीभवाला) रूप है, उन नागस्वरूप आपको नमस्कार है॥ २३ ॥ हे विष्णो! जो ज्ञानमय, शान्त, दोषरहित और कल्मषहीन है, उस आपके मुनिमय स्वरूपको नमस्कार है॥ २४ ॥ जो कल्पान्तमें अनिवार्यरूपसे समस्त भूतोंका भक्षण कर जाता है, हे पुण्डरीकाक्ष! आपके उस कालस्वरूपको नमस्कार है॥ २५ ॥

जो प्रलयकालमें देवता आदि समस्त प्राणियोंको सामान्य भावसे भक्षण करके नृत्य करता है आपके उस रुद्रस्वरूपको नमस्कार है॥ २६ ॥ रजोगुणकी प्रवृत्तिके कारण जो कर्मोंका करणरूप है, हे जनार्दन! आपके उस मनुष्यात्मक स्वरूपको नमस्कार है॥ २७ ॥ हे सर्वात्मन्! जो अट्ठाईस वध-युक्त* तमोमय और उन्मार्गगामी है आपके उस पशुरूपको नमस्कार है॥ २८ ॥ जो जगत्की स्थितिका साधन और यज्ञका अंगभूत है तथा वृक्ष, लता, गुल्म, वीरुध, तृण और गिरि—इन छः भेदोंसे युक्त हैं उन मुख्य (उद्भिद्)-रूप आपको नमस्कार है॥ २९ ॥ तिर्यक्, मनुष्य तथा देवता आदि प्राणी, आकाशादि पंचभूत और शब्दादि उनके गुण—ये सब, सबके आदिभूत आपहीके रूप हैं; अतः आप सर्वात्माको नमस्कार है॥ ३० ॥

हे परमात्मन्! प्रधान और महत्तत्त्वादिरूप इस सम्पूर्ण जगत्से जो परे है, सबका आदि कारण है तथा जिसके समान कोई अन्य रूप नहीं है, आपके उस प्रकृति आदि कारणोंके भी कारण रूपको नमस्कार है॥ ३१ ॥ हे भगवन्! जो शुक्लादि रूपसे, दीर्घता आदि परिमाणसे तथा घनता आदि गुणोंसे रहित है, इस प्रकार जो समस्त विशेषणोंका अविषय है, तथा परमर्षियोंका दर्शनीय एवं शुद्धातिशुद्ध है, आपके उस स्वरूपको हम नमस्कार करते हैं॥ ३२ ॥ जो हमारे शरीरोंमें, अन्य प्राणियोंके शरीरोंमें तथा समस्त वस्तुओंमें वर्तमान है, अजन्मा और अविनाशी है तथा जिससे अतिरिक्त और कोई भी नहीं है, उस ब्रह्मस्वरूपको हम नमस्कार करते हैं॥ ३३ ॥ परम पद ब्रह्म ही जिनका आत्मा है ऐसे जिस सनातन और अजन्मा भगवान्का यह सकल प्रपंच रूप है, उस सबके बीजभूत, अविनाशी और निर्मल प्रभु वासुदेवको हम नमस्कार करते हैं॥ ३४ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! स्तोत्रके समाप्त हो जानेपर देवताओंने परमात्मा श्रीहरिको हाथमें शंख, चक्र और गदा लिये तथा गरुडपर आरूढ़ हुए अपने सम्मुख विराजमान देखा॥ ३५ ॥

उन्हें देखकर समस्त देवताओंने प्रणाम करनेके अनन्तर उनसे कहा—"हे नाथ! प्रसन्न होइये और हम शरणागतोंकी दैत्योंसे रक्षा

* ग्यारह इन्द्रिय-वध, नौ तुष्टि-वध और आठ सिद्धि-वध—ये कुल अट्ठाईस वध हैं। इनका प्रथमांश पञ्चमाध्याय श्लोक दसकी टिप्पणीमें विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।

कीजिये ॥ ३६ ॥ हे परमेश्वर! ह्राद प्रभृति दैत्यगणने ब्रह्माजीकी आज्ञाका भी उल्लंघन कर हमारे और त्रिलोकीके यज्ञभागोंका अपहरण कर लिया है ॥ ३७ ॥ यद्यपि हम और वे सर्वभूत आपहीके अंशज हैं तथापि अविद्यावश हम जगत्‌को परस्पर भिन्न-भिन्न देखते हैं ॥ ३८ ॥ हमारे शत्रुगण अपने वर्णधर्मका पालन करनेवाले, वेदमार्गावलम्बी और तपोनिष्ठ हैं, अत: वे हमसे नहीं मारे जा सकते ॥ ३९ ॥ अत: हे सर्वात्मन्! जिससे हम उन असुरोंका वध करनेमें समर्थ हों ऐसा कोई उपाय आप हमें बतलाइये'' ॥ ४० ॥

श्रीपराशरजी बोले—उनके ऐसा कहनेपर भगवान् विष्णुने अपने शरीरसे मायामोहको उत्पन्न किया और उसे देवताओंको देकर कहा— ॥ ४१ ॥ ''यह मायामोह उन सम्पूर्ण दैत्यगणको मोहित कर देगा, तब वे वेदमार्गका उल्लंघन करनेसे तुमलोगोंसे मारे जा सकेंगे ॥ ४२ ॥ हे देवगण! जो कोई देवता अथवा दैत्य ब्रह्माजीके कार्यमें बाधा डालते हैं वे सृष्टिकी रक्षामें तत्पर मेरे वध्य होते हैं ॥ ४३ ॥ अत: हे देवगण! अब तुम जाओ, डरो मत। यह मायामोह आगेसे जाकर तुम्हारा उपकार करेगा'' ॥ ४४ ॥

श्रीपराशरजी बोले—भगवान्‌की ऐसी आज्ञा होनेपर देवगण उन्हें प्रणाम कर जहाँसे आये थे वहाँ चले गये, तथा उनके साथ मायामोह भी जहाँ असुरगण थे वहाँ गया ॥ ४५ ॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके तीसरे अंशमें सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १७ ॥

अठारहवाँ अध्याय

मायामोह और असुरोंका संवाद तथा राजा शतधनुकी कथा

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! तदनन्तर मायामोहने [देवताओंके साथ] जाकर देखा कि असुरगण नर्मदाके तटपर तपस्यामें लगे हुए हैं ॥ १ ॥ तब उस मयूरपिच्छधारी दिगम्बर और मुण्डितकेश मायामोहने असुरोंसे अति मधुर वाणीमें इस प्रकार कहा ॥ २ ॥

मायामोह बोला—हे दैत्यपतिगण! कहिये, आपलोग किस उद्देश्यसे तपस्या कर रहे हैं, आपको किसी लौकिक फलकी इच्छा है या पारलौकिककी? ॥ ३ ॥

असुरगण बोले—हे महामते! हमलोगोंने पारलौकिक फलकी कामनासे तपस्या आरम्भ की है। इस विषयमें तुमको हमसे क्या कहना है? ॥ ४ ॥

मायामोह बोला—यदि आपलोगोंको मुक्तिकी इच्छा है तो जैसा मैं कहता हूँ वैसा करो। आपलोग मुक्तिके खुले द्वाररूप इस धर्मका आदर कीजिये ॥ ५ ॥ यह धर्म मुक्तिमें परमोपयोगी है। इससे श्रेष्ठ अन्य कोई धर्म नहीं है। इसका अनुष्ठान करनेसे आपलोग स्वर्ग अथवा मुक्ति जिसकी कामना करेंगे प्राप्त कर लेंगे। आप सब लोग महाबलवान् हैं, अत: इस धर्मका आदर कीजिये ॥ ६-७ ॥

श्रीपराशरजी बोले—इस प्रकार नाना प्रकारकी युक्तियोंसे अतिरंजित वाक्योंद्वारा मायामोहने दैत्यगणको वैदिक मार्गसे भ्रष्ट कर दिया ॥ ८ ॥ 'यह धर्मयुक्त है और यह धर्मविरुद्ध है, यह सत् है और यह असत् है, यह मुक्तिकारक है और इससे मुक्ति नहीं होती, यह आत्यन्तिक परमार्थ है और यह परमार्थ नहीं है, यह कर्तव्य

है और यह अकर्तव्य है, यह ऐसा नहीं है और यह स्पष्ट ऐसा ही है, यह दिगम्बरोंका धर्म है और यह साम्बरोंका धर्म है'—हे द्विज! ऐसे अनेक प्रकारके अनन्त वादोंको दिखलाकर मायामोहने उन दैत्योंको स्वधर्मसे च्युत कर दिया॥ ९—१२॥ मायामोहने दैत्योंसे कहा था कि आपलोग इस महाधर्मको 'अर्हत' अर्थात् इसका आदर कीजिये। अत: उस धर्मका अवलम्बन करनेसे वे 'आर्हत' कहलाये॥ १३॥

मायामोहने असुरगणको त्रयीधर्मसे विमुख कर दिया और वे मोहग्रस्त हो गये; तथा पीछे उन्होंने अन्य दैत्योंको भी इसी धर्ममें प्रवृत्त किया॥ १४॥ उन्होंने दूसरे दैत्योंको, दूसरोंने तीसरोंको, तीसरोंने चौथोंको तथा उन्होंने औरोंको इसी धर्ममें प्रवृत्त किया। इस प्रकार थोड़े ही दिनोंमें दैत्यगणने वेदत्रयीका प्राय: त्याग कर दिया॥ १५॥

तदनन्तर जितेन्द्रिय मायामोहने रक्तवस्त्र धारणकर अन्यान्य असुरोंके पास जा उनसे मृदु, अल्प और मधुर शब्दोंमें कहा—॥ १६॥ ''हे असुरगण! यदि तुमलोगोंको स्वर्ग अथवा मोक्षकी इच्छा है तो पशुहिंसा आदि दुष्टकर्मोंको त्यागकर बोध प्राप्त करो॥ १७॥

यह सम्पूर्ण जगत् विज्ञानमय है—ऐसा जानो। मेरे वाक्योंपर पूर्णतया ध्यान दो। इस विषयमें बुधजनोंका ऐसा ही मत है कि यह संसार अनाधार है, भ्रमजन्य पदार्थोंकी प्रतीतिपर ही स्थिर है तथा रागादि दोषोंसे दूषित है। इस संसारसंकटमें जीव अत्यन्त भटकता रहा है''॥ १८-१९॥ इस प्रकार 'बुध्यत (जानो), बुध्यध्वं (समझो), बुध्यत (जानो)' आदि शब्दोंसे बुद्धधर्मका निर्देश कर मायामोहने दैत्योंसे उनका निजधर्म छुड़ा दिया॥ २०॥ मायामोहने ऐसे नाना प्रकारके युक्तियुक्त वाक्य कहे जिससे उन दैत्यगणने त्रयीधर्मको त्याग दिया॥ २१॥ उन दैत्यगणने अन्य दैत्योंसे तथा उन्होंने अन्यान्यसे ऐसे ही वाक्य कहे। हे मैत्रेय! इस प्रकार उन्होंने श्रुतिस्मृतिविहित अपने परम धर्मको त्याग दिया॥ २२॥ हे द्विज! मोहकारी मायामोहने और भी अनेकानेक दैत्योंको भिन्न-भिन्न प्रकारके विविध पाखण्डोंसे मोहित कर दिया॥ २३॥ इस प्रकार थोड़े ही समयमें मायामोहके द्वारा मोहित होकर असुरगणने वैदिक धर्मकी बातचीत करना भी छोड़ दिया॥ २४॥

हे द्विज! उनमेंसे कोई वेदोंकी, कोई देवताओंकी, कोई याज्ञिक कर्म-कलापोंकी तथा कोई ब्राह्मणोंकी निन्दा करने लगे॥ २५॥ [वे कहने लगे—] ''हिंसासे भी धर्म होता है—यह बात किसी प्रकार युक्तिसंगत नहीं है। अग्निमें हवि जलानेसे फल होगा—यह भी बच्चोंकी-सी बात है॥ २६॥ अनेकों यज्ञोंके द्वारा देवत्व लाभ करके यदि इन्द्रको शमी आदि काष्ठका ही भोजन करना पड़ता है तो इससे तो पत्ते खानेवाला पशु ही अच्छा है॥ २७॥ यदि यज्ञमें बलि किये गये पशुको स्वर्गकी प्राप्ति होती है तो यजमान अपने पिताको ही क्यों नहीं मार डालता?॥ २८॥ यदि किसी अन्य पुरुषके भोजन करनेसे भी किसी पुरुषकी तृप्ति हो सकती है तो विदेशकी यात्राके समय खाद्यपदार्थ ले जानेका परिश्रम करनेकी क्या आवश्यकता है; पुत्रगण घरपर ही श्राद्ध कर दिया करें॥ २९॥ अत: यह समझकर कि 'यह (श्राद्धादि कर्मकाण्ड) लोगोंकी अन्ध-श्रद्धा ही है' इसके प्रति उपेक्षा करनी चाहिये और अपने श्रेय:साधनके लिये जो कुछ मैंने कहा है उसमें रुचि करनी चाहिये॥ ३०॥ हे असुरगण! श्रुति आदि आप्तवाक्य कुछ आकाशसे नहीं गिरा

करते। हम, तुम और अन्य सबको भी युक्तियुक्त वाक्योंको ग्रहण कर लेना चाहिये'॥ ३१ ॥

श्रीपराशरजी बोले—इस प्रकार अनेक युक्तियोंसे मायामोहने दैत्योंको विचलित कर दिया जिससे उनमेंसे किसीकी भी वेदत्रयीमें रुचि नहीं रही॥ ३२ ॥ इस प्रकार दैत्योंके विपरीत मार्गमें प्रवृत्त हो जानेपर देवगण खूब तैयारी करके उनके पास युद्धके लिये उपस्थित हुए॥ ३३ ॥

हे द्विज! तब देवता और असुरोंमें पुन: संग्राम छिड़ा। उसमें सन्मार्गविरोधी दैत्यगण देवताओंद्वारा मारे गये॥ ३४॥ हे द्विज! पहले दैत्योंके पास जो स्वधर्मरूप कवच था उसीसे उनकी रक्षा हुई थी। अबकी बार उसके नष्ट हो जानेसे वे भी नष्ट हो गये॥ ३५ ॥ हे मैत्रेय! उस समयसे जो लोग मायामोहद्वारा प्रवर्तित मार्गका अवलम्बन करनेवाले हुए; वे 'नग्न' कहलाये क्योंकि उन्होंने वेदत्रयीरूप वस्त्रको त्याग दिया था॥ ३६ ॥

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी—ये चार ही आश्रमी हैं। इनके अतिरिक्त पाँचवाँ आश्रमी और कोई नहीं है॥ ३७ ॥ हे मैत्रेय! जो पुरुष गृहस्थाश्रमको छोड़नेके अनन्तर वानप्रस्थ या संन्यासी नहीं होता वह पापी भी नग्न ही है॥ ३८ ॥

हे विप्र! सामर्थ्य रहते हुए भी जो विहित कर्म नहीं करता वह उसी दिन पतित हो जाता है और उस एक दिन-रातमें ही उसके सम्पूर्ण नित्यकर्मोंका क्षय हो जाता है॥ ३९ ॥ हे मैत्रेय! आपत्तिकालको छोड़कर और किसी समय एक पक्षतक नित्यकर्मका त्याग करनेवाला पुरुष महान् प्रायश्चित्तसे ही शुद्ध हो सकता है॥ ४० ॥ जो पुरुष एक वर्षतक नित्य-क्रिया नहीं करता उसपर दृष्टि पड़ जानेसे साधु पुरुषको सदा सूर्यका दर्शन करना चाहिये॥ ४१ ॥ हे महामते! ऐसे पुरुषका स्पर्श होनेपर वस्त्रसहित स्नान करनेसे शुद्धि हो सकती है और उस पापात्माकी शुद्धि तो किसी भी प्रकार नहीं हो सकती॥ ४२ ॥

जिस मनुष्यके घरसे देवगण, ऋषिगण, पितृगण और भूतगण बिना पूजित हुए नि:श्वास छोड़ते अन्यत्र चले जाते हैं, लोकमें उससे बढ़कर और कोई पापी नहीं है॥ ४३ ॥ हे द्विज! ऐसे पुरुषके साथ एक वर्षतक सम्भाषण, कुशलप्रश्न और उठने-बैठनेसे मनुष्य उसीके समान पापात्मा हो जाता है॥ ४४॥ जिसका शरीर अथवा गृह देवता आदिके नि:श्वाससे निहत है उसके साथ अपने गृह, आसन और वस्त्र आदिको न मिलावे॥ ४५ ॥ जो पुरुष उसके घरमें भोजन करता है, उसका आसन ग्रहण करता है अथवा उसके साथ एक ही शय्यापर शयन करता है वह शीघ्र ही उसीके समान हो जाता है॥ ४६ ॥ जो मनुष्य देवता, पितर, भूतगण और अतिथियोंका पूजन किये बिना स्वयं भोजन करता है वह पापमय भोजन करता है; उसकी शुभगति नहीं हो सकती॥ ४७ ॥

जो ब्राह्मणादि वर्ण स्वधर्मको छोड़कर परधर्मोंमें प्रवृत्त होते हैं अथवा हीनवृत्तिका अवलम्बन करते हैं वे 'नग्न' कहलाते हैं॥ ४८ ॥ हे मैत्रेय! जिस स्थानमें चारों वर्णोंका अत्यन्त मिश्रण हो उसमें रहनेसे पुरुषकी साधुवृत्तियोंका क्षय हो जाता है॥ ४९ ॥ जो पुरुष ऋषि, देव, पितृ, भूत और अतिथिगणका पूजन किये बिना भोजन करता है उससे सम्भाषण करनेसे भी लोग नरकमें पड़ते हैं॥ ५० ॥ अत: वेदत्रयीके त्यागसे दूषित इन नग्नोंके साथ प्राज्ञपुरुष सर्वदा सम्भाषण और स्पर्श आदिका भी त्याग कर दे॥ ५१ ॥ यदि इनकी दृष्टि पड़ जाय तो श्रद्धावान् पुरुषोंका

यत्नपूर्वक किया हुआ श्राद्ध देवता अथवा पितृ-पितामहगणकी तृप्ति नहीं करता॥ ५२॥

सुना जाता है, पूर्वकालमें पृथिवीतलपर शतधनु नामसे विख्यात एक राजा था। उसकी पत्नी शैव्या अत्यन्त धर्मपरायणा थी॥ ५३॥ वह महाभागा पतिव्रता, सत्य, शौच और दयासे युक्त तथा विनय और नीति आदि सम्पूर्ण सुलक्षणोंसे सम्पन्न थी॥ ५४॥ उस महारानीके साथ राजा शतधनुने परम समाधिद्वारा सर्वव्यापक, देवदेव श्रीजनार्दनकी आराधना की॥ ५५॥ वे प्रतिदिन तन्मय होकर अनन्यभावसे होम, जप, दान, उपवास और पूजन आदिद्वारा भगवान्‌की भक्तिपूर्वक आराधना करने लगे॥ ५६॥ हे द्विज! एक दिन कार्तिकी पूर्णिमाको उपवास कर उन दोनों पति-पत्नियोंने श्रीगंगाजीमें एक साथ ही स्नान करनेके अनन्तर बाहर आनेपर एक पाखण्डीको सामने आता देखा॥ ५७॥ यह ब्राह्मण उस महात्मा राजाके धनुर्वेदाचार्यका मित्र था; अतः आचार्यके गौरववश राजाने भी उससे मित्रवत् व्यवहार किया॥ ५८॥ किन्तु उसकी पतिव्रता पत्नीने उसका कुछ भी आदर नहीं किया; वह मौन रही और यह सोचकर कि मैं उपोषिता (उपवासयुक्त) हूँ, उसे देखकर सूर्यका दर्शन किया॥ ५९॥ हे द्विजोत्तम! फिर उन स्त्री-पुरुषोंने यथारीति आकर भगवान् विष्णुके पूजा आदिक सम्पूर्ण कर्म विधिपूर्वक किये॥ ६०॥

कालान्तरमें वह शत्रुजित् राजा मर गया। तब देवी शैव्याने भी चितारूढ़ महाराजका अनुगमन किया॥ ६१॥

राजा शतधनुने उपवास-अवस्थामें पाखण्डीसे वार्तालाप किया था। अतः उस पापके कारण उसने कुत्तेका जन्म लिया॥ ६२॥ तथा वह शुभलक्षणा काशीनरेशकी कन्या हुई, जो सब प्रकारके विज्ञानसे युक्त, सर्वलक्षणसम्पन्ना और जातिस्मरा (पूर्वजन्मका वृत्तान्त जाननेवाली) थी॥ ६३॥ राजाने उसे किसी वरको देनेकी इच्छा की, किन्तु उस सुन्दरीके ही रोक देनेपर वह उसके विवाहादिसे उपरत हो गये॥ ६४॥

तब उसने दिव्य दृष्टिसे अपने पतिको श्वान हुआ जान विदिशा नामक नगरमें जाकर उसे वहाँ कुत्तेकी अवस्थामें देखा॥ ६५॥ अपने महाभाग पतिको श्वानरूपमें देखकर उस सुन्दरीने उसे सत्कारपूर्वक अति उत्तम भोजन कराया॥ ६६॥ उसके दिये हुए उस अति मधुर और इच्छित अन्नको खाकर वह अपनी जातिके अनुकूल नाना प्रकारकी चाटुता प्रदर्शित करने लगा॥ ६७॥ उसके चाटुता करनेसे अत्यन्त संकुचित हो उस बालिकाने कुत्सित योनिमें उत्पन्न हुए उस अपने प्रियतमको प्रणाम कर उससे इस प्रकार कहा—॥ ६८॥ ''महाराज! आप अपनी उस उदारताका स्मरण कीजिये जिसके कारण आज आप श्वान-योनिको प्राप्त होकर मेरे चाटुकार हुए हैं॥ ६९॥ हे प्रभो! क्या आपको यह स्मरण नहीं है कि तीर्थस्नानके अनन्तर पाखण्डीसे वार्तालाप करनेके कारण ही आपको यह कुत्सित योनि मिली है?''॥ ७०॥

श्रीपराशरजी बोले—काशिराजसुताद्वारा इस प्रकार स्मरण कराये जानेपर उसने बहुत देरतक अपने पूर्वजन्मका चिन्तन किया। तब उसे अति दुर्लभ निर्वेद प्राप्त हुआ॥ ७१॥ उसने अति उदास चित्तसे नगरके बाहर आ प्राण त्याग दिये और फिर श्रृगाल-योनिमें जन्म लिया॥ ७२॥ तब काशिराजकन्या दिव्य दृष्टिसे उसे दूसरे जन्ममें श्रृगाल हुआ जान उसे देखनेके लिये कोलाहल-पर्वतपर गयी॥ ७३॥ वहाँ भी अपने पतिको श्रृगाल-योनिमें उत्पन्न हुआ देख वह सुन्दरी

राजकन्या उससे बोली— ॥ ७४ ॥ "हे राजेन्द्र! श्वान-योनिमें जन्म लेनेपर मैंने आपसे जो पाखण्डसे वार्तालापविषयक पूर्वजन्मका वृत्तान्त कहा था क्या वह आपको स्मरण है?" ॥ ७५ ॥ तब सत्यनिष्ठोंमें श्रेष्ठ राजा शतधनुने उसके इस प्रकार कहनेपर सारा सत्य वृत्तान्त जानकर निराहार रह वनमें अपना शरीर छोड़ दिया ॥ ७६ ॥

फिर वह एक भेड़िया हुआ; उस समय भी अनिन्दिता राजकन्याने उस निर्जन वनमें जाकर अपने पतिको उसके पूर्वजन्मका वृत्तान्त स्मरण कराया ॥ ७७ ॥ [उसने कहा—] "हे महाभाग! तुम भेड़िया नहीं हो, तुम राजा शतधनु हो। तुम [अपने पूर्वजन्मोंमें] क्रमशः कुक्कुर और शृगाल होकर अब भेड़िया हुए हो" ॥ ७८ ॥ इस प्रकार उसके स्मरण करानेपर राजाने जब भेड़ियेके शरीरको छोड़ा तो गृध्र-योनिमें जन्म लिया। उस समय भी उसकी निष्पाप भार्याने उसे फिर बोध कराया ॥ ७९ ॥ 'हे नरेन्द्र! तुम अपने स्वरूपका स्मरण करो; इन गृध्र-चेष्टाओंको छोड़ो। पाखण्डीके साथ वार्तालाप करनेके दोषसे ही तुम गृध्र हुए हो' ॥ ८० ॥

फिर दूसरे जन्ममें काक-योनिको प्राप्त होनेपर भी अपने पतिको योगबलसे पाकर उस सुन्दरीने कहा— ॥ ८१ ॥ "हे प्रभो! जिनके वशीभूत होकर सम्पूर्ण सामन्तगण नाना प्रकारकी वस्तुएँ भेंट करते थे वही आप आज काक-योनिको प्राप्त होकर बलिभोजी हुए हैं" ॥ ८२ ॥ इसी प्रकार काक-योनिमें भी पूर्वजन्मका स्मरण कराये जानेपर राजाने अपने प्राण छोड़ दिये और फिर मयूर-योनिमें जन्म लिया ॥ ८३ ॥

मयूरावस्थामें भी काशिराजकी कन्या उसे क्षण-क्षणमें अति सुन्दर मयूरोचित आहार देती हुई उसकी टहल करने लगी ॥ ८४ ॥ उस समय राजा जनकने अश्वमेध नामक महायज्ञका अनुष्ठान किया; उस यज्ञमें अवभृथ-स्नानके समय उस मयूरको स्नान कराया ॥ ८५ ॥ तब उस सुन्दरीने स्वयं भी स्नान कर राजाको यह स्मरण कराया कि किस प्रकार उसने श्वान और शृगाल आदि योनियाँ ग्रहण की थीं ॥ ८६ ॥ अपनी जन्म-परम्पराका स्मरण होनेपर उसने अपना शरीर त्याग दिया और फिर महात्मा जनकजीके यहाँ ही पुत्ररूपसे जन्म लिया ॥ ८७ ॥

तब उस सुन्दरीने अपने पिताको विवाहके लिये प्रेरित किया। उसकी प्रेरणासे राजाने उसके स्वयंवरका आयोजन किया ॥ ८८ ॥ स्वयंवर होनेपर उस राजकन्याने स्वयंवरमें आये हुए अपने उस पतिको फिर पतिभावसे वरण कर लिया ॥ ८९ ॥ उस राजकुमारने काशिराजसुताके साथ नाना प्रकारके भोग भोगे और फिर पिताके परलोकवासी होनेपर विदेहनगरका राज्य किया ॥ ९० ॥ उसने बहुत-से यज्ञ किये, याचकोंको नाना प्रकारसे दान दिये, बहुत-से पुत्र उत्पन्न किये और शत्रुओंके साथ अनेकों युद्ध किये ॥ ९१ ॥ इस प्रकार उस राजाने पृथिवीका न्यायानुकूल पालन करते हुए राज्य-भोग किया और अन्तमें अपने प्रिय प्राणोंको धर्मयुद्धमें छोड़ा ॥ ९२ ॥ तब उस सुलोचनाने पहलेके समान फिर अपने चितारूढ पतिका विधिपूर्वक प्रसन्न-मनसे अनुगमन किया ॥ ९३ ॥ इससे वह राजा उस राजकन्याके सहित इन्द्रलोकसे भी उत्कृष्ट अक्षय लोकोंको प्राप्त हुआ ॥ ९४ ॥

हे द्विजश्रेष्ठ! इस प्रकार शुद्ध हो जानेपर उसने अतुलनीय अक्षय स्वर्ग, अति दुर्लभ दाम्पत्य और अपने पूर्वार्जित पुण्यका फल प्राप्त कर लिया ॥ ९५ ॥

हे द्विज ! इस प्रकार मैंने तुमसे पाखण्डीसे

सम्भाषण करनेका दोष और अश्वमेध-यज्ञमें स्नान करनेका माहात्म्य वर्णन कर दिया॥ ९६॥ इसलिये पाखण्डी और पापाचारियोंसे कभी वार्तालाप और स्पर्श न करे; विशेषतः नित्य-नैमित्तिक कर्मोंके समय और जो यज्ञादि क्रियाओंके लिये दीक्षित हो उसे तो उनका संसर्ग त्यागना अत्यन्त आवश्यक है॥ ९७॥ जिसके घरमें एक मासतक नित्यकर्मोंका अनुष्ठान न हुआ हो उसको देख लेनेपर बुद्धिमान् मनुष्य सूर्यका दर्शन करे॥ ९८॥ फिर जिन्होंने वेदत्रयीका सर्वथा त्याग कर दिया है तथा जो पाखण्डियोंका अन्न खाते और वैदिक मतका विरोध करते हैं उन पापात्माओंके दर्शनादि करनेपर तो कहना ही क्या है?॥ ९९॥ इन दुराचारी पाखण्डियोंके साथ वार्तालाप करने, सम्पर्क रखने और उठने-बैठनेमें महान् पाप होता है; इसलिये इन सब बातोंका त्याग करे॥ १००॥ पाखण्डी, विकर्मी, विडाल-व्रतवाले,* दुष्ट, स्वार्थी और बगुला-भक्त लोगोंका वाणीसे भी आदर न करे॥ १०१॥ इन पाखण्डी, दुराचारी और अति पापियोंका संसर्ग दूरहीसे त्यागने योग्य है। इसलिये इनका सर्वदा त्याग करे॥ १०२॥

इस प्रकार मैंने तुमसे नग्नोंकी व्याख्या की, जिनके दर्शनमात्रसे श्राद्ध नष्ट हो जाता है और जिनके साथ सम्भाषण करनेसे मनुष्यका एक दिनका पुण्य क्षीण हो जाता है॥ १०३॥ ये पाखण्डी बड़े पापी होते हैं, बुद्धिमान् पुरुष इनसे कभी सम्भाषण न करे। इनके साथ सम्भाषण करनेसे उस दिनका पुण्य नष्ट हो जाता है॥ १०४॥ जो बिना कारण ही जटा धारण करते अथवा मूँड़ मुड़ाते हैं, देवता, अतिथि आदिको भोजन कराये बिना स्वयं ही भोजन कर लेते हैं, सब प्रकारसे शौचहीन हैं तथा जल-दान और पितृ-पिण्ड आदिसे भी बहिष्कृत हैं, उन लोगोंसे वार्तालाप करनेसे भी लोग नरकमें जाते हैं॥ १०५॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके तीसरे अंशमें अठारहवाँ अध्याय समाप्त॥ १८॥

इस प्रकार श्रीपराशरमुनिद्वारा विरचित श्रीविष्णुपरत्वनिर्णायक
श्रीविष्णुमहापुराणका तीसरा अंश समाप्त।

---

* 'प्रच्छन्नानि च पापानि वैडालं नाम तद्व्रतम्'
अर्थात् छिपे-छिपे पाप करना वैडाल नामक व्रत है। जो वैसा करते हैं 'वे विडाल-व्रतवाले' कहलाते हैं।

ॐ

श्रीमन्नारायणाय नमः

श्रीविष्णुपुराण

चौथा अंश

पहला अध्याय

वैवस्वतमनुके वंशका विवरण

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे भगवन्! सत्कर्ममें प्रवृत्त रहनेवाले पुरुषोंको जो करने चाहिये उन सम्पूर्ण नित्य-नैमित्तिक कर्मोंका आपने वर्णन कर दिया॥ १॥ हे गुरो! आपने वर्ण-धर्म और आश्रम-धर्मोंकी व्याख्या भी कर दी। अब मुझे राजवंशोंका विवरण सुननेकी इच्छा है, अतः उनका वर्णन कीजिये॥ २॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! अब तुम अनेकों यज्ञकर्ता, शूरवीर और धैर्यशाली भूपालोंसे सुशोभित इस मनुवंशका वर्णन सुनो, जिसके आदिपुरुष श्रीब्रह्माजी हैं॥ ३॥ हे मैत्रेय! अपने वंशके सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करनेके लिये इस वंश-परम्पराकी कथाका क्रमशः श्रवण करो॥ ४॥

उसका विवरण इस प्रकार है—सकल संसारके आदिकारण भगवान् विष्णु हैं। वे अनादि तथा ऋक्-साम-यजुः स्वरूप हैं। उन ब्रह्मस्वरूप भगवान् विष्णुके मूर्त्तरूप ब्रह्माण्डमय हिरण्यगर्भ भगवान् ब्रह्माजी सबसे पहले प्रकट हुए॥ ५॥ ब्रह्माजीके दायें अँगूठेसे दक्षप्रजापति हुए, दक्षसे अदिति हुई तथा अदितिसे विवस्वान् और विवस्वान्से मनुका जन्म हुआ॥ ६॥ मनुके इक्ष्वाकु, नृग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, प्रांशु, नाभाग, दिष्ट, करूष और पृषध्र नामक दस पुत्र हुए॥ ७॥

मनुने पुत्रकी इच्छासे मित्रावरुण नामक दो देवताओंके यज्ञका अनुष्ठान किया॥ ८॥ किन्तु होताके विपरीत संकल्पसे यज्ञमें विपर्यय हो जानेसे उनके 'इला' नामकी कन्या हुई॥ ९॥ हे मैत्रेय! मित्रावरुणकी कृपासे वह इला ही मनुका 'सुद्युम्न' नामक पुत्र हुई॥ १०॥ फिर महादेवजीके कोप (कोपप्रयुक्त शाप)-से वह स्त्री होकर चन्द्रमाके पुत्र बुधके आश्रमके निकट घूमने लगी॥ ११॥

बुधने अनुरक्त होकर उस स्त्रीसे पुरूरवा नामक पुत्र उत्पन्न किया॥ १२॥ पुरूरवाके जन्मके अनन्तर भी परमर्षिगणने सुद्युम्नको पुरुषत्वलाभकी आकांक्षासे क्रतुमय ऋग्यजुःसामाथर्वमय, सर्ववेदमय, मनोमय, ज्ञानमय, अन्नमय और परमार्थतः अकिंचिन्मय भगवान् यज्ञपुरुषका यथावत् यजन किया। तब उनकी कृपासे इला फिर भी सुद्युम्न हो गयी॥ १३॥ उस (सुद्युम्न)- के भी उत्कल, गय और विनत नामक तीन पुत्र हुए॥ १४॥ पहले स्त्री होनेके कारण सुद्युम्नको राज्याधिकार प्राप्त नहीं हुआ॥ १५॥ वसिष्ठजीके कहनेसे उनके पिताने उन्हें प्रतिष्ठान नामक नगर दे दिया था, वही उन्होंने पुरूरवाको दिया॥ १६॥

पुरूरवाकी सन्तान सम्पूर्ण दिशाओंमें फैले हुए क्षत्रियगण हुए। मनुका पृषध्र नामक पुत्र गुरुकी गौका वध करनेके कारण शूद्र हो गया॥ १७॥ मनुका पुत्र करूष था। करूषसे कारूष नामक महाबली और पराक्रमी क्षत्रियगण

उत्पन्न हुए॥ १८॥ दिष्टका पुत्र नाभाग वैश्य हो गया था; उससे बलन्धन नामका पुत्र हुआ॥ १९॥ बलन्धनसे महान् कीर्तिमान् वत्सप्रीति, वत्सप्रीतिसे प्रांशु और प्रांशुसे प्रजापति नामक इकलौता पुत्र हुआ॥ २०—२२॥ प्रजापतिसे खनित्र, खनित्रसे चाक्षुष तथा चाक्षुषसे अति बल-पराक्रम-सम्पन्न विंश हुआ॥ २३—२५॥ विंशसे विविंशक, विविंशकसे खनिनेत्र, खनिनेत्रसे अतिविभूति और अतिविभूतिसे अति बलवान् और शूरवीर करन्धम नामक पुत्र हुआ॥ २६—२९॥ करन्धमसे अविक्षित् हुआ और अविक्षित्के मरुत्त नामक अति बल-पराक्रमयुक्त पुत्र हुआ, जिसके विषयमें आजकल भी ये दो श्लोक गाये जाते हैं॥ ३०-३१॥

'मरुत्तका जैसा यज्ञ हुआ था वैसा इस पृथिवीपर और किसका हुआ है, जिसकी सभी याज्ञिक वस्तुएँ सुवर्णमय और अति सुन्दर थीं॥ ३२॥ उस यज्ञमें इन्द्र सोमरससे और ब्राह्मणगण दक्षिणासे परितृप्त हो गये थे, तथा उसमें मरुद्गण परोसनेवाले और देवगण सदस्य थे'॥ ३३॥

उस चक्रवर्ती मरुत्तके नरिष्यन्त नामक पुत्र हुआ तथा नरिष्यन्तके दम और दमके राजवर्द्धन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ॥ ३४—३६॥ राजवर्द्धनसे सुवृद्धि, सुवृद्धिसे केवल और केवलसे सुधृतिका जन्म हुआ॥ ३७—३९॥ सुधृतिसे नर, नरसे चन्द्र और चन्द्रसे केवल हुआ॥ ४०—४२॥ केवलसे बन्धुमान्, बन्धुमान्से वेगवान्, वेगवान्से बुध, बुधसे तृणबिन्दु तथा तृणबिन्दुसे पहले तो इलविला नामकी एक कन्या हुई थी, किन्तु पीछे अलम्बुषा नामकी एक सुन्दरी अप्सरा उसपर अनुरक्त हो गयी। उससे तृणबिन्दुके विशाल नामक पुत्र हुआ, जिसने विशाला नामकी पुरी बसायी॥ ४३—४९॥

विशालका पुत्र हेमचन्द्र हुआ, हेमचन्द्रका चन्द्र, चन्द्रका धूम्राक्ष, धूम्राक्षका सृंजय, सृंजयका सहदेव और सहदेवका पुत्र कृशाश्व हुआ॥ ५०—५५॥ कृशाश्वके सोमदत्त नामक पुत्र हुआ, जिसने सौ अश्वमेध-यज्ञ किये थे। उससे जनमेजय हुआ और जनमेजयसे सुमतिका जन्म हुआ। ये सब विशालवंशीय राजा हुए। इनके विषयमें यह श्लोक प्रसिद्ध है॥ ५६—६०॥ 'तृणबिन्दुके प्रसादसे विशालवंशीय समस्त राजालोग दीर्घायु, महात्मा, वीर्यवान् और अति धर्मपरायण हुए'॥ ६१॥

मनुपुत्र शर्यातिके सुकन्या नामवाली एक कन्या हुई, जिसका विवाह च्यवन-ऋषिके साथ हुआ॥ ६२॥ शर्यातिके आनर्त्त नामक एक परम धार्मिक पुत्र हुआ। आनर्त्तके रेवत नामका पुत्र हुआ जिसने कुशस्थली नामकी पुरीमें रहकर आनर्त्तदेशका राज्यभोग किया॥ ६३-६४॥

रेवतका भी रैवत ककुद्मी नामक एक अति धर्मात्मा पुत्र था, जो अपने सौ भाइयोंमें सबसे बड़ा था॥ ६५॥ उसके रेवती नामकी एक कन्या हुई॥ ६६॥ महाराज रैवत उसे अपने साथ लेकर ब्रह्माजीसे यह पूछनेके लिये कि 'यह कन्या किस वरके योग्य है' ब्रह्मलोकको गये॥ ६७॥ उस समय ब्रह्माजीके समीप हाहा और हूहू नामक दो गन्धर्व अतितान नामक दिव्य गान गा रहे थे॥ ६८॥ वहाँ [गान-सम्बन्धी चित्रा, दक्षिणा और धात्री नामक] त्रिमार्गके परिवर्तनके साथ उनका विलक्षण गान सुनते हुए अनेकों युगोंके परिवर्तन-कालतक ठहरनेपर भी रैवतजीको केवल एक मुहूर्त ही बीता-सा मालूम हुआ॥ ६९॥

गान समाप्त हो जानेपर रैवतने भगवान् कमलयोनिको प्रणाम कर उनसे अपनी कन्याके योग्य वर पूछा॥ ७०॥ भगवान् ब्रह्माने कहा—

''तुम्हें जो वर अभिमत हों उन्हें बताओ''॥ ७१॥ तब उन्होंने भगवान् ब्रह्माजीको पुनः प्रणाम कर अपने समस्त अभिमत वरोंका वर्णन किया और पूछा कि 'इनमेंसे आपको कौन वर पसन्द है जिसे मैं यह कन्या दूँ?'॥ ७२॥

इसपर भगवान् कमलयोनि कुछ सिर झुकाकर मुसकाते हुए बोले—॥ ७३॥ ''तुमको जो-जो वर अभिमत हैं उनमेंसे तो अब पृथिवीपर किसीके पुत्र-पौत्रादिकी सन्तान भी नहीं है॥ ७४॥ क्योंकि यहाँ गन्धर्वोंका गान सुनते हुए तुम्हें कई चतुर्युग बीत चुके हैं॥ ७५॥ इस समय पृथिवीतलपर अट्ठाईसवें मनुका चतुर्युग प्रायः समाप्त हो चुका है॥ ७६॥ तथा कलियुगका प्रारम्भ होनेवाला है॥ ७७॥ अब तुम [अपने समान] अकेले ही रह गये हो, अतः यह कन्या-रत्न किसी और योग्य वरको दो। इतने समयमें तुम्हारे पुत्र, मित्र, कलत्र, मन्त्रिवर्ग, भृत्यगण, बन्धुगण, सेना और कोशादिका भी सर्वथा अभाव हो चुका है''॥ ७८-७९॥ तब तो राजा रैवतने अत्यन्त भयभीत हो भगवान् ब्रह्माजीको पुनः प्रणाम कर पूछा—॥ ८०॥ 'भगवन्! ऐसी बात है, तो अब मैं इसे किसको दूँ?'॥ ८१॥ तब सर्वलोकगुरु भगवान् कमलयोनि कुछ सिर झुकाये हाथ जोड़कर बोले॥ ८२॥

श्रीब्रह्माजीने कहा—जिस अजन्मा, सर्वमय, विधाता परमेश्वरका आदि, मध्य, अन्त, स्वरूप, स्वभाव और सार हम नहीं जान पाते॥ ८३॥ कलामुहूर्तादिमय काल भी जिसकी विभूतिके परिणामका कारण नहीं हो सकता, जिसका जन्म और मरण नहीं होता, जो सनातन और सर्वदा एकरूप है तथा जो नाम और रूपसे रहित है॥ ८४॥ जिस अच्युतकी कृपासे मैं प्रजाका उत्पत्तिकर्त्ता हूँ, जिसके क्रोधसे उत्पन्न हुआ रुद्र सृष्टिका अन्तकर्त्ता है तथा जिस परमात्मासे मध्यमें जगत्स्थितिकारी विष्णुरूप पुरुषका प्रादुर्भाव हुआ है॥ ८५॥ जो अजन्मा मेरा रूप धारणकर संसारकी रचना करता है, स्थितिके समय जो पुरुषरूप है तथा जो रुद्ररूपसे सम्पूर्ण विश्वका ग्रास कर जाता है एवं अनन्तरूपसे सम्पूर्ण जगत्‌को धारण करता है॥ ८६॥ जो अव्ययात्मा पाकके लिये अग्निरूप हो जाता है, पृथिवीरूपसे सम्पूर्ण लोकोंको धारण करता है, इन्द्रादिरूपसे विश्वका पालन करता है और सूर्य तथा चन्द्ररूप होकर सम्पूर्ण अन्धकारका नाश करता है॥ ८७॥ जो श्वास-प्रश्वासरूपसे जीवोंमें चेष्टा करता है, जल और अन्नरूपसे लोककी तृप्ति करता है तथा विश्वकी स्थितिमें संलग्न रहकर जो आकाशरूपसे सबको अवकाश देता है॥ ८८॥ जो सृष्टिकर्ता होकर भी विश्वरूपसे आप ही अपनी रचना करता है, जगत्‌का पालन करनेवाला होकर भी आप ही पालित होता है तथा संहारकारी होकर भी स्वयं ही संहृत होता है और जो इन तीनोंसे पृथक् इनका अविनाशी आत्मा है॥ ८९॥ जिसमें यह जगत् स्थित है, जो आदिपुरुष जगत्-स्वरूप है और इस जगत्‌के ही आश्रित तथा स्वयम्भू है, हे नृपते! सम्पूर्ण भूतोंका उद्भवस्थान वह विष्णु धरातलमें अपने अंशसे अवतीर्ण हुआ है॥ ९०॥

हे राजन्! पूर्वकालमें तुम्हारी जो अमरावतीके समान कुशस्थली नामकी पुरी थी वह अब द्वारकापुरी हो गयी है। वहीं वे बलदेव नामक भगवान् विष्णुके अंश विराजमान हैं॥ ९१॥ हे नरेन्द्र! तुम यह कन्या उन मायामानव श्रीबलदेवजीको पत्नीरूपसे दो। ये बलदेवजी संसारमें अति प्रशंसनीय हैं और तुम्हारी कन्या

भी स्त्रियोंमें रत्नस्वरूपा है, अतः इनका योग सर्वथा उपयुक्त है॥ ९२॥

श्रीपराशरजी बोले— भगवान् ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर प्रजापति रैवत पृथिवीतलपर आये तो देखा कि सभी मनुष्य छोटे-छोटे, कुरूप, अल्पतेजोमय, अल्पवीर्य तथा विवेकहीन हो गये हैं॥ ९३॥ अतुलबुद्धि महाराज रैवतने अपनी कुशस्थली नामकी पुरी और ही प्रकारकी देखी तथा स्फटिक-पर्वतके समान जिनका वक्षःस्थल है उन भगवान् हलायुधको अपनी कन्या दे दी॥ ९४॥ भगवान् बलदेवजीने उसे बहुत ऊँची देखकर अपने हलके अग्रभागसे दबाकर नीची कर ली। तब रेवती भी तत्कालीन अन्य स्त्रियोंके समान (छोटे शरीरकी) हो गयी॥ ९५॥ तदनन्तर बलरामजीने महाराज रैवतकी कन्या रेवतीसे विधिपूर्वक विवाह किया तथा राजा भी कन्यादान करनेके अनन्तर एकाग्रचित्तसे तपस्या करनेके लिये हिमालयपर चले गये॥ ९६॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके चौथे अंशमें पहला अध्याय समाप्त॥ १॥

दूसरा अध्याय

इक्ष्वाकुके वंशका वर्णन तथा सौभरिचरित्र

श्रीपराशरजी बोले— जिस समय रैवत ककुद्मी ब्रह्मलोकसे लौटकर नहीं आये थे उसी समय पुण्यजन नामक राक्षसोंने उनकी पुरी कुशस्थलीका ध्वंस कर दिया॥ १॥ उनके सौ भाई पुण्यजन राक्षसोंके भयसे दसों दिशाओंमें भाग गये॥ २॥ उन्हींके वंशमें उत्पन्न हुए क्षत्रियगण समस्त दिशाओंमें फैले॥ ३॥ धृष्टके वंशमें धार्ष्टक नामक क्षत्रिय हुए॥ ४॥

नाभागके नाभाग नामक पुत्र हुआ, नाभागका अम्बरीष और अम्बरीषका पुत्र विरूप हुआ। विरूपसे पृषदश्वका जन्म हुआ तथा उससे रथीतर हुआ॥ ५—९॥ रथीतरके सम्बन्धमें यह श्लोक प्रसिद्ध है—'रथीतरके वंशज क्षत्रिय सन्तान होते हुए भी आंगिरस कहलाये; अतः वे क्षत्रोपेत ब्राह्मण हुए'॥ १०॥

छींकनेके समय मनुकी घ्राणेन्द्रियसे इक्ष्वाकु नामक पुत्रका जन्म हुआ॥ ११॥ उनके सौ पुत्रोंमेंसे विकुक्षि, निमि और दण्ड नामक तीन पुत्र प्रधान हुए तथा उनके शकुनि आदि पचास पुत्र उत्तरापथके और शेष अड़तालीस दक्षिणापथके शासक हुए॥ १२—१४॥ इक्ष्वाकुने अष्टकाश्राद्धका आरम्भ कर अपने पुत्र विकुक्षिको आज्ञा दी कि श्राद्धके योग्य मांस लाओ॥ १५॥ उसने 'बहुत अच्छा' कह उनकी आज्ञाको शिरोधार्य किया और धनुष-बाण लेकर वनमें आ अनेकों मृगोंका वध किया, किन्तु अति थका-माँदा और अत्यन्त भूखा होनेके कारण विकुक्षिने उनमेंसे एक शशक (खरगोश) खा लिया और बचा हुआ मांस लाकर अपने पिताको निवेदन किया॥ १६॥

उस मांसका प्रोक्षण करनेके लिये प्रार्थना किये जानेपर इक्ष्वाकुके कुल-पुरोहित वसिष्ठजीने कहा—"इस अपवित्र मांसकी क्या आवश्यकता है? तुम्हारे दुरात्मा पुत्रने इसे भ्रष्ट कर दिया है, क्योंकि उसने इसमेंसे एक शशक खा लिया है"॥ १७॥ गुरुके ऐसा कहनेपर, तभीसे विकुक्षिका नाम शशाद पड़ा और पिताने उसको त्याग

दिया॥ १८॥ पिताके मरनेके अनन्तर उसने इस पृथिवीका धर्मानुसार शासन किया॥ १९॥ उस शशादके पुरंजय नामक पुत्र हुआ ॥ २०॥

पुरंजयका भी यह एक दूसरा नाम पड़ा— ॥ २१॥ पूर्वकालमें त्रेतायुगमें एक बार अति भीषण देवासुरसंग्राम हुआ॥ २२॥ उसमें महाबलवान् दैत्यगणसे पराजित हुए देवताओंने भगवान् विष्णुकी आराधना की॥ २३॥ तब आदि-अन्त-शून्य, अशेष जगत्प्रतिपालक, श्रीनारायणने देवताओंसे प्रसन्न होकर कहा— ॥ २४॥ "आपलोगोंका जो कुछ अभीष्ट है वह मैंने जान लिया है। उसके विषयमें यह बात सुनिये— ॥ २५॥ राजर्षि शशादका जो पुरंजय नामक पुत्र है उस क्षत्रियश्रेष्ठके शरीरमें मैं अंशमात्रसे स्वयं अवतीर्ण होकर उन सम्पूर्ण दैत्योंका नाश करूँगा। अतः तुमलोग पुरंजयको दैत्योंके वधके लिये तैयार करो"॥ २६॥

यह सुनकर देवताओंने विष्णुभगवान्‌को प्रणाम किया और पुरंजयके पास आकर उससे कहा— ॥ २७॥ "हे क्षत्रियश्रेष्ठ! हमलोग चाहते हैं कि अपने शत्रुओंके वधमें प्रवृत्त हमलोगोंकी आप सहायता करें। हम अभ्यागत जनोंका आप मानभंग न करें।" यह सुनकर पुरंजयने कहा— ॥ २८॥ "ये जो त्रैलोक्यनाथ शतक्रतु आपलोगोंके इन्द्र हैं यदि मैं इनके कन्धेपर चढ़कर आपके शत्रुओंसे युद्ध कर सकूँ तो आपलोगोंका सहायक हो सकता हूँ"॥ २९॥

यह सुनकर समस्त देवगण और इन्द्रने 'बहुत अच्छा'—ऐसा कहकर उनका कथन स्वीकार कर लिया॥ ३०॥ फिर वृषभ-रूपधारी इन्द्रकी पीठपर चढ़कर चराचरगुरु भगवान् अच्युतके तेजसे परिपूर्ण होकर राजा पुरंजयने रोषपूर्वक सभी दैत्योंको मार डाला॥ ३१॥ उस राजाने बैलके ककुद् (कन्धे)-पर बैठकर दैत्यसेनाका वध किया था, अतः उसका नाम ककुत्स्थ पड़ा॥ ३२॥ ककुत्स्थके अनेना नामक पुत्र हुआ॥ ३३॥ अनेनाके पृथु, पृथुके विष्टराश्व, उनके चान्द्र युवनाश्व तथा उस चान्द्र युवनाश्वके शावस्त नामक पुत्र हुआ जिसने शावस्ती पुरी बसायी थी॥ ३४—३७॥ शावस्तके बृहदश्व तथा बृहदश्वके कुवलयाश्वका जन्म हुआ, जिसने वैष्णवतेजसे पूर्णता लाभ कर अपने इक्कीस सहस्र पुत्रोंके साथ मिलकर महर्षि उदकके अपकारी धुन्धु नामक दैत्यको मारा था; अतः उनका नाम धुन्धुमार हुआ॥ ३८—४०॥ उनके सभी पुत्र धुन्धुके मुखसे निकले हुए निःश्वासाग्निसे जलकर मर गये॥ ४१॥ उनमेंसे केवल दृढाश्व, चन्द्राश्व और कपिलाश्व—ये तीन ही बचे थे॥ ४२॥

दृढाश्वसे हर्यश्व, हर्यश्वसे निकुम्भ, निकुम्भसे अमिताश्व, अमिताश्वसे कृशाश्व, कृशाश्वसे प्रसेनजित् और प्रसेनजित्‌से युवनाश्वका जन्म हुआ॥ ४३—४८॥ युवनाश्व निःसन्तान होनेके कारण खिन्न चित्तसे मुनीश्वरोंके आश्रमोंमें रहा करता था; उसके दुःखसे द्रवीभूत होकर दयालु मुनिजनोंने उसके पुत्र उत्पन्न होनेके लिये यज्ञानुष्ठान किया॥ ४९॥ आधी रातके समय उस यज्ञके समाप्त होनेपर मुनिजन मन्त्रपूत जलका कलश वेदीमें रखकर सो गये॥ ५०॥ उनके सो जानेपर अत्यन्त पिपासाकुल होकर राजाने उस स्थानमें प्रवेश किया। और सोये होनेके कारण उन ऋषियोंको उन्होंने नहीं जगाया॥ ५१-५२॥ तथा उस अपरिमित माहात्म्यशाली कलशके मन्त्रपूत जलको पी लिया॥ ५३॥ जागनेपर ऋषियोंने पूछा—'इस मन्त्रपूत जलको किसने पिया है?॥ ५४॥ इसका पान करनेपर ही युवनाश्वकी पत्नी महाबलविक्रमशील पुत्र उत्पन्न करेगी।' यह सुनकर राजाने कहा—"मैंने ही बिना जाने यह जल पी लिया है"॥ ५५॥ अतः युवनाश्वके

उदरमें गर्भ स्थापित हो गया और क्रमश: बढ़ने लगा॥ ५६॥ यथासमय बालक राजाकी दायीं कोख फाड़कर निकल आया॥ ५७॥ किन्तु इससे राजाकी मृत्यु नहीं हुई॥ ५८॥

उसके जन्म लेनेपर मुनियोंने कहा—"यह बालक क्या पान करके जीवित रहेगा?"॥ ५९॥ उसी समय देवराज इन्द्रने आकर कहा—"यह मेरे आश्रय-जीवित रहेगा'॥ ६०॥ अत: उसका नाम मान्धाता हुआ। देवेन्द्रने उसके मुखमें अपनी तर्जनी (अँगूठेके पासकी) अँगुली दे दी और वह उसे पीने लगा। उस अमृतमयी अँगुलीका आस्वादन करनेसे वह एक ही दिनमें बढ़ गया॥ ६१-६२॥ तभीसे चक्रवर्ती मान्धाता सप्तद्वीपा पृथिवीका राज्य भोगने लगा॥ ६३॥ इसके विषयमें यह श्लोक कहा जाता है॥ ६४॥

'जहाँसे सूर्य उदय होता है और जहाँ अस्त होता है वह सभी क्षेत्र युवनाश्वके पुत्र मान्धाताका है'॥ ६५॥

मान्धाताने शतबिन्दुकी पुत्री बिन्दुमतीसे विवाह किया और उससे पुरुकुत्स, अम्बरीष और मुचुकुन्द नामक तीन पुत्र उत्पन्न किये तथा उसी (बिन्दुमती)-से उनके पचास कन्याएँ हुईं॥ ६६—६८॥

उसी समय बह्वृच सौभरि नामक महर्षिने बारह वर्षतक जलमें निवास किया॥ ६९॥ उस जलमें सम्मद् नामक एक बहुत-सी सन्तानोंवाला और अति दीर्घकाय मत्स्यराज था॥ ७०॥ उसके पुत्र, पौत्र और दौहित्र आदि उसके आगे-पीछे तथा इधर-उधर पक्ष, पुच्छ और सिरके ऊपर घूमते हुए अति आनन्दित होकर रात-दिन उसीके साथ क्रीडा करते रहते थे॥ ७१॥ तथा वह भी अपनी सन्तानके सुकोमल स्पर्शसे अत्यन्त हर्षयुक्त होकर उन मुनिश्वरके देखते-देखते अपने पुत्र, पौत्र और दौहित्र आदिके साथ अहर्निश क्रीडा करता रहता था॥ ७२॥

इस प्रकार जलमें स्थित सौभरि ऋषिने एकाग्रतारूप समाधिको छोड़कर रात-दिन उस मत्स्यराजकी अपने पुत्र, पौत्र और दौहित्र आदिके साथ अति रमणीय क्रीडाओंको देखकर विचार किया—॥ ७३॥ 'अहो! यह धन्य है, जो ऐसी अनिष्ट योनिमें उत्पन्न होकर भी अपने इन पुत्र, पौत्र और दौहित्र आदिके साथ निरन्तर रमण करता हुआ हमारे हृदयमें डाह उत्पन्न करता है॥ ७४॥

हम भी इसी प्रकार अपने पुत्रादिके साथ अति ललित क्रीडाएँ करेंगे।' ऐसी अभिलाषा करते हुए वे उस जलके भीतरसे निकल आये और सन्तानार्थ गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेकी कामनासे कन्या ग्रहण करनेके लिये राजा मान्धाताके पास आये॥ ७५॥

मुनिवरका आगमन सुन राजाने उठकर अर्घ्यदानादिसे उनका भली प्रकार पूजन किया। तदनन्तर सौभरि मुनिने आसन ग्रहण करके राजासे कहा॥ ७६॥

सौभरिजी बोले—हे राजन्! मैं कन्या-परिग्रहका अभिलाषी हूँ, अत: तुम मुझे एक कन्या दो; मेरा प्रणय भंग मत करो। ककुत्स्थवंशमें कार्यवश आया हुआ कोई भी प्रार्थी पुरुष कभी खाली हाथ नहीं लौटता॥ ७७॥ हे मान्धाता! पृथिवीतलमें और भी अनेक राजालोग हैं और उनके भी कन्याएँ उत्पन्न हुई हैं; किंतु याचकोंको माँगी हुई वस्तु दान देनेके नियममें दृढप्रतिज्ञ तो यह तुम्हारा प्रशंसनीय कुल ही है॥ ७८॥ हे राजन्! तुम्हारे पचास कन्याएँ हैं, उनमेंसे तुम मुझे केवल एक ही दे दो। हे नृपश्रेष्ठ! मैं इस समय प्रार्थनाभंगकी आशंकासे उत्पन्न अतिशय दु:खसे भयभीत हो रहा हूँ॥ ७९॥

श्रीपराशरजी बोले—ऋषिके ऐसे वचन

सुनकर राजा उनके जराजीर्ण देहको देखकर शापके भयसे अस्वीकार करनेमें कातर हो उनसे डरते हुए कुछ नीचेको मुख करके मन-ही-मन चिन्ता करने लगे॥ ८०॥

सौभरिजी बोले—हे नरेन्द्र! तुम चिन्तित क्यों होते हो? मैंने इसमें कोई असह्य बात तो कही नहीं है; जो कन्या एक दिन तुम्हें अवश्य देनी ही है उससे ही यदि हम कृतार्थ हो सकें तो तुम क्या नहीं प्राप्त कर सकते हो?॥ ८१॥

श्रीपराशरजी बोले—तब भगवान् सौभरिके शापसे भयभीत हो राजा मान्धाताने नम्रतापूर्वक उनसे कहा॥ ८२॥

राजा बोले—भगवन्! हमारे कुलकी यह रीति है कि जिस सत्कुलोत्पन्न वरको कन्या पसन्द करती है वह उसीको दी जाती है। आपकी प्रार्थना तो हमारे मनोरथोंसे भी परे है। न जाने, किस प्रकार यह उत्पन्न हुई है? ऐसी अवस्थामें मैं नहीं जानता कि क्या करूँ? बस, मुझे यही चिन्ता है। महाराज मान्धाताके ऐसा कहनेपर मुनिवर सौभरिने विचार किया—॥ ८३॥ 'मुझको टाल देनेका यह एक और ही उपाय है। 'यह बूढ़ा है, प्रौढ़ा स्त्रियाँ भी इसे पसन्द नहीं कर सकतीं, फिर कन्याओंकी तो बात ही क्या है?' ऐसा सोचकर ही राजाने यह बात कही है। अच्छा, ऐसा ही सही, मैं भी ऐसा ही उपाय करूँगा।' यह सब सोचकर उन्होंने मान्धातासे कहा—॥ ८४॥ ''यदि ऐसी बात है तो कन्याओंके अन्तःपुर-रक्षक नपुंसकको वहाँ मेरा प्रवेश करानेके लिये आज्ञा दो। यदि कोई कन्या ही मेरी इच्छा करेगी तो ही मैं स्त्री-ग्रहण करूँगा नहीं तो इस ढलती अवस्थामें मुझे इस व्यर्थ उद्योगका कोई प्रयोजन नहीं है।'' ऐसा कहकर वे मौन हो गये॥ ८५॥

तब मुनिके शापकी आशंकासे मान्धाताने कन्याओंके अन्तःपुर-रक्षकको आज्ञा दे दी॥ ८६॥ उसके साथ अन्तःपुरमें प्रवेश करते हुए भगवान् सौभरिने अपना रूप सकल सिद्ध और गन्धर्वगणसे भी अतिशय मनोहर बना लिया॥ ८७॥ उन ऋषिवरको अन्तःपुरमें ले जाकर अन्तःपुर-रक्षकने उन कन्याओंसे कहा—॥ ८८॥ ''तुम्हारे पिता महाराज मान्धाताकी आज्ञा है कि ये ब्रह्मर्षि हमारे पास एक कन्याके लिये पधारे हैं और मैंने इनसे प्रतिज्ञा की है कि मेरी जो कोई कन्या श्रीमान्को वरण करेगी उसकी स्वच्छन्दतामें मैं किसी प्रकारकी बाधा नहीं डालूँगा।'' यह सुनकर उन सभी कन्याओंने यूथपति गजराजका वरण करनेवाली हथिनियोंके समान अनुराग और आनन्दपूर्वक 'अकेली मैं ही—अकेली मैं ही वरण करती हूँ' ऐसा कहते हुए उन्हें वरण कर लिया। वे परस्पर कहने लगीं—॥ ८९—९१॥ 'अरी बहिनो! व्यर्थ चेष्टा क्यों करती हो? मैं इनका वरण करती हूँ, ये तुम्हारे अनुरूप हैं भी नहीं। विधाताने ही इन्हें मेरा भर्त्ता और मुझे इनकी भार्या बनाया है। अतः तुम शान्त हो जाओ॥ ९२॥ अन्तःपुरमें आते ही सबसे पहले मैंने ही इन्हें वरण किया था, तुम क्यों मरी जाती हो?' इस प्रकार 'मैंने वरण किया है—पहले मैंने वरण किया है' ऐसा कह-कहकर उन राजकन्याओंमें उनके लिये बड़ा कलह मच गया॥ ९३॥

जब उन समस्त कन्याओंने अतिशय अनुरागवश उन अनिन्द्यकीर्ति मुनिवरको वरण कर लिया तो कन्या-रक्षकने नम्रतापूर्वक राजासे सम्पूर्ण वृत्तान्त ज्यों-का-त्यों कह सुनाया॥ ९४॥

श्रीपराशरजी बोले—यह जानकर राजाने 'यह क्या कहता है?' 'यह कैसे हुआ?' 'मैं क्या करूँ?' 'मैंने क्यों उन्हें [अन्दर जानेके लिये] कहा था?' इस प्रकार सोचते हुए अत्यन्त

व्याकुल चित्तसे इच्छा न होते हुए भी जैसे-तैसे अपने वचनका पालन किया और अपने अनुरूप विवाह-संस्कारके समाप्त होनेपर महर्षि सौभरि उन समस्त कन्याओंको अपने आश्रमपर ले गये॥ ९५-९६॥

वहाँ आकर उन्होंने दूसरे विधाताके समान अशेष-शिल्प-कल्प-प्रणेता विश्वकर्माको बुलाकर कहा कि इन समस्त कन्याओंमेंसे प्रत्येकके लिये पृथक्-पृथक् महल बनाओ, जिनमें खिले हुए कमल और कूजते हुए सुन्दर हंस तथा कारण्डव आदि जल-पक्षियोंसे सुशोभित जलाशय हों, सुन्दर उपधान (मसनद), शय्या और परिच्छद (ओढ़नेके वस्त्र) हों तथा पर्याप्त खुला हुआ स्थान हो॥ ९७॥

तब सम्पूर्ण शिल्प-विद्याके विशेष आचार्य विश्वकर्माने भी उनकी आज्ञानुसार सब कुछ तैयार करके उन्हें दिखलाया॥ ९८॥ तदनन्तर महर्षि सौभरिकी आज्ञासे उन महलोंमें अनिवार्यानन्द नामकी महानिधि निवास करने लगी॥ ९९॥ तब तो उन सम्पूर्ण महलोंमें नाना प्रकारके भक्ष्य, भोज्य और लेह्य आदि सामग्रियोंसे वे राजकन्याएँ आये हुए अतिथियों और अपने अनुगत भृत्यवर्गोंको तृप्त करने लगीं॥ १००॥

एक दिन पुत्रियोंके स्नेहसे आकर्षित होकर राजा मान्धाता यह देखनेके लिये कि वे अत्यन्त दुःखी हैं या सुखी? महर्षि सौभरिके आश्रमके निकट आये, तो उन्होंने वहाँ अति रमणीय उपवन और जलाशयोंसे युक्त स्फटिक-शिलाके महलोंकी पंक्ति देखी जो फैलती हुई मयूख-मालाओंसे अत्यन्त मनोहर मालूम पड़ती थी॥ १०१॥

तदनन्तर वे एक महलमें जाकर अपनी कन्याका स्नेहपूर्वक आलिंगन कर आसनपर बैठे और फिर बढ़ते हुए प्रेमके कारण नयनोंमें जल भरकर बोले—॥ १०२॥ "बेटी! तुमलोग यहाँ सुखपूर्वक हो न? तुम्हें किसी प्रकारका कष्ट तो नहीं है? महर्षि सौभरि तुमसे स्नेह करते हैं या नहीं? क्या तुम्हें हमारे घरकी भी याद आती है?" पिताके ऐसा कहनेपर उस राजपुत्रीने कहा—॥ १०३॥ "पिताजी! यह महल अति रमणीय है, ये उपवनादि भी अतिशय मनोहर हैं, खिले हुए कमलोंसे युक्त इन जलाशयोंमें जलपक्षिगण सुन्दर बोली बोलते रहते हैं, भक्ष्य, भोज्य आदि खाद्य पदार्थ, उबटन और वस्त्राभूषण आदि भोग तथा सुकोमल शय्यासनादि सभी मनके अनुकूल हैं; इस प्रकार हमारा गार्हस्थ्य यद्यपि सर्वसम्पत्तिसम्पन्न है॥ १०४॥ तथापि अपनी जन्मभूमिकी याद भला किसको नहीं आती?॥ १०५॥ आपकी कृपासे यद्यपि सब कुछ मंगलमय है॥ १०६॥ तथापि मुझे एक बड़ा दुःख है कि हमारे पति ये महर्षि मेरे घरसे बाहर कभी नहीं जाते। अत्यन्त प्रीतिके कारण ये केवल मेरे ही पास रहते हैं, मेरी अन्य बहिनोंके पास ये जाते ही नहीं हैं॥ १०७॥ इस कारणसे मेरी बहिनें अति दुःखी होंगी। यही मेरे अति दुःखका कारण है।" उसके ऐसा कहनेपर राजाने दूसरे महलमें आकर अपनी कन्याका आलिंगन किया और आसनपर बैठनेके अनन्तर उससे भी इसी प्रकार पूछा॥ १०८॥ उसने भी उसी प्रकार महल आदि सम्पूर्ण उपभोगोंके सुखका वर्णन किया और कहा कि अतिशय प्रीतिके कारण महर्षि केवल मेरे ही पास रहते हैं और किसी बहिनके पास नहीं जाते। इस प्रकार पूर्ववत् सुनकर राजा एक-एक करके प्रत्येक महलमें गये और प्रत्येक कन्यासे इसी प्रकार पूछा॥ १०९॥ और उन सबने भी वैसा ही उत्तर दिया। अन्तमें आनन्द और विस्मयके भारसे विवशचित्त होकर उन्होंने एकान्तमें स्थित भगवान् सौभरिकी पूजा करनेके अनन्तर उनसे कहा॥ ११०॥ "भगवन्! आपकी

ही योगसिद्धिका यह महान् प्रभाव देखा है। इस प्रकारके महान् वैभवके साथ और किसीको भी विलास करते हुए हमने नहीं देखा; सो यह सब आपकी तपस्याका ही फल है।'' इस प्रकार उनका अभिवादन कर वे कुछ कालतक उन मुनिवरके साथ ही अभिमत भोग भोगते रहे और अन्तमें अपने नगरको चले आये॥ १११॥

कालक्रमसे उन राजकन्याओंसे सौभरि मुनिके डेढ़ सौ पुत्र हुए॥ ११२॥ इस प्रकार दिन-दिन स्नेहका प्रसार होनेसे उनका हृदय अतिशय ममतामय हो गया॥ ११३॥ वे सोचने लगे—'क्या मेरे ये पुत्र मधुर बोलीसे बोलेंगे? अपने पाँवोंसे चलेंगे? क्या ये युवावस्थाको प्राप्त होंगे? उस समय क्या मैं इन्हें सपत्नीक देख सकूँगा? फिर क्या इनके पुत्र होंगे और मैं इन्हें अपने पुत्र-पौत्रोंसे युक्त देखूँगा?' इस प्रकार कालक्रमसे दिनानुदिन बढ़ते हुए इन मनोरथोंकी उपेक्षा कर वे सोचने लगे— ॥ ११४॥ 'अहो! मेरे मोहका कैसा विस्तार है॥ ११५॥

इन मनोरथोंकी तो हजारों-लाखों वर्षोंमें भी समाप्ति नहीं हो सकती। उनमेंसे यदि कुछ पूर्ण भी हो जाते हैं तो उनके स्थानपर अन्य नये मनोरथोंकी उत्पत्ति हो जाती है॥ ११६॥ मेरे पुत्र पैरोंसे चलने लगे, फिर वे युवा हुए, उनका विवाह हुआ तथा उनके सन्तानें हुईं—यह सब तो मैं देख चुका; किन्तु अब मेरा चित्त उन पौत्रोंके पुत्र-जन्मको भी देखना चाहता है!॥ ११७॥ यदि उनका जन्म भी मैंने देख लिया तो फिर मेरे चित्तमें दूसरा मनोरथ उठेगा और यदि वह भी पूरा हो गया तो अन्य मनोरथकी उत्पत्तिको ही कौन रोक सकता है?॥ ११८॥

मैंने अब भली प्रकार समझ लिया है कि मृत्युपर्यन्त मनोरथोंका अन्त तो होना नहीं है और जिस चित्तमें मनोरथोंकी आसक्ति होती है वह कभी परमार्थमें लग नहीं सकता॥ ११९॥ अहो! मेरी वह समाधि जलवासके साथी मत्स्यके संगसे अकस्मात् नष्ट हो गयी और उस संगके कारण ही मैंने स्त्री और धन आदिका परिग्रह किया तथा परिग्रहके कारण ही अब मेरी तृष्णा बढ़ गयी है॥ १२०॥

एक शरीरका ग्रहण करना ही महान् दुःख है और मैंने तो इन राजकन्याओंका परिग्रह करके उसे पचास गुना कर दिया है। तथा अनेक पुत्रोंके कारण अब वह बहुत ही बढ़ गया है॥ १२१॥ अब आगे भी पुत्रोंके पुत्र तथा उनके पुत्रोंसे और उनका पुनः-पुनः विवाह-सम्बन्ध करनेसे वह और भी बढ़ेगा। यह ममतारूप विवाहसम्बन्ध अवश्य बड़े ही दुःखका कारण है॥ १२२॥

जलाशयमें रहकर मैंने जो तपस्या की थी उसकी फलस्वरूपा यह सम्पत्ति तपस्याकी बाधक है। मत्स्यके संगसे मेरे चित्तमें जो पुत्र आदिका राग उत्पन्न हुआ था उसीने मुझे ठग लिया॥ १२३॥ निःसंगता ही यतियोंको मुक्ति देनेवाली है, सम्पूर्ण दोष संगसे ही उत्पन्न होते हैं। संगके कारण तो योगारूढ यति भी पतित हो जाते हैं, फिर मन्दमति मनुष्योंकी तो बात ही क्या है?॥ १२४॥

परिग्रहरूपी ग्राहने मेरी बुद्धिको पकड़ा हुआ है। इस समय मैं ऐसा उपाय करूँगा जिससे दोषोंसे मुक्त होकर फिर अपने कुटुम्बियोंके दुःखसे दुःखी न होऊँ॥ १२५॥ अब मैं सबके विधाता, अचिन्त्यरूप, अणुसे भी अणु और सबसे महान् सत्त्व एवं तमःस्वरूप तथा ईश्वरोंके भी ईश्वर भगवान् विष्णुकी तपस्या करके आराधना करूँगा॥ १२६॥ उन सम्पूर्ण तेजोमय, सर्वस्वरूप, अव्यक्त, विस्पष्टशरीर, अनन्त श्रीविष्णुभगवान्में मेरा दोषरहित चित्त सदा निश्चल

रहे जिससे मुझे फिर जन्म न लेना पड़े॥ १२७॥ जिस सर्वरूप, अमल, अनन्त, सर्वेश्वर और आदि-मध्य-शून्यसे पृथक् और कुछ भी नहीं है उस गुरुजनोंके भी परम गुरु भगवान् विष्णुकी मैं शरण लेता हूँ'॥ १२८॥

श्रीपराशरजी बोले—इस प्रकार मन-ही-मन सोचकर सौभरि मुनि पुत्र, गृह, आसन, परिच्छद आदि सम्पूर्ण पदार्थोंको छोड़कर अपनी समस्त स्त्रियोंके सहित वनमें चले गये॥ १२९॥ वहाँ वानप्रस्थोंके योग्य समस्त क्रियाकलापका अनुष्ठान करते हुए सम्पूर्ण पापोंका क्षय हो जानेपर तथा मनोवृत्तिके राग-द्वेषहीन हो जानेपर, आहवनीयादि अग्नियोंको अपनेमें स्थापित कर संन्यासी हो गये॥ १३०॥ फिर भगवान्‌में आसक्त हो सम्पूर्ण कर्मकलापका त्याग कर परमात्मपरायण पुरुषोंके अच्युतपद (मोक्ष)-को प्राप्त किया, जो अजन्मा, अनादि, अविनाशी, विकार और मरणादि धर्मोंसे रहित, इन्द्रियादिसे अतीत तथा अनन्त है॥ १३१॥

इस प्रकार मान्धाताकी कन्याओंके सम्बन्धमें मैंने इस चरित्रका वर्णन किया है। जो कोई इस सौभरि-चरित्रका स्मरण करता है, अथवा पढ़ता-पढ़ाता, सुनता-सुनाता, धारण करता-कराता, लिखता-लिखवाता तथा सीखता-सिखाता अथवा उपदेश करता है उसके छः जन्मोंतक दुःसन्तति, असद्धर्म और वाणी अथवा मनकी कुमार्गमें प्रवृत्ति तथा किसी भी पदार्थमें ममता नहीं होती॥ १३२-१३३॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके चौथे अंशमें दूसरा अध्याय समाप्त॥ २॥

तीसरा अध्याय

मान्धाताकी सन्तति, त्रिशंकुका स्वर्गारोहण तथा सगरकी उत्पत्ति और विजय

अब हम मान्धाताके पुत्रोंकी सन्तानका वर्णन करते हैं॥ १॥ मान्धाताके पुत्र अम्बरीषके युवनाश्व नामक पुत्र हुआ॥ २॥ उससे हारीत हुआ जिससे अंगिरा-गोत्रीय हारीतगण हुए॥ ३॥ पूर्वकालमें रसातलमें मौनेय नामक छः करोड़ गन्धर्व रहते थे। उन्होंने समस्त नागकुलोंके प्रधान-प्रधान रत्न और अधिकार छीन लिये थे॥ ४॥ गन्धर्वोंके पराक्रमसे अपमानित उन नागेश्वरोंद्वारा स्तुति किये जानेपर उसके श्रवण करनेसे जिनकी विकसित कमलसदृश आँखें खुल गयी हैं निद्राके अन्तमें जगे हुए उन जलशायी भगवान् सर्वदेवेश्वरको प्रणाम कर उनसे नागगणने कहा—"भगवन्! इन गन्धर्वोंसे उत्पन्न हुआ हमारा भय किस प्रकार शान्त होगा?"॥ ५॥ तब आदि-अन्तरहित भगवान् पुरुषोत्तमने कहा—'युवनाश्वके पुत्र मान्धाताका जो यह पुरुकुत्स नामक पुत्र है उसमें प्रविष्ट होकर मैं उन सम्पूर्ण दुष्ट गन्धर्वोंका नाश कर दूँगा'॥ ६॥ यह सुनकर भगवान् जलशायीको प्रणाम कर समस्त नागाधिपतिगण नागलोकमें लौट आये और पुरुकुत्सको लानेके लिये [अपनी बहिन एवं पुरुकुत्सकी भार्या] नर्मदाको प्रेरित किया॥ ७॥ तदनन्तर नर्मदा पुरुकुत्सको रसातलमें ले आयी॥ ८॥

रसातलमें पहुँचनेपर पुरुकुत्सने भगवान्‌के तेजसे अपने शरीरका बल बढ़ जानेसे सम्पूर्ण गन्धर्वोंको मार डाला और फिर अपने नगरमें लौट आया॥ ९-१०॥ उस समय समस्त नागराजोंने

नर्मदाको यह वर दिया कि जो कोई तेरा स्मरण करते हुए तेरा नाम लेगा उसको सर्प-विषसे कोई भय न होगा॥ ११ ॥ इस विषयमें यह श्लोक भी है— ॥ १२ ॥

'नर्मदाको प्रातःकाल नमस्कार है और रात्रिकालमें भी नर्मदाको नमस्कार है। हे नर्मदे! तुमको बारम्बार नमस्कार है, तुम मेरी विष और सर्पसे रक्षा करो'॥ १३ ॥

इसका उच्चारण करते हुए दिन अथवा रात्रिमें किसी समय भी अन्धकारमें जानेसे सर्प नहीं काटता तथा इसका स्मरण करके भोजन करनेवालेका खाया हुआ विष भी घातक नहीं होता॥ १४॥ पुरुकुत्सको नागपतियोंने यह वर दिया कि तुम्हारी सन्तानका कभी अन्त न होगा॥ १५ ॥

पुरुकुत्सने नर्मदासे त्रसद्दस्यु नामक पुत्र उत्पन्न किया॥ १६ ॥ त्रसद्दस्युसे अनरण्य हुआ, जिसे दिग्विजयके समय रावणने मारा था॥ १७॥ अनरण्यके पृषदश्व, पृषदश्वके हर्यश्व, हर्यश्वके हस्त, हस्तके सुमना, सुमनाके त्रिधन्वा, त्रिधन्वाके त्रय्यारुणि और त्रय्यारुणिके सत्यव्रत नामक पुत्र हुआ, जो पीछे त्रिशंकु कहलाया॥ १८—२१ ॥

वह त्रिशंकु चाण्डाल हो गया था॥ २२॥ एक बार बारह वर्षतक अनावृष्टि रही। उस समय विश्वामित्र मुनिके स्त्री और बाल-बच्चोंके पोषणार्थ तथा अपनी चाण्डालताको छुड़ानेके लिये वह गंगाजीके तटपर एक वटके वृक्षपर प्रतिदिन मृगका मांस बाँध आता था॥ २३॥ इससे प्रसन्न होकर विश्वामित्रजीने उसे सदेह स्वर्ग भेज दिया॥ २४॥

त्रिशंकुसे हरिश्चन्द्र, हरिश्चन्द्रसे रोहिताश्व, रोहिताश्वसे हरित, हरितसे चंचु, चंचुसे विजय और वसुदेव, विजयसे रुरुक और रुरुकसे वृकका जन्म हुआ॥ २५॥ वृकके बाहु नामक पुत्र हुआ जो हैहय और तालजंघ आदि क्षत्रियोंसे पराजित होकर अपनी गर्भवती पटरानीके सहित वनमें चला गया था॥ २६॥ पटरानीकी सौतने उसका गर्भ रोकनेकी इच्छासे उसे विष खिला दिया॥ २७॥ उसके प्रभावसे उसका गर्भ सात वर्षतक गर्भाशयहीमें रहा॥ २८॥ अन्तमें, बाहु वृद्धावस्थाके कारण और्व मुनिके आश्रमके समीप मर गया॥ २९॥ तब उसकी पटरानीने चिता बनाकर उसपर पतिका शव स्थापित कर उसके साथ सती होनेका निश्चय किया॥ ३०॥ उसी समय भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनों कालके जाननेवाले भगवान् और्वने अपने आश्रमसे निकलकर उससे कहा— ॥ ३१॥ 'अयि साध्वि! इस व्यर्थ दुराग्रहको छोड़। तेरे उदरमें सम्पूर्ण भूमण्डलका स्वामी, अत्यन्त बल-पराक्रमशील, अनेक यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाला और शत्रुओंका नाश करनेवाला चक्रवर्ती राजा है॥ ३२॥ तू ऐसे दुस्साहसका उद्योग न कर।' ऐसा कहे जानेपर वह अनुमरण (सती होने)-के आग्रहसे विरत हो गयी॥ ३३॥ और भगवान् और्व उसे अपने आश्रमपर ले आये॥ ३४॥

वहाँ कुछ ही दिनोंमें, उसके उस गर (विष)-के साथ ही एक अति तेजस्वी बालकने जन्म लिया॥ ३५॥ भगवान् और्वने उसके जातकर्म आदि संस्कार कर उसका नाम 'सगर' रखा तथा उसका उपनयनसंस्कार होनेपर और्वने ही उसे वेद, शास्त्र एवं भार्गव नामक आग्नेय शस्त्रोंकी शिक्षा दी॥ ३६-३७॥

बुद्धिका विकास होनेपर उस बालकने अपनी मातासे कहा— ॥ ३८॥ "माँ! यह तो बता, इस तपोवनमें हम क्यों रहते हैं और हमारे पिता कहाँ हैं?" इसी प्रकारके और भी प्रश्न पूछनेपर माताने उससे सम्पूर्ण वृत्तान्त कह दिया॥ ३९॥ तब तो पिताके राज्यापहरणको सहन न कर सकनेके कारण उसने हैहय और तालजंघ आदि क्षत्रियोंको मार डालनेकी प्रतिज्ञा की और प्रायः

सभी हैहय एवं तालजंघवंशीय राजाओंको नष्ट कर दिया॥ ४०-४१ ॥ उनके पश्चात् शक, यवन, काम्बोज, पारद और पह्लवगण भी हताहत होकर सगरके कुलगुरु वसिष्ठजीकी शरणमें गये॥ ४२ ॥ वसिष्ठजीने उन्हें जीवन्मृत (जीते हुए ही मरेके समान) करके सगरसे कहा—"बेटा! इन जीते-जी मरे हुओंका पीछा करनेसे क्या लाभ है?॥ ४४॥ देख, तेरी प्रतिज्ञाको पूर्ण करनेके लिये मैंने ही इन्हें स्वधर्म और द्विजातियोंके संसर्गसे वंचित कर दिया है"॥ ४५ ॥ राजाने 'जो आज्ञा' कहकर गुरुजीके कथनका अनुमोदन किया और उनके वेष बदलवा दिये॥ ४६ ॥ उसने यवनोंके सिर मुड़वा दिये, शकोंको अर्द्धमुण्डित कर दिया, पारदोंके लम्बे-लम्बे केश रखवा दिये, पह्लवोंके मूँछ-दाढ़ी रखवा दीं तथा इनको और इनके समान अन्यान्य क्षत्रियोंको भी स्वाध्याय और वषट्कारादिसे बहिष्कृत कर दिया॥ ४७ ॥ अपने धर्मको छोड़ देनेके कारण ब्राह्मणोंने भी इनका परित्याग कर दिया; अतः ये म्लेच्छ हो गये॥ ४८ ॥ तदनन्तर महाराज सगर अपनी राजधानीमें आकर अप्रतिहत सैन्यसे युक्त हो इस सम्पूर्ण सप्तद्वीपवती पृथिवीका शासन करने लगे॥ ४९ ॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके चौथे अंशमें तीसरा अध्याय समाप्त॥ ३॥

चौथा अध्याय

सगर, सौदास, खट्वांग और भगवान् रामके चरित्रका वर्णन

श्रीपराशरजी बोले—काश्यपसुता सुमति और विदर्भराज-कन्या केशिनी ये राजा सगरकी दो स्त्रियाँ थीं॥ १ ॥ उनसे सन्तानोत्पत्तिके लिये परम समाधिद्वारा आराधना किये जानेपर भगवान् और्वने यह वर दिया॥ २॥ 'एकसे वंशकी वृद्धि करनेवाला एक पुत्र तथा दूसरीसे साठ हजार पुत्र उत्पन्न होंगे, इनमेंसे जिसको जो अभीष्ट हो वह इच्छापूर्वक उसीको ग्रहण कर सकती है।' उनके ऐसा कहनेपर केशिनीने एक तथा सुमतिने साठ हजार पुत्रोंका वर माँगा॥ ३-४ ॥

महर्षिके 'तथास्तु' कहनेपर कुछ ही दिनोंमें केशिनीने वंशको बढ़ानेवाले असमंजस नामक एक पुत्रको जन्म दिया और काश्यपकुमारी सुमतिसे साठ सहस्र पुत्र उत्पन्न हुए॥ ५-६ ॥ राजकुमार असमंजसके अंशुमान् नामक पुत्र हुआ॥ ७॥ यह असमंजस बाल्यावस्थासे ही बड़ा दुराचारी था॥ ८॥ पिताने सोचा कि बाल्यावस्थाके बीत जानेपर यह बहुत समझदार होगा॥ ९ ॥ किन्तु यौवनके बीत जानेपर भी जब उसका आचरण न सुधरा तो पिताने उसे त्याग दिया॥ १० ॥ उनके साठ हजार पुत्रोंने भी असमंजसके चरित्रका ही अनुकरण किया॥ ११ ॥

तब, असमंजसके चरित्रका अनुकरण करनेवाले उन सगरपुत्रोंद्वारा संसारमें यज्ञादि सन्मार्गका उच्छेद हो जानेपर सकल-विद्यानिधान, अशेषदोषहीन, भगवान् पुरुषोत्तमके अंशभूत श्रीकपिलदेवसे देवताओंने प्रणाम करनेके अनन्तर उनके विषयमें कहा—॥ १२॥ "भगवन्! राजा सगरके ये सभी पुत्र असमंजसके चरित्रका ही अनुसरण कर रहे हैं॥ १३ ॥ इन सबके असन्मार्गमें प्रवृत्त रहनेसे संसारकी क्या दशा होगी?॥ १४॥ प्रभो! संसारमें दीनजनोंकी रक्षाके लिये ही आपने यह शरीर ग्रहण किया है [अतः इस घोर आपत्तिसे संसारकी रक्षा कीजिये]।" यह सुनकर

भगवान् कपिलने कहा—"ये सब थोड़े ही दिनोंमें नष्ट हो जायँगे"॥ १५॥

इसी समय सगरने अश्वमेध-यज्ञ आरम्भ किया॥ १६॥ उसमें उसके पुत्रोंद्वारा सुरक्षित घोड़ेको कोई व्यक्ति चुराकर पृथिवीमें घुस गया॥ १७॥ तब उस घोड़ेके खुरोंके चिह्नोंका अनुसरण करते हुए उनके पुत्रोंमेंसे प्रत्येकने एक-एक योजन पृथिवी खोद डाली॥ १८॥ तथा पातालमें पहुँचकर उन राजकुमारोंने अपने घोड़ेको फिरता हुआ देखा॥ १९॥ पासहीमें मेघावरणहीन शरत्कालके सूर्यके समान अपने तेजसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करते हुए घोड़ेको चुरानेवाले परमर्षि कपिलको सिर झुकाये बैठे देखा॥ २०॥

तब तो वे दुरात्मा अपने अस्त्र-शस्त्रोंको उठाकर 'यही हमारा अपकारी और यज्ञमें विघ्न डालनेवाला है, इस घोड़ेको चुरानेवालेको मारो, मारो' ऐसा चिल्लाते हुए उनकी ओर दौड़े॥ २१॥ तब भगवान् कपिलदेवके कुछ आँख बदलकर देखते ही वे सब अपने ही शरीरसे उत्पन्न हुए अग्निमें जलकर नष्ट हो गये॥ २२॥

महाराज सगरको जब मालूम हुआ कि घोड़ेका अनुसरण करनेवाले उसके समस्त पुत्र महर्षि कपिलके तेजसे दग्ध हो गये हैं तो उन्होंने असमंजसके पुत्र अंशुमान्‌को घोड़ा ले आनेके लिये नियुक्त किया॥ २३॥ वह सगर-पुत्रोंद्वारा खोदे हुए मार्गसे कपिलजीके पास पहुँचा और भक्तिविनम्र होकर उनकी स्तुति की॥ २४॥ तब भगवान् कपिलने उससे कहा—"बेटा! जा, इस घोड़ेको ले जाकर अपने दादाको दे और तेरी जो इच्छा हो वही वर माँग ले। तेरा पौत्र गंगाजीको स्वर्गसे पृथिवीपर लायेगा"॥ २५-२६॥ इसपर अंशुमान्‌ने यही कहा कि मुझे ऐसा वर दीजिये जो ब्रह्मदण्डसे आहत होकर मरे हुए मेरे अस्वर्ग्य पितृगणको स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला हो॥ २७॥ यह सुनकर भगवान्‌ने कहा—"मैं तुझसे पहले ही कह चुका हूँ कि तेरा पौत्र गंगाजीको स्वर्गसे पृथिवीपर लायेगा॥ २८॥ उनके जलसे इनकी अस्थियोंकी भस्मका स्पर्श होते ही ये सब स्वर्गको चले जायँगे॥ २९॥ भगवान् विष्णुके चरणनखसे निकले हुए उस जलका ऐसा माहात्म्य है कि वह कामनापूर्वक केवल स्नानादि कार्योंमें ही उपयोगी हो—सो नहीं, अपितु, बिना कामनाके मृतक पुरुषके अस्थि, चर्म, स्नायु अथवा केश आदिका स्पर्श हो जानेसे या उसके शरीरका कोई अंग गिरनेसे भी वह देहधारीको तुरंत स्वर्गमें ले जाता है।" भगवान् कपिलके ऐसा कहनेपर वह उन्हें प्रणाम कर घोड़ेको लेकर अपने पितामहकी यज्ञशालामें आया॥ ३०-३१॥ राजा सगरने भी घोड़ेके मिल जानेपर अपना यज्ञ समाप्त किया और [अपने पुत्रोंके खोदे हुए] सागरको ही अपत्य-स्नेहसे अपना पुत्र माना॥ ३२-३३॥ उस अंशुमान्‌के दिलीप नामक पुत्र हुआ और दिलीपके भगीरथ हुआ जिसने गंगाजीको स्वर्गसे पृथिवीपर लाकर उनका नाम भागीरथी कर दिया॥ ३४-३५॥

भगीरथसे सुहोत्र, सुहोत्रसे श्रुति, श्रुतिसे नाभाग, नाभागसे अम्बरीष, अम्बरीषसे सिन्धुद्वीप, सिन्धुद्वीपसे अयुतायु और अयुतायुसे ऋतुपर्ण नामक पुत्र हुआ जो राजा नलका सहायक और द्यूतक्रीडाका पारदर्शी था॥ ३६-३७॥

ऋतुपर्णका पुत्र सर्वकाम था, उसका सुदास और सुदासका पुत्र सौदास मित्रसह हुआ॥ ३८—४०॥ एक दिन मृगयाके लिये वनमें घूमते-घूमते उसने दो व्याघ्र देखे॥ ४१॥ इन्होंने सम्पूर्ण वनको मृगहीन कर दिया है—ऐसा समझकर उसने उनमेंसे एकको बाणसे मार डाला॥ ४२॥ मरते

समय वह अति भयंकररूप क्रूर-वदन राक्षस हो गया॥ ४३॥ तथा दूसरा भी 'मैं इसका बदला लूँगा' ऐसा कहकर अन्तर्धान हो गया॥ ४४॥

कालान्तरमें सौदासने एक यज्ञ किया॥ ४५॥ यज्ञ समाप्त हो जानेपर जब आचार्य वसिष्ठ बाहर चले गये तब वह राक्षस वसिष्ठजीका रूप बनाकर बोला—'यज्ञके पूर्ण होनेपर मुझे नर-मांसयुक्त भोजन कराना चाहिये; अत: तुम ऐसा अन्न तैयार कराओ, मैं अभी आता हूँ' ऐसा कहकर वह बाहर चला गया॥ ४६॥ फिर रसोइयेका वेष बनाकर राजाकी आज्ञासे उसने मनुष्यका मांस पकाकर उसे निवेदन किया॥ ४७॥ राजा भी उसे सुवर्णपात्रमें रखकर वसिष्ठजीके आनेकी प्रतीक्षा करने लगा और उनके आते ही वह मांस निवेदन कर दिया॥ ४८-४९॥

वसिष्ठजीने सोचा—'अहो! इस राजाकी कुटिलता तो देखो जो यह जान-बूझकर भी मुझे खानेके लिये यह मांस देता है।' फिर यह जाननेके लिये कि यह किसका है वे ध्यानस्थ हो गये॥ ५०॥ ध्यानावस्थामें उन्होंने देखा कि वह तो नरमांस है॥ ५१॥ तब तो क्रोधके कारण क्षुब्धचित्त होकर उन्होंने राजाको यह शाप दिया॥ ५२॥ 'क्योंकि तूने जान-बूझकर भी हमारे-जैसे तपस्वियोंके लिये अत्यन्त अभक्ष्य यह नरमांस मुझे खानेको दिया है, इसलिये तेरी इसीमें लोलुपता होगी [अर्थात् तू राक्षस हो जायगा]॥ ५३॥

तदनन्तर राजाके यह कहनेपर कि 'भगवन्! आपहीने ऐसी आज्ञा की थी,' वसिष्ठजी यह कहते हुए कि 'क्या मैंने ही ऐसा कहा था?' फिर समाधिस्थ हो गये॥ ५४॥ समाधिद्वारा यथार्थ बात जानकर उन्होंने राजापर अनुग्रह करते हुए कहा—''तू अधिक दिन नरमांस भोजन न करेगा, केवल बारह वर्ष ही तुझे ऐसा करना होगा''॥ ५५॥ वसिष्ठजीके ऐसा कहनेपर राजा सौदास भी अपनी अंजलिमें जल लेकर मुनीश्वरको शाप देनेके लिये उद्यत हुआ। किन्तु अपनी पत्नी मदयन्तीद्वारा 'भगवन्! ये हमारे कुलगुरु हैं, इन कुलदेवरूप आचार्यको शाप देना उचित नहीं है'—ऐसा कहे जानेसे शान्त हो गया तथा अन्न और मेघकी रक्षाके कारण उस शाप-जलको पृथिवी या आकाशमें नहीं फेंका, बल्कि उससे अपने पैरोंको ही भिगो लिया॥ ५६॥ उस क्रोधयुक्त जलसे उसके पैर झुलसकर कल्माषवर्ण (चितकबरे) हो गये। तभीसे उनका नाम कल्माषपाद हुआ॥ ५७॥ तथा वसिष्ठजीके शापके प्रभावसे छठे कालमें अर्थात् तीसरे दिनके अन्तिम भागमें वह राक्षस-स्वभाव धारणकर वनमें घूमते हुए अनेकों मनुष्योंको खाने लगा॥ ५८॥

एक दिन उसने एक मुनीश्वरको ऋतुकालके समय अपनी भार्यासे संगम करते देखा॥ ५९॥ उस अति भीषण राक्षस-रूपको देखकर भयसे भागते हुए उन दम्पतियोंमेंसे उसने ब्राह्मणको पकड़ लिया॥ ६०॥ तब ब्राह्मणीने उससे नाना प्रकारसे प्रार्थना की और कहा—''हे राजन्! प्रसन्न होइये। आप राक्षस नहीं हैं बल्कि इक्ष्वाकुकुलतिलक महाराज मित्रसह हैं॥ ६१-६२॥ आप स्त्री-संयोगके सुखको जाननेवाले हैं; मैं अतृप्त हूँ, मेरे पतिको मारना आपको उचित नहीं है।' इस प्रकार उसके नाना प्रकारसे विलाप करनेपर भी उसने उस ब्राह्मणको इस प्रकार भक्षण कर लिया जैसे बाघ अपने अभिमत पशुको वनमें पकड़कर खा जाता है॥ ६३॥

तब ब्राह्मणीने अत्यन्त क्रोधित होकर राजाको शाप दिया—॥ ६४॥ 'अरे! तूने मेरे अतृप्त रहते हुए भी इस प्रकार मेरे पतिको खा लिया, इसलिये कामोपभोगमें प्रवृत्त होते ही तेरा अन्त हो जायगा'॥ ६५॥ इस प्रकार शाप देकर वह अग्निमें प्रविष्ट हो गयी॥ ६६॥

तदनन्तर बारह वर्षके अन्तमें शापमुक्त हो जानेपर एक दिन विषय-कामनामें प्रवृत्त होनेपर रानी मदयन्तीने उसे ब्राह्मणीके शापका स्मरण करा दिया॥ ६७॥

तभीसे राजाने स्त्री-सम्भोग त्याग दिया॥ ६८॥ पीछे पुत्रहीन राजाके प्रार्थना करनेपर वसिष्ठजीने मदयन्तीके गर्भाधान किया॥ ६९॥ जब उस गर्भने सात वर्ष व्यतीत होनेपर भी जन्म न लिया तो देवी मदयन्तीने उसपर पत्थरसे प्रहार किया॥ ७०॥ इससे उसी समय पुत्र उत्पन्न हुआ और उसका नाम अश्मक हुआ॥ ७१-७२॥ अश्मकके मूलक नामक पुत्र हुआ॥ ७३॥ जब परशुरामजीद्वारा यह पृथिवीतल क्षत्रियहीन किया जा रहा था उस समय उस (मूलक)-की रक्षा वस्त्रहीना स्त्रियोंने घेरकर की थी, इससे उसे नारीकवच भी कहते हैं॥ ७४॥

मूलकके दशरथ, दशरथके इलिविल, इलिविलके विश्वसह और विश्वसहके खट्वांग नामक पुत्र हुआ, जिसने देवासुरसंग्राममें देवताओंके प्रार्थना करनेपर दैत्योंका वध किया था॥ ७५-७६॥ इस प्रकार स्वर्गमें देवताओंका प्रिय करनेसे उनके द्वारा वर माँगनेके लिये प्रेरित किये जानेपर उसने कहा— ॥ ७७॥ "यदि मुझे वर ग्रहण करना ही पड़ेगा तो आपलोग मेरी आयु बतलाइये"॥ ७८॥ तब देवताओंके यह कहनेपर कि तुम्हारी आयु केवल एक मुहूर्त और रही है वह [देवताओंके दिये हुए] एक अनवरुद्धगति विमानपर बैठकर बड़ी शीघ्रतासे मर्त्यलोकमें आया और कहने लगा— ॥ ७९॥ 'यदि मुझे ब्राह्मणोंकी अपेक्षा कभी अपना आत्मा भी प्रियतर नहीं हुआ, यदि मैंने कभी स्वधर्मका उल्लंघन नहीं किया और सम्पूर्ण देव, मनुष्य, पशु, पक्षी और वृक्षादिमें श्रीअच्युतके अतिरिक्त मेरी अन्य दृष्टि नहीं हुई तो मैं निर्विघ्नतापूर्वक उन मुनिजनवन्दित प्रभुको प्राप्त होऊँ।' ऐसा कहते हुए राजा खट्वांगने सम्पूर्ण देवताओंके गुरु, अकथनीयस्वरूप, सत्तामात्र-शरीर, परमात्मा भगवान् वासुदेवमें अपना चित्त लगा दिया और उन्हींमें लीन हो गये॥ ८०॥

इस विषयमें भी पूर्वकालमें सप्तर्षियोंद्वारा कहा हुआ श्लोक सुना जाता है। [उसमें कहा है—] 'खट्वांगके समान पृथिवीतलमें अन्य कोई भी राजा नहीं होगा, जिसने एक मुहूर्तमात्र जीवनके रहते ही स्वर्गलोकसे भूमण्डलमें आकर अपनी बुद्धिद्वारा तीनों लोकोंको सत्यस्वरूप भगवान् वासुदेवमय देखा'॥ ८१-८२॥

खट्वांगसे दीर्घबाहु नामक पुत्र हुआ। दीर्घबाहुसे रघु, रघुसे अज और अजसे दशरथने जन्म लिया॥ ८३—८६॥ दशरथजीके भगवान् कमलनाभ जगत्‌की स्थितिके लिये अपने अंशोंसे राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न—इन चार रूपोंसे पुत्र-भावको प्राप्त हुए॥ ८७॥

रामजीने बाल्यावस्थामें ही विश्वामित्रजीकी यज्ञरक्षाके लिये जाते हुए मार्गमें ही ताटका राक्षसीको मारा, फिर यज्ञशालामें पहुँचकर मारीचको बाणरूपी वायुसे आहत कर समुद्रमें फेंक दिया और सुबाहु आदि राक्षसोंको नष्ट कर डाला॥ ८८—९०॥ उन्होंने अपने दर्शनमात्रसे अहल्याको निष्पाप किया, जनकजीके राजभवनमें बिना श्रम ही महादेवजीका धनुष तोड़ा और पुरुषार्थसे ही प्राप्त होनेवाली अयोनिजा जनकराजनन्दिनी श्रीसीताजीको पत्नीरूपसे प्राप्त किया॥ ९१—९३॥ और तदनन्तर सम्पूर्ण क्षत्रियोंको नष्ट करनेवाले, समस्त हैहयकुलके लिये अग्निस्वरूप परशुरामजीके बल-वीर्यका गर्व नष्ट किया॥ ९४॥

फिर पिताके वचनसे राज्यलक्ष्मीको कुछ भी न गिनकर भाई लक्ष्मण और धर्मपत्नी

सीताके सहित वनमें चले गये॥ ९५॥ वहाँ विराध, खर, दूषण आदि राक्षस तथा कबन्ध और वालीका वध किया और समुद्रपर पुल बाँधकर सम्पूर्ण राक्षसकुलका विध्वंस किया तथा रावणद्वारा हरी हुई और उसके वधसे कलंकहीना होनेपर भी अग्नि-प्रवेशसे शुद्ध हुई समस्त देवगणोंसे प्रशंसित स्वभाववाली अपनी भार्या जनकराजकन्या सीताको अयोध्यामें ले आये॥ ९६-९७॥ हे मैत्रेय! उस समय उनके राज्याभिषेक-जैसा मंगल हुआ उसका तो सौ वर्षमें भी वर्णन नहीं किया जा सकता; तथापि संक्षेपसे सुनो॥ ९८॥

दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्नवदन लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, विभीषण, सुग्रीव, अंगद, जाम्बवान् और हनुमान् आदिसे छत्र-चामरादिद्वारा सेवित हो, ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर और ईशान आदि सम्पूर्ण देवगण, वसिष्ठ, वामदेव, वाल्मीकि, मार्कण्डेय, विश्वामित्र, भरद्वाज और अगस्त्य आदि मुनिजन तथा ऋक्, यजुः, साम और अथर्ववेदोंसे स्तुति किये जाते हुए तथा नृत्य, गीत, वाद्य आदि सम्पूर्ण मंगल-सामग्रियोंसहित वीणा, वेणु, मृदंग, भेरी, पटह, शंख, काहल और गोमुख आदि बाजोंके घोषके साथ समस्त राजाओंके मध्यमें सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षाके लिये विधिपूर्वक अभिषिक्त हुए। इस प्रकार दशरथकुमार कोसलाधिपति, रघुकुलतिलक, जानकीवल्लभ, तीनों भ्राताओंके प्रिय श्रीरामचन्द्रजीने सिंहासनारूढ़ होकर ग्यारह हजार वर्ष राज्य-शासन किया॥ ९९॥

भरतजीने भी गन्धर्वलोकको जीतनेके लिये जाकर युद्धमें तीन करोड़ गन्धर्वोंका वध किया और शत्रुघ्नजीने भी अतुलित बलशाली महापराक्रमी मधुपुत्र लवण राक्षसका संहार किया और मथुरा नामक नगरकी स्थापना की॥ १००-१०१॥ इस प्रकार अपने अतिशय बल-पराक्रमसे महान् दुष्टोंको नष्ट करनेवाले भगवान् राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न सम्पूर्ण जगत्की यथोचित व्यवस्था करनेके अनन्तर फिर स्वर्गलोकको पधारे॥ १०२॥ उनके साथ ही जो अयोध्यानिवासी उन भगवदंशस्वरूपोंके अतिशय अनुरागी थे उन्होंने भी तन्मय होनेके कारण सालोक्य-मुक्ति प्राप्त की॥ १०३॥

दुष्ट-दलन भगवान् रामके कुश और लव नामक दो पुत्र हुए। इसी प्रकार लक्ष्मणजीके अंगद और चन्द्रकेतु, भरतजीके तक्ष और पुष्कल तथा शत्रुघ्नजीके सुबाहु और शूरसेन नामक पुत्र हुए॥ १०४॥ कुशके अतिथि, अतिथिके निषध, निषधके अनल, अनलके नभ, नभके पुण्डरीक, पुण्डरीकके क्षेमधन्वा, क्षेमधन्वाके देवानीक, देवानीकके अहीनक, अहीनकके रुरु, रुरुके पारियात्रक, पारियात्रकके देवल, देवलके वच्चल, वच्चलके उत्क, उत्कके वज्रनाभ, वज्रनाभके शंखण, शंखणके युषिताश्व और युषिताश्वके विश्वसह नामक पुत्र हुआ॥ १०५-१०६ ॥ विश्वसहके हिरण्यनाभ नामक पुत्र हुआ, जिसने जैमिनिके शिष्य महायोगीश्वर याज्ञवल्क्यजीसे योगविद्या प्राप्त की थी॥ १०७॥ हिरण्यनाभका पुत्र पुष्य था, उसका ध्रुवसन्धि, ध्रुवसन्धिका सुदर्शन, सुदर्शनका अग्निवर्ण, अग्निवर्णका शीघ्रग तथा शीघ्रगका पुत्र मरु हुआ जो इस समय भी योगाभ्यासमें तत्पर हुआ कलापग्राममें स्थित है॥ १०८-१०९॥ आगामी युगमें यह सूर्यवंशीय क्षत्रियोंका प्रवर्त्तक होगा॥ ११०॥ मरुका पुत्र प्रसुश्रुत, प्रसुश्रुतका सुसन्धि, सुसन्धिका अमर्ष, अमर्षका सहस्वान्, सहस्वान्का विश्वभव तथा विश्वभवका पुत्र बृहद्बल हुआ जिसको भारत युद्धमें अर्जुनके पुत्र अभिमन्युने मारा था॥ १११-११२॥

इस प्रकार मैंने यह इक्ष्वाकुकुलके प्रधान-प्रधान राजाओंका वर्णन किया। इनका चरित्र सुननेसे मनुष्य सकल पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ११३॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके चौथे अंशमें चौथा अध्याय समाप्त॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

निमि-चरित्र और निमिवंशका वर्णन

श्रीपराशरजी बोले—इक्ष्वाकुका जो निमि नामक पुत्र था उसने एक सहस्रवर्षमें समाप्त होनेवाले यज्ञका आरम्भ किया॥ १॥ उस यज्ञमें उसने वसिष्ठजीको होता वरण किया॥ २॥ वसिष्ठजीने उससे कहा कि पाँच सौ वर्षके यज्ञके लिये इन्द्रने मुझे पहले ही वरण कर लिया है॥ ३॥ अत: इतने समय तुम ठहर जाओ, वहाँसे आनेपर मैं तुम्हारा भी ऋत्विक् हो जाऊँगा। उनके ऐसा कहनेपर राजाने उन्हें कुछ भी उत्तर नहीं दिया॥ ४॥

वसिष्ठजीने यह समझकर कि राजाने उनका कथन स्वीकार कर लिया है इन्द्रका यज्ञ आरम्भ कर दिया॥ ५॥ किन्तु राजा निमि भी उसी समय गौतमादि अन्य होताओंद्वारा अपना यज्ञ करने लगे॥ ६॥

देवराज इन्द्रका यज्ञ समाप्त होते ही 'मुझे निमिका यज्ञ कराना है' इस विचारसे वसिष्ठजी भी तुरंत ही आ गये॥ ७॥ उस यज्ञमें अपना [होताका] कर्म गौतमको करते देख उन्होंने सोते हुए राजा निमिको यह शाप दिया कि 'इसने मेरी अवज्ञा करके सम्पूर्ण कर्मका भार गौतमको सौंपा है इसलिये यह देहहीन हो जायगा'॥ ८॥ सोकर उठनेपर राजा निमिने भी कहा—॥ ९॥ ''इस दुष्ट गुरुने मुझसे बिना बातचीत किये अज्ञानतापूर्वक मुझ सोये हुएको शाप दिया है, इसलिये इसका देह भी नष्ट हो जायगा।'' इस प्रकार शाप देकर राजाने अपना शरीर छोड़ दिया॥ १०॥

राजा निमिके शापसे वसिष्ठजीका लिंगदेह मित्रावरुणके वीर्यमें प्रविष्ट हुआ॥ ११॥ और उर्वशीके देखनेसे उसका वीर्य स्खलित होनेपर उसीसे उन्होंने दूसरा देह धारण किया॥ १२॥ निमिका शरीर भी अति मनोहर गन्ध और तैल आदिसे सुरक्षित रहनेके कारण गला-सड़ा नहीं, बल्कि तत्काल मरे हुए देहके समान ही रहा॥ १३॥

यज्ञ समाप्त होनेपर जब देवगण अपना भाग ग्रहण करनेके लिये आये तो उनसे ऋत्विक्गण बोले कि—''यजमानको वर दीजिये''॥ १४॥ देवताओंद्वारा प्रेरणा किये जानेपर राजा निमिने उनसे कहा—॥ १५॥ ''भगवन्! आपलोग सम्पूर्ण संसार-दु:खको दूर करनेवाले हैं॥ १६॥ मेरे विचारमें शरीर और आत्माके वियोग होनेमें जैसा दु:ख होता है वैसा और कोई दु:ख नहीं है॥ १७॥ इसलिये मैं अब फिर शरीर ग्रहण करना नहीं चाहता, समस्त लोगोंके नेत्रोंमें ही वास करना चाहता हूँ।'' राजाके ऐसा कहनेपर देवताओंने उनको समस्त जीवोंके नेत्रोंमें अवस्थित कर दिया॥ १८॥ तभीसे प्राणी निमेषोन्मेष (पलक खोलना-मूँदना) करने लगे हैं॥ १९॥

तदनन्तर अराजकताके भयसे मुनिजनोंने उस पुत्रहीन राजाके शरीरको अरणि (शमीदण्ड)-से मँथा॥ २०॥ उससे एक कुमार उत्पन्न हुआ जो जन्म लेनेके कारण 'जनक' कहलाया॥ २१-२२॥

इसके पिता विदेह थे इसलिये यह 'वैदेह' कहलाता है और मन्थनसे उत्पन्न होनेके कारण 'मिथि' भी कहा जाता है॥ २३॥ उसके उदावसु नामक पुत्र हुआ॥ २४॥ उदावसुके नन्दिवर्द्धन, नन्दिवर्द्धनके सुकेतु, सुकेतुके देवरात, देवरातके बृहदुक्थ, बृहदुक्थके महावीर्य, महावीर्यके सुधृति, सुधृतिके धृष्टकेतु, धृष्टकेतुके हर्यश्व, हर्यश्वके मनु, मनुके प्रतीक, प्रतीकके कृतरथ, कृतरथके देवमीढ, देवमीढके विबुध, विबुधके महाधृति, महाधृतिके कृतरात, कृतरातके महारोमा, महारोमाके सुवर्णरोमा, सुवर्णरोमाके ह्रस्वरोमा और ह्रस्वरोमाके सीरध्वज नामक पुत्र हुआ॥ २५—२७॥ वह पुत्रकी कामनासे यज्ञभूमिको जोत रहा था। इसी समय हलके अग्र भागमें उसके सीता नामकी कन्या उत्पन्न हुई॥ २८॥

सीरध्वजका भाई सांकाश्यनरेश कुशध्वज था॥ २९॥ सीरध्वजके भानुमान् नामक पुत्र हुआ। भानुमान्के शतद्युम्न, शतद्युम्नके शुचि, शुचिके ऊर्जनामा, ऊर्जनामाके शतध्वज, शतध्वजके कृति, कृतिके अंजन, अंजनके कुरुजित्, कुरुजित्के अरिष्टनेमि, अरिष्टनेमिके श्रुतायु, श्रुतायुके सुपार्श्व, सुपार्श्वके सृंजय, सृंजयके क्षेमावी, क्षेमावीके अनेना, अनेनाके भौमरथ, भौमरथके सत्यरथ, सत्यरथके उपगु, उपगुके उपगुप्त, उपगुप्तके स्वागत, स्वागतके स्वानन्द, स्वानन्दके सुवर्चा, सुवर्चाके सुपार्श्व, सुपार्श्वके सुभाष, सुभाषके सुश्रुत, सुश्रुतके जय, जयके विजय, विजयके ऋत, ऋतके सुनय, सुनयके वीतहव्य, वीतहव्यके धृति, धृतिके बहुलाश्व और बहुलाश्वके कृति नामक पुत्र हुआ॥ ३०-३१॥ कृतिमें ही इस जनकवंशकी समाप्ति हो जाती है॥ ३२॥ ये ही मैथिलभूपालगण हैं॥ ३३॥ प्राय: ये सभी राजालोग आत्मविद्याको आश्रय देनेवाले होते हैं॥ ३४॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके चौथे अंशमें पाँचवाँ अध्याय समाप्त॥ ५॥

छठा अध्याय

सोमवंशका वर्णन; चन्द्रमा, बुध और पुरूरवाका चरित्र

मैत्रेयजी बोले—भगवन्! आपने सूर्यवंशीय राजाओंका वर्णन तो कर दिया, अब मैं सम्पूर्ण चन्द्रवंशीय भूपतियोंका वृत्तान्त भी सुनना चाहता हूँ। जिन स्थिरकीर्ति महाराजोंकी सन्ततिका सुयश आज भी गान किया जाता है, हे ब्रह्मन्! प्रसन्न-मुखसे आप उन्हींका वर्णन मुझसे कीजिये॥ १-२॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मुनिशार्दूल! परम तेजस्वी चन्द्रमाके वंशका क्रमश: श्रवण करो जिसमें अनेकों विख्यात राजालोग हुए हैं॥ ३॥

यह वंश नहुष, ययाति, कार्तवीर्य और अर्जुन आदि अनेकों अति बल-पराक्रमशील, कान्तिमान्, क्रियावान् और सद्गुणसम्पन्न राजाओंसे अलंकृत हुआ है। सुनो, मैं उसका वर्णन करता हूँ॥ ४॥

सम्पूर्ण जगत्के रचयिता भगवान् नारायणके नाभि-कमलसे उत्पन्न हुए भगवान् ब्रह्माजीके पुत्र अत्रि प्रजापति थे॥ ५॥ इन अत्रिके पुत्र चन्द्रमा हुए॥ ६॥ कमलयोनि भगवान् ब्रह्माजीने उन्हें सम्पूर्ण औषधि, द्विजजन और नक्षत्रगणके आधिपत्यपर अभिषिक्त कर दिया था॥ ७॥ चन्द्रमाने राजसूय-यज्ञका अनुष्ठान किया॥ ८॥ अपने प्रभाव और अति उत्कृष्ट आधिपत्यके अधिकारी होनेसे चन्द्रमापर राजमद सवार हुआ॥ ९॥ तब मदोन्मत्त हो जानेके कारण उसने समस्त देवताओंके गुरु

भगवान् बृहस्पतिजीकी भार्या ताराको हरण कर लिया॥ १०॥ तथा बृहस्पतिजीकी प्रेरणासे भगवान् ब्रह्माजीके बहुत कुछ कहने-सुनने और देवर्षियोंके माँगनेपर भी उसे न छोड़ा॥ ११॥

बृहस्पतिजीसे द्वेष करनेके कारण शुक्रजी भी चन्द्रमाके सहायक हो गये और अंगिरासे विद्या-लाभ करनेके कारण भगवान् रुद्रने बृहस्पतिकी सहायता की [क्योंकि बृहस्पतिजी अंगिराके पुत्र हैं]॥ १२-१३॥

जिस पक्षमें शुक्रजी थे उस ओरसे जम्भ और कुम्भ आदि समस्त दैत्य-दानवादिने भी [सहायता देनेमें] बड़ा उद्योग किया॥ १४॥ तथा सकल देव-सेनाके सहित इन्द्र बृहस्पतिजीके सहायक हुए॥ १५॥ इस प्रकार ताराके लिये उनमें तारकामय नामक अत्यन्त घोर युद्ध छिड़ गया॥ १६॥ तब रुद्र आदि देवगण दानवोंके प्रति और दानवगण देवताओंके प्रति नाना प्रकारके शस्त्र छोड़ने लगे॥ १७॥ इस प्रकार देवासुर-संग्रामसे क्षुब्ध-चित्त हो सम्पूर्ण संसारने ब्रह्माजीकी शरण ली॥ १८॥ तब भगवान् कमलयोनिने भी शुक्र, रुद्र, दानव और देवगणको युद्धसे निवृत्त कर बृहस्पतिजीको तारा दिलवा दी॥ १९॥ उसे गर्भिणी देखकर बृहस्पतिजीने कहा— ॥ २०॥ "मेरे क्षेत्रमें तुझको दूसरेका पुत्र धारण करना उचित नहीं है; इसे दूर कर, अधिक धृष्टता करना ठीक नहीं"॥ २१॥

बृहस्पतिजीके ऐसा कहनेपर उस पतिव्रताने पतिके वचनानुसार वह गर्भ इषीकास्तम्ब (सींककी झाड़ी)-में छोड़ दिया॥ २२॥ उस छोड़े हुए गर्भने अपने तेजसे समस्त देवताओंके तेजको मलिन कर दिया॥ २३॥ तदनन्तर उस बालककी सुन्दरताके कारण बृहस्पति और चन्द्रमा दोनोंको उसे लेनेके लिये उत्सुक देख देवताओंने सन्देह हो जानेके कारण तारासे पूछा— ॥ २४॥ "हे सुभगे! तू हमको सच-सच बता, यह पुत्र बृहस्पतिका है या चन्द्रमाका?"॥ २५॥ उनके ऐसा कहनेपर ताराने लज्जावश कुछ भी न कहा॥ २६॥ जब बहुत कुछ कहनेपर भी वह देवताओंसे न बोली तो वह बालक उसे शाप देनेके लिये उद्यत होकर बोला— ॥ २७॥ "अरी दुष्टा माँ! तू मेरे पिताका नाम क्यों नहीं बतलाती? तुझ व्यर्थ लज्जावतीकी मैं अभी ऐसी गति करूँगा जिससे तू आजसे ही इस प्रकार अत्यन्त धीरे-धीरे बोलना भूल जायगी"॥ २८—३०॥

तदनन्तर पितामह श्रीब्रह्माजीने उस बालकको रोककर तारासे स्वयं ही पूछा— ॥ ३१॥ "बेटी! ठीक-ठीक बता यह पुत्र किसका है—बृहस्पतिका या चन्द्रमाका?" इसपर उसने लज्जापूर्वक कहा— "चन्द्रमाका"॥ ३२॥ तब तो नक्षत्रपति भगवान् चन्द्रने उस बालकको हृदयसे लगाकर कहा— "बहुत ठीक, बहुत ठीक, बेटा! तुम बड़े बुद्धिमान् हो;" और उनका नाम 'बुध' रख दिया। इस समय उनके निर्मल कपोलोंकी कान्ति उच्छ्वसित और देदीप्यमान हो रही थी॥ ३३॥

बुधने जिस प्रकार इलासे अपने पुत्र पुरूरवाको उत्पन्न किया था उसका वर्णन पहले ही कर चुके हैं॥ ३४॥ पुरूरवा अति दानशील, अति याज्ञिक और अति तेजस्वी था। 'मित्रावरुणके शापसे मुझे मर्त्यलोकमें रहना पड़ेगा' ऐसा विचार करते हुए उर्वशी अप्सराकी दृष्टि उस अति सत्यवादी, रूपके धनी और मतिमान् राजा पुरूरवापर पड़ी॥ ३५॥ देखते ही वह सम्पूर्ण मान तथा स्वर्ग-सुखकी इच्छाको छोड़कर तन्मयभावसे उसीके पास आयी॥ ३६॥ राजा पुरूरवाका चित्त भी उसे संसारकी समस्त स्त्रियोंमें विशिष्ट तथा कान्ति-सुकुमारता, सुन्दरता, गतिविलास और मुसकान आदि गुणोंसे युक्त देखकर उसके वशीभूत हो

गया ॥ ३७ ॥ इस प्रकार वे दोनों ही परस्पर तन्मय और अनन्यचित्त होकर और सब कामोंको भूल गये ॥ ३८ ॥

निदान राजाने नि:संकोच होकर कहा— ॥ ३९ ॥ "हे सुभ्रु! मैं तुम्हारी इच्छा करता हूँ, तुम प्रसन्न होकर मुझे प्रेम-दान दो।" राजाके ऐसा कहनेपर उर्वशीने भी लज्जावश स्खलित स्वरमें कहा— ॥ ४० ॥ "यदि आप मेरी प्रतिज्ञाको निभा सकें तो अवश्य ऐसा ही हो सकता है।" यह सुनकर राजाने कहा— ॥ ४१ ॥ अच्छा, तुम अपनी प्रतिज्ञा मुझसे कहो ॥ ४२ ॥ इस प्रकार पूछनेपर वह फिर बोली— ॥ ४३ ॥ "मेरे पुत्ररूप इन दो मेषों (भेड़ों)-को आप कभी मेरी शय्यासे दूर न कर सकेंगे ॥ ४४ ॥ मैं कभी आपको नग्न न देखने पाऊँ ॥ ४५ ॥ और केवल घृत ही मेरा आहार होगा—[यही मेरी तीन प्रतिज्ञाएँ हैं]" ॥ ४६ ॥ तब राजाने कहा—"ऐसा ही होगा" ॥ ४७ ॥

तदनन्तर राजा पुरूरवाने दिन-दिन बढ़ते हुए आनन्दके साथ कभी अलकापुरीके अन्तर्गत चैत्ररथ आदि वनोंमें और कभी सुन्दर पद्मखण्डोंसे युक्त अति रमणीय मानस आदि सरोवरोंमें विहार करते हुए साठ हजार वर्ष बिता दिये ॥ ४८ ॥ उसके उपभोगसुखसे प्रतिदिन अनुरागके बढ़ते रहनेसे उर्वशीको भी देवलोकमें रहनेकी इच्छा नहीं रही ॥ ४९ ॥

इधर उर्वशीके बिना अप्सराओं, सिद्धों और गन्धर्वोंको स्वर्गलोक अत्यन्त रमणीय नहीं मालूम होता था ॥ ५० ॥ अत: उर्वशी और पुरूरवाकी प्रतिज्ञाके जाननेवाले विश्वावसुने एक दिन रात्रिके समय गन्धर्वोंके साथ जाकर उसके शयनागारके पाससे एक मेषका हरण कर लिया ॥ ५१ ॥ उसे आकाशमें ले जाते समय उर्वशीने उसका शब्द सुना ॥ ५२ ॥ तब वह बोली—"मुझ अनाथाके पुत्रको कौन लिये जाता है, अब मैं किसकी शरण जाऊँ?" ॥ ५३ ॥ किन्तु यह सुनकर भी इस भयसे कि रानी मुझे नंगा देख लेगी, राजा नहीं उठा ॥ ५४ ॥ तदनन्तर गन्धर्वगण दूसरा भी मेष लेकर चल दिये ॥ ५५ ॥ उसे ले जाते समय उसका शब्द सुनकर भी उर्वशी 'हाय! मैं अनाथा और भर्तृहीना हूँ तथा एक कायरके अधीन हो गयी हूँ।' इस प्रकार कहती हुई वह आर्त्तस्वरसे विलाप करने लगी ॥ ५६ ॥

तब राजा यह सोचकर कि इस समय अन्धकार है [अत: रानी मुझे नग्न न देख सकेगी], क्रोधपूर्वक 'अरे दुष्ट! तू मारा गया' यह कहते हुए तलवार लेकर पीछे दौड़ा ॥ ५७ ॥ इसी समय गन्धर्वोंने अति उज्ज्वल विद्युत् प्रकट कर दी ॥ ५८ ॥ उसके प्रकाशमें राजाको वस्त्रहीन देखकर प्रतिज्ञा टूट जानेसे उर्वशी तुरन्त ही वहाँसे चली गयी ॥ ५९ ॥ गन्धर्वगण भी उन मेषोंको वहीं छोड़कर स्वर्गलोकमें चले गये ॥ ६० ॥ किन्तु जब राजा उन मेषोंको लिये हुए अति प्रसन्नचित्तसे अपने शयनागारमें आया तो वहाँ उसने उर्वशीको न देखा ॥ ६१ ॥ उसे न देखनेसे वह उस वस्त्रहीन-अवस्थामें ही पागलके समान घूमने लगा ॥ ६२ ॥ घूमते-घूमते उसने एक दिन कुरुक्षेत्रके कमल-सरोवरमें अन्य चार अप्सराओंके सहित उर्वशीको देखा ॥ ६३ ॥ उसे देखकर वह उन्मत्तके समान 'हे जाये! ठहर, अरी हृदयकी निष्ठुरे! खड़ी हो जा, अरी कपट रखनेवाली! वार्तालापके लिये तनिक ठहर जा'—ऐसे अनेक वचन कहने लगा ॥ ६४ ॥

उर्वशी बोली—"महाराज! इन अज्ञानियोंकी-सी चेष्टाओंसे कोई लाभ नहीं ॥ ६५-६६ ॥ इस समय मैं गर्भवती हूँ। एक वर्ष उपरान्त आप यहीं आ जावें, उस समय आपके एक पुत्र होगा और एक रात मैं भी आपके साथ रहूँगी।" उर्वशीके ऐसा कहनेपर राजा पुरूरवा प्रसन्न-चित्तसे अपने नगरको चला गया ॥ ६७ ॥

तदनन्तर उर्वशीने अन्य अप्सराओंसे कहा— ॥ ६८ ॥ "ये वही पुरुषश्रेष्ठ हैं जिनके साथ मैं इतने दिनोंतक प्रेमाकृष्ट-चित्तसे भूमण्डलमें रही थी ॥ ६९ ॥ इसपर अन्य अप्सराओंने कहा— ॥ ७० ॥ "वाह! वाह! सचमुच इनका रूप बड़ा ही मनोहर है, इनके साथ तो सर्वदा हमारा भी सहवास हो" ॥ ७१ ॥

वर्ष समाप्त होनेपर राजा पुरूरवा वहाँ आये ॥ ७२ ॥ उस समय उर्वशीने उन्हें 'आयु' नामक एक बालक दिया ॥ ७३ ॥ तथा उनके साथ एक रात रहकर पाँच पुत्र उत्पन्न करनेके लिये गर्भ धारण किया ॥ ७४ ॥ और कहा—'हमारे पारस्परिक स्नेहके कारण सकल गन्धर्वगण महाराजको वरदान देना चाहते हैं अतः आप अभीष्ट वर माँगिये ॥ ७५ ॥

राजा बोले—"मैंने समस्त शत्रुओंको जीत लिया है, मेरी इन्द्रियोंकी सामर्थ्य नष्ट नहीं हुई है, मैं बन्धुजन, असंख्य सेना और कोशसे भी सम्पन्न हूँ, इस समय उर्वशीके सहवासके अतिरिक्त मुझे और कुछ भी प्राप्तव्य नहीं है। अतः मैं इस उर्वशीके साथ ही काल-यापन करना चाहता हूँ।" राजाके ऐसा कहनेपर गन्धर्वोंने उन्हें एक अग्निस्थाली (अग्नियुक्त पात्र) दी और कहा— "इस अग्निके वैदिक विधिसे गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्निरूप तीन भाग करके इसमें उर्वशीके सहवासकी कामनासे भलीभाँति यजन करो तो अवश्य ही तुम अपना अभीष्ट प्राप्त कर लोगे।" गन्धर्वोंके ऐसा कहनेपर राजा उस अग्निस्थालीको लेकर चल दिये ॥ ७६—७८ ॥

[मार्गमें] वनके अन्दर उन्होंने सोचा— 'अहो! मैं कैसा मूर्ख हूँ? मैंने यह क्या किया जो इस अग्निस्थालीको तो ले आया और उर्वशीको नहीं लाया' ॥ ७९-८० ॥ ऐसा सोचकर उस अग्निस्थालीको वनमें ही छोड़कर वे अपने नगरमें चले आये ॥ ८१ ॥ आधीरात बीत जानेके बाद निद्रा टूटनेपर राजाने सोचा— ॥ ८२ ॥ 'उर्वशीकी सन्निधि प्राप्त करनेके लिये ही गन्धर्वोंने मुझे वह अग्निस्थाली दी थी और मैंने उसे वनमें ही छोड़ दिया ॥ ८३ ॥ अतः अब मुझे उसे लानेके लिये जाना चाहिये' ऐसा सोच उठकर वे वहाँ गये, किन्तु उन्होंने उस स्थालीको वहाँ न देखा ॥ ८४ ॥ अग्निस्थालीके स्थानपर राजा पुरूरवाने एक शमीगर्भ पीपलके वृक्षको देखकर सोचा— ॥ ८५ ॥ 'मैंने यहीं तो वह अग्निस्थाली फेंकी थी। वह स्थाली ही शमीगर्भ पीपल हो गयी है ॥ ८६ ॥ अतः इस अग्निरूप अश्वत्थको ही अपने नगरमें ले जाकर इसकी अरणि बनाकर उससे उत्पन्न हुए अग्निकी ही उपासना करूँ' ॥ ८७ ॥

ऐसा सोचकर राजा उस अश्वत्थको लेकर अपने नगरमें आये और उसकी अरणि बनायी ॥ ८८ ॥ तदनन्तर उन्होंने उस काष्ठको एक-एक अंगुल करके गायत्री-मन्त्रका पाठ किया ॥ ८९ ॥

उसके पाठसे गायत्रीकी अक्षर-संख्याके बराबर एक-एक अंगुलकी अरणियाँ हो गयीं ॥ ९० ॥ उनके मन्थनसे तीनों प्रकारके अग्नियोंको उत्पन्न कर उनमें वैदिक विधिसे हवन किया ॥ ९१ ॥ तथा उर्वशीके सहवासरूप फलकी इच्छा की ॥ ९२ ॥ तदनन्तर उसी अग्निसे नाना प्रकारके यज्ञोंका यजन करते हुए उन्होंने गन्धर्व-लोक प्राप्त किया और फिर उर्वशीसे उनका वियोग न हुआ ॥ ९३ ॥ पूर्वकालमें एक ही अग्नि था, उस एकहीसे इस मन्वन्तरमें तीन प्रकारके अग्नियोंका प्रचार हुआ ॥ ९४ ॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके चौथे अंशमें छठा अध्याय समाप्त ॥ ६ ॥

सातवाँ अध्याय

जह्नुका गङ्गापान तथा जमदग्नि और विश्वामित्रकी उत्पत्ति

श्रीपराशरजी बोले—राजा पुरूरवाके परम बुद्धिमान् आयु, अमावसु, विश्वावसु, श्रुतायु, शतायु और अयुतायु नामक छः पुत्र हुए॥ १॥ अमावसुके भीम, भीमके कांचन, कांचनके सुहोत्र और सुहोत्रके जह्नु नामक पुत्र हुआ जिसने अपनी सम्पूर्ण यज्ञशालाको गंगाजलसे आप्लावित देख क्रोधसे रक्तनयन हो भगवान् यज्ञपुरुषको परम समाधिके द्वारा अपनेमें स्थापित कर सम्पूर्ण गङ्गाजीको पी लिया था॥ २—४॥ तब देवर्षियोंने इन्हें प्रसन्न किया और गङ्गाजीको इनकी पुत्रीरूपसे पाकर ले गये॥ ५-६॥

जह्नुके सुमन्तु नामक पुत्र हुआ॥ ७॥ सुमन्तुके अजक, अजकके बलाकाश्व, बलाकाश्वके कुश और कुशके कुशाम्ब, कुशनाभ, अधूर्त्तरजा और वसु नामक चार पुत्र हुए॥ ८॥ उनमेंसे कुशाम्बने इस इच्छासे कि मेरे इन्द्रके समान पुत्र हो, तपस्या की॥ ९॥ उसके उग्र तपको देखकर 'बलमें कोई अन्य मेरे समान न हो जाय' इस भयसे इन्द्र स्वयं ही इनका पुत्र हो गया॥ १०॥ वह गाधि नामक पुत्र कौशिक कहलाया॥ ११॥

गाधिने सत्यवती नामकी कन्याको जन्म दिया॥ १२॥ उसे भृगुपुत्र ऋचीकने वरण किया॥ १३॥ गाधिने अति क्रोधी और अति वृद्ध ब्राह्मणको कन्या न देनेकी इच्छासे ऋचीकसे कन्याके मूल्यमें जो चन्द्रमाके समान कान्तिमान् और पवनके तुल्य वेगवान् हों, ऐसे एक सहस्र श्यामकर्ण घोड़े माँगे॥ १४॥ किन्तु महर्षि ऋचीकने अश्वतीर्थसे उत्पन्न हुए वैसे एक सहस्र घोड़े उन्हें वरुणसे लेकर दे दिये॥ १५॥

तब ऋचीकने उस कन्यासे विवाह किया॥ १६॥ [तदुपरान्त एक समय] उन्होंने सन्तानकी कामनासे सत्यवतीके लिये चरु (यज्ञीय खीर) तैयार किया॥ १७॥ और उसीके द्वारा प्रसन्न किये जानेपर एक क्षत्रियश्रेष्ठ पुत्रकी उत्पत्तिके लिये एक और चरु उसकी माताके लिये भी बनाया॥ १८॥ और 'यह चरु तुम्हारे लिये है तथा यह तुम्हारी माताके लिये—इनका तुम यथोचित उपयोग करना'—ऐसा कहकर वे वनको चले गये॥ १९॥

उनका उपयोग करते समय सत्यवतीकी माताने उससे कहा—॥ २०॥ "बेटी! सभी लोग अपने ही लिये सबसे अधिक गुणवान् पुत्र चाहते हैं, अपनी पत्नीके भाईके गुणोंमें किसीकी भी विशेष रुचि नहीं होती॥ २१॥ अतः तू अपना चरु तो मुझे दे दे और मेरा तू ले ले; क्योंकि मेरे पुत्रको तो सम्पूर्ण भूमण्डलका पालन करना होगा और ब्राह्मणकुमारको तो बल, वीर्य तथा सम्पत्ति आदिसे लेना ही क्या है।" ऐसा कहनेपर सत्यवतीने अपना चरु अपनी माताको दे दिया॥ २२-२३॥

वनसे लौटनेपर ऋषिने सत्यवतीको देखकर कहा—"अरी पापिनि! तूने ऐसा क्या अकार्य किया है जिससे तेरा शरीर ऐसा भयानक प्रतीत होता है॥ २४-२५॥ अवश्य ही तूने अपनी माताके लिये तैयार किये चरुका उपयोग किया है, सो ठीक नहीं है॥ २६॥ मैंने उसमें सम्पूर्ण ऐश्वर्य, पराक्रम, शूरता और बलकी सम्पत्तिका आरोपण किया था तथा तेरेमें शान्ति, ज्ञान, तितिक्षा आदि सम्पूर्ण ब्राह्मणोचित गुणोंका समावेश किया था॥ २७॥ उनका विपरीत उपयोग करनेसे तेरे अति भयानक अस्त्र-शस्त्रधारी पालन-कर्ममें तत्पर क्षत्रियके समान

आचरणवाला पुत्र होगा और उसके शान्तिप्रिय ब्राह्मणाचारयुक्त पुत्र होगा।" यह सुनते ही सत्यवतीने उनके चरण पकड़ लिये और प्रणाम करके कहा— ॥ २८-२९ ॥ "भगवन्! अज्ञानसे ही मैंने ऐसा किया है, अतः प्रसन्न होइये और ऐसा कीजिये जिससे मेरा पुत्र ऐसा न हो, भले ही पौत्र ऐसा हो जाय!" इसपर मुनिने कहा— 'ऐसा ही हो।' ॥ ३०-३१ ॥

तदनन्तर उसने जमदग्निको जन्म दिया और उसकी माताने विश्वामित्रको उत्पन्न किया तथा सत्यवती कौशिकी नामकी नदी हो गयी ॥ ३२—३४ ॥

जमदग्निने इक्ष्वाकुकुलोद्भव रेणुकी कन्या रेणुकासे विवाह किया ॥ ३५ ॥ उससे जमदग्निके सम्पूर्ण क्षत्रियोंका ध्वंस करनेवाले भगवान् परशुरामजी उत्पन्न हुए जो सकल लोक-गुरु भगवान् नारायणके अंश थे ॥ ३६ ॥ देवताओंने विश्वामित्रजीको भृगुवंशीय शुनःशेप पुत्ररूपसे दिया था। उसके पीछे उनके देवरात नामक एक पुत्र हुआ और फिर मधुच्छन्द, धनञ्जय, कृतदेव, अष्टक, कच्छप एवं हारीतक नामक और भी पुत्र हुए ॥ ३७-३८ ॥ उनसे अन्यान्य ऋषिवंशोंमें विवाहने योग्य बहुत-से कौशिक-गोत्रीय पुत्र-पौत्रादि हुए ॥ ३९ ॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके चौथे अंशमें सातवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७ ॥

आठवाँ अध्याय

काश्यवंशका वर्णन

श्रीपराशरजी बोले—आयु नामक जो पुरूरवाका ज्येष्ठ पुत्र था उसने राहुकी कन्यासे विवाह किया ॥ १ ॥ उससे उसके पाँच पुत्र हुए जिनके नाम क्रमशः नहुष, क्षत्रवृद्ध, रम्भ, रजि और अनेना थे ॥ २-३ ॥ क्षत्रवृद्धके सुहोत्र नामक पुत्र हुआ और सुहोत्रके काश्य, काश तथा गृत्समद नामक तीन पुत्र हुए। गृत्समदका पुत्र शौनक चातुर्वर्ण्यका प्रवर्तक हुआ ॥ ४—६ ॥

काश्यका पुत्र काशिराज काशेय हुआ। उसके राष्ट्र, राष्ट्रके दीर्घतपा और दीर्घतपाके धन्वन्तरि नामक पुत्र हुआ ॥ ७-८ ॥ इस धन्वन्तरिके शरीर और इन्द्रियाँ जरा आदि विकारोंसे रहित थीं—तथा सभी जन्मोंमें यह सम्पूर्ण शास्त्रोंका जाननेवाला था। पूर्वजन्ममें भगवान् नारायणने उसे यह वर दिया था कि 'काशिराजके वंशमें उत्पन्न होकर तुम सम्पूर्ण आयुर्वेदको आठ भागोंमें विभक्त करोगे और यज्ञ-भागके भोक्ता होगे' ॥ ९-१० ॥

धन्वन्तरिका पुत्र केतुमान्, केतुमान्‌का भीमरथ, भीमरथका दिवोदास तथा दिवोदासका पुत्र प्रतर्दन हुआ ॥ ११ ॥ उसने मद्रश्रेण्यवंशका नाश करके समस्त शत्रुओंपर विजय प्राप्त की थी, इसलिये उसका नाम 'शत्रुजित्' हुआ ॥ १२ ॥ दिवोदासने अपने इस पुत्र (प्रतर्दन)-से अत्यन्त प्रेमवश 'वत्स, वत्स' कहा था, इसलिये इसका नाम 'वत्स' हुआ ॥ १३ ॥ अत्यन्त सत्यपरायण होनेके कारण इसका नाम 'ऋतध्वज' हुआ ॥ १४ ॥ तदनन्तर इसने कुवलय नामक अपूर्व अश्व प्राप्त किया। इसलिये यह इस पृथिवीतलपर 'कुवलयाश्व' नामसे विख्यात हुआ ॥ १५ ॥ इस वत्सके अलर्क नामक पुत्र हुआ जिसके विषयमें यह श्लोक आजतक गाया जाता है— ॥ १६ ॥

'पूर्वकालमें अलर्कके अतिरिक्त और किसीने भी छाछठ सहस्र वर्षतक युवावस्थामें रहकर पृथिवीका भोग नहीं किया'॥ १७॥

उस अलर्कके भी सन्नति नामक पुत्र हुआ; सन्नतिके सुनीथ, सुनीथके सुकेतु, सुकेतुके धर्मकेतु, धर्मकेतुके सत्यकेतु, सत्यकेतुके विभु, विभुके सुविभु, सुविभुके सुकुमार, सुकुमारके धृष्टकेतु, धृष्टकेतुके वीतिहोत्र, वीतिहोत्रके भार्ग और भार्गके भार्गभूमि नामक पुत्र हुआ; भार्गभूमिसे चातुर्वर्ण्यका प्रचार हुआ। इस प्रकार काश्यवंशके राजाओंका वर्णन हो चुका अब रजिकी सन्तानका विवरण सुनो॥ १८—२१॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके चौथे अंशमें आठवाँ अध्याय समाप्त॥ ८॥

नवाँ अध्याय

महाराज रजि और उनके पुत्रोंका चरित्र

श्रीपराशरजी बोले—रजिके अतुलित बल-पराक्रमशाली पाँच सौ पुत्र थे॥ १॥ एक बार देवासुर-संग्रामके आरम्भमें एक-दूसरेको मारनेकी इच्छावाले देवता और दैत्योंने ब्रह्माजीके पास जाकर पूछा—"भगवन्! हम दोनोंके पारस्परिक कलहमें कौन-सा पक्ष जीतेगा?"॥ २-३॥ तब भगवान् ब्रह्माजी बोले—"जिस पक्षकी ओरसे राजा रजि शस्त्र धारणकर युद्ध करेगा उसी पक्षकी विजय होगी"॥ ४-५॥

तब दैत्योंने जाकर रजिसे अपनी सहायताके लिये प्रार्थना की, इसपर रजि बोले—॥ ६॥ "यदि देवताओंको जीतनेपर मैं आपलोगोंका इन्द्र हो सकूँ तो आपके पक्षमें लड़ सकता हूँ॥ ७॥ यह सुनकर दैत्योंने कहा—"हमलोग एक बात कहकर उसके विरुद्ध दूसरी तरहका आचरण नहीं करते। हमारे इन्द्र तो प्रह्लादजी हैं और उन्हींके लिये हमारा यह सम्पूर्ण उद्योग है", ऐसा कहकर जब दैत्यगण चले गये तो देवताओंने भी आकर राजासे उसी प्रकार प्रार्थना की और उनसे भी उसने वही बात कही। तब देवताओंने यह कहकर कि 'आप ही हमारे इन्द्र होंगे' उसकी बात स्वीकार कर ली॥ ८॥

अत: रजिने देव-सेनाकी सहायता करते हुए अनेक महान् अस्त्रोंसे दैत्योंकी सम्पूर्ण सेना नष्ट कर दी॥ ९॥ तदनन्तर शत्रु-पक्षको जीत चुकनेपर देवराज इन्द्रने रजिके दोनों चरणोंको अपने मस्तकपर रखकर कहा—॥ १०॥ 'भयसे रक्षा करने और अन्न-दान देनेके कारण आप हमारे पिता हैं, आप सम्पूर्ण लोकोंमें सर्वोत्तम हैं; क्योंकि मैं त्रिलोकेन्द्र आपका पुत्र हूँ'॥ ११॥

इसपर राजाने हँसकर कहा—'अच्छा, ऐसा ही सही। शत्रुपक्षकी भी नाना प्रकारकी चाटुवाक्ययुक्त अनुनय-विनयका अतिक्रमण करना उचित नहीं होता [फिर स्वपक्षकी तो बात ही क्या है]।' ऐसा कहकर वे अपनी राजधानीको चले गये॥ १२-१३॥

इस प्रकार शतक्रतु ही इन्द्र-पदपर स्थित हुआ। पीछे, रजिके स्वर्गवासी होनेपर देवर्षि नारदजीकी प्रेरणासे रजिके पुत्रोंने अपने पिताके पुत्रभावको प्राप्त हुए शतक्रतुसे व्यवहारके अनुसार अपने पिताका राज्य माँगा॥ १४-१५॥ किन्तु जब उसने न दिया, तो उन महाबलवान् रजि-पुत्रोंने इन्द्रको जीतकर स्वयं ही इन्द्र-पदका भोग किया॥ १६॥

फिर बहुत-सा समय बीत जानेपर एक दिन बृहस्पतिजीको एकान्तमें बैठे देख त्रिलोकीके यज्ञभागसे वंचित हुए शतक्रतुने उनसे कहा— ॥ १७ ॥ क्या 'आप मेरी तृप्तिके लिये एक बेरके बराबर भी पुरोडाशखण्ड मुझे दे सकते हैं?' उनके ऐसा कहनेपर बृहस्पतिजी बोले— ॥ १८ ॥ 'यदि ऐसा है, तो पहले ही तुमने मुझसे क्यों नहीं कहा? तुम्हारे लिये भला मैं क्या नहीं कर सकता? अच्छा, अब थोड़े ही दिनोंमें मैं तुम्हें अपने पदपर स्थित कर दूँगा।' ऐसा कह बृहस्पतिजी रजि-पुत्रोंकी बुद्धिको मोहित करनेके लिये अभिचार और इन्द्रकी तेजोवृद्धिके लिये हवन करने लगे ॥ १९ ॥ बुद्धिको मोहित करनेवाले उस अभिचार-कर्मसे अभिभूत हो जानेके कारण रजि-पुत्र ब्राह्मण-विरोधी, धर्म-त्यागी और वेद-विमुख हो गये ॥ २० ॥ तब धर्माचारहीन हो जानेसे इन्द्रने उन्हें मार डाला ॥ २१ ॥ और पुरोहितजीके द्वारा तेजोवृद्ध होकर स्वर्गपर अपना अधिकार जमा लिया ॥ २२ ॥

इस प्रकार इन्द्रके अपने पदसे गिरकर उसपर फिर आरूढ़ होनेके इस प्रसंगको सुननेसे पुरुष अपने पदसे पतित नहीं होता और उसमें कभी दुष्टता नहीं आती ॥ २३ ॥

[आयुका दूसरा पुत्र] रम्भ सन्तानहीन हुआ ॥ २४ ॥ क्षत्रवृद्धका पुत्र प्रतिक्षत्र हुआ, प्रतिक्षत्रका संजय, संजयका जय, जयका विजय, विजयका कृत, कृतका हर्यधन, हर्यधनका सहदेव, सहदेवका अदीन, अदीनका जयत्सेन, जयत्सेनका संस्कृति और संस्कृतिका पुत्र क्षत्रधर्मा हुआ। ये सब क्षत्रवृद्धके वंशज हुए ॥ २५—२७ ॥ अब मैं नहुषवंशका वर्णन करूँगा ॥ २८ ॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके चौथे अंशमें नवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९ ॥

दसवाँ अध्याय

ययातिका चरित्र

श्रीपराशरजी बोले—नहुषके यति, ययाति, संयाति, आयाति, वियाति और कृति नामक छः महाबल-विक्रमशाली पुत्र हुए ॥ १ ॥ यतिने राज्यकी इच्छा नहीं की, इसलिये ययाति ही राजा हुआ ॥ २-३ ॥ ययातिने शुक्राचार्यजीकी पुत्री देवयानी और वृषपर्वाकी कन्या शर्मिष्ठासे विवाह किया था ॥ ४ ॥ उनके वंशके सम्बन्धमें यह श्लोक प्रसिद्ध है— ॥ ५ ॥

'देवयानीने यदु और तुर्वसुको जन्म दिया तथा वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठाने द्रुह्यु, अनु और पूरुको उत्पन्न किया' ॥ ६ ॥

ययातिको शुक्राचार्यजीके शापसे वृद्धावस्थाने असमय ही घेर लिया था ॥ ७ ॥ पीछे शुक्रजीके प्रसन्न होकर कहनेपर उन्होंने अपनी वृद्धावस्थाको ग्रहण करनेके लिये बड़े पुत्र यदुसे कहा— ॥ ८ ॥ 'वत्स! तुम्हारे नानाजीके शापसे मुझे असमयमें ही वृद्धावस्थाने घेर लिया है, अब उन्हींकी कृपासे मैं उसे तुमको देना चाहता हूँ ॥ ९ ॥

मैं अभी विषय-भोगोंसे तृप्त नहीं हुआ हूँ, इसलिये एक सहस्र वर्षतक मैं तुम्हारी युवावस्थासे उन्हें भोगना चाहता हूँ ॥ १० ॥ इस विषयमें तुम्हें किसी प्रकारकी आनाकानी नहीं करनी चाहिये।' किन्तु पिताके ऐसा कहनेपर भी यदुने वृद्धावस्थाको ग्रहण करना न चाहा ॥ ११ ॥ तब पिताने उसे शाप दिया कि तेरी सन्तान राज्य-पदके योग्य न होगी ॥ १२ ॥

फिर राजा ययातिने तुर्वसु, द्रुह्यु और अनुसे भी अपना यौवन देकर वृद्धावस्था ग्रहण करनेके लिये कहा; तथा उनमेंसे प्रत्येकके अस्वीकार करनेपर उन्होंने उन सभीको शाप दे दिया॥ १३-१४॥ अन्तमें सबसे छोटे शर्मिष्ठाके पुत्र पूरुसे भी वही बात कही तो उसने अति नम्रता और आदरके साथ पिताको प्रणाम करके उदारतापूर्वक कहा—'यह तो हमारे ऊपर आपका महान् अनुग्रह है।' ऐसा कहकर पूरुने अपने पिताकी वृद्धावस्था ग्रहण कर उन्हें अपना यौवन दे दिया॥ १५—१७॥

राजा ययातिने पूरुका यौवन लेकर समयानुसार प्राप्त हुए यथेच्छ विषयोंको अपने उत्साहके अनुसार धर्मपूर्वक भोगा और अपनी प्रजाका भली प्रकार पालन किया॥ १८-१९॥ फिर विश्वाची और देवयानीके साथ विविध भोगोंको भोगते हुए 'मैं कामनाओंका अन्त कर दूँगा'—ऐसे सोचते-सोचते वे प्रतिदिन [भोगोंके लिये] उत्कण्ठित रहने लगे॥ २०॥ और निरन्तर भोगते रहनेसे उन कामनाओंको अत्यन्त प्रिय मानने लगे; तदुपरान्त उन्होंने इस प्रकार अपना उद्गार प्रकट किया॥ २१-२२॥

'भोगोंकी तृष्णा उनके भोगनेसे कभी शान्त नहीं होती, बल्कि घृताहुतिसे अग्निके समान वह बढ़ती ही जाती है॥ २३॥ सम्पूर्ण पृथिवीमें जितने भी धान्य, यव, सुवर्ण, पशु और स्त्रियाँ हैं वे सब एक मनुष्यके लिये भी सन्तोषजनक नहीं हैं, इसलिये तृष्णाको सर्वथा त्याग देना चाहिये॥ २४॥ जिस समय कोई पुरुष किसी भी प्राणीके लिये पापमयी भावना नहीं करता, उस समय उस समदर्शीके लिये सभी दिशाएँ सुखमयी हो जाती हैं॥ २५॥ दुर्मतियोंके लिये जो अत्यन्त दुस्त्यज है तथा वृद्धावस्थामें भी जो शिथिल नहीं होती, बुद्धिमान् पुरुष उस तृष्णाको त्यागकर सुखसे परिपूर्ण हो जाता है॥ २६॥ अवस्थाके जीर्ण होनेपर केश और दाँत तो जीर्ण हो जाते हैं किन्तु जीवन और धनकी आशाएँ उसके जीर्ण होनेपर भी नहीं जीर्ण होतीं॥ २७॥ विषयोंमें आसक्त रहते हुए मुझे एक सहस्र वर्ष बीत गये, फिर भी नित्य ही उनमें मेरी कामना होती है॥ २८॥

अत: अब मैं इसे छोड़कर और अपने चित्तको भगवान्‌में ही स्थिर कर निर्द्वन्द्व और निर्मम होकर [वनमें] मृगोंके साथ विचरूँगा॥ २९॥

श्रीपराशरजी बोले—तदनन्तर राजा ययातिने पूरुसे अपनी वृद्धावस्था लेकर उसका यौवन दे दिया और उसे राज्य-पदपर अभिषिक्त कर वनको चले गये॥ ३०॥ उन्होंने दक्षिण-पूर्व दिशामें तुर्वसुको, पश्चिममें द्रुह्युको, दक्षिणमें यदुको और उत्तरमें अनुको माण्डलिकपदपर नियुक्त किया; तथा पूरुको सम्पूर्ण भूमण्डलके राज्यपर अभिषिक्त कर स्वयं वनको चले गये॥ ३१-३२॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके चौथे अंशमें दसवाँ अध्याय समाप्त॥ १०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

यदुवंशका वर्णन और सहस्रार्जुनका चरित्र

श्रीपराशरजी बोले—अब मैं ययातिके प्रथम पुत्र यदुके वंशका वर्णन करता हूँ, जिसमें कि मनुष्य, सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, गुह्यक, किंपुरुष, अप्सरा, सर्प, पक्षी, दैत्य, दानव, आदित्य, रुद्र,

वसु, अश्विनीकुमार, मरुद्गण, देवर्षि, मुमुक्षु तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके अभिलाषी पुरुषोंद्वारा सर्वदा स्तुति किये जानेवाले, अखिललोक-विश्राम आद्यन्तहीन भगवान् विष्णुने अपने अपरिमित महत्त्वशाली अंशसे अवतार लिया था। इस विषयमें यह श्लोक प्रसिद्ध है— ॥ १—३ ॥

'जिसमें श्रीकृष्ण नामक निराकार परब्रह्मने अवतार लिया था, उस यदुवंशका श्रवण करनेसे मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है'॥ ४ ॥

यदुके सहस्रजित्, क्रोष्टु, नल और नहुष नामक चार पुत्र हुए। सहस्रजित्के शतजित् और शतजित्के हैहय, हेहय तथा वेणुहय नामक तीन पुत्र हुए॥ ५—७॥ हैहयका पुत्र धर्म, धर्मका धर्मनेत्र, धर्मनेत्रका कुन्ति, कुन्तिका सहजित् तथा सहजित्का पुत्र महिष्मान् हुआ, जिसने माहिष्मतीपुरीको बसाया॥ ८-९ ॥ महिष्मान्के भद्रश्रेण्य, भद्रश्रेण्यके दुर्दम, दुर्दमके धनक तथा धनकके कृतवीर्य, कृताग्नि, कृतधर्म और कृतौजा नामक चार पुत्र हुए॥ १० ॥

कृतवीर्यके सहस्र भुजाओंवाले सप्तद्वीपाधिपति अर्जुनका जन्म हुआ॥ ११ ॥ सहस्रार्जुनने अत्रिकुलमें उत्पन्न भगवदंशरूप श्रीदत्तात्रेयजीकी उपासना कर 'सहस्र भुजाएँ, अधर्माचरणका निवारण, स्वधर्मका सेवन, युद्धके द्वारा सम्पूर्ण पृथिवीमण्डलका विजय, धर्मानुसार प्रजा-पालन, शत्रुओंसे अपराजय तथा त्रिलोकप्रसिद्ध पुरुषसे मृत्यु'—ऐसे कई वर माँगे और प्राप्त किये थे॥ १२ ॥ अर्जुनने इस सम्पूर्ण सप्तद्वीपवती पृथिवीका पालन तथा दस हजार यज्ञोंका अनुष्ठान किया था॥ १३-१४॥ उसके विषयमें यह श्लोक आजतक कहा जाता है— ॥ १५ ॥

'यज्ञ, दान, तप, विनय और विद्यामें कार्तवीर्य— सहस्रार्जुनकी समता कोई भी राजा नहीं कर सकता'॥ १६ ॥

उसके राज्यमें कोई भी पदार्थ नष्ट नहीं होता था॥ १७ ॥ इस प्रकार उसने बल, पराक्रम, आरोग्य और सम्पत्तिको सर्वथा सुरक्षित रखते हुए पचासी हजार वर्ष राज्य किया॥ १८ ॥ एक दिन जब वह अतिशय मद्य-पानसे व्याकुल हुआ नर्मदा नदीमें जल-क्रीडा कर रहा था, उसकी राजधानी माहिष्मतीपुरीपर दिग्विजयके लिये आये हुए सम्पूर्ण देव, दानव, गन्धर्व और राजाओंके विजयमदसे उन्मत्त रावणने आक्रमण किया, उस समय उसने अनायास ही रावणको पशुके समान बाँधकर अपने नगरके एक निर्जन स्थानमें रख दिया॥ १९ ॥ इस सहस्रार्जुनका पचासी हजार वर्ष व्यतीत होनेपर भगवान् नारायणके अंशावतार परशुरामजीने वध किया था॥ २० ॥ इसके सौ पुत्रोंमेंसे शूर, शूरसेन, वृषसेन, मधु और जयध्वज—ये पाँच प्रधान थे॥ २१ ॥

जयध्वजका पुत्र तालजंघ हुआ और तालजंघके तालजंघ नामक सौ पुत्र हुए, इनमें सबसे बड़ा वीतिहोत्र तथा दूसरा भरत था॥ २२—२४॥ भरतके वृष, वृषके मधु और मधुके वृष्णि आदि सौ पुत्र हुए॥ २५—२७॥ वृष्णिके कारण यह वंश वृष्णि कहलाया॥ २८॥ मधुके कारण इसकी मधु-संज्ञा हुई॥ २९ ॥ और यदुके नामानुसार इस वंशके लोग यादव कहलाये॥ ३० ॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके चौथे अंशमें ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त॥ ११ ॥

बारहवाँ अध्याय

यदुपुत्र क्रोष्टुका वंश

श्रीपराशरजी बोले—यदुपुत्र क्रोष्टुके ध्वजिनीवान् नामक पुत्र हुआ ॥ १ ॥ उसके स्वाति, स्वातिके रुशंकु, रुशंकुके चित्ररथ और चित्ररथके शशिबिन्दु नामक पुत्र हुआ जो चौदहों महारत्नोंका* स्वामी तथा चक्रवर्ती सम्राट् था ॥ २-३ ॥ शशिबिन्दुके एक लाख स्त्रियाँ और दस लाख पुत्र थे ॥ ४-५ ॥ उनमें पृथुश्रवा, पृथुकर्मा, पृथुकीर्ति, पृथुयशा, पृथुजय और पृथुदान—ये छः पुत्र प्रधान थे ॥ ६ ॥ पृथुश्रवाका पुत्र पृथुतम और उसका पुत्र उशना हुआ जिसने सौ अश्वमेध-यज्ञ किया था ॥ ७-८ ॥ उशनाके शितपु नामक पुत्र हुआ ॥ ९ ॥ शितपुके रुक्मकवच, रुक्मकवचके परावृत् तथा परावृत्के रुक्मेषु, पृथु, ज्यामघ, वलित और हरित नामक पाँच पुत्र हुए ॥ १०-११ ॥ इनमेंसे ज्यामघके विषयमें अब भी यह श्लोक गाया जाता है— ॥ १२ ॥

संसारमें स्त्रीके वशीभूत जो-जो लोग होंगे और जो-जो पहले हो चुके हैं उनमें शैव्याका पति राजा ज्यामघ ही सर्वश्रेष्ठ है ॥ १३ ॥ उसकी स्त्री शैव्या यद्यपि निःसन्तान थी तथापि सन्तानकी इच्छा रहते हुए भी उसने उसके भयसे दूसरी स्त्रीसे विवाह नहीं किया ॥ १४ ॥

एक दिन बहुत-से रथ, घोड़े और हाथियोंके संघट्टसे अत्यन्त भयानक महायुद्धमें लड़ते हुए उसने अपने समस्त शत्रुओंको जीत लिया ॥ १५ ॥ उस समय वे समस्त शत्रुगण पुत्र, मित्र, स्त्री, सेना और कोशादिसे हीन होकर अपने-अपने स्थानोंको छोड़कर दिशा-विदिशाओंमें भाग गये ॥ १६ ॥ उनके भाग जानेपर उसने एक राजकन्याको देखा जो अत्यन्त भयसे कातर हुई विशाल आँखोंसे [देखती हुई] 'हे तात, हे मातः, हे भ्रातः ! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो' इस प्रकार व्याकुलतापूर्वक विलाप कर रही थी ॥ १७ ॥ उसको देखते ही उसमें अनुरक्त-चित्त हो जानेसे राजाने विचार किया ॥ १८ ॥ 'यह अच्छा ही हुआ; मैं पुत्रहीन और वन्ध्याका पति हूँ; ऐसा मालूम होता है कि सन्तानकी कारणरूपा इस कन्यारत्नको विधाताने ही इस समय यहाँ भेजा है ॥ १९ ॥ तो फिर मुझे इससे विवाह कर लेना चाहिये ॥ २० ॥ अथवा इसे अपने रथपर बैठाकर अपने निवासस्थानको लिये चलता हूँ, वहाँ देवी शैव्याकी आज्ञा लेकर ही इससे विवाह कर लूँगा' ॥ २१-२२ ॥

तदनन्तर वे उसे रथपर चढ़ाकर अपने नगरको ले चले ॥ २३ ॥ वहाँ विजयी राजाके दर्शनके लिये सम्पूर्ण पुरवासी, सेवक, कुटुम्बीजन और मन्त्रिवर्गके सहित महारानी शैव्या नगरके द्वारपर आयी हुई थी ॥ २४ ॥ उसने राजाके वामभागमें बैठी हुई राजकन्याको देखकर क्रोधके कारण

* धर्मसंहितामें चौदह रत्नोंका उल्लेख इस प्रकार किया है—

'चक्रं रथो मणिः खड्गश्चर्म रत्नं च पञ्चमम्। केतुर्निधिश्च सप्तैव प्राणहीनानि चक्षते ॥
भार्या पुरोहितश्चैव सेनानी रथकृच्च यः। पत्त्यश्वकलभाश्चेति प्राणिनः सप्त कीर्तिताः ॥
चतुर्दशेति रत्नानि सर्वेषां चक्रवर्त्तिनाम्।'

अर्थात् चक्र, रथ, मणि, खड्ग, चर्म (ढाल), ध्वजा और निधि (खजाना)—ये सात प्राणहीन तथा स्त्री, पुरोहित, सेनापति, रथी, पदाति, अश्वारोही और गजारोही—ये सात प्राणयुक्त इस प्रकार कुल चौदह रत्न सब चक्रवर्त्तियोंके यहाँ रहते हैं।

कुछ काँपते हुए होठोंसे कहा— ॥ २५ ॥ "हे अति चपलचित्त! तुमने रथमें यह किसे बैठा रखी है?" ॥ २६ ॥ राजाको भी जब कोई उत्तर न सूझा तो अत्यन्त डरते-डरते कहा—"यह मेरी पुत्रवधू है।" ॥ २७ ॥ तब शैव्या बोली— ॥ २८ ॥

"मेरे तो कोई पुत्र हुआ नहीं है और आपके दूसरी कोई स्त्री भी नहीं है, फिर किस पुत्रके कारण आपका इससे पुत्रवधूका सम्बन्ध हुआ?" ॥ २९ ॥

श्रीपराशरजी बोले—इस प्रकार शैव्याके ईर्ष्या और क्रोध-कलुषित वचनोंसे विवेकहीन होकर भयके कारण कही हुई असंबद्ध बातके सन्देहको दूर करनेके लिये राजाने कहा— ॥ ३० ॥ "तुम्हारे जो पुत्र होनेवाला है उस भावी शिशुकी मैंने यह पहलेसे ही भार्या निश्चित कर दी है।" यह सुनकर रानीने मधुर मुसकानके साथ कहा—'अच्छा, ऐसा ही हो' और राजाके साथ नगरमें प्रवेश किया ॥ ३१-३२ ॥

तदनन्तर पुत्र-लाभके गुणोंसे युक्त उस अति विशुद्ध लग्न होरांशक अवयवके समय हुए पुत्रजन्मविषयक वार्तालापके प्रभावसे गर्भधारणके योग्य अवस्था न रहनेपर भी थोड़े ही दिनोंमें शैव्याके गर्भ रह गया और यथासमय एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ३३-३४ ॥ पिताने उसका नाम विदर्भ रखा ॥ ३५ ॥ और उसीके साथ उस पुत्रवधूका पाणिग्रहण हुआ ॥ ३६ ॥ उससे विदर्भने क्रथ और कैशिक नामक दो पुत्र उत्पन्न किये ॥ ३७ ॥ फिर रोमपाद नामक एक तीसरे पुत्रको जन्म दिया जो नारदजीके उपदेशसे ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न हो गया था ॥ ३८ ॥ रोमपादके बभ्रु, बभ्रुके धृति, धृतिके कैशिक और कैशिकके चेदि नामक पुत्र हुआ जिसकी सन्ततिमें चैद्य राजाओंने जन्म लिया ॥ ३९ ॥

ज्यामघकी पुत्रवधूके पुत्र क्रथके कुन्ति नामक पुत्र हुआ ॥ ४० ॥ कुन्तिके धृष्टि, धृष्टिके निधृति, निधृतिके दशार्ह, दशार्हके व्योमा, व्योमाके जीमूत, जीमूतके विकृति, विकृतिके भीमरथ, भीमरथके नवरथ, नवरथके दशरथ, दशरथके शकुनि, शकुनिके करम्भि, करम्भिके देवरात, देवरातके देवक्षत्र, देवक्षत्रके मधु, मधुके कुमारवंश, कुमारवंशके अनु, अनुके राजा पुरुमित्र, पुरुमित्रके अंशु और अंशुके सत्वत नामक पुत्र हुआ तथा सत्वतसे सात्वतवंशका प्रादुर्भाव हुआ ॥ ४१-४४ ॥ हे मैत्रेय! इस प्रकार ज्यामघकी सन्तानका श्रद्धापूर्वक भली प्रकार श्रवण करनेसे मनुष्य अपने समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ ४५ ॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके चौथे अंशमें बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२ ॥

तेरहवाँ अध्याय

सत्वतकी सन्ततिका वर्णन और स्यमन्तकमणिकी कथा

श्रीपराशरजी बोले—सत्वतके भजन, भजमान, दिव्य, अन्धक, देवावृध, महाभोज और वृष्णि नामक पुत्र हुए ॥ १ ॥ भजमानके निमि, कृकण और वृष्णि तथा इनके तीन सौतेले भाई शतजित्, सहस्रजित् और अयुतजित्—ये छः पुत्र हुए ॥ २ ॥ देवावृधके बभ्रु नामक पुत्र हुआ ॥ ३ ॥ इन दोनों (पिता-पुत्रों)-के विषयमें यह श्लोक प्रसिद्ध है— ॥ ४ ॥

'जैसा हमने दूरसे सुना था वैसा ही पास जाकर भी देखा; वास्तवमें बभ्रु मनुष्योंमें श्रेष्ठ है

और देवावृध तो देवताओंके समान है॥ ५॥ बभ्रु और देवावृध [-के उपदेश किये हुए मार्गका अवलम्बन करने]-से क्रमशः छः हजार चौहत्तर (६०७४) मनुष्योंने अमरपद प्राप्त किया था'॥ ६॥

महाभोज बड़ा धर्मात्मा था, उसकी सन्तानमें भोजवंशी तथा मृत्तिकावरपुर निवासी मार्त्तिकावर नृपतिगण हुए॥ ७॥ वृष्णिके दो पुत्र सुमित्र और युधाजित् हुए, उनमेंसे सुमित्रके अनमित्र, अनमित्रके निघ्न तथा निघ्नसे प्रसेन और सत्राजित्का जन्म हुआ॥ ८—१०॥

उस सत्राजित्के मित्र भगवान् आदित्य हुए॥ ११॥ एक दिन समुद्र-तटपर बैठे हुए सत्राजित्ने सूर्यभगवान्की स्तुति की। उसके तन्मय होकर स्तुति करनेसे भगवान् भास्कर उसके सम्मुख प्रकट हुए॥ १२॥ उस समय उनको अस्पष्ट मूर्ति धारण किये हुए देखकर सत्राजित्ने सूर्यसे कहा— ॥ १३॥ "आकाशमें अग्निपिण्डके समान आपको जैसा मैंने देखा है वैसा ही सम्मुख आनेपर भी देख रहा हूँ। यहाँ आपकी प्रसादस्वरूप कुछ विशेषता मुझे नहीं दीखती।" सत्राजित्के ऐसा कहनेपर भगवान् सूर्यने अपने गलेसे स्यमन्तक नामकी उत्तम महामणि उतारकर अलग रख दी॥ १४॥

तब सत्राजित्ने भगवान् सूर्यको देखा— उनका शरीर किंचित् ताम्रवर्ण, अति उज्ज्वल और लघु था तथा उनके नेत्र कुछ पिंगलवर्ण थे॥ १५॥ तदनन्तर सत्राजित्के प्रणाम तथा स्तुति आदि कर चुकनेपर सहस्रांशु भगवान् आदित्यने उससे कहा—"तुम अपना अभीष्ट वर माँगो"॥ १६॥ सत्राजित्ने उस स्यमन्तकमणिको ही माँगा॥ १७॥ तब भगवान् सूर्य उसे वह मणि देकर अन्तरिक्षमें अपने स्थानको चले गये॥ १८॥

फिर सत्राजित्ने उस निर्मल मणिरत्नसे अपना कण्ठ सुशोभित होनेके कारण तेजसे सूर्यके समान समस्त दिशाओंको प्रकाशित करते हुए द्वारकामें प्रवेश किया॥ १९॥ द्वारकावासी लोगोंने उसे आते देख, पृथिवीका भार उतारनेके लिये अंशरूपसे अवतीर्ण हुए मनुष्यरूपधारी आदिपुरुष भगवान् पुरुषोत्तमसे प्रणाम करके कहा— ॥ २०॥ "भगवन्! आपके दर्शनोंके लिये निश्चय ही ये भगवान् सूर्यदेव आ रहे हैं" उनके ऐसा कहनेपर भगवान्ने उनसे कहा— ॥ २१॥ "ये भगवान् सूर्य नहीं हैं, सत्राजित् है। यह सूर्यभगवान्से प्राप्त हुई स्यमन्तक नामकी महामणिको धारणकर यहाँ आ रहा है॥ २२॥ तुमलोग अब विश्वस्त होकर इसे देखो।" भगवान्के ऐसा कहनेपर द्वारकावासी उसे उसी प्रकार देखने लगे॥ २३॥

सत्राजित्ने वह स्यमन्तकमणि अपने घरमें रख दी॥ २४॥ वह मणि प्रतिदिन आठ भार सोना देती थी॥ २५॥ उसके प्रभावसे सम्पूर्ण राष्ट्रमें रोग, अनावृष्टि तथा सर्प, अग्नि, चोर या दुर्भिक्ष आदिका भय नहीं रहता था॥ २६॥ भगवान् अच्युतको भी ऐसी इच्छा हुई कि यह दिव्य रत्न तो राजा उग्रसेनके योग्य है॥ २७॥ किन्तु जातीय विद्रोहके भयसे समर्थ होते हुए भी उन्होंने उसे छीना नहीं॥ २८॥

सत्राजित्को जब यह मालूम हुआ कि भगवान् मुझसे यह रत्न माँगनेवाले हैं तो उसने लोभवश उसे अपने भाई प्रसेनको दे दिया॥ २९॥ किन्तु इस बातको न जानते हुए कि पवित्रतापूर्वक धारण करनेसे तो यह मणि सुवर्ण-दान आदि अनेक गुण प्रकट करती है और अशुद्धावस्थामें धारण करनेसे घातक हो जाती है, प्रसेन उसे अपने गलेमें बाँधे हुए घोड़ेपर चढ़कर मृगयाके लिये वनको चला गया॥ ३०॥ वहाँ उसे एक सिंहने मार डाला॥ ३१॥ जब वह सिंह घोड़ेके

सहित उसे मारकर उस निर्मल मणिको अपने मुँहमें लेकर चलनेको तैयार हुआ तो उसी समय ऋक्षराज जाम्बवान्ने उसे देखकर मार डाला॥ ३२॥ तदनन्तर उस निर्मल मणिरत्नको लेकर जाम्बवान् अपनी गुफामें आया॥ ३३॥ और उसे सुकुमार नामक अपने बालकके लिये खिलौना बना लिया॥ ३४॥

प्रसेनके न लौटनेपर सब यादवोंमें आपसमें यह कानाफूँसी होने लगी कि "कृष्ण इस मणिरत्नको लेना चाहते थे, अवश्य ही इन्हींने उसे ले लिया है—निश्चय यह इन्हींका काम है"॥ ३५॥

इस लोकापवादका पता लगनेपर सम्पूर्ण यादवसेनाके सहित भगवान्ने प्रसेनके घोड़ेके चरण-चिह्नोंका अनुसरण किया और आगे जाकर देखा कि प्रसेनको घोड़ेसहित सिंहने मार डाला है॥ ३६-३७॥ फिर सब लोगोंके बीच सिंहके चरण-चिह्न देख लिये जानेसे अपनी सफाई हो जानेपर भी भगवान्ने उन चिह्नोंका अनुसरण किया और थोड़ी ही दूरीपर ऋक्षराजद्वारा मारे हुए सिंहको देखा; किन्तु उस रत्नके महत्त्वके कारण उन्होंने जाम्बवान्के पद-चिह्नोंका भी अनुसरण किया॥ ३८-३९॥ और सम्पूर्ण यादव-सेनाको पर्वतके तटपर छोड़कर ऋक्षराजके चरणोंका अनुसरण करते हुए स्वयं उनकी गुफामें घुस गये॥ ४०॥

भीतर जानेपर भगवान्ने सुकुमारको बहलाती हुई धात्रीकी यह वाणी सुनी—॥ ४१॥

सिंहने प्रसेनको मारा और सिंहको जाम्बवान्ने; हे सुकुमार! तू रो मत यह स्यमन्तकमणि तेरी ही है॥ ४२॥

यह सुननेसे स्यमन्तकका पता लगनेपर भगवान्ने भीतर जाकर देखा कि सुकुमारके लिये खिलौना बनी हुई स्यमन्तकमणि धात्रीके हाथपर अपने तेजसे देदीप्यमान हो रही है॥ ४३॥ स्यमन्तकमणिकी ओर अभिलाषापूर्ण दृष्टिसे देखते हुए एक विलक्षण पुरुषको वहाँ आया देख धात्री 'त्राहि-त्राहि' करके चिल्लाने लगी॥ ४४॥

उसकी आर्त्त-वाणीको सुनकर जाम्बवान् क्रोधपूर्ण हृदयसे वहाँ आया॥ ४५॥ फिर परस्पर रोष बढ़ जानेसे उन दोनोंका इक्कीस दिनतक घोर युद्ध हुआ॥ ४६॥ पर्वतके पास भगवान्की प्रतीक्षा करनेवाले यादव-सैनिक सात-आठ दिनतक उनके गुफासे बाहर आनेकी बाट देखते रहे॥ ४७॥ किन्तु जब इतने दिनोंतक वे उसमेंसे न निकले तो उन्होंने समझा कि 'अवश्य ही श्रीमधुसूदन इस गुफामें मारे गये, नहीं तो जीवित रहनेपर शत्रुके जीतनेमें उन्हें इतने दिन क्यों लगते?' ऐसा निश्चय कर वे द्वारकामें चले आये और वहाँ कह दिया कि श्रीकृष्ण मारे गये॥ ४८॥ उनके बन्धुओंने यह सुनकर समयोचित सम्पूर्ण और्ध्वदैहिक कर्म कर दिये॥ ४९॥

इधर, अति श्रद्धापूर्वक दिये हुए विशिष्ट पात्रोंसहित इनके अन्न और जलसे युद्ध करते समय श्रीकृष्णचन्द्रके बल और प्राणकी पुष्टि हो गयी॥ ५०॥ तथा अति महान् पुरुषके द्वारा मर्दित होते हुए उनके अत्यन्त निष्ठुर प्रहारोंके आघातसे पीडित शरीरवाले जाम्बवान्का बल निराहार रहनेसे क्षीण हो गया॥ ५१॥ अन्तमें भगवान्से पराजित होकर जाम्बवान्ने उन्हें प्रणाम करके कहा—॥ ५२॥ "भगवन्! आपको तो देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस आदि कोई भी नहीं जीत सकते, फिर पृथिवीतलपर रहनेवाले अल्पवीर्य मनुष्य अथवा मनुष्योंके अवयवभूत हम-जैसे तिर्यक्-योनिगत जीवोंकी तो बात ही क्या है? अवश्य ही आप हमारे प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके

समान सकल लोक-प्रतिपालक भगवान् नारायणके ही अंशसे प्रकट हुए हैं।'' जाम्बवान्‌के ऐसा कहनेपर भगवान्‌ने पृथिवीका भार उतारनेके लिये अपने अवतार लेनेका सम्पूर्ण वृत्तान्त उससे कह दिया और उसे प्रीतिपूर्वक अपने हाथसे छूकर युद्धके श्रमसे रहित कर दिया॥ ५३-५४॥

तदनन्तर जाम्बवान्‌ने पुन: प्रणाम करके उन्हें प्रसन्न किया और घरपर आये हुए भगवान्‌के लिये अर्घ्यस्वरूप अपनी जाम्बवती नामकी कन्या दे दी तथा उन्हें प्रणाम करके मणिरत्न स्यमन्तक भी दे दिया॥ ५५-५६॥ भगवान् अच्युतने भी उस अति विनीतसे लेनेयोग्य न होनेपर भी अपने कलंक-शोधनके लिये वह मणिरत्न ले लिया और जाम्बवतीके सहित द्वारकामें आये॥ ५७-५८॥

उस समय भगवान् कृष्णचन्द्रके आगमनसे जिनके हर्षका वेग अत्यन्त बढ़ गया है उन द्वारकावासियोंमेंसे बहुत ढली हुई अवस्थावालोंमें भी उनके दर्शनके प्रभावसे तत्काल ही मानो नवयौवनका संचार हो गया॥ ५९॥ तथा सम्पूर्ण यादवगण और उनकी स्त्रियाँ 'अहोभाग्य! अहोभाग्य!!' ऐसा कहकर उनका अभिवादन करने लगीं॥ ६०॥ भगवान्‌ने भी जो-जो बात जैसे-जैसे हुई थी वह ज्यों-की-त्यों यादव-समाजमें सुना दी और सत्राजित्‌को स्यमन्तकमणि देकर मिथ्या कलंकसे छुटकारा पा लिया। फिर जाम्बवतीको अपने अन्त:पुरमें पहुँचा दिया॥ ६१—६३॥

सत्राजित्‌ने भी यह सोचकर कि मैंने ही कृष्णचन्द्रको मिथ्या कलंक लगाया था, डरते-डरते उन्हें पत्नीरूपसे अपनी कन्या सत्यभामा विवाह दी॥ ६४॥ उस कन्याको अक्रूर, कृतवर्मा और शतधन्वा आदि यादवोंने पहले वरण किया था॥ ६५॥ अत: श्रीकृष्णचन्द्रके साथ उसे विवाह देनेसे उन्होंने अपना अपमान समझकर सत्राजित्‌से वैर बाँध लिया॥ ६६॥

तदनन्तर अक्रूर और कृतवर्मा आदिने शतधन्वासे कहा—॥ ६७॥ "यह सत्राजित् बड़ा ही दुष्ट है, देखो, इसने हमारे और आपके माँगनेपर भी हमलोगोंको कुछ भी न समझकर अपनी कन्या कृष्णचन्द्रको दे दी॥ ६८॥ अत: अब इसके जीवनका प्रयोजन ही क्या है; इसको मारकर आप स्यमन्तक महामणि क्यों नहीं ले लेते हैं? पीछे, यदि अच्युत आपसे किसी प्रकारका विरोध करेंगे तो हमलोग भी आपका साथ देंगे।'' उनके ऐसा कहनेपर शतधन्वाने कहा—"बहुत अच्छा, ऐसा ही करेंगे''॥ ६९॥

इसी समय पाण्डवोंके लाक्षागृहमें जलनेपर, यथार्थ बातको जानते हुए भी भगवान् कृष्णचन्द्र दुर्योधनके प्रयत्नको शिथिल करनेके उद्देश्यसे कुलोचित कर्म करनेके लिये वारणावत नगरको गये॥ ७०॥

उनके चले जानेपर शतधन्वाने सोते हुए सत्राजित्‌को मारकर वह मणिरत्न ले लिया॥ ७१॥ पिताके वधसे क्रोधित हुई सत्यभामा तुरन्त ही रथपर चढ़कर वारणावत नगरमें पहुँची और भगवान् कृष्णसे बोली—"भगवन्! पिताजीने मुझे आपके करकमलोंमें सौंप दिया—इस बातको सहन न कर सकनेके कारण शतधन्वाने मेरे पिताजीको मार दिया है और उस स्यमन्तक नामक मणिरत्नको ले लिया है जिसके प्रकाशसे सम्पूर्ण त्रिलोकी भी अन्धकारशून्य हो जायगी॥ ७२॥ इसमें आपहीकी हँसी है इसलिये सब बातोंका विचार करके जैसा उचित समझें, करें''॥ ७३॥

सत्यभामाके ऐसा कहनेपर भगवान् श्रीकृष्णने मन-ही-मन प्रसन्न होनेपर भी उनसे क्रोधसे आँखें लाल करके कहा—॥ ७४॥ "सत्ये! अवश्य इसमें मेरी ही हँसी है, उस दुरात्माके इस

कुकर्मको मैं सहन नहीं कर सकता, क्योंकि यदि ऊँचे वृक्षका उल्लंघन न किया जा सके तो उसपर घोंसला बनाकर रहनेवाले पक्षियोंको नहीं मार दिया जाता। [अर्थात् बड़े आदमियोंसे पार न पानेपर उनके आश्रितोंको नहीं दबाना चाहिये।] इसलिये अब तुम्हें हमारे सामने इन शोक-प्रेरित वाक्योंके कहनेकी और आवश्यकता नहीं है। [तुम शोक छोड़ दो, मैं इसका भली प्रकार बदला चुका दूँगा।]'' सत्यभामासे इस प्रकार कह भगवान् वासुदेवने द्वारकामें आकर श्रीबलदेवजीसे एकान्तमें कहा— ॥ ७५-७६ ॥ 'वनमें आखेटके लिये गये हुए प्रसेनको तो सिंहने मार दिया था ॥ ७७ ॥ अब शतधन्वाने सत्राजित्को भी मार दिया है ॥ ७८ ॥ इस प्रकार उन दोनोंके मारे जानेपर मणिरत्न स्यमन्तकपर हम दोनोंका समान अधिकार होगा ॥ ७९ ॥ इसलिये उठिये और रथपर चढ़कर शतधन्वाके मारनेका प्रयत्न कीजिये।' कृष्णचन्द्रके ऐसा कहनेपर बलदेवजीने भी 'बहुत अच्छा' कह उसे स्वीकार किया ॥ ८० ॥

कृष्ण और बलदेवको [अपने वधके लिये] उद्यत जान शतधन्वाने कृतवर्माके पास जाकर सहायताके लिये प्रार्थना की ॥ ८१ ॥ तब कृतवर्माने इससे कहा— ॥ ८२ ॥ 'मैं बलदेव और वासुदेवसे विरोध करनेमें समर्थ नहीं हूँ।' उसके ऐसा कहनेपर शतधन्वाने अक्रूरसे सहायता माँगी, तो अक्रूरने भी कहा— ॥ ८३-८४ ॥ 'जो अपने पाद-प्रहारसे त्रिलोकीको कम्पायमान कर देते हैं, देवशत्रु असुरगणकी स्त्रियोंको वैधव्यदान देते हैं तथा अति प्रबल शत्रु-सेनासे भी जिनका चक्र अप्रतिहत रहता है उन चक्रधारी भगवान् वासुदेवसे तथा जो अपने मदोन्मत्त नयनोंकी चितवनसे सबका दमन करनेवाले और भयंकर शत्रुसमूहरूप हाथियोंको खींचनेके लिये अखण्ड महिमाशाली प्रचण्ड हल धारण करनेवाले हैं उन श्रीहलधरसे युद्ध करनेमें तो निखिल-लोक-वन्दनीय देवगणमें भी कोई समर्थ नहीं है फिर मेरी तो बात ही क्या है? ॥ ८५ ॥ इसलिये तुम दूसरेकी शरण लो' अक्रूरके ऐसा कहनेपर शतधन्वाने कहा— ॥ ८६ ॥ 'अच्छा, यदि मेरी रक्षा करनेमें आप अपनेको सर्वथा असमर्थ समझते हैं तो मैं आपको यह मणि देता हूँ इसे लेकर इसीकी रक्षा कीजिये' ॥ ८७ ॥ इसपर अक्रूरने कहा— ॥ ८८ ॥ 'मैं इसे तभी ले सकता हूँ जब कि अन्तकाल उपस्थित होनेपर भी तुम किसीसे भी यह बात न कहो ॥ ८९ ॥ शतधन्वाने कहा— 'ऐसा ही होगा।' इसपर अक्रूरने वह मणिरत्न अपने पास रख लिया ॥ ९० ॥

तदनन्तर, शतधन्वा सौ योजनतक जानेवाली एक अत्यन्त वेगवती घोड़ीपर चढ़कर भागा ॥ ९१ ॥ और शैव्य, सुग्रीव, मेघपुष्प तथा बलाहक नामक चार घोड़ोंवाले रथपर चढ़कर बलदेव और वासुदेवने भी उसका पीछा किया ॥ ९२ ॥ सौ योजन मार्ग पार कर जानेपर पुनः आगे ले जानेसे उस घोड़ीने मिथिला देशके वनमें प्राण छोड़ दिये ॥ ९३ ॥ तब शतधन्वा उसे छोड़कर पैदल ही भागा ॥ ९४ ॥ उस समय श्रीकृष्णचन्द्रने बलभद्रजीसे कहा— ॥ ९५ ॥ 'आप अभी रथमें ही रहिये मैं इस पैदल दौड़ते हुए दुराचारीको पैदल जाकर ही मारे डालता हूँ। यहाँ [घोड़ीके मरने आदि] दोषोंको देखनेसे घोड़े भयभीत हो रहे हैं, इसलिये आप इन्हें और आगे न बढ़ाइयेगा ॥ ९६ ॥ तब बलदेवजी 'अच्छा' ऐसा कहकर रथमें ही बैठे रहे ॥ ९७ ॥

श्रीकृष्णचन्द्रने केवल दो ही कोसतक पीछाकर अपना चक्र फेंक दूर होनेपर भी शतधन्वाका सिर काट डाला ॥ ९८ ॥ किन्तु उसके शरीर और वस्त्र आदिमें बहुत कुछ ढूँढ़नेपर भी जब

स्यमन्तकमणिको न पाया तो बलभद्रजीके पास जाकर उनसे कहा— ॥ ९९ ॥ ''हमने शतधन्वाको व्यर्थ ही मारा, क्योंकि उसके पास सम्पूर्ण संसारकी सारभूत स्यमन्तकमणि तो मिली ही नहीं।' यह सुनकर बलदेवजीने [यह समझकर कि श्रीकृष्णचन्द्र उस मणिको छिपानेके लिये ही ऐसी बातें बना रहे हैं] क्रोधपूर्वक भगवान् वासुदेवसे कहा— ॥ १०० ॥ 'तुमको धिक्कार है, तुम बड़े ही अर्थलोलुप हो; भाई होनेके कारण ही मैं तुम्हें क्षमा किये देता हूँ। तुम्हारा मार्ग खुला हुआ है, तुम खुशीसे जा सकते हो। अब मुझे तो द्वारकासे, तुमसे अथवा और सब सगे-सम्बन्धियोंसे कोई काम नहीं है। बस, मेरे आगे इन थोथी शपथोंका अब कोई प्रयोजन नहीं।' इस प्रकार उनकी बातको काटकर बहुत कुछ मनानेपर भी वे वहाँ न रुके और विदेहनगरको चले गये॥ १०१-१०२॥

विदेहनगरमें पहुँचनेपर राजा जनक उन्हें अर्घ्य देकर अपने घर ले आये और वे वहीं रहने लगे॥ १०३-१०४॥ इधर, भगवान् वासुदेव द्वारकामें चले आये॥ १०५॥ जितने दिनोंतक बलदेवजी राजा जनकके यहाँ रहे उतने दिनतक धृतराष्ट्रका पुत्र दुर्योधन उनसे गदायुद्ध सीखता रहा॥ १०६॥ अनन्तर, बभ्रु और उग्रसेन आदि यादवोंके, जिन्हें यह ठीक मालूम था कि 'कृष्णने स्यमन्तकमणि नहीं ली है', विदेहनगरमें जाकर शपथपूर्वक विश्वास दिलानेपर बलदेवजी तीन वर्ष पश्चात् द्वारकामें चले आये॥ १०७॥

अक्रूरजी भी भगवद्ध्यान-परायण रहते हुए उस मणिरत्नसे प्राप्त सुवर्णके द्वारा निरन्तर यज्ञानुष्ठान करने लगे॥ १०८॥ यज्ञ-दीक्षित क्षत्रिय और वैश्योंके मारनेसे ब्रह्महत्या होती है, इसलिये अक्रूरजी सदा यज्ञदीक्षारूप कवच धारण ही किये रहते थे॥ १०९॥ उस मणिके प्रभावसे बासठ वर्षतक द्वारकामें रोग, दुर्भिक्ष, महामारी या मृत्यु आदि नहीं हुए॥ ११०॥ फिर अक्रूर-पक्षीय भोजवंशियोंद्वारा सात्वतके प्रपौत्र शत्रुघ्नके मारे जानेपर भोजोंके साथ अक्रूर भी द्वारकाको छोड़कर चले गये॥ १११॥ उनके जाते ही, उसी दिनसे द्वारकामें रोग, दुर्भिक्ष, सर्प, अनावृष्टि और मरी आदि उपद्रव होने लगे॥ ११२॥

तब गरुडध्वज भगवान् कृष्ण बलभद्र और उग्रसेन आदि यदुवंशियोंके साथ मिलकर सलाह करने लगे॥ ११३॥ 'इसका क्या कारण है जो एक साथ ही इतने उपद्रवोंका आगमन हुआ, इसपर विचार करना चाहिये।' उनके ऐसा कहनेपर अन्धक नामक एक वृद्ध यादवने कहा— ॥ ११४॥ 'अक्रूरके पिता श्वफल्क जहाँ-जहाँ रहते थे वहाँ-वहाँ दुर्भिक्ष, महामारी और अनावृष्टि आदि उपद्रव कभी नहीं होते थे॥ ११५॥ एक बार काशिराजके देशमें अनावृष्टि हुई थी। तब श्वफल्कको वहाँ ले जाते ही तत्काल वर्षा होने लगी॥ ११६॥

उस समय काशिराजकी रानीके गर्भमें एक कन्यारत्न थी॥ ११७॥ वह कन्या प्रसूतिकालके समाप्त होनेपर भी गर्भसे बाहर न आयी॥ ११८॥ इस प्रकार उस गर्भको प्रसव हुए बिना बारह वर्ष व्यतीत हो गये॥ ११९॥ तब काशिराजने अपनी उस गर्भस्थिता पुत्रीसे कहा— ॥ १२०॥ 'बेटी! तू उत्पन्न क्यों नहीं होती? बाहर आ, मैं तेरा मुख देखना चाहता हूँ॥ १२१॥ अपनी इस माताको तू इतने दिनोंसे क्यों कष्ट दे रही है?' राजाके ऐसा कहनेपर उसने गर्भमें रहते हुए ही कहा— 'पिताजी! यदि आप प्रतिदिन एक गौ ब्राह्मणको दान देंगे तो अगले तीन वर्ष बीतनेपर मैं अवश्य गर्भसे बाहर आ जाऊँगी।' इस बातको सुनकर राजा प्रतिदिन ब्राह्मणको एक गौ देने लगे॥ १२२॥

तब उतने समय (तीन वर्ष) बीतनेपर वह उत्पन्न हुई॥ १२३॥

पिताने उसका नाम गान्दिनी रखा॥ १२४॥ और उसे अपने उपकारक श्वफल्कको घर आनेपर अर्घ्यरूपसे दे दिया॥ १२५॥ उसीसे श्वफल्कके द्वारा इन अक्रूरजीका जन्म हुआ है॥ १२६॥ इनकी ऐसी गुणवान् माता-पितासे उत्पत्ति है तो फिर उनके चले जानेसे यहाँ दुर्भिक्ष और महामारी आदि उपद्रव क्यों न होंगे?॥ १२७-१२८॥ अत: उनको यहाँ ले आना चाहिये, अति गुणवान्के अपराधकी अधिक जाँच-पड़ताल करना ठीक नहीं है। यादववृद्ध अन्धकके ऐसे वचन सुनकर कृष्ण, उग्रसेन और बलभद्र आदि यादव श्वफल्कपुत्र अक्रूरके अपराधको भुलाकर उन्हें अभयदान देकर अपने नगरमें ले आये॥ १२९॥ उनके वहाँ आते ही स्यमन्तकमणिके प्रभावसे अनावृष्टि, महामारी, दुर्भिक्ष और सर्पभय आदि सभी उपद्रव शान्त हो गये॥ १३०॥

तब श्रीकृष्णचन्द्रने विचार किया॥ १३१॥ 'अक्रूरका जन्म गान्दिनीसे श्वफल्कके द्वारा हुआ है यह तो बहुत सामान्य कारण है॥ १३२॥ किन्तु अनावृष्टि, दुर्भिक्ष, महामारी आदि उपद्रवोंको शान्त कर देनेवाला इसका प्रभाव तो अति महान् है॥ १३३॥ अवश्य ही इसके पास वह स्यमन्तक नामक महामणि है॥ १३४॥ उसीका ऐसा प्रभाव सुना जाता है॥ १३५॥ इसे भी हम देखते हैं कि एक यज्ञके पीछे दूसरा और दूसरेके पीछे तीसरा इस प्रकार निरन्तर अखण्ड यज्ञानुष्ठान करता रहता है॥ १३६॥ और इसके पास यज्ञके साधन [धन आदि] भी बहुत कम हैं; इसलिये इसमें सन्देह नहीं कि इसके पास स्यमन्तकमणि अवश्य है।' ऐसा निश्चय कर किसी और प्रयोजनके उद्देश्यसे उन्होंने सम्पूर्ण यादवोंको अपने महलमें एकत्रित किया॥ १३७॥

समस्त यदुवंशियोंके वहाँ आकर बैठ जानेके बाद प्रथम प्रयोजन बताकर उसका उपसंहार होनेपर प्रसंगान्तरसे अक्रूरके साथ परिहास करते हुए भगवान् कृष्णने उनसे कहा— ॥ १३८॥ "हे दानपते! जिस प्रकार शतधन्वाने तुम्हें सम्पूर्ण संसारकी सारभूत वह स्यमन्तक नामकी महामणि सौंपी थी वह हमें सब मालूम है। वह सम्पूर्ण राष्ट्रका उपकार करती हुई तुम्हारे पास है तो रहे, उसके प्रभावका फल तो हम सभी भोगते हैं, किन्तु ये बलभद्रजी हमारे ऊपर सन्देह करते थे, इसलिये हमारी प्रसन्नताके लिये आप एक बार उसे दिखला दीजिये।" भगवान् वासुदेवके ऐसा कहकर चुप हो जानेपर रत्न साथ ही लिये रहनेके कारण अक्रूरजी सोचने लगे— ॥ १३९॥ "अब मुझे क्या करना चाहिये, यदि और किसी प्रकार कहता हूँ तो केवल वस्त्रोंके ओटमें टटोलनेपर ये उसे देख ही लेंगे और इनसे अत्यन्त विरोध करनेमें हमारा कुशल नहीं है।" ऐसा सोचकर निखिल संसारके कारणस्वरूप श्रीनारायणसे अक्रूरजी बोले— ॥ १४०॥ "भगवन्! शतधन्वाने मुझे वह मणि सौंप दी थी। उसके मर जानेपर मैंने यह सोचते हुए बड़ी ही कठिनतासे इसे इतने दिन अपने पास रखा है कि भगवान् आज, कल या परसों इसे माँगेंगे॥ १४१॥ इसकी चौकसीके क्लेशसे सम्पूर्ण भोगोंमें अनासक्तचित्त होनेके कारण मुझे सुखका लेशमात्र भी नहीं मिला॥ १४२॥ भगवान् ये विचार करते कि, यह सम्पूर्ण राष्ट्रके उपकारक इतने-से भारको भी नहीं उठा सकता, इसलिये स्वयं मैंने आपसे कहा नहीं॥ १४३॥ अब, लीजिये आपकी वह स्यमन्तकमणि यह रही, आपकी जिसे इच्छा हो उसे ही इसे दे दीजिये"॥ १४४॥

तब अक्रूरजीने अपने कटि-वस्त्रमें छिपायी

हुई एक छोटी-सी सोनेकी पिटारीमें स्थित वह स्यमन्तकमणि प्रकट की और उस पिटारीसे निकालकर यादवसमाजमें रख दी॥ १४५-१४६॥ उसके रखते ही वह सम्पूर्ण स्थान उसकी तीव्र कान्तिसे देदीप्यमान होने लगा॥ १४७॥ तब अक्रूरजीने कहा—"मुझे यह मणि शतधन्वाने दी थी, यह जिसकी हो वह ले ले॥ १४८॥

उसको देखनेपर सभी यादवोंका विस्मयपूर्वक 'साधु, साधु' यह वचन सुना गया॥ १४९॥ उसे देखकर बलभद्रजीने 'अच्युतके ही समान इसपर मेरा भी अधिकार है' इस प्रकार अपनी अधिक स्पृहा दिखलायी॥ १५०॥ तथा 'यह मेरी ही पैतृक सम्पत्ति है' इस तरह सत्यभामाने भी उसके लिये अपनी उत्कट अभिलाषा प्रकट की॥ १५१॥ बलभद्र और सत्यभामाको देखकर कृष्णचन्द्रने अपनेको बैल और पहियेके बीचमें पड़े हुए जीवके समान दोनों ओरसे संकटग्रस्त देखा॥ १५२॥ और समस्त यादवोंके सामने वे अक्रूरजीसे बोले—॥ १५३॥ "इस मणिरत्नको मैंने अपनी सफाई देनेके लिये ही इन यादवोंको दिखवाया था। इस मणिपर मेरा और बलभद्रजीका तो समान अधिकार है और सत्यभामाकी यह पैतृक सम्पत्ति है; और किसीका इसपर कोई अधिकार नहीं है॥ १५४॥ यह मणि सदा शुद्ध और ब्रह्मचर्य आदि गुणयुक्त रहकर धारण करनेसे सम्पूर्ण राष्ट्रका हित करती है और अशुद्धावस्थामें धारण करनेसे अपने आश्रयदाताको भी मार डालती है॥ १५५॥ मेरे सोलह हजार स्त्रियाँ हैं, इसलिये मैं इसके धारण करनेमें समर्थ नहीं हूँ, इसीलिये सत्यभामा भी इसको कैसे धारण कर सकती है?॥ १५६॥ आर्य बलभद्रको भी इसके कारणसे मदिरापान आदि सम्पूर्ण भोगोंको त्यागना पड़ेगा॥ १५७॥ इसलिये हे दानपते! ये यादवगण, बलभद्रजी, मैं और सत्यभामा सब मिलकर आपसे प्रार्थना करते हैं कि इसे धारण करनेमें आप ही समर्थ हैं॥ १५८-१५९॥ आपके धारण करनेसे यह सम्पूर्ण राष्ट्रका हित करेगी, इसलिये सम्पूर्ण राष्ट्रके मंगलके लिये आप ही इसे पूर्ववत् धारण कीजिये; इस विषयमें आप और कुछ भी न कहें।" भगवान्‌के ऐसा कहनेपर दानपति अक्रूरने 'जो आज्ञा' कह वह महारत्न ले लिया। तबसे अक्रूरजी सबके सामने उस अति देदीप्यमान मणिको अपने गलेमें धारणकर सूर्यके समान किरण-जालसे युक्त होकर विचरने लगे॥ १६०-१६१॥

भगवान्‌के मिथ्या-कलंक-शोधनरूप इस प्रसंगका जो कोई स्मरण करेगा उसे कभी थोड़ा-सा भी मिथ्या कलंक न लगेगा, उसकी समस्त इन्द्रियाँ समर्थ रहेंगी तथा वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जायगा॥ १६२॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके चौथे अंशमें तेरहवाँ अध्याय समाप्त॥ १३॥

चौदहवाँ अध्याय

अनमित्र और अन्धकके वंशका वर्णन

श्रीपराशरजी बोले—अनमित्रके शिनि नामक पुत्र हुआ; शिनिके सत्यक और सत्यकसे सात्यकिका जन्म हुआ जिसका दूसरा नाम युयुधान था॥ १-२॥ तदनन्तर सात्यकिके संजय, संजयके कुणि और कुणिसे युगन्धरका जन्म हुआ। ये सब शैनेय नामसे विख्यात हुए॥ ३-४॥

अनमित्रके वंशमें ही पृश्निका जन्म हुआ और पृश्निसे श्वफल्ककी उत्पत्ति हुई जिसका

प्रभाव पहले वर्णन कर चुके हैं। श्वफल्कका चित्रक नामक एक छोटा भाई और था॥ ५-६॥ श्वफल्कके गान्दिनीसे अक्रूरका जन्म हुआ॥ ७॥ तथा [एक दूसरी स्त्रीसे] उपमद्गु, मृदामृद, विश्वारि, मेजय, गिरिक्षत्र, उपक्षत्र, शतघ्न, अरिमर्दन, धर्मदृक्, दृष्टधर्म, गन्धमोज, वाह और प्रतिवाह नामक पुत्र तथा सुतारा नाम्नी कन्याका जन्म हुआ॥ ८-९॥ देववान् और उपदेव ये दो अक्रूरके पुत्र थे॥ १०॥ तथा चित्रकके पृथु, विपृथु आदि अनेक पुत्र थे॥ ११॥

कुकुर, भजमान, शुचिकम्बल और बर्हिष-ये चार अन्धकके पुत्र हुए॥ १२॥ इनमेंसे कुकुरसे धृष्ट, धृष्टसे कपोतरोमा, कपोतरोमासे विलोमा तथा विलोमासे तुम्बुरुके मित्र अनुका जन्म हुआ॥ १३॥ अनुसे आनकदुन्दुभि, उससे अभिजित्, अभिजित्से पुनर्वसु और पुनर्वसुसे आहुक नामक पुत्र और आहुकी नाम्नी कन्याका जन्म हुआ॥ १४-१५॥ आहुकके देवक और उग्रसेन नामक दो पुत्र हुए॥ १६॥ उनमेंसे देवकके देववान्, उपदेव, सहदेव और देवरक्षित नामक चार पुत्र हुए॥ १७॥ इन चारोंकी वृकदेवा, उपदेवा, देवरक्षिता, श्रीदेवा, शान्तिदेवा, सहदेवा और देवकी—ये सात भगिनियाँ थीं॥ १८॥ ये सब वसुदेवजीको विवाही गयी थीं॥ १९॥ उग्रसेनके भी कंस, न्यग्रोध, सुनाम, आनकाह्व, शंकु, सुभूमि, राष्ट्रपाल, युद्धतुष्टि और सुतुष्टिमान् नामक पुत्र तथा कंसा, कंसवती, सुतनु और राष्ट्रपालिका नामकी कन्याएँ हुईं॥ २०-२१॥

भजमानका पुत्र विदूरथ हुआ; विदूरथके शूर, शूरके शमी, शमीके प्रतिक्षत्र, प्रतिक्षत्रके स्वयंभोज, स्वयंभोजके हृदिक तथा हृदिकके कृतवर्मा, शतधन्वा, देवार्ह और देवगर्भ आदि पुत्र हुए। देवगर्भके पुत्र शूरसेन थे॥ २२—२५॥ शूरसेनकी मारिषा नामकी पत्नी थी। उससे उन्होंने वसुदेव आदि दस पुत्र उत्पन्न किये॥ २६-२७॥ वसुदेवके जन्म लेते ही देवताओंने अपना अव्याहत दृष्टिसे यह देखकर कि इनके घरमें भगवान् अंशावतार लेंगे, आनक और दुन्दुभि आदि बाजे बजाये थे॥ २८॥ इसीलिये इनका नाम आनकदुन्दुभि भी हुआ॥ २९॥ इनके देवभाग, देवश्रवा, अष्टक, ककुच्चक्र, वत्सधारक, सृंजय, श्याम, शमिक और गण्डूष नामक नौ भाई थे॥ ३०॥ तथा इन वसुदेव आदि दस भाइयोंकी पृथा, श्रुतदेवा, श्रुतकीर्ति, श्रुतश्रवा और राजाधिदेवी—ये पाँच बहिनें थीं॥ ३१॥

शूरसेनके कुन्ति नामक एक मित्र थे॥ ३२॥ वे नि:सन्तान थे, अत: शूरसेनने दत्तक-विधिसे उन्हें अपनी पृथा नामकी कन्या दे दी थी॥ ३३॥ उसका राजा पाण्डुके साथ विवाह हुआ॥ ३४॥ उसके धर्म, वायु और इन्द्रके द्वारा क्रमश: युधिष्ठिर, भीमसेन और अर्जुन नामक तीन पुत्र हुए॥ ३५॥ इनके पहले इसके अविवाहितावस्थामें ही भगवान् सूर्यके द्वारा कर्ण नामक एक कानीन* पुत्र और हुआ था॥ ३६॥ इसकी माद्री नामकी एक सपत्नी थी॥ ३७॥ उसके अश्विनीकुमारोंद्वारा नकुल और सहदेव नामक पाण्डुके दो पुत्र हुए॥ ३८॥

शूरसेनकी दूसरी कन्या श्रुतदेवाका कारूश-नरेश वृद्धधर्मासे विवाह हुआ था॥ ३९॥ उससे दन्तवक्र नामक महादैत्य उत्पन्न हुआ॥ ४०॥ श्रुतकीर्तिको केकयराजने विवाहा था॥ ४१॥ उससे केकय-नरेशके सन्तर्दन आदि पाँच पुत्र हुए॥ ४२॥ राजाधिदेवीसे अवन्तिदेशीय विन्द और अनुविन्दका जन्म हुआ॥ ४३॥ श्रुतश्रवाका भी चेदिराज दमघोषने पाणिग्रहण किया॥ ४४॥ उससे शिशुपालका जन्म

* अविवाहिता कन्याके गर्भसे हुए पुत्रको 'कानीन' कहते हैं।

हुआ॥ ४५॥ पूर्वजन्ममें यह अतिशय पराक्रमी हिरण्यकशिपु नामक दैत्योंका मूल पुरुष हुआ था जिसे सकल लोकगुरु भगवान् नृसिंहने मारा था॥ ४६-४७॥ तदनन्तर यह अक्षय, वीर्य, शौर्य, सम्पत्ति और पराक्रम आदि गुणोंसे सम्पन्न तथा समस्त त्रिभुवनके स्वामी इन्द्रके भी प्रभावको दबानेवाला दशानन हुआ॥ ४८॥ स्वयं भगवान्के हाथसे ही मारे जानेके पुण्यसे प्राप्त हुए नाना भोगोंको वह बहुत समयतक भोगते हुए अन्तमें राघवरूपधारी भगवान्के ही द्वारा मारा गया॥ ४९॥ उसके पीछे यह चेदिराज दमघोषका पुत्र शिशुपाल हुआ॥ ५०॥ शिशुपाल होनेपर भी वह भू-भार-हरणके लिये अवतीर्ण हुए भगवदंशस्वरूप भगवान् पुण्डरीकाक्षमें अत्यन्त द्वेषबुद्धि करने लगा॥ ५१॥ अन्तमें भगवान्के हाथसे ही मारे जानेपर उन परमात्मामें ही मन लगे रहनेके कारण सायुज्य-मोक्ष प्राप्त किया॥ ५२॥ भगवान् यदि प्रसन्न होते हैं तब जिस प्रकार यथेच्छ फल देते हैं, उसी प्रकार अप्रसन्न होकर मारनेपर भी वे अनुपम दिव्यलोककी प्राप्ति कराते हैं॥ ५३॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके चौथे अंशमें चौदहवाँ अध्याय समाप्त॥ १४॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

शिशुपालके पूर्व-जन्मान्तरोंका तथा वसुदेवजीकी सन्ततिका वर्णन

श्रीमैत्रेयजी बोले—भगवन्! पूर्वजन्मोंमें हिरण्यकशिपु और रावण होनेपर इस शिशुपालने भगवान् विष्णुके द्वारा मारे जानेसे देव-दुर्लभ भोगोंको तो प्राप्त किया, किन्तु यह उनमें लीन नहीं हुआ; फिर इस जन्ममें ही उनके द्वारा मारे जानेपर इसने सनातन पुरुष श्रीहरिमें सायुज्य-मोक्ष कैसे प्राप्त किया?॥ १-२॥ हे समस्त धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ मुनिवर! यह बात सुननेकी मुझे बड़ी ही इच्छा है। मैंने अत्यन्त कुतूहलवश होकर आपसे यह प्रश्न किया है, कृपया इसका निरूपण कीजिये॥ ३॥

श्रीपराशरजी बोले—प्रथम जन्ममें दैत्यराज हिरण्यकशिपुका वध करनेके लिये सम्पूर्ण लोकोंकी उत्पत्ति, स्थिति और नाश करनेवाले भगवान्ने शरीर ग्रहण करते समय नृसिंहरूप प्रकट किया था॥ ४॥ उस समय हिरण्यकशिपुके चित्तमें यह भाव नहीं हुआ था कि ये विष्णुभगवान् हैं॥ ५॥ केवल इतना ही विचार हुआ कि यह कोई निरतिशय पुण्य-समूहसे उत्पन्न हुआ प्राणी है॥ ६॥ रजोगुणके उत्कर्षसे प्रेरित हो उसकी मति [उस विपरीत भावनाके अनुसार] दृढ़ हो गयी। अत: उसके भीतर ईश्वरीय भावनाका योग न होनेसे भगवान्के द्वारा मारे जानेके कारण ही रावणका जन्म लेनेपर उसने सम्पूर्ण त्रिलोकीमें सर्वाधिक भोग-सम्पत्ति प्राप्त की॥ ७॥ उन अनादि-निधन, परब्रह्मस्वरूप, निराधार भगवान्में चित्त न लगानेके कारण वह उन्हींमें लीन नहीं हुआ॥ ८॥

इसी प्रकार रावण होनेपर भी कामवश जानकीजीमें चित्त लग जानेसे भगवान् दशरथनन्दन रामके द्वारा मारे जानेपर केवल उनके रूपका ही दर्शन हुआ था; 'ये अच्युत हैं' ऐसी आसक्ति नहीं हुई, बल्कि मरते समय इसके अन्त:करणमें केवल मनुष्यबुद्धि ही रही॥ ९॥

फिर श्रीअच्युतके द्वारा मारे जानेके फलस्वरूप इसने सम्पूर्ण भूमण्डलमें प्रशंसित चेदिराजके कुलमें शिशुपालरूपसे जन्म लेकर भी अक्षय

ऐश्वर्य प्राप्त किया॥ १०॥ उस जन्ममें वह भगवान्‌के प्रत्येक नामोंमें तुच्छताकी भावना करने लगा॥ ११॥ उसका हृदय अनेक जन्मके द्वेषानुबन्धसे युक्त था, अतः वह उनकी निन्दा और तिरस्कार आदि करते हुए भगवान्‌के सम्पूर्ण समयानुसार लीलाकृत नामोंका निरन्तर उच्चारण करता था॥ १२॥ खिले हुए कमलदलके समान जिसकी निर्मल आँखें हैं, जो उज्ज्वल पीताम्बर तथा निर्मल किरीट, केयूर, हार और कटकादि धारण किये हुए हैं तथा जिसकी लम्बी-लम्बी चार भुजाएँ हैं और जो शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए हैं, भगवान्‌का वह दिव्य रूप अत्यन्त वैरानुबन्धके कारण भ्रमण, भोजन, स्नान, आसन और शयन आदि सम्पूर्ण अवस्थाओंमें कभी उसके चित्तसे दूर न होता था॥ १३॥ फिर गाली देते समय उन्हींका नामोच्चारण करते हुए और हृदयमें भी उन्हींका ध्यान धरते हुए जिस समय वह अपने वधके लिये हाथमें धारण किये चक्रके उज्ज्वल किरणजालसे सुशोभित, अक्षय तेजस्वरूप द्वेषादि सम्पूर्ण दोषोंसे रहित ब्रह्मभूत भगवान्‌को देख रहा था॥ १४॥ उसी समय तुरन्त भगवच्चक्रसे मारा गया; भगवत्स्मरणके कारण सम्पूर्ण पापराशिके दग्ध हो जानेसे भगवान्‌के द्वारा उसका अन्त हुआ और वह उन्हींमें लीन हो गया॥ १५॥ इस प्रकार इस सम्पूर्ण रहस्यका मैंने तुमसे वर्णन किया॥ १६॥ अहो! वे भगवान् तो द्वेषानुबन्धके कारण भी कीर्तन और स्मरण करनेसे सम्पूर्ण देवता और असुरोंको दुर्लभ परमफल देते हैं, फिर सम्यक् भक्तिसम्पन्न पुरुषोंकी तो बात ही क्या है?॥ १७॥

आनकदुन्दुभि वसुदेवजीके पौरवी, रोहिणी, मदिरा, भद्रा और देवकी आदि बहुत-सी स्त्रियाँ थीं॥ १८॥ उनमें रोहिणीसे वसुदेवजीने बलभद्र, शठ, सारण और दुर्मद आदि कई पुत्र उत्पन्न किये॥ १९॥ तथा बलभद्रजीके रेवतीसे विशठ और उल्मुक नामक दो पुत्र हुए॥ २०॥ सार्ष्टि, मार्ष्टि, सत्य और धृति आदि सारणके पुत्र थे॥ २१॥ इनके अतिरिक्त भद्राश्व, भद्रबाहु, दुर्दम और भूत आदि भी रोहिणीहीकी सन्तानमें थे॥ २२॥ नन्द, उपनन्द और कृतक आदि मदिराके तथा उपनिधि और गद आदि भद्राके पुत्र थे॥ २३-२४॥ वैशालीके गर्भसे कौशिक नामक केवल एक ही पुत्र हुआ॥ २५॥

आनकदुन्दुभिके देवकीसे कीर्तिमान्, सुषेण, उदायु, भद्रसेन, ऋजुदास तथा भद्रदेव नामक छः पुत्र हुए ॥ २६॥ इन सबको कंसने मार डाला था॥ २७॥ पीछे भगवान्‌की प्रेरणासे योगमायाने देवकीके सातवें गर्भको आधी रातके समय खींचकर रोहिणीकी कुक्षिमें स्थापित कर दिया॥ २८॥ आकर्षण करनेसे इस गर्भका नाम संकर्षण हुआ॥ २९॥ तदनन्तर सम्पूर्ण संसाररूप महावृक्षके मूलस्वरूप भूत, भविष्यत् और वर्तमानकालीन सम्पूर्ण देव, असुर और मुनिजनकी बुद्धिके अगम्य तथा ब्रह्मा और अग्नि आदि देवताओंद्वारा प्रणाम करके भूभारहरणके लिये प्रसन्न किये गये आदि, मध्य और अन्तहीन भगवान् वासुदेवने देवकीके गर्भसे अवतार लिया तथा उन्हींकी कृपासे बढ़ी हुई महिमावाली योगनिद्रा भी नन्दगोपकी पत्नी यशोदाके गर्भमें स्थित हुई ॥ ३०-३१॥ उन कमलनयन भगवान्‌के प्रकट होनेपर यह सम्पूर्ण जगत् प्रसन्न हुए सूर्य, चन्द्र आदि ग्रहोंसे सम्पन्न सर्पादिके भयसे शून्य, अधर्मादिसे रहित तथा स्वस्थचित्त हो गया॥ ३२॥ उन्होंने प्रकट होकर इस सम्पूर्ण संसारको सन्मार्गावलम्बी कर दिया॥ ३३॥

इस मर्त्यलोकमें अवतीर्ण हुए भगवान्‌की सोलह हजार एक सौ एक रानियाँ थीं॥ ३४॥

उनमें रुक्मिणी, सत्यभामा, जाम्बवती और चारुहासिनी आदि आठ मुख्य थीं॥ ३५॥ अनादि भगवान् अखिलमूर्तिने उनसे एक लाख अस्सी हजार पुत्र उत्पन्न किये॥ ३६॥ उनमेंसे प्रद्युम्न, चारुदेष्ण और साम्ब आदि तेरह पुत्र प्रधान थे॥ ३७॥ प्रद्युम्नने भी रुक्मीकी पुत्री रुक्मवतीसे विवाह किया था॥ ३८॥ उससे अनिरुद्धका जन्म हुआ॥ ३९॥ अनिरुद्धने भी रुक्मीकी पौत्री सुभद्रासे विवाह किया था॥ ४०॥ उससे वज्र उत्पन्न हुआ॥ ४१॥ वज्रका पुत्र प्रतिबाहु तथा प्रतिबाहुका सुचारु था॥ ४२॥ इस प्रकार सैकड़ों हजार पुरुषोंकी संख्यावाले यदुकुलकी सन्तानोंकी गणना सौ वर्षमें भी नहीं की जा सकती॥ ४३॥ क्योंकि इस विषयमें ये दो श्लोक चरितार्थ हैं— ॥ ४४॥

जो गृहाचार्य यादवकुमारोंको धनुर्विद्याकी शिक्षा देनेमें तत्पर रहते थे उनकी संख्या तीन करोड़ अट्ठासी लाख थी, फिर उन महात्मा यादवोंकी गणना तो कर ही कौन सकता है? जहाँ हजारों और लाखोंकी संख्यामें सर्वदा यदुराज उग्रसेन रहते थे॥ ४५-४६॥

देवासुर-संग्राममें जो महाबली दैत्यगण मारे गये थे वे मनुष्यलोकमें उपद्रव करनेवाले राजालोग होकर उत्पन्न हुए॥ ४७॥ उनका नाश करनेके लिये देवताओंने यदुवंशमें जन्म लिया जिसमें कि एक सौ एक कुल थे॥ ४८॥ उनका नियन्त्रण और स्वामित्व भगवान् विष्णुने ही किया। वे समस्त यादवगण उनकी आज्ञानुसार ही वृद्धिको प्राप्त हुए॥ ४९॥ इस प्रकार जो पुरुष इस वृष्णिवंशकी उत्पत्तिके विवरणको सुनता है वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकको प्राप्त कर लेता है॥ ५०॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके चौथे अंशमें पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त॥ १५॥

सोलहवाँ अध्याय

तुर्वसुके वंशका वर्णन

श्रीपराशरजी बोले—इस प्रकार मैंने तुमसे संक्षेपसे यदुके वंशका वर्णन किया॥ १॥ अब तुर्वसुके वंशका वर्णन सुनो॥ २॥ तुर्वसुका पुत्र वह्नि था, वह्निका भार्ग, भार्गका भानु, भानुका त्रयीसानु, त्रयीसानुका करन्दम और करन्दमका पुत्र मरुत्त था॥ ३॥ मरुत्त निस्सन्तान था॥ ४॥ इसलिये उसने पुरुवंशीय दुष्यन्तको पुत्ररूपसे स्वीकार कर लिया॥ ५॥ इस प्रकार ययातिके शापसे तुर्वसुके वंशने पुरुवंशका ही आश्रय लिया॥ ६॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके चौथे अंशमें सोलहवाँ अध्याय समाप्त॥ १६॥

सत्रहवाँ अध्याय

द्रुह्युवंश

श्रीपराशरजी बोले—द्रुह्युका पुत्र बभ्रु था, बभ्रुका सेतु, सेतुका आरब्ध, आरब्धका गान्धार, गान्धारका धर्म, धर्मका घृत, घृतका दुर्दम, दुर्दमका प्रचेता तथा प्रचेताका पुत्र शतधर्म था। इसने उत्तरवर्ती बहुत-से म्लेच्छोंका आधिपत्य किया॥ १—५॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके चौथे अंशमें सत्रहवाँ अध्याय समाप्त॥ १७॥

अठारहवाँ अध्याय

अनुवंश

श्रीपराशरजी बोले—ययातिके चौथे पुत्र अनुके सभानल, चक्षु और परमेषु नामक तीन पुत्र थे। सभानलका पुत्र कालानल हुआ तथा कालानलके सृंजय, सृंजयके पुरंजय, पुरंजयके जनमेजय, जनमेजयके महाशाल, महाशालके महामना और महामनाके उशीनर तथा तितिक्षु नामक दो पुत्र हुए॥ १—८॥

उशीनरके शिबि, नृग, नर, कृमि और वर्म नामक पाँच पुत्र हुए॥ ९॥ उनमेंसे शिबिके पृषदर्भ, सुवीर, केकय और मद्रक—ये चार पुत्र थे॥ १०॥ तितिक्षुका पुत्र रुशद्रथ हुआ। उसके हेम, हेमके सुतपा तथा सुतपाके बलि नामक पुत्र हुआ॥ ११-१२॥ इस बलिके क्षेत्र (रानी)-में दीर्घतमा नामक मुनिने अंग, वंग, कलिंग, सुह्म और पौण्ड्र नामक पाँच वालेय क्षत्रिय उत्पन्न किये॥ १३॥ इन बलिपुत्रोंकी सन्ततिके नामानुसार पाँच देशोंके भी ये ही नाम पड़े॥ १४॥ इनमेंसे अंगसे अनपान, अनपानसे दिविरथ, दिविरथसे धर्मरथ और धर्मरथसे चित्ररथका जन्म हुआ जिसका दूसरा नाम रोमपाद था। इस रोमपादके मित्र दशरथजी थे, अजके पुत्र दशरथजीने रोमपादको सन्तानहीन देखकर उन्हें पुत्रीरूपसे अपनी शान्ता नामकी कन्या गोद दे दी थी॥ १५—१८॥

रोमपादका पुत्र चतुरंग था। चतुरंगके पृथुलाक्ष तथा पृथुलाक्षके चम्प नामक पुत्र हुआ जिसने चम्पा नामकी पुरी बसायी थी॥ १९-२०॥ चम्पके हर्यंग नामक पुत्र हुआ, हर्यंगसे भद्ररथ, भद्ररथसे बृहद्रथ, बृहद्रथसे बृहत्कर्मा बृहत्कर्मासे बृहद्भानु, बृहद्भानुसे बृहन्मना, बृहन्मनासे जयद्रथका जन्म हुआ॥ २१-२२॥ जयद्रथकी ब्राह्मण और क्षत्रियके संसर्गसे उत्पन्न हुई पत्नीके गर्भसे विजय नामक पुत्रका जन्म हुआ॥ २३॥ विजयके धृति नामक पुत्र हुआ, धृतिके धृतव्रत, धृतव्रतके सत्यकर्मा और सत्यकर्माके अतिरथका जन्म हुआ जिसने कि [स्नानके लिये] गंगाजीमें जानेपर पिटारीमें रखकर पृथाद्वारा बहाये हुए कर्णको पुत्ररूपसे पाया था। इस कर्णका पुत्र वृषसेन था। बस, अंगवंश इतना ही है॥ २४—२९॥ इसके आगे पुरुवंशका वर्णन सुनो॥ ३०॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके चौथे अंशमें अठारहवाँ अध्याय समाप्त॥ १८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

पुरुवंश

श्रीपराशरजी बोले—पुरुका पुत्र जनमेजय था। जनमेजयका प्रचिन्वान्, प्रचिन्वान्का प्रवीर, प्रवीरका मनस्यु, मनस्युका अभयद, अभयदका सुद्यु, सुद्युका बहुगत, बहुगतका संयाति, संयातिका अहंयाति तथा अहंयातिका पुत्र रौद्राश्व था॥ १॥

रौद्राश्वके ऋतेषु, कक्षेषु, स्थण्डिलेषु, कृतेषु, जलेषु, धर्मेषु, धृतेषु, स्थलेषु, सन्नतेषु और वनेषु नामक दस पुत्र थे॥ २॥ ऋतेषुका पुत्र अन्तिनार हुआ तथा अन्तिनारके सुमति, अप्रतिरथ और ध्रुव नामक तीन पुत्रोंने जन्म लिया॥ ३-४॥ इनमेंसे अप्रतिरथका पुत्र कण्व और कण्वका मेधातिथि हुआ जिसकी सन्तान काण्वायन ब्राह्मण हुए॥ ५—७॥ अप्रतिरथका दूसरा पुत्र ऐलीन था॥ ८॥ इस ऐलीनके दुष्यन्त आदि चार पुत्र हुए॥ ९॥ दुष्यन्तके यहाँ चक्रवर्ती सम्राट् भरतका जन्म हुआ जिसके नामके विषयमें देवगणने इस श्लोकका गान किया था—॥ १०-११॥

''माता तो केवल चमड़ेकी धौंकनीके समान है, पुत्रपर अधिकार तो पिताका ही है, पुत्र जिसके द्वारा जन्म ग्रहण करता है उसीका स्वरूप होता है। हे दुष्यन्त! तू इस पुत्रका पालन-पोषण कर, शकुन्तलाका अपमान न कर। हे नरदेव! अपने ही वीर्यसे उत्पन्न हुआ पुत्र अपने पिताको यमलोकसे [उद्धार कर स्वर्गलोकको] ले जाता है। 'इस पुत्रके आधान करनेवाले तुम्हीं हो'—शकुन्तलाने यह बात ठीक ही कही है'॥ १२-१३॥

भरतके तीन स्त्रियाँ थीं जिनसे उनके नौ पुत्र हुए॥ १४॥ भरतके यह कहनेपर कि 'ये मेरे अनुरूप नहीं हैं', उनकी माताओंने इस भयसे कि राजा हमको त्याग न दें, उन पुत्रोंको मार डाला॥ १५॥ इस प्रकार पुत्र-जन्मके विफल हो जानेसे भरतने पुत्रकी कामनासे मरुत्सोम नामक यज्ञ किया। उस यज्ञके अन्तमें मरुद्गणने उन्हें भरद्वाज नामक एक बालक पुत्ररूपसे दिया जो उतथ्यपत्नी ममताके गर्भमें स्थित दीर्घतमा मुनिके पाद-प्रहारसे स्खलित हुए बृहस्पतिजीके वीर्यसे उत्पन्न हुआ था॥ १६॥ उसके नामकरणके विषयमें भी यह श्लोक कहा जाता है—॥ १७॥

''पुत्रोत्पत्तिके अनन्तर बृहस्पतिने ममतासे कहा—'हे मूढ़े! यह पुत्र द्वाज (हम दोनोंसे उत्पन्न हुआ) है तू इसका भरण कर।' तब ममताने भी कहा—'हे बृहस्पते! यह पुत्र द्वाज (हम दोनोंसे उत्पन्न हुआ) है अत: तुम इसका भरण करो।' इस प्रकार परस्पर विवाद करते हुए उसके माता-पिता चले गये, इसलिये उसका नाम 'भरद्वाज' पड़ा''॥ १८॥

पुत्र-जन्म वितथ (विफल) होनेपर मरुद्गणने राजा भरतको भरद्वाज दिया था, इसलिये उसका नाम 'वितथ' भी हुआ॥ १९॥ वितथका पुत्र मन्यु हुआ और मन्युके बृहत्क्षत्र, महावीर्य, नर और गर्ग आदि कई पुत्र हुए॥ २०-२१॥ नरका पुत्र संकृति और संकृतिके गुरुप्रीति एवं रन्तिदेव नामक दो पुत्र हुए॥ २२॥ गर्गसे शिनिका जन्म हुआ जिससे कि गार्ग्य और शैन्य नामसे विख्यात क्षत्रोपेत ब्राह्मण उत्पन्न हुए॥ २३॥ महावीर्यका पुत्र दुरुक्षय हुआ॥ २४॥ उसके त्रय्यारुणि, पुष्करिण्य और कपि नामक तीन पुत्र हुए॥ २५॥ ये तीनों पुत्र पीछे ब्राह्मण हो गये थे॥ २६॥ बृहत्क्षत्रका पुत्र सुहोत्र, सुहोत्रका पुत्र हस्ती था जिसने यह हस्तिनापुर नामक नगर बसाया था॥ २७-२८॥

हस्तीके तीन पुत्र अजमीढ, द्विजमीढ और पुरुमीढ थे। अजमीढके कण्व और कण्वके मेधातिथि नामक पुत्र हुआ जिससे कि काण्वायन ब्राह्मण उत्पन्न हुए॥ २९—३२॥ अजमीढका दूसरा पुत्र बृहदिषु था॥ ३३॥ उसके बृहद्धनु, बृहद्धनुके बृहत्कर्मा, बृहत्कर्माके जयद्रथ, जयद्रथके विश्वजित् तथा विश्वजित्के सेनजित्का जन्म हुआ। सेनजित्के रुचिराश्व, काश्य, दृढहनु और वत्सहनु नामक चार पुत्र हुए॥ ३४—३६॥ रुचिराश्वके पृथुसेन, पृथुसेनके पार और पारके नीलका जन्म हुआ। इस नीलके सौ पुत्र थे, जिनमें काम्पिल्यनरेश समर प्रधान था॥ ३७—४०॥ समरके पार, सुपार और सदश्व नामक तीन पुत्र थे॥ ४१॥ सुपारके पृथु, पृथुके सुकृति, सुकृतिके विभ्राज और विभ्राजके अणुह नामक पुत्र हुआ, जिसने शुककन्या कीर्तिसे विवाह किया था॥ ४२—४४॥ अणुहसे ब्रह्मदत्तका जन्म हुआ। ब्रह्मदत्तसे विष्वक्सेन, विष्वक्सेनसे उदक्सेन तथा उदक्सेनसे भल्लाभ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ॥ ४५—४७॥

द्विजमीढका पुत्र यवीनर था॥ ४८॥ उसका धृतिमान्, धृतिमान्का सत्यधृति, सत्यधृतिका दृढनेमि, दृढनेमिका सुपार्श्व, सुपार्श्वका सुमति, सुमतिका सन्नतिमान् तथा सन्नतिमान्का पुत्र कृत हुआ जिसे हिरण्यनाभने योगविद्याकी शिक्षा दी थी तथा जिसने प्राच्य सामग श्रुतियोंकी चौबीस संहिताएँ रची थीं॥ ४९—५२॥ कृतका पुत्र उग्रायुध था जिसने अनेकों नीपवंशीय क्षत्रियोंका नाश किया॥ ५३-५४॥ उग्रायुधके क्षेम्य, क्षेम्यके सुधीर, सुधीरके रिपुंजय और रिपुंजयसे बहुरथने जन्म लिया। ये सब पुरुवंशीय राजागण हुए॥ ५५॥

अजमीढकी नलिनीनाम्नी एक भार्या थी। उसके नील नामक एक पुत्र हुआ॥ ५६॥ नीलके शान्ति, शान्तिके सुशान्ति, सुशान्तिके पुरंजय, पुरंजयके ऋक्ष और ऋक्षके हर्यश्व नामक पुत्र हुआ॥ ५७-५८॥ हर्यश्वके मुद्गल, सृंजय, बृहदिषु, यवीनर और काम्पिल्य नामक पाँच पुत्र हुए। पिताने कहा था कि मेरे ये पुत्र मेरे आश्रित पाँचों देशोंकी रक्षा करनेमें समर्थ हैं, इसलिये वे पांचाल कहलाये॥ ५९॥

मुद्गलसे मौद्गल्य नामक क्षत्रोपेत ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति हुई॥ ६०॥ मुद्गलसे बृहदश्व और बृहदश्वसे दिवोदास नामक पुत्र एवं अहल्या नामकी एक कन्याका जन्म हुआ॥ ६१-६२॥ अहल्यासे महर्षि गौतमके द्वारा शतानन्दका जन्म हुआ॥ ६३॥ शतानन्दसे धनुर्वेदका पारदर्शी सत्यधृति उत्पन्न हुआ॥ ६४॥ एक बार अप्सराओंमें श्रेष्ठ उर्वशीको देखनेसे सत्यधृतिका वीर्य स्खलित होकर शरस्तम्ब (सरकण्डे)-पर पड़ा॥ ६५॥ उससे दो भागोंमें बँट जानेके कारण पुत्र और पुत्रीरूप दो सन्तानें उत्पन्न हुईं॥ ६६॥ उन्हें मृगयाके लिये गये हुए राजा शान्तनु कृपावश ले आये॥ ६७॥ तदनन्तर पुत्रका नाम कृप हुआ और कन्या अश्वत्थामाकी माता द्रोणाचार्यकी पत्नी कृपी हुई॥ ६८॥

दिवोदासका पुत्र मित्रायु हुआ॥ ६९॥ मित्रायुका पुत्र च्यवन नामक राजा हुआ, च्यवनका सुदास, सुदासका सौदास, सौदासका सहदेव, सहदेवका सोमक और सोमकके सौ पुत्र हुए जिनमें जन्तु सबसे बड़ा और पृषत सबसे छोटा था। पृषतका पुत्र द्रुपद, द्रुपदका धृष्टद्युम्न और धृष्टद्युम्नका पुत्र धृष्टकेतु था॥ ७०—७३॥

अजमीढका ऋक्ष नामक एक पुत्र और था॥ ७४॥ उसका पुत्र संवरण हुआ तथा संवरणका पुत्र कुरु था जिसने कि धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्रकी स्थापना की॥ ७५—७७॥ कुरुके पुत्र सुधनु,

जह्नु और परीक्षित् आदि हुए॥ ७८॥ सुधनुका पुत्र सुहोत्र था, सुहोत्रका च्यवन, च्यवनका कृतक और कृतकका पुत्र उपरिचर वसु हुआ॥ ७९-८०॥ वसुके बृहद्रथ, प्रत्यग्र, कुशाम्बु, कुचेल और मात्स्य आदि सात पुत्र थे॥ ८१॥ इनमेंसे बृहद्रथके कुशाग्र, कुशाग्रके वृषभ, वृषभके पुष्पवान्, पुष्पवान्के सत्यहित, सत्यहितके सुधन्वा और सुधन्वाके जतुका जन्म हुआ॥ ८२॥ बृहद्रथके दो खण्डोंमें विभक्त एक पुत्र और हुआ था जो कि जराके द्वारा जोड़ दिये जानेपर जरासन्ध कहलाया॥ ८३॥ उससे सहदेवका जन्म हुआ तथा सहदेवसे सोमप और सोमपसे श्रुतिश्रवाकी उत्पत्ति हुई॥ ८४॥ इस प्रकार मैंने तुमसे यह मागध भूपालोंका वर्णन कर दिया है॥ ८५॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके चौथे अंशमें उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त॥ १९॥

बीसवाँ अध्याय

कुरुके वंशका वर्णन

श्रीपराशरजी बोले—[कुरुपुत्र] परीक्षित्के जनमेजय, श्रुतसेन, उग्रसेन और भीमसेन नामक चार पुत्र हुए तथा जह्नुके सुरथ नामक एक पुत्र हुआ॥ १-२॥ सुरथके विदूरथका जन्म हुआ। विदूरथके सार्वभौम, सार्वभौमके जयत्सेन, जयत्सेनके आराधित, आराधितके अयुतायु, अयुतायुके अक्रोधन, अक्रोधनके देवातिथि तथा देवातिथिके [अजमीढके पुत्र ऋक्षसे भिन्न] दूसरे ऋक्षका जन्म हुआ॥ ३—६॥ ऋक्षसे भीमसेन, भीमसेनसे दिलीप और दिलीपसे प्रतीप नामक पुत्र हुआ॥ ७-८॥

प्रतीपके देवापि, शान्तनु और बाह्लीक नामक तीन पुत्र हुए॥ ९॥ इनमेंसे देवापि बाल्यावस्थामें ही वनमें चला गया था अत: शान्तनु ही राजा हुआ॥ १०-११॥ उसके विषयमें पृथिवीतलपर यह श्लोक कहा जाता है- ॥ १२॥

"[राजा शान्तनु] जिसको-जिसको अपने हाथसे स्पर्श कर देते थे वे वृद्ध पुरुष भी युवावस्था प्राप्त कर लेते थे तथा उनके स्पर्शसे सम्पूर्ण जीव अत्युत्तम शान्तिलाभ करते थे, इसलिये वे शान्तनु कहलाते थे"॥ १३॥

एक बार महाराज शान्तनुके राज्यमें बारह वर्षतक वर्षा न हुई॥ १४॥ उस समय सम्पूर्ण देशको नष्ट होता देखकर राजाने ब्राह्मणोंसे पूछा—'हमारे राज्यमें वर्षा क्यों नहीं हुई? इसमें मेरा क्या अपराध है?'॥ १५॥

तब ब्राह्मणोंने उससे कहा—'यह राज्य तुम्हारे बड़े भाईका है किन्तु इसे तुम भोग रहे हो; इसलिये तुम परिवेत्ता हो।' उनके ऐसा कहनेपर राजा शान्तनुने उनसे फिर पूछा—'तो इस सम्बन्धमें मुझे अब क्या करना चाहिये?'॥ १६—१८॥

इसपर वे ब्राह्मण फिर बोले—'जबतक तुम्हारा बड़ा भाई देवापि किसी प्रकार पतित न हो तबतक यह राज्य उसीके योग्य है॥ १९-२०॥ अत: तुम इसे उसीको दे डालो, तुम्हारा इससे कोई प्रयोजन नहीं।' ब्राह्मणोंके ऐसा कहनेपर शान्तनुके मन्त्री अश्मसारीने वेदवादके विरुद्ध बोलनेवाले तपस्वियोंको वनमें नियुक्त किया॥ २१॥ उन्होंने अतिशय सरलमति राजकुमार देवापिकी बुद्धिको वेदवादके विरुद्ध मार्गमें प्रवृत्त कर दिया॥ २२॥ उधर राजा शान्तनु ब्राह्मणोंके

कथनानुसार दु:ख और शोकयुक्त होकर ब्राह्मणोंको आगे कर अपने बड़े भाईको राज्य देनेके लिये वनमें गये ॥ २३ ॥

वनमें पहुँचनेपर वे ब्राह्मणगण परम विनीत राजकुमार देवापिके आश्रमपर उपस्थित हुए; और उससे 'ज्येष्ठ भ्राताको ही राज्य करना चाहिये'—इस अर्थके समर्थक अनेक वेदानुकूल वाक्य कहने लगे ॥ २४-२५ ॥ किन्तु उस समय देवापिने वेदवादके विरुद्ध नाना प्रकारकी युक्तियोंसे दूषित बातें कीं ॥ २६ ॥ तब उन ब्राह्मणोंने शान्तनुसे कहा— ॥ २७ ॥ "हे राजन्! चलो, अब यहाँ अधिक आग्रह करनेकी आवश्यकता नहीं। अब अनावृष्टिका दोष शान्त हो गया। अनादिकालसे पूजित वेदवाक्योंमें दोष बतलानेके कारण देवापि पतित हो गया है ॥ २८ ॥ ज्येष्ठ भ्राताके पतित हो जानेसे अब तुम परिवेत्ता नहीं रहे।" उनके ऐसा कहनेपर शान्तनु अपनी राजधानीको चले आये और राज्यशासन करने लगे ॥ २९ ॥ वेदवादके विरुद्ध वचन बोलनेके कारण देवापिके पतित हो जानेसे, बड़े भाईके रहते हुए भी सम्पूर्ण धान्योंकी उत्पत्तिके लिये पर्जन्यदेव (मेघ) बरसने लगे ॥ ३० ॥

बाह्लीकके सोमदत्त नामक पुत्र हुआ तथा सोमदत्तके भूरि, भूरिश्रवा और शल्य नामक तीन पुत्र हुए ॥ ३१-३२ ॥ शान्तनुके गंगाजीसे अतिशय कीर्तिमान् तथा सम्पूर्ण शास्त्रोंका जाननेवाला भीष्म नामक पुत्र हुआ ॥ ३३ ॥ शान्तनुने सत्यवतीसे चित्रांगद और विचित्रवीर्य नामक दो पुत्र और भी उत्पन्न किये ॥ ३४ ॥ उनमेंसे चित्रांगदको तो बाल्यावस्थामें ही चित्रांगद नामक गन्धर्वने युद्धमें मार डाला ॥ ३५ ॥ विचित्रवीर्यने काशिराजकी पुत्री अम्बिका और अम्बालिकासे विवाह किया ॥ ३६ ॥ उनमें अत्यन्त भोगासक्त रहनेके कारण अतिशय खिन्न रहनेसे वह यक्ष्माके वशीभूत होकर [अकालहीमें] मर गया ॥ ३७ ॥ तदनन्तर मेरे पुत्र कृष्णद्वैपायनने सत्यवतीके नियुक्त करनेसे माताका वचन टालना उचित न जान विचित्रवीर्यकी पत्नियोंसे धृतराष्ट्र और पाण्डु नामक दो पुत्र उत्पन्न किये और उनकी भेजी हुई दासीसे विदुर नामक एक पुत्र उत्पन्न किया ॥ ३८ ॥

धृतराष्ट्रने भी गान्धारीसे दुर्योधन और दु:शासन आदि सौ पुत्रोंको जन्म दिया ॥ ३९ ॥ पाण्डु वनमें आखेट करते समय ऋषिके शापसे सन्तानोत्पादनमें असमर्थ हो गये थे, अत: उनकी स्त्री कुन्तीसे धर्म, वायु और इन्द्रने क्रमश: युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन नामक तीन पुत्र तथा माद्रीसे दोनों अश्विनीकुमारोंने नकुल और सहदेव नामक दो पुत्र उत्पन्न किये। इस प्रकार उनके पाँच पुत्र हुए ॥ ४० ॥ उन पाँचोंके द्रौपदीसे पाँच ही पुत्र हुए ॥ ४१ ॥ उनमेंसे युधिष्ठिरसे प्रतिविन्ध्य, भीमसेनसे श्रुतसेन, अर्जुनसे श्रुतकीर्ति, नकुलसे श्रुतानीक तथा सहदेवसे श्रुतकर्माका जन्म हुआ था ॥ ४२ ॥

इनके अतिरिक्त पाण्डवोंके और भी कई पुत्र हुए ॥ ४३ ॥ जैसे—युधिष्ठिरसे यौधेयीके देवक नामक पुत्र हुआ, भीमसेनसे हिडिम्बाके घटोत्कच और काशीसे सर्वग नामक पुत्र हुआ, सहदेवसे विजयाके सुहोत्रका जन्म हुआ, नकुलने रेणुमतीसे निरमित्रको उत्पन्न किया ॥ ४४—४८ ॥ अर्जुनके नागकन्या उलूपीसे इरावान् नामक पुत्र हुआ ॥ ४९ ॥ मणिपुर नरेशकी पुत्रीसे अर्जुनने पुत्रिका-धर्मानुसार बभ्रुवाहन नामक एक पुत्र उत्पन्न किया ॥ ५० ॥ तथा उसके सुभद्रासे अभिमन्युका जन्म हुआ जो कि बाल्यावस्थामें ही बड़ा बल-पराक्रम-सम्पन्न तथा अपने सम्पूर्ण शत्रुओंको जीतनेवाला था ॥ ५१ ॥

तदनन्तर कुरुकुलके क्षीण हो जानेपर जो अश्वत्थामाके प्रहार किये हुए ब्रह्मास्त्रद्वारा गर्भमें ही भस्मीभूत हो चुका था किन्तु फिर, जिन्होंने अपनी इच्छासे ही माया-मानव-देह धारण किया है उन सकल सुरासुरवन्दितचरणारविन्द श्रीकृष्णचन्द्रके प्रभावसे पुनः जीवित हो गया; उस परीक्षित्ने अभिमन्युके द्वारा उत्तराके गर्भसे जन्म लिया जो कि इस समय इस प्रकार धर्मपूर्वक सम्पूर्ण भूमण्डलका शासन कर रहा है कि जिससे भविष्यमें भी उसकी सम्पत्ति क्षीण न हो ॥ ५२-५३ ॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके चौथे अंशमें बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २० ॥

इक्कीसवाँ अध्याय

भविष्यमें होनेवाले राजाओंका वर्णन

श्रीपराशरजी बोले—अब मैं भविष्यमें होनेवाले राजाओंका वर्णन करता हूँ॥ १ ॥ इस समय जो परीक्षित् नामक महाराज हैं इनके जनमेजय, श्रुतसेन, उग्रसेन और भीमसेन नामक चार पुत्र होंगे॥ २ ॥ जनमेजयका पुत्र शतानीक होगा जो याज्ञवल्क्यसे वेदाध्ययन कर, कृपसे शस्त्रविद्या प्राप्तकर विषम विषयोंसे विरक्तचित्त हो महर्षि शौनकके उपदेशसे आत्मज्ञानमें निपुण होकर परमनिर्वाण-पद प्राप्त करेगा॥ ३-४ ॥

शतानीकका पुत्र अश्वमेधदत्त होगा॥ ५ ॥ उसके अधिसीमकृष्ण तथा अधिसीमकृष्णके निचक्नु नामक पुत्र होगा जो कि गंगाजीद्वारा हस्तिनापुरके बहा ले जानेपर कौशाम्बीपुरीमें निवास करेगा॥ ६—८ ॥

निचक्नुका पुत्र उष्ण होगा, उष्णका विचित्ररथ, विचित्ररथका शुचिरथ, शुचिरथका वृष्णिमान्, वृष्णिमान्का सुषेण, सुषेणका सुनीथ, सुनीथका नृप, नृपका चक्षु, चक्षुका सुखावल, सुखावलका पारिप्लव, पारिप्लवका सुनय, सुनयका मेधावी, मेधावीका रिपुंजय, रिपुंजयका मृदु, मृदुका तिग्म, तिग्मका बृहद्रथ, बृहद्रथका वसुदान, वसुदानका दूसरा शतानीक, शतानीकका उदयन, उदयनका अहीनर, अहीनरका दण्डपाणि, दण्डपाणिका निरमित्र तथा निरमित्रका पुत्र क्षेमक होगा। इस विषयमें यह श्लोक प्रसिद्ध है— ॥ ९—१७ ॥

'जो वंश ब्राह्मण और क्षत्रियोंकी उत्पत्तिका कारणरूप तथा नाना राजर्षियोंसे सभाजित है वह कलियुगमें राजा क्षेमके उत्पन्न होनेपर समाप्त हो जायगा'॥ १८ ॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके चौथे अंशमें इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २१ ॥

बाईसवाँ अध्याय

भविष्यमें होनेवाले इक्ष्वाकुवंशीय राजाओंका वर्णन

श्रीपराशरजी बोले—अब मैं भविष्यमें होनेवाले इक्ष्वाकुवंशीय राजाओंका वर्णन करता हूँ॥ १ ॥ बृहद्बलका पुत्र बृहत्क्षण होगा, उसका उरुक्षय, उरुक्षयका वत्सव्यूह, वत्सव्यूहका प्रतिव्योम, प्रतिव्योमका दिवाकर, दिवाकरका सहदेव, सहदेवका बृहदश्व, बृहदश्वका भानुरथ, भानुरथका प्रतीताश्व, प्रतीताश्वका सुप्रतीक, सुप्रतीकका मरुदेव, मरुदेवका सुनक्षत्र, सुनक्षत्रका किन्नर, किन्नरका अन्तरिक्ष, अन्तरिक्षका सुपर्ण, सुपर्णका अमित्रजित्, अमित्रजित्का बृहद्राज, बृहद्राजका धर्मी, धर्मीका कृतंजय, कृतंजयका रणंजय, रणंजयका संजय, संजयका शाक्य, शाक्यका शुद्धोदन, शुद्धोदनका राहुल, राहुलका प्रसेनजित्, प्रसेनजित्का क्षुद्रक, क्षुद्रकका कुण्डक, कुण्डकका सुरथ और सुरथका सुमित्र नामक पुत्र होगा। ये सब इक्ष्वाकुके वंशमें बृहद्बलकी सन्तान होंगे॥ २—११ ॥

इस वंशके सम्बन्धमें यह श्लोक प्रसिद्ध है— ॥ १२ ॥

'यह इक्ष्वाकुवंश राजा सुमित्रतक रहेगा, क्योंकि कलियुगमें राजा सुमित्रके होनेपर फिर यह समाप्त हो जायगा'॥ १३ ॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके चौथे अंशमें बाईसवाँ अध्याय समाप्त॥ २२ ॥

तेईसवाँ अध्याय

मगधवंशका वर्णन

श्रीपराशरजी बोले—अब मैं मगधदेशीय बृहद्रथकी भावी सन्तानका अनुक्रमसे वर्णन करूँगा॥ १ ॥ इस वंशमें महाबलवान् और पराक्रमी जरासन्ध आदि राजागण प्रधान थे॥ २ ॥

जरासन्धका पुत्र सहदेव है॥ ३ ॥ सहदेवके सोमापि नामक पुत्र होगा, सोमापिके श्रुतश्रवा, श्रुतश्रवाके अयुतायु, अयुतायुके निरमित्र, निरमित्रके सुनेत्र, सुनेत्रके बृहत्कर्मा, बृहत्कर्माके सेनजित्, सेनजित्के श्रुतंजय, श्रुतंजयके विप्र तथा विप्रके शुचि नामक एक पुत्र होगा॥ ४-५ ॥ शुचिके क्षेम्य, क्षेम्यके सुव्रत, सुव्रतके धर्म, धर्मके सुश्रवा, सुश्रवाके दृढसेन, दृढसेनके सुबल, सुबलके सुनीत, सुनीतके सत्यजित्, सत्यजित्के विश्वजित् और विश्वजित्के रिपुंजयका जन्म होगा॥ ६—१२ ॥ इस प्रकारसे बृहद्रथवंशीय राजागण एक सहस्र वर्षपर्यन्त मगधमें शासन करेंगे॥ १३ ॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके चौथे अंशमें तेईसवाँ अध्याय समाप्त॥ २३ ॥

चौबीसवाँ अध्याय

कलियुगी राजाओं और कलिधर्मोंका वर्णन तथा राजवंश-वर्णनका उपसंहार

श्रीपराशरजी बोले—बृहद्रथवंशका रिपुंजय नामक जो अन्तिम राजा होगा उसका सुनिक नामक एक मन्त्री होगा। वह अपने स्वामी रिपुंजयको मारकर अपने पुत्र प्रद्योतका राज्याभिषेक करेगा। उसका पुत्र बलाक होगा, बलाकका विशाखयूप, विशाखयूपका जनक, जनकका नन्दिवर्द्धन तथा नन्दिवर्द्धनका पुत्र नन्दी होगा। ये पाँच प्रद्योतवंशीय नृपतिगण एक सौ अड़तीस वर्ष पृथिवीका पालन करेंगे॥ १—८॥

नन्दीका पुत्र शिशुनाभ होगा, शिशुनाभका काकवर्ण, काकवर्णका क्षेमधर्मा, क्षेमधर्माका क्षतौजा, क्षतौजाका विधिसार, विधिसारका अजातशत्रु, अजातशत्रुका अर्भक, अर्भकका उदयन, उदयनका नन्दिवर्द्धन और नन्दिवर्द्धनका पुत्र महानन्दी होगा। ये शिशुनाभवंशीय नृपतिगण तीन सौ बासठ वर्ष पृथिवीका शासन करेंगे॥ ९—१९॥

महानन्दीके शूद्राके गर्भसे उत्पन्न महापद्म नामक नन्द दूसरे परशुरामके समान सम्पूर्ण क्षत्रियोंका नाश करनेवाला होगा। तबसे शूद्रजातीय राजा राज्य करेंगे। राजा महापद्म सम्पूर्ण पृथिवीका एकच्छत्र और अनुल्लंघित राज्य-शासन करेगा। उसके सुमाली आदि आठ पुत्र होंगे जो महापद्मके पीछे पृथिवीका राज्य भोगेंगे॥ २०—२४॥ महापद्म और उसके पुत्र सौ वर्षतक पृथिवीका शासन करेंगे। तदनन्तर इन नवों नन्दोंको कौटिल्य नामक एक ब्राह्मण नष्ट करेगा, उनका अन्त होनेपर मौर्य नृपतिगण पृथिवीको भोगेंगे। कौटिल्य ही [मुरा नामकी दासीसे नन्दद्वारा] उत्पन्न हुए चन्द्रगुप्तको राज्याभिषिक्त करेगा।॥ २५—२८॥

चन्द्रगुप्तका पुत्र बिन्दुसार, बिन्दुसारका अशोकवर्द्धन, अशोकवर्द्धनका सुयशा, सुयशाका दशरथ, दशरथका संयुत, संयुतका शालिशूक, शालिशूकका सोमशर्मा, सोमशर्माका शतधन्वा तथा शतधन्वाका पुत्र बृहद्रथ होगा। इस प्रकार एक सौ तिहत्तर वर्षतक ये दस मौर्यवंशी राजा राज्य करेंगे॥ २९—३२॥ इनके अनन्तर पृथिवीमें दस शुंगवंशीय राजागण होंगे॥ ३३॥ उनमें पहला पुष्यमित्र नामक सेनापति अपने स्वामीको मारकर स्वयं राज्य करेगा, उसका पुत्र अग्निमित्र होगा॥ ३४॥ अग्निमित्रका पुत्र सुज्येष्ठ, सुज्येष्ठका वसुमित्र, वसुमित्रका उदंक, उदंकका पुलिन्दक, पुलिन्दकका घोषवसु, घोषवसुका वज्रमित्र, वज्रमित्रका भागवत और भागवतका पुत्र देवभूति होगा ३५-३६॥ ये शुंगनरेश एक सौ बारह वर्ष पृथिवीका भोग करेंगे॥ ३७॥

इसके अनन्तर यह पृथिवी कण्व भूपालोंके अधिकारमें चली जायगी॥ ३८॥ शुंगवंशीय अति व्यसनशील राजा देवभूतिको कण्ववंशीय वसुदेव नामक उसका मन्त्री मारकर स्वयं राज्य भोगेगा॥ ३९॥ उसका पुत्र भूमित्र, भूमित्रका नारायण तथा नारायणका पुत्र सुशर्मा होगा॥ ४०-४१॥ ये चार काण्व भूपतिगण पैंतालीस वर्ष पृथिवीके अधिपति रहेंगे॥ ४२॥

कण्ववंशीय सुशर्माको उसका बलिपुच्छक नामवाला आन्ध्रजातीय सेवक मारकर स्वयं पृथिवीका भोग करेगा॥ ४३॥ उसके पीछे उसका भाई कृष्ण पृथिवीका स्वामी होगा॥ ४४॥ उसका पुत्र शान्तकर्णि होगा। शान्तकर्णिका पुत्र पूर्णोत्संग, पूर्णोत्संगका शातकर्णि, शातकर्णिका लम्बोदर, लम्बोदरका पिलक, पिलकका मेघस्वाति,

मेघस्वातिका पटुमान्, पटुमान्का अरिष्टकर्मा, अरिष्टकर्माका हालाहल, हालाहलका पललक, पललकका पुलिन्दसेन, पुलिन्दसेनका सुन्दर, सुन्दरका शातकर्णि, [दूसरा] शातकर्णिका शिवस्वाति, शिवस्वातिका गोमतिपुत्र, गोमतिपुत्रका अलिमान्, अलिमान्का शान्तकर्णि [दूसरा], शान्तकर्णिका शिवश्रित, शिवश्रितका शिवस्कन्ध, शिवस्कन्धका यज्ञश्री, यज्ञश्रीका द्वियज्ञ, द्वियज्ञका चन्द्रश्री तथा चन्द्रश्रीका पुत्र पुलोमाचि होगा॥ ४५—४९॥ इस प्रकार ये तीस आन्ध्रभृत्य राजागण चार सौ छप्पन वर्ष पृथिवीको भोगेंगे॥ ५०॥ इनके पीछे सात आभीर और दस गर्दभिल राजा होंगे॥ ५१॥ फिर सोलह शक राजा होंगे॥ ५२॥ उनके पीछे आठ यवन, चौदह तुर्क, तेरह मुण्ड (गुरुण्ड) और ग्यारह मौनजातीय राजालोग एक हजार नब्बे वर्ष पृथिवीका शासन करेंगे॥ ५३॥

इनमेंसे भी ग्यारह मौन राजा पृथिवीको तीन सौ वर्षतक भोगेंगे॥ ५४॥ इनके उच्छिन्न होनेपर कैंकिल नामक यवनजातीय अभिषेकरहित राजा होंगे॥ ५५॥ उनका वंशधर विन्ध्यशक्ति होगा। विन्ध्यशक्तिका पुत्र पुरंजय होगा। पुरंजयका रामचन्द्र, रामचन्द्रका धर्मवर्मा, धर्मवर्माका वंग, वंगका नन्दन तथा नन्दनका पुत्र सुनन्दी होगा। सुनन्दीके नन्दियशा, शुक्र और प्रवीर ये तीन भाई होंगे। ये सब एक सौ छः वर्ष राज्य करेंगे॥ ५६॥ इसके पीछे तेरह इनके वंशके और तीन बाह्लिक राजा होंगे॥ ५७॥ उनके बाद तेरह पुष्पमित्र और पटुमित्र आदि तथा सात आन्ध्र माण्डलिक भूपतिगण होंगे॥ ५८॥ तथा नौ राजा क्रमशः कोसलदेशमें राज्य करेंगे॥ ५९॥ निषधदेशके स्वामी भी ये ही होंगे॥ ६०॥

मगधदेशमें विश्वस्फटिक नामक राजा अन्य वर्णोंको प्रवृत्त करेगा॥ ६१॥ वह कैवर्त्त, वटु, पुलिन्द और ब्राह्मणोंको राज्यमें नियुक्त करेगा॥ ६२॥ सम्पूर्ण क्षत्रिय-जातिको उच्छिन्न कर पद्मावतीपुरीमें नागगण तथा गंगाके निकटवर्ती प्रयाग और गयामें मागध और गुप्त राजालोग राज्य-भोग करेंगे॥ ६३॥ कोसल, आन्ध्र, पुण्ड्र, ताम्रलिप्त और समुद्रतटवर्तिनी पुरीकी देवरक्षित नामक एक राजा रक्षा करेगा॥ ६४॥ कलिंग, माहिष, महेन्द्र और भौम आदि देशोंको गुह नरेश भोगेंगे॥ ६५॥ नैषध, नैमिषक और कालकोशक आदि जनपदोंको मणि-धान्यक-वंशीय राजा भोगेंगे॥ ६६॥ त्रैराज्य और मुषिक देशोंपर कनक नामक राजाका राज्य होगा॥ ६७॥ सौराष्ट्र, अवन्ति, शूद्र, आभीर तथा नर्मदा-तटवर्ती मरुभूमिपर व्रात्य द्विज, आभीर और शूद्र आदिका आधिपत्य होगा॥ ६८॥ समुद्रतट, दाविकोर्वी, चन्द्रभागा और काश्मीर आदि देशोंका व्रात्य, म्लेच्छ और शूद्र आदि राजागण भोग करेंगे॥ ६९॥

ये सम्पूर्ण राजालोग पृथिवीमें एक ही समयमें होंगे॥ ७०॥ ये थोड़ी प्रसन्नतावाले, अत्यन्त क्रोधी, सर्वदा अधर्म और मिथ्या भाषणमें रुचि रखनेवाले, स्त्री-बालक और गौओंकी हत्या करनेवाले, पर-धन-हरणमें रुचि रखनेवाले, अल्पशक्ति, तमःप्रधान उत्थानके साथ ही पतनशील, अल्पायु, महती कामनावाले, अल्पपुण्य और अत्यन्त लोभी होंगे॥ ७१॥ ये सम्पूर्ण देशोंको परस्पर मिला देंगे तथा उन राजाओंके आश्रयसे ही बलवान् और उन्हींके स्वभावका अनुकरण करनेवाले म्लेच्छ तथा आर्यविपरीत आचरण करते हुए सारी प्रजाको नष्ट-भ्रष्ट कर देंगे॥ ७२॥

तब दिन-दिन धर्म और अर्थका थोड़ा-थोड़ा ह्रास तथा क्षय होनेके कारण संसारका क्षय हो जायगा॥ ७३॥ उस समय अर्थ ही कुलीनताका हेतु होगा; बल ही सम्पूर्ण धर्मका हेतु होगा; पारस्परिक रुचि ही दाम्पत्य-सम्बन्धकी हेतु होगी, स्त्रीत्व ही उपभोगका हेतु होगा [अर्थात् स्त्रीकी जाति-कुल आदिका विचार न होगा]; मिथ्या भाषण ही व्यवहारमें सफलता प्राप्त करनेका हेतु होगा; जलकी सुलभता और सुगमता ही पृथिवीकी स्वीकृतिका हेतु होगा [अर्थात् पुण्यक्षेत्रादिका कोई विचार न होगा। जहाँकी जलवायु उत्तम होगी वही भूमि उत्तम मानी जायगी]; यज्ञोपवीत ही ब्राह्मणत्वका हेतु होगा; रत्नादि धारण करना ही प्रशंसाका हेतु होगा; बाह्य चिह्न ही आश्रमोंके हेतु होंगे; अन्याय ही आजीविकाका हेतु होगा; दुर्बलता ही बेकारीका हेतु होगा; निर्भयतापूर्वक धृष्टताके साथ बोलना ही पाण्डित्यका हेतु होगा, निर्धनता ही साधुत्वका हेतु होगी; स्नान ही साधनका हेतु होगा; दान ही धर्मका हेतु होगा; स्वीकार कर लेना ही विवाहका हेतु होगा [अर्थात् संस्कार आदिकी अपेक्षा न कर पारस्परिक स्नेहबन्धनसे ही दाम्पत्य-सम्बन्ध स्थापित हो जायगा]; भली प्रकार बन-ठनकर रहनेवाला ही सुपात्र समझा जायगा; दूरदेशका जल ही तीर्थोदकत्वका हेतु होगा तथा छद्मवेश धारण ही गौरवका कारण होगा॥ ७४—९२॥ इस प्रकार पृथिवीमण्डलमें विविध दोषोंके फैल जानेसे सभी वर्णोंमें जो-जो बलवान् होगा वही-वही राजा बन बैठेगा॥ ९३॥

इस प्रकार अतिलोलुप राजाओंके कर-भारको सहन न कर सकनेके कारण प्रजा पर्वत-कन्दराओंका आश्रय लेगी तथा मधु, शाक, मूल, फल, पत्र और पुष्प आदि खाकर दिन काटेगी॥ ९४-९५॥ वृक्षोंके पत्र और वल्कल ही उनके पहनने तथा ओढ़नेके कपड़े होंगे। अधिक सन्तानें होंगी। सब लोग शीत, वायु, घाम और वर्षा आदिके कष्ट सहेंगे॥ ९६॥ कोई भी तेईस वर्षतक जीवित न रह सकेगा। इस प्रकार कलियुगमें यह सम्पूर्ण जनसमुदाय निरन्तर क्षीण होता रहेगा॥ ९७॥ इस प्रकार श्रौत और स्मार्तधर्मका अत्यन्त ह्रास हो जाने तथा कलियुगके प्रायः बीत जानेपर शम्बल (सम्भल) ग्रामनिवासी ब्राह्मणश्रेष्ठ विष्णुयशाके घर सम्पूर्ण संसारके रचयिता, चराचर गुरु, आदिमध्यान्तशून्य, ब्रह्ममय, आत्मस्वरूप भगवान् वासुदेव अपने अंशसे अष्टैश्वर्ययुक्त कल्किरूपसे संसारमें अवतार लेकर असीम शक्ति और माहात्म्यसे सम्पन्न हो सकल म्लेच्छ, दस्यु, दुष्टाचारी तथा दुष्ट चित्तोंका क्षय करेंगे और समस्त प्रजाको अपने-अपने धर्ममें नियुक्त करेंगे॥ ९८॥ इसके पश्चात् समस्त कलियुगके समाप्त हो जानेपर रात्रिके अन्तमें जागे हुओंके समान तत्कालीन लोगोंकी बुद्धि स्वच्छ, स्फटिकमणिके समान निर्मल हो जायगी॥ ९९॥ उन बीजभूत समस्त मनुष्योंसे उनकी अधिक अवस्था होनेपर भी उस समय सन्तान उत्पन्न हो सकेगी॥ १००॥ उनकी वे सन्तानें सत्ययुगके ही धर्मोंका अनुसरण करनेवाली होंगी॥ १०१॥

इस विषयमें ऐसा कहा जाता है कि—

जिस समय चन्द्रमा, सूर्य और बृहस्पति पुष्यनक्षत्रमें स्थित होकर एक राशिपर एक साथ आवेंगे उसी समय सत्ययुगका आरम्भ हो जायगा*॥ १०२॥

हे मुनिश्रेष्ठ! तुमसे मैंने यह समस्त वंशोंके

* यद्यपि प्रति बारहवें वर्ष जब बृहस्पति कर्कराशिपर जाते हैं तो अमावास्यातिथिको पुष्यनक्षत्रपर इन तीनों ग्रहोंका योग होता है, तथापि 'समेष्यन्ति' पदसे एक साथ आनेपर सत्ययुगका आरम्भ कहा है; इसलिये उक्त समयपर अतिव्याप्तिदोष नहीं है।

भूत, भविष्यत् और वर्तमान सम्पूर्ण राजाओंका वर्णन कर दिया॥ १०३॥

परीक्षित्के जन्मसे नन्दके अभिषेकतक एक हजार पचास वर्षका समय जानना चाहिये॥ १०४॥ सप्तर्षियोंमेंसे जो [पुलस्त्य और क्रतु] दो नक्षत्र आकाशमें पहले दिखायी देते हैं, उनके बीचमें रात्रिके समय जो [दक्षिणोत्तर रेखापर] समदेशमें स्थित [अश्विनी आदि] नक्षत्र हैं, उनमेंसे प्रत्येक नक्षत्रपर सप्तर्षिगण एक-एक सौ वर्ष रहते हैं। हे द्विजोत्तम! परीक्षित्के समयमें वे सप्तर्षिगण मघानक्षत्रपर थे। उसी समय बारह सौ वर्ष प्रमाणवाला कलियुग आरम्भ हुआ था ॥ १०५—१०७॥ हे द्विज! जिस समय भगवान् विष्णुके अंशावतार भगवान् वासुदेव निजधामको पधारे थे उसी समय पृथिवीपर कलियुगका आगमन हुआ था॥ १०८॥ जबतक भगवान् अपने चरण-कमलोंसे इस पृथिवीका स्पर्श करते रहे, तबतक पृथिवीसे संसर्ग करनेकी कलियुगकी हिम्मत न पड़ी॥ १०९॥

सनातन पुरुष भगवान् विष्णुके अंशावतार श्रीकृष्णचन्द्रके स्वर्गलोक पधारनेपर भाइयोंके सहित धर्मपुत्र महाराज युधिष्ठिरने अपने राज्यको छोड़ दिया॥ ११०॥ कृष्णचन्द्रके अन्तर्धान हो जानेपर विपरीत लक्षणोंको देखकर पाण्डवोंने परीक्षित्को राज्यपदपर अभिषिक्त कर दिया॥ १११॥ जिस समय ये सप्तर्षिगण पूर्वाषाढानक्षत्रपर जायँगे उसी समय राजा नन्दके समयसे कलियुगका प्रभाव बढ़ेगा॥ ११२॥ जिस दिन भगवान् कृष्णचन्द्र परमधामको गये थे उसी दिन कलियुग उपस्थित हो गया था। अब तुम कलियुगकी वर्ष-संख्या सुनो— ॥ ११३॥

हे द्विज! मानवी वर्षगणनाके अनुसार कलियुग तीन लाख साठ हजार वर्ष रहेगा॥ ११४॥ इसके पश्चात् बारह सौ दिव्य वर्षपर्यन्त कृतयुग रहेगा॥ ११५॥ हे द्विजश्रेष्ठ! प्रत्येक युगमें हजारों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र महात्मागण हो गये हैं॥ ११६॥ उनके बहुत अधिक संख्यामें होनेसे तथा समानता होनेके कारण कुलोंमें पुनरुक्ति हो जानेके भयसे मैंने उन सबके नाम नहीं बतलाये हैं॥ ११७॥

पुरुवंशीय राजा देवापि तथा इक्ष्वाकुकुलोत्पन्न राजा पुरु—ये दोनों अत्यन्त योगबलसम्पन्न हैं और कलापग्राममें रहते हैं॥ ११८॥ सत्ययुगका आरम्भ होनेपर ये पुनः मर्त्यलोकमें आकर क्षत्रिय-कुलके प्रवर्त्तक होंगे। वे आगामी मनुवंशके बीजरूप हैं॥ ११९॥ सत्ययुग, त्रेता और द्वापर इन तीनों युगोंमें इसी क्रमसे मनुपुत्र पृथिवीका भोग करते हैं॥ १२०॥ फिर कलियुगमें उन्हींमेंसे कोई-कोई आगामी मनुसन्तानके बीजरूपसे स्थित रहते हैं जिस प्रकार कि आजकल देवापि और पुरु हैं॥ १२१॥

इस प्रकार मैंने तुमसे सम्पूर्ण राजवंशोंका यह संक्षिप्त वर्णन कर दिया है, इनका पूर्णतया वर्णन तो सौ वर्षमें भी नहीं किया जा सकता॥ १२२॥ इस हेय शरीरके मोहसे अन्धे हुए ये तथा और भी ऐसे अनेक भूपतिगण हो गये हैं जिन्होंने इस पृथिवीमण्डलको अपना-अपना माना है॥ १२३॥ 'यह पृथिवी किस प्रकार अचलभावसे मेरी, मेरे पुत्रकी अथवा मेरे वंशकी होगी?' इसी चिन्तामें व्याकुल हुए इन सभी राजाओंका अन्त हो गया॥ १२४॥ इसी चिन्तामें डूबे रहकर इन सम्पूर्ण राजाओंके पूर्व-पूर्वतरवर्ती राजालोग चले गये और इसीमें मग्न रहकर आगामी भूपतिगण भी मृत्यु-मुखमें चले जायँगे॥ १२५॥ इस प्रकार अपनेको जीतनेके लिये राजाओंको अथक उद्योग करते देखकर वसुन्धरा शरत्कालीन पुष्पोंके रूपमें मानो हँस रही है॥ १२६॥

हे मैत्रेय! अब तुम पृथिवीके कहे हुए कुछ श्लोकोंको सुनो। पूर्वकालमें इन्हें असित मुनिने धर्मध्वजी राजा जनकको सुनाया था॥ १२७॥

पृथिवी कहती है—अहो! बुद्धिमान् होते हुए भी इन राजाओंको यह कैसा मोह हो रहा है जिसके कारण ये बुलबुलेके समान क्षणस्थायी होते हुए भी अपनी स्थिरतामें इतना विश्वास रखते हैं॥ १२८॥ ये लोग प्रथम अपनेको जीतते हैं और फिर अपने मन्त्रियोंको तथा इसके अनन्तर ये क्रमशः अपने भृत्य, पुरवासी एवं शत्रुओंको जीतना चाहते हैं॥ १२९॥ 'इसी क्रमसे हम समुद्रपर्यन्त इस सम्पूर्ण पृथिवीको जीत लेंगे' ऐसी बुद्धिसे मोहित हुए ये लोग अपनी निकटवर्तिनी मृत्युको नहीं देखते॥ १३०॥ यदि समुद्रसे घिरा हुआ यह सम्पूर्ण भूमण्डल अपने वशमें हो ही जाय तो भी मनोजयकी अपेक्षा इसका मूल्य ही क्या है? क्योंकि मोक्ष तो मनोजयसे ही प्राप्त होता है॥ १३१॥ जिसे छोड़कर इनके पूर्वज चले गये तथा जिसे अपने साथ लेकर इनके पिता भी नहीं गये उसी मुझको अत्यन्त मूर्खताके कारण ये राजालोग जीतना चाहते हैं॥ १३२॥ जिनका चित्त ममतामय है उन पिता-पुत्र और भाइयोंमें अत्यन्त मोहके कारण मेरे ही लिये परस्पर कलह होता है॥ १३३॥ जो-जो राजालोग यहाँ हो चुके हैं उन सभीकी ऐसी कुबुद्धि रही है कि यह सम्पूर्ण पृथिवी मेरी ही है और मेरे पीछे यह सदा मेरी सन्तानकी ही रहेगी॥ १३४॥ इस प्रकार मेरेमें ममता करनेवाले एक राजाको, मुझे छोड़कर मृत्युके मुखमें जाते हुए देखकर भी न जाने कैसे उसका उत्तराधिकारी अपने हृदयमें मेरे लिये ममताको स्थान देता है?॥ १३५॥ जो राजालोग दूतोंके द्वारा अपने शत्रुओंसे इस प्रकार कहलाते हैं कि 'यह पृथिवी मेरी है, तुमलोग इसे तुरन्त छोड़कर चले जाओ' उनपर मुझे बड़ी हँसी आती है और फिर उन मूढ़ोंपर मुझे दया भी आ जाती है॥ १३६॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! पृथिवीके कहे हुए इन श्लोकोंको जो पुरुष सुनेगा उसकी ममता इसी प्रकार लीन हो जायगी जैसे सूर्यके तपते समय बर्फ पिघल जाता है॥ १३७॥ इस प्रकार मैंने तुमसे भली प्रकार मनुके वंशका वर्णन कर दिया। जिस वंशके राजागण स्थितिकारक भगवान् विष्णुके अंशके अंश थे॥ १३८॥ जो पुरुष इस मनुवंशका क्रमशः श्रवण करता है उस शुद्धात्माके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं॥ १३९॥

जो मनुष्य जितेन्द्रिय होकर सूर्य और चन्द्रमाके इन प्रशंसनीय वंशोंका सम्पूर्ण वर्णन सुनता है, वह अतुलित धन-धान्य और सम्पत्ति प्राप्त करता है॥ १४०॥ महाबलवान्, महावीर्यशाली, अनन्त धन संचय करनेवाले तथा परम निष्ठावान् इक्ष्वाकु, जह्नु, मान्धाता, सगर, अविक्षित, रघुवंशीय राजागण तथा नहुष और ययाति आदिके चरित्रोंको सुनकर, जिन्हें कि कालने आज कथामात्र ही शेष रखा है, प्रज्ञावान् मनुष्य पुत्र, स्त्री, गृह, क्षेत्र और धन आदिमें ममता न करेगा॥ १४१—१४३॥

जिन पुरुषश्रेष्ठोंने ऊर्ध्वबाहु होकर अनेक वर्षपर्यन्त कठिन तपस्या की थी तथा विविध प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान किया था, आज उन अति बलवान् और वीर्यशाली राजाओंकी कालने केवल कथामात्र ही छोड़ दी है॥ १४४॥ जो पृथु अपने शत्रुसमूहको जीतकर स्वच्छन्द-गतिसे समस्त लोकोंमें विचरता था आज वही काल-वायुकी प्रेरणासे अग्निमें फेंके हुए सेमरकी रूईके ढेरके समान नष्ट-भ्रष्ट हो गया है॥ १४५॥ जो कार्तवीर्य

अपने शत्रु-मण्डलका संहार कर समस्त द्वीपोंको वशीभूत कर उन्हें भोगता था वही आज कथा-प्रसंगसे वर्णन करते समय उलटा संकल्प-विकल्पका हेतु होता है [अर्थात् उसका वर्णन करते समय यह सन्देह होता है कि वास्तवमें वह हुआ था या नहीं।] ॥ १४६ ॥ समस्त दिशाओंको देदीप्यमान करनेवाले रावण, अविक्षित और रामचन्द्र आदिके [क्षणभंगुर] ऐश्वर्यको धिक्कार है। अन्यथा कालके क्षणिक कटाक्षपातके कारण आज उसका भस्ममात्र भी क्यों नहीं बच सका? ॥ १४७ ॥ जो मान्धाता सम्पूर्ण भूमण्डलका चक्रवर्ती सम्राट् था आज उसका केवल कथामें ही पता चलता है। ऐसा कौन मन्दबुद्धि होगा जो यह सुनकर अपने शरीरमें भी ममता करेगा? [फिर पृथिवी आदिमें ममता करनेकी तो बात ही क्या है?] ॥ १४८ ॥ भगीरथ, सगर, ककुत्स्थ, रावण, रामचन्द्र, लक्ष्मण और युधिष्ठिर आदि पहले हो गये हैं यह बात सर्वथा सत्य है, किसी प्रकार भी मिथ्या नहीं है; किन्तु अब वे कहाँ हैं इसका हमें पता नहीं ॥ १४९ ॥

हे विप्रवर! वर्तमान और भविष्यत्कालीन जिन-जिन महावीर्यशाली राजाओंका मैंने वर्णन किया है, ये तथा अन्य लोग भी पूर्वोक्त राजाओंकी भाँति कथामात्र शेष रहेंगे ॥ १५० ॥

ऐसा जानकर पुत्र, पुत्री और क्षेत्र आदि तथा अन्य प्राणी तो अलग रहें, बुद्धिमान् मनुष्यको अपने शरीरमें भी ममता नहीं करनी चाहिये ॥ १५१ ॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके चौथे अंशमें चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २४ ॥

इस प्रकार श्रीपराशरमुनिद्वारा विरचित श्रीविष्णुपरत्वनिर्णायक श्रीविष्णुमहापुराणका चौथा अंश समाप्त।

ॐ

श्रीमन्नारायणाय नमः

श्रीविष्णुपुराण

पाँचवाँ अंश

पहला अध्याय

वसुदेव-देवकीका विवाह, भारपीडिता पृथिवीका देवताओंके सहित क्षीरसमुद्रपर जाना और भगवान्‌का प्रकट होकर उसे धैर्य बँधाना, कृष्णावतारका उपक्रम

श्रीमैत्रेयजी बोले—भगवन्! आपने राजाओंके सम्पूर्ण वंशोंका विस्तार तथा उनके चरित्रोंका क्रमशः यथावत् वर्णन किया॥ १॥ अब, हे ब्रह्मर्षे! यदुकुलमें जो भगवान् विष्णुका अंशावतार हुआ था, उसे मैं तत्त्वतः और विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ॥ २॥ हे मुने! भगवान् पुरुषोत्तमने अपने अंशांशसे पृथिवीपर अवतीर्ण होकर जो-जो कर्म किये थे, उन सबका आप मुझसे वर्णन कीजिये॥ ३॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! तुमने मुझसे जो पूछा है वह संसारमें परम मंगलकारी भगवान् विष्णुके अंशावतारका चरित्र सुनो॥ ४॥ हे महामुने! पूर्वकालमें देवककी महाभाग्यशालिनी पुत्री देवीस्वरूपा देवकीके साथ वसुदेवजीने विवाह किया॥ ५॥ वसुदेव और देवकीके वैवाहिक सम्बन्ध होनेके अनन्तर [विदा होते समय] भोजनन्दन कंस सारथि बनकर उन दोनोंका माङ्गलिक रथ हाँकने लगा॥ ६॥ उसी समय मेघके समान गम्भीर घोष करती हुई आकाशवाणी कंसको ऊँचे स्वरसे सम्बोधन करके यों बोली—॥ ७॥ "अरे मूढ़! पतिके साथ रथपर बैठी हुई जिस देवकीको तू लिये जा रहा है इसका आठवाँ गर्भ तेरे प्राण हर लेगा"॥ ८॥

श्रीपराशरजी बोले—यह सुनते ही महाबली कंस [म्यानसे] खड्ग निकालकर देवकीको मारनेके लिये उद्यत हुआ। तब वसुदेवजी यों कहने लगे—॥ ९॥

"हे महाभाग! हे अनघ! आप देवकीका वध न करें; मैं इसके गर्भसे उत्पन्न हुए सभी बालक आपको सौंप दूँगा"॥ १०॥

श्रीपराशरजी बोले—हे द्विजोत्तम! तब सत्यके गौरवसे कंसने वसुदेवजीसे 'बहुत अच्छा' कह देवकीका वध नहीं किया॥ ११॥ इसी समय अत्यन्त भारसे पीडित होकर पृथिवी [गौका रूप धारणकर] सुमेरु-पर्वतपर देवताओंके दलमें गयी॥ १२॥ वहाँ उसने ब्रह्माजीके सहित समस्त देवताओंको प्रणामकर खेदपूर्वक करुणस्वरसे बोलती हुई अपना सारा वृत्तान्त कहा॥ १३॥

पृथिवी बोली—जिस प्रकार अग्नि सुवर्णका तथा सूर्य गो (किरण)-समूहका परमगुरु है, उसी प्रकार सम्पूर्ण लोकोंके गुरु श्रीनारायण मेरे गुरु हैं॥ १४॥ वे प्रजापतियोंके पति और पूर्वजोंके पूर्वज ब्रह्माजी हैं तथा वे ही कला-काष्ठा-निमेष-स्वरूप अव्यक्त मूर्तिमान् काल हैं। हे देवश्रेष्ठगण! आप सब लोगोंका समूह भी उन्हींका अंशस्वरूप है॥ १५-१६॥ आदित्य, मरुद्गण, साध्यगण, रुद्र, वसु, अग्नि, पितृगण और अत्रि आदि प्रजापतिगण—ये सब अप्रमेय महात्मा

विष्णुके ही रूप हैं॥ १७-१८॥ यक्ष, राक्षस, दैत्य, पिशाच, सर्प, दानव, गन्धर्व और अप्सरा आदि भी महात्मा विष्णुके ही रूप हैं॥ १९ ॥ ग्रह, नक्षत्र तथा तारागणोंसे चित्रित आकाश, अग्नि, जल, वायु, मैं और इन्द्रियोंके सम्पूर्ण विषय—यह सारा जगत् विष्णुमय ही है॥ २०॥ तथापि उन अनेक रूपधारी विष्णुके ये रूप समुद्रकी तरंगोंके समान रात-दिन एक-दूसरेके बाध्य-बाधक होते रहते हैं॥ २१॥

इस समय कालनेमि आदि दैत्यगण मर्त्यलोकपर अधिकार जमाकर अहर्निश जनताको क्लेशित कर रहे हैं॥ २२॥ जिस कालनेमिको सामर्थ्यवान् भगवान् विष्णुने मारा था, इस समय वही उग्रसेनके पुत्र महान् असुर कंसके रूपमें उत्पन्न हुआ है ॥ २३॥ अरिष्ट, धेनुक, केशी, प्रलम्ब, नरक, सुन्द, बलिका पुत्र अति भयंकर बाणासुर तथा और भी जो महाबलवान् दुरात्मा राक्षस राजाओंके घरमें उत्पन्न हो गये हैं उनकी मैं गणना नहीं कर सकती॥ २४-२५॥

हे दिव्यमूर्तिधारी देवगण! इस समय मेरे ऊपर महाबलवान् और गर्वीले दैत्यराजोंकी अनेक अक्षौहिणी सेनाएँ हैं॥ २६॥ हे अमरेश्वरो! मैं आपलोगोंको यह बतलाये देती हूँ कि अब मैं उनके अत्यन्त भारसे पीडित होकर अपनेको धारण करनेमें सर्वथा असमर्थ हूँ॥ २७॥ अत: हे महाभागगण! आपलोग मेरे भार उतारनेका अब कोई ऐसा उपाय कीजिये जिससे मैं अत्यन्त व्याकुल होकर रसातलको न चली जाऊँ॥ २८॥

पृथिवीके इन वाक्योंको सुनकर उसके भार उतारनेके विषयमें समस्त देवताओंकी प्रेरणासे भगवान् ब्रह्माजीने कहना आरम्भ किया॥ २९॥

ब्रह्माजी बोले—हे देवगण! पृथिवीने जो कुछ कहा है वह सर्वथा सत्य ही है, वास्तवमें मैं, शंकर और आप सब लोग नारायणस्वरूप ही हैं॥ ३०॥ उनकी जो-जो विभूतियाँ हैं, उनकी परस्पर न्यूनता और अधिकता ही बाध्य तथा बाधकरूपसे रहा करती है॥ ३१॥ इसलिये आओ, अब हमलोग क्षीरसागरके पवित्र तटपर चलें, वहाँ श्रीहरिकी आराधना कर यह सम्पूर्ण वृत्तान्त उनसे निवेदन कर दें॥ ३२॥ वे विश्वरूप सर्वात्मा सर्वथा संसारके हितके लिये ही अपने शुद्ध सत्त्वांशसे अवतीर्ण होकर पृथिवीमें धर्मकी स्थापना करते हैं॥ ३३॥

श्रीपराशरजी बोले—ऐसा कहकर देवताओंके सहित पितामह ब्रह्माजी वहाँ गये और एकाग्रचित्तसे श्रीगरुडध्वज भगवान्‌की इस प्रकार स्तुति करने लगे॥ ३४॥

ब्रह्माजी बोले—हे वेदवाणीके अगोचर प्रभो! परा और अपरा—ये दोनों विद्याएँ आप ही हैं। हे नाथ! वे दोनों आपहीके मूर्त और अमूर्त रूप हैं॥ ३५॥ हे अत्यन्त सूक्ष्म! हे विराट्स्वरूप! हे सर्व! हे सर्वज्ञ! शब्दब्रह्म और परब्रह्म—ये दोनों आप ब्रह्ममयके ही रूप हैं॥ ३६॥ आप ही ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद हैं तथा आप ही शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष्-शास्त्र हैं॥ ३७॥ हे प्रभो! हे अधोक्षज! इतिहास, पुराण, व्याकरण, मीमांसा, न्याय और धर्मशास्त्र—ये सब भी आप ही हैं॥ ३८॥

हे आद्यपते! जीवात्मा, परमात्मा, स्थूल-सूक्ष्म-देह तथा उनका कारण अव्यक्त—इन सबके विचारसे युक्त जो अन्तरात्मा और परमात्माके स्वरूपका बोधक [तत्त्वमसि] वाक्य है, वह भी आपसे भिन्न नहीं है॥ ३९॥

आप अव्यक्त, अनिर्वाच्य, अचिन्त्य, नाम-

वर्णसे रहित, हाथ-पाँव तथा रूपसे हीन, शुद्ध, सनातन और परसे भी पर हैं॥ ४०॥ आप कर्णहीन होकर भी सुनते हैं, नेत्रहीन होकर भी देखते हैं, एक होकर भी अनेक रूपोंमें प्रकट होते हैं, हस्त-पादादिसे रहित होकर भी बड़े वेगशाली और ग्रहण करनेवाले हैं तथा सबके अवेद्य होकर भी सबको जाननेवाले हैं॥ ४१॥ हे परात्मन्! जिस धीर पुरुषकी बुद्धि आपके श्रेष्ठतम रूपसे पृथक् और कुछ भी नहीं देखती, आपके अणुसे भी अणु और दृश्य-स्वरूपको देखनेवाले उस पुरुषकी आत्यन्तिक अज्ञाननिवृत्ति हो जाती है॥ ४२॥ आप विश्वके केन्द्र और त्रिभुवनके रक्षक हैं; सम्पूर्ण भूत आपहीमें स्थित हैं तथा जो कुछ भूत, भविष्यत् और अणुसे भी अणु है वह सब आप प्रकृतिसे परे एकमात्र परमपुरुष ही हैं॥ ४३॥ आप ही चार प्रकारका अग्नि होकर संसारको तेज और विभूति दान करते हैं। हे अनन्तमूर्ते! आपके नेत्र सब ओर हैं। हे धातः! आप ही [त्रिविक्रमावतारमें] तीनों लोकमें अपने तीन पग रखते हैं॥ ४४॥ हे ईश! जिस प्रकार एक ही अविकारी अग्नि विकृत होकर नाना प्रकारसे प्रज्वलित होता है, उसी प्रकार सर्वगतरूप एक आप ही अनन्त रूप धारण कर लेते हैं॥ ४५॥ एकमात्र जो श्रेष्ठ परमपद है; वह आप ही हैं, ज्ञानी पुरुष ज्ञानदृष्टिसे देखे जाने-योग्य आपको ही देखा करते हैं। हे परात्मन्! भूत और भविष्यत् जो कुछ स्वरूप है वह आपसे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है॥ ४६॥ आप व्यक्त और अव्यक्तस्वरूप हैं, समष्टि और व्यष्टिरूप हैं तथा आप ही सर्वज्ञ, सर्वसाक्षी, सर्वशक्तिमान् एवं सम्पूर्ण ज्ञान, बल और ऐश्वर्यसे युक्त हैं॥४७॥ आप ह्रास और वृद्धिसे रहित, स्वाधीन, अनादि और जितेन्द्रिय हैं तथा आपके अन्दर श्रम, तन्द्रा, भय, क्रोध और काम आदि नहीं हैं॥ ४८॥ आप अनिन्द्य, अप्राप्य, निराधार और अव्याहत गति हैं, आप सबके स्वामी, अन्य ब्रह्मादिके आश्रय तथा सूर्यादि तेजोंके तेज एवं अविनाशी हैं॥ ४९॥

आप समस्त आवरणशून्य, असहायोंके पालक और सम्पूर्ण महाविभूतियोंके आधार हैं, हे पुरुषोत्तम! आपको नमस्कार है॥ ५०॥ आप किसी कारण, अकारण अथवा कारणाकारणसे शरीर-ग्रहण नहीं करते, बल्कि केवल धर्म-रक्षाके लिये ही करते हैं॥ ५१॥

श्रीपराशरजी बोले—इस प्रकार स्तुति सुनकर भगवान् अज अपना विश्वरूप प्रकट करते हुए ब्रह्माजीसे प्रसन्नचित्तसे कहने लगे॥ ५२॥

श्रीभगवान् बोले—हे ब्रह्मन्! देवताओंके सहित तुमको मुझसे जिस वस्तुकी इच्छा हो वह सब कहो और उसे सिद्ध हुआ ही समझो॥ ५३॥

श्रीपराशरजी बोले—तब श्रीहरिके उस दिव्य विश्वरूपको देखकर समस्त देवताओंके भयसे विनीत हो जानेपर ब्रह्माजी पुनः स्तुति करने लगे॥ ५४॥

ब्रह्माजी बोले—हे सहस्रबाहो! हे अनन्तमुख एवं चरणवाले! आपको हजारों बार नमस्कार हो। हे जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश करनेवाले! हे अप्रमेय! आपको बारम्बार नमस्कार हो॥ ५५॥ हे भगवन्! आप सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म, गुरुसे भी गुरु और अति बृहत् प्रमाण हैं, तथा प्रधान (प्रकृति) महत्तत्त्व और अहंकारादिमें प्रधानभूत मूल पुरुषसे भी परे हैं; हे भगवन्! आप हमपर प्रसन्न होइये॥ ५६॥ हे देव! इस पृथिवीके पर्वतरूपी मूलबन्ध इसपर उत्पन्न हुए महान् असुरोंके उत्पातसे शिथिल हो गये हैं।

अत: हे अपरिमितवीर्य! यह संसारका भार उतारनेके लिये आपकी शरणमें आयी है॥ ५७॥ हे सुरनाथ! हम और यह इन्द्र, अश्विनीकुमार तथा वरुण, ये रुद्रगण, वसुगण, सूर्य, वायु और अग्नि आदि अन्य समस्त देवगण यहाँ उपस्थित हैं, इन्हें अथवा मुझे जो कुछ करना उचित हो उन सब बातोंके लिये आज्ञा कीजिये। हे ईश! आपहीकी आज्ञाका पालन करते हुए हम सम्पूर्ण दोषोंसे मुक्त हो सकेंगे॥ ५८-५९॥

श्रीपराशरजी बोले—हे महामुने! इस प्रकार स्तुति किये जानेपर भगवान् परमेश्वरने अपने श्याम और श्वेत दो केश उखाड़े॥ ६०॥ और देवताओंसे बोले—'मेरे ये दोनों केश पृथिवीपर अवतार लेकर पृथिवीके भाररूप कष्टको दूर करेंगे॥ ६१॥ सब देवगण अपने-अपने अंशोंसे पृथिवीपर अवतार लेकर अपनेसे पूर्व उत्पन्न हुए उन्मत्त दैत्योंके साथ युद्ध करें॥ ६२॥ तब नि:सन्देह पृथिवीतलपर सम्पूर्ण दैत्यगण मेरे दृष्टिपातसे दलित होकर क्षीण हो जायँगे॥ ६३॥ वसुदेवजीकी जो देवीके समान देवकी नामकी भार्या है उसके आठवें गर्भसे मेरा यह (श्याम) केश अवतार लेगा॥ ६४॥ और इस प्रकार यहाँ अवतार लेकर यह कालनेमिके अवतार कंसका वध करेगा।' ऐसा कहकर श्रीहरि अन्तर्धान हो गये॥ ६५॥ हे महामुने! भगवान्‌के अदृश्य हो जानेपर उन्हें प्रणाम करके देवगण सुमेरुपर्वतपर चले गये और फिर पृथिवीपर अवतीर्ण हुए॥ ६६॥

इसी समय भगवान् नारदजीने कंससे आकर कहा कि देवकीके आठवें गर्भमें भगवान् धरणीधर जन्म लेंगे॥ ६७॥ नारदजीसे यह समाचार पाकर कंसने कुपित होकर वसुदेव और देवकीको कारागृहमें बन्द कर दिया॥ ६८॥ हे द्विज! वसुदेवजी भी, जैसा कि उन्होंने पहले कह दिया था, अपने प्रत्येक पुत्रको कंसको सौंपते रहे॥ ६९॥ ऐसा सुना जाता है कि पहले छ: गर्भ हिरण्यकशिपुके पुत्र थे। भगवान् विष्णुकी प्रेरणासे योगनिद्रा उन्हें क्रमश: गर्भमें स्थित करती रही *॥ ७०॥ जिस अविद्या-रूपिणीसे सम्पूर्ण जगत् मोहित हो रहा है, वह योगनिद्रा भगवान् विष्णुकी महामाया है उससे भगवान् श्रीहरिने कहा—॥ ७१॥

श्रीभगवान् बोले—हे निद्रे! जा, मेरी आज्ञासे तू पातालमें स्थित छ: गर्भोंको एक-एक करके देवकीकी कुक्षिमें स्थापित कर दे॥ ७२॥ कंसद्वारा उन सबके मारे जानेपर शेष नामक मेरा अंश अपने अंशांशसे देवकीके सातवें गर्भमें स्थित होगा॥ ७३॥ हे देवि! गोकुलमें वसुदेवजीकी जो रोहिणी नामकी दूसरी भार्या रहती है उसके उदरमें उस सातवें गर्भको ले जाकर तू इस प्रकार स्थापित कर देना जिससे वह उसीके जठरसे उत्पन्न हुएके समान जान पड़े॥ ७४॥ उसके विषयमें संसार यही कहेगा कि कारागारमें बन्द होनेके कारण भोजराज कंसके भयसे देवकीका सातवाँ गर्भ गिर गया॥ ७५॥ वह श्वेत शैलशिखरके समान वीर पुरुष गर्भसे आकर्षण किये जानेके कारण संसारमें 'संकर्षण' नामसे प्रसिद्ध होगा॥ ७६॥

तदनन्तर, हे शुभे! देवकीके आठवें गर्भमें मैं स्थित होऊँगा। उस समय तू भी तुरंत ही यशोदाके गर्भमें चली जाना॥ ७७॥ वर्षा-ऋतुमें

* ये बालक पूर्वजन्ममें हिरण्यकशिपुके भाई कालनेमिके पुत्र थे; इसीसे इन्हें उसका पुत्र कहा गया है। इन राक्षसकुमारोंने हिरण्यकशिपुका अनादर कर भगवान्‌की भक्ति की थी; अत: उसने कुपित होकर इन्हें शाप दिया कि तुमलोग अपने पिताके हाथसे ही मारे जाओगे। यह प्रसंग हरिवंशमें आया है।

भाद्रपद कृष्ण अष्टमीको रात्रिके समय मैं जन्म लूँगा और तू नवमीको उत्पन्न होगी॥ ७८॥ हे अनिन्दिते! उस समय मेरी शक्तिसे अपनी मति फिर जानेके कारण वसुदेवजी मुझे तो यशोदाके और तुझे देवकीके शयनगृहमें ले जायँगे॥ ७९॥ तब हे देवि! कंस तुझे पकड़कर पर्वत-शिलापर पटक देगा; उसके पटकते ही तू आकाशमें स्थित हो जायगी॥ ८०॥

उस समय मेरे गौरवसे सहस्रनयन इन्द्र सिर झुकाकर प्रणाम करनेके अनन्तर तुझे भगिनीरूपसे स्वीकार करेगा॥ ८१॥ तू भी शुम्भ, निशुम्भ आदि सहस्रों दैत्योंको मारकर अपने अनेक स्थानोंसे समस्त पृथिवीको सुशोभित करेगी॥ ८२॥ तू ही भूति, सन्नति, क्षान्ति और कान्ति है; तू ही आकाश, पृथिवी, धृति, लज्जा, पुष्टि और उषा है; इनके अतिरिक्त संसारमें और भी जो कोई शक्ति है वह सब तू ही है॥ ८३॥

जो लोग प्रातःकाल और सायंकालमें अत्यन्त नम्रतापूर्वक तुझे आर्या, दुर्गा, वेदगर्भा, अम्बिका, भद्रा, भद्रकाली, क्षेमदा और भाग्यदा आदि कहकर तेरी स्तुति करेंगे, उनकी समस्त कामनाएँ मेरी कृपासे पूर्ण हो जायँगी॥ ८४-८५॥ मदिरा और मांसकी भेंट चढ़ानेसे तथा भक्ष्य और भोज्य पदार्थोंद्वारा पूजा करनेसे प्रसन्न होकर तू मनुष्योंकी सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण कर देगी॥ ८६॥ तेरे द्वारा दी हुई वे समस्त कामनाएँ मेरी कृपासे निस्सन्देह पूर्ण होंगी। हे देवि! अब तू मेरे बतलाये हुए स्थानको जा॥ ८७॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पाँचवें अंशमें पहला अध्याय समाप्त॥ १॥

दूसरा अध्याय

भगवान्‌का गर्भ-प्रवेश तथा देवगणद्वारा देवकीकी स्तुति

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! देवदेव श्रीविष्णुभगवान्‌ने जैसा कहा था उसके अनुसार जगद्धात्री योगमायाने छः गर्भोंको देवकीके उदरमें स्थित किया और सातवेंको उसमेंसे निकाल लिया॥ १॥ इस प्रकार सातवें गर्भके रोहिणीके उदरमें पहुँच जानेपर श्रीहरिने तीनों लोकोंका उद्धार करनेकी इच्छासे देवकीके गर्भमें प्रवेश किया॥ २॥ भगवान् परमेश्वरके आज्ञानुसार योगमाया भी उसी दिन यशोदाके गर्भमें स्थित हुई॥ ३॥ हे द्विज! विष्णु-अंशके पृथिवीमें पधारनेपर आकाशमें ग्रहगण ठीक-ठीक गतिसे चलने लगे और ऋतुगण भी मंगलमय होकर शोभा पाने लगे॥ ४॥ उस समय अत्यन्त तेजसे देदीप्यमाना देवकीजीको कोई भी देख न सकता था। उन्हें देखकर [दर्शकोंके] चित्त थकित हो जाते थे॥ ५॥ तब देवतागण अन्य पुरुष तथा स्त्रियोंको दिखायी न देते हुए, अपने शरीरमें [गर्भरूपसे] भगवान् विष्णुको धारण करनेवाली देवकीजीकी अहर्निश स्तुति करने लगे॥ ६॥

देवता बोले—हे शोभने! तू पहले ब्रह्म-प्रतिबिम्बधारिणी मूलप्रकृति हुई थी और फिर जगद्विधाताकी वेदगर्भा वाणी हुई॥ ७॥ हे सनातने! तू ही सृज्य पदार्थोंको उत्पन्न करनेवाली और तू ही सृष्टिरूपा है; तू ही सबकी बीज-स्वरूपा यज्ञमयी वेदत्रयी हुई है॥ ८॥ तू ही फलमयी यज्ञक्रिया और अग्निमयी अरणि है तथा तू ही देवमाता अदिति और दैत्यप्रसू दिति है॥ ९॥ तू ही दिनकरी प्रभा और ज्ञानगर्भा गुरुशुश्रूषा है तथा तू ही न्यायमयी परमनीति और विनयसम्पन्ना लज्जा है॥ १०॥ तू ही काममयी इच्छा, सन्तोषमयी तुष्टि, बोधगर्भा

प्रज्ञा और धैर्यधारिणी धृति है॥ ११ ॥ ग्रह, नक्षत्र और तारागणको धारण करनेवाला तथा [वृष्टि आदिके द्वारा इस अखिल विश्वका] कारणस्वरूप आकाश तू ही है। हे जगद्धात्रि! हे देवि! ये सब तथा और भी सहस्रों और असंख्य विभूतियाँ इस समय तेरे उदरमें स्थित हैं॥ १२ ॥

हे शुभे! समुद्र, पर्वत, नदी, द्वीप, वन और नगरोंसे सुशोभित तथा ग्राम, खर्वट और खेटादिसे सम्पन्न समस्त पृथिवी, सम्पूर्ण अग्नि और जल तथा समस्त वायु, ग्रह, नक्षत्र एवं तारागणोंसे चित्रित तथा सैकड़ों विमानोंसे पूर्ण सबको अवकाश देनेवाला आकाश, भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक तथा मह, जन, तप और ब्रह्मलोकपर्यन्त सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड तथा उसके अन्तर्वर्ती देव, असुर, गन्धर्व, चारण, नाग, यक्ष, राक्षस, प्रेत, गुह्यक, मनुष्य, पशु और जो अन्यान्य जीव हैं, हे यशस्विनि! वे सभी अपने अन्तर्गत होनेके कारण जो श्रीअनन्त सर्वगामी और सर्वभावन हैं तथा जिनके रूप, कर्म, स्वभाव तथा [बालत्व महत्त्व आदि] समस्त परिमाण परिच्छेद (विचार)-के विषय नहीं हो सकते वे ही श्रीविष्णुभगवान् तेरे गर्भमें स्थित हैं॥ १३—१९ ॥ तू ही स्वाहा, स्वधा, विद्या, सुधा और आकाशस्थिता ज्योति है। सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षाके लिये ही तूने पृथिवीमें अवतार लिया है॥ २० ॥ हे देवि! तू प्रसन्न हो। हे शुभे! तू सम्पूर्ण जगत्का कल्याण कर। जिसने इस सम्पूर्ण जगत्को धारण किया है उस प्रभुको तू प्रीतिपूर्वक अपने गर्भमें धारण कर॥ २१ ॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पाँचवें अंशमें दूसरा अध्याय समाप्त॥ २ ॥

तीसरा अध्याय

भगवान्का आविर्भाव तथा योगमायाद्वारा कंसकी वंचना

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! देवताओंसे इस प्रकार स्तुति की जाती हुई देवकीजीने संसारकी रक्षाके कारण भगवान् पुण्डरीकाक्षको गर्भमें धारण किया॥ १ ॥ तदनन्तर सम्पूर्ण संसाररूप कमलको विकसित करनेके लिये देवकीरूप पूर्व सन्ध्यामें महात्मा अच्युतरूप सूर्यदेवका आविर्भाव हुआ॥ २ ॥ चन्द्रमाकी चाँदनीके समान भगवान्का जन्म-दिन सम्पूर्ण जगत्को आह्लादित करनेवाला हुआ और उस दिन सभी दिशाएँ अत्यन्त निर्मल हो गयीं॥ ३ ॥

श्रीजनार्दनके जन्म लेनेपर सन्तजनोंको परम सन्तोष हुआ, प्रचण्ड वायु शान्त हो गया तथा नदियाँ अत्यन्त स्वच्छ हो गयीं॥ ४ ॥

समुद्रगण अपने घोषसे मनोहर बाजे बजाने लगे, गन्धर्वराज गान करने लगे और अप्सराएँ नाचने लगीं॥ ५ ॥ श्रीजनार्दनके प्रकट होनेपर आकाशगामी देवगण पृथिवीपर पुष्प बरसाने लगे तथा शान्त हुए यज्ञाग्नि फिर प्रज्वलित हो गये॥ ६ ॥ हे द्विज! अर्द्धरात्रिके समय सर्वाधार भगवान् जनार्दनके आविर्भूत होनेपर पुष्पवर्षा करते हुए मेघगण मन्द-मन्द गर्जना करने लगे॥ ७ ॥

उन्हें खिले हुए कमलदलकी-सी आभावाले, चतुर्भुज और वक्ष:स्थलमें श्रीवत्स-चिह्नसहित उत्पन्न हुए देख आनकदुन्दुभि वसुदेवजी स्तुति करने लगे॥ ८ ॥ हे द्विजोत्तम! महामति वसुदेवजीने प्रसादयुक्त वचनोंसे भगवान्की स्तुति कर कंससे भयभीत रहनेके कारण इस प्रकार निवेदन किया॥ ९ ॥

वसुदेवजी बोले—हे देवदेवेश्वर! यद्यपि आप [साक्षात् परमेश्वर] प्रकट हुए हैं, तथापि हे देव! मुझपर कृपा करके अब अपने इस शंख-चक्र-गदाधारी दिव्य रूपका उपसंहार कीजिये॥ १०॥ हे देव! यह पता लगते ही कि आप मेरे इस गृहमें अवतीर्ण हुए हैं, कंस इसी समय मेरा सर्वनाश कर देगा॥ ११॥

देवकीजी बोलीं—जो अनन्तरूप और अखिल-विश्वस्वरूप हैं, जो गर्भमें स्थित होकर भी अपने शरीरसे सम्पूर्ण लोकोंको धारण करते हैं तथा जिन्होंने अपनी मायासे ही बालरूप धारण किया है वे देवदेव हमपर प्रसन्न हों॥ १२॥ हे सर्वात्मन्! आप अपने इस चतुर्भुज रूपका उपसंहार कीजिये। भगवन्! यह राक्षसके अंशसे उत्पन्न* कंस आपके इस अवतारका वृत्तान्त न जानने पावे॥ १३॥

श्रीभगवान् बोले—हे देवि! पूर्वजन्ममें तूने जो पुत्रकी कामनासे मुझसे [पुत्ररूपसे उत्पन्न होनेके लिये] प्रार्थना की थी। आज मैंने तेरे गर्भसे जन्म लिया है—इससे तेरी वह कामना पूर्ण हो गयी॥ १४॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! ऐसा कहकर भगवान् मौन हो गये तथा वसुदेवजी भी उन्हें उस रात्रिमें ही लेकर बाहर निकले॥ १५॥ वसुदेवजीके बाहर जाते समय कारागृहरक्षक और मथुराके द्वारपाल योगनिद्राके प्रभावसे अचेत हो गये॥ १६॥

उस रात्रिके समय वर्षा करते हुए मेघोंकी जलराशिको अपने फणोंसे रोककर श्रीशेषजी आनकदुन्दुभिके पीछे-पीछे चले॥ १७॥ भगवान् विष्णुको ले जाते हुए वसुदेवजी नाना प्रकारके सैकड़ों भँवरोंसे भरी हुई अत्यन्त गम्भीर यमुनाजीको घुटनोंतक रखकर ही पार कर गये॥ १८॥ उन्होंने वहाँ यमुनाजीके तटपर ही कंसको कर देनेके लिये आये हुए नन्द आदि वृद्ध गोपोंको भी देखा॥ १९॥ हे मैत्रेय! इसी समय योगनिद्राके प्रभावसे सब मनुष्योंके मोहित हो जानेपर मोहित हुई यशोदाने भी उसी कन्याको जन्म दिया॥ २०॥

तब अतिशय कान्तिमान् वसुदेवजी भी उस बालकको सुलाकर और कन्याको लेकर तुरन्त यशोदाके शयन-गृहसे चले आये॥ २१॥ जब यशोदाने जागनेपर देखा कि उसके एक नीलकमलदलके समान श्यामवर्ण पुत्र उत्पन्न हुआ है तो उसे अत्यन्त प्रसन्नता हुई॥ २२॥ इधर, वसुदेवजीने कन्याको ले जाकर अपने महलमें देवकीके शयनगृहमें सुला दिया और पूर्ववत् स्थित हो गये॥ २३॥

हे द्विज! तदनन्तर बालकके रोनेका शब्द सुनकर कारागृह-रक्षक सहसा उठ खड़े हुए और देवकीके सन्तान उत्पन्न होनेका वृत्तान्त कंसको सुना दिया॥ २४॥ यह सुनते ही कंसने तुरन्त जाकर देवकीके रुँधे हुए कण्ठसे 'छोड़, छोड़'—ऐसा कहकर रोकनेपर भी उस बालिकाको पकड़ लिया और उसे एक शिलापर पटक दिया। उसके पटकते ही वह आकाशमें स्थित हो गयी और उसने शस्त्रयुक्त एक महान् अष्टभुजरूप धारण कर लिया॥ २५-२६॥

तब उसने ऊँचे स्वरसे अट्टहास किया और कंससे रोषपूर्वक कहा—'अरे कंस! मुझे पटकनेसे तेरा क्या प्रयोजन सिद्ध हुआ? जो तेरा वध

---

* द्रुमिल नामक राक्षसने राजा उग्रसेनका रूप धारण कर उनकी पत्नीसे संसर्ग किया था। उसीसे कंसका जन्म हुआ। यह कथा हरिवंशमें आयी है।

करेगा उसने तो [पहले ही] जन्म ले लिया है; देवताओंके सर्वस्व वे हरि ही तुम्हारे [कालनेमिरूप] पूर्वजन्ममें भी काल थे। अतः ऐसा जानकर तू शीघ्र ही अपने हितका उपाय कर'॥ २७-२८॥ ऐसा कह, वह दिव्य माला और चन्दनादिसे विभूषिता तथा सिद्धगणद्वारा स्तुति की जाती हुई देवी भोजराज कंसके देखते-देखते आकाशमार्गसे चली गयी॥ २९॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पाँचवें अंशमें तीसरा अध्याय समाप्त॥ ३॥

चौथा अध्याय

वसुदेव-देवकीका कारागारसे मोक्ष

श्रीपराशरजी बोले—तब कंसने खिन्नचित्तसे प्रलम्ब और केशी आदि समस्त मुख्य-मुख्य असुरोंको बुलाकर कहा॥ १॥

कंस बोला—हे प्रलम्ब! हे महाबाहो केशिन्! हे धेनुक! हे पूतने! तथा हे अरिष्ट आदि अन्य असुरगण! मेरा वचन सुनो—॥ २॥ यह बात प्रसिद्ध हो रही है कि दुरात्मा देवताओंने मेरे मारनेके लिये कोई यत्न किया है; किन्तु मैं वीर पुरुष अपने वीर्यसे सताये हुए इन लोगोंको कुछ भी नहीं गिनता हूँ॥ ३॥ अल्पवीर्य इन्द्र, अकेले घूमनेवाले महादेव अथवा छिद्र (असावधानीका समय) ढूँढ़कर दैत्योंका वध करनेवाले विष्णुसे उनका क्या कार्य सिद्ध हो सकता है?॥ ४॥ मेरे बाहुबलसे दलित आदित्यों, अल्पवीर्य वसुगणों, अग्नियों अथवा अन्य समस्त देवताओंसे भी मेरा क्या अनिष्ट हो सकता है?॥ ५॥

आपलोगोंने क्या देखा नहीं था कि मेरे साथ युद्धभूमिमें आकर देवराज इन्द्र, वक्षःस्थलमें नहीं, अपनी पीठपर बाणोंकी बौछार सहता हुआ भाग गया था॥ ६॥ जिस समय इन्द्रने मेरे राज्यमें वर्षाका होना बन्द कर दिया था उस समय क्या मेघोंने मेरे बाणोंसे विंधकर ही यथेष्ट जल नहीं बरसाया?॥ ७॥ हमारे गुरु (श्वशुर) जरासन्धको छोड़कर क्या पृथिवीके और सभी नृपतिगण मेरे बाहुबलसे भयभीत होकर मेरे सामने सिर नहीं झुकाते?॥ ८॥

हे दैत्यश्रेष्ठगण! देवताओंके प्रति मेरे चित्तमें अवज्ञा होती है और हे वीरगण! उन्हें अपने (मेरे) वधका यत्न करते देखकर तो मुझे हँसी आती है॥ ९॥ तथापि हे दैत्येन्द्रो! उन दुष्ट और दुरात्माओंके अपकारके लिये मुझे और भी अधिक प्रयत्न करना चाहिये॥ १०॥ अतः पृथिवीमें जो कोई यशस्वी और यज्ञकर्ता हों उनका देवताओंके अपकारके लिये सर्वथा वध कर देना चाहिये॥ ११॥

देवकीके गर्भसे उत्पन्न हुई बालिकाने यह भी कहा है कि, वह मेरा भूतपूर्व (प्रथम जन्मका) काल निश्चय ही उत्पन्न हो चुका है॥ १२॥ अतः आजकल पृथिवीपर उत्पन्न हुए बालकोंके विषयमें विशेष सावधानी रखनी चाहिये और जिस बालकमें विशेष बलका उद्रेक हो उसे यत्नपूर्वक मार डालना चाहिये॥ १३॥ असुरोंको इस प्रकार आज्ञा दे कंसने कारागृहमें जाकर तुरन्त ही वसुदेव और देवकीको बन्धनसे मुक्त कर दिया॥ १४॥

कंस बोला—मैंने अबतक आप दोनोंके बालकोंकी तो वृथा ही हत्या की, मेरा नाश करनेके लिये तो कोई और ही बालक उत्पन्न हो गया है॥ १५॥ परन्तु आपलोग इसका कुछ दुःख न मानें; क्योंकि उन बालकोंकी होनहार ऐसी ही थी।

आपलोगोंके प्रारब्धदोषसे ही उन बालकोंको अपने जीवनसे हाथ धोना पड़ा है॥ १६॥

श्रीपराशरजी बोले—हे द्विजश्रेष्ठ! उन्हें इस प्रकार ढाँढ़स बँधा और बन्धनसे मुक्तकर कंसने शंकित चित्तसे अपने अन्तःपुरमें प्रवेश किया॥ १७॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पाँचवें अंशमें चौथा अध्याय समाप्त॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

पूतना-वध

श्रीपराशरजी बोले—बन्दीगृहसे छूटते ही वसुदेवजी नन्दजीके छकड़ेके पास गये तो उन्हें इस समाचारसे अत्यन्त प्रसन्न देखा कि 'मेरे पुत्रका जन्म हुआ है'॥ १॥ तब वसुदेवजीने भी उनसे आदरपूर्वक कहा—अब वृद्धावस्थामें भी आपने पुत्रका मुख देख लिया यह बड़े ही सौभाग्यकी बात है॥ २॥ आपलोग जिस लिये यहाँ आये थे वह राजाका सारा वार्षिक कर दे ही चुके हैं। यहाँ धनवान् पुरुषोंको और अधिक न ठहरना चाहिये॥ ३॥ आपलोग जिस लिये यहाँ आये थे वह कार्य पूरा हो चुका, अब और अधिक किस लिये ठहरे हुए हैं? [यहाँ देरतक ठहरना ठीक नहीं है] अतः हे नन्दजी! आपलोग शीघ्र ही अपने गोकुलको जाइये॥ ४॥ वहाँपर रोहिणीसे उत्पन्न हुआ जो मेरा पुत्र है उसकी भी आप उसी तरह रक्षा कीजियेगा जैसे अपने इस बालककी॥ ५॥

वसुदेवजीके ऐसा कहनेपर नन्द आदि महाबलवान् गोपगण छकड़ोंमें रखकर लाये हुए भाण्डोंसे कर चुकाकर चले गये॥ ६॥ उनके गोकुलमें रहते समय बालघातिनी पूतनाने रात्रिके समय सोये हुए कृष्णको गोदमें लेकर उनके मुखमें अपना स्तन दे दिया॥ ७॥ रात्रिके समय पूतना जिस-जिस बालकके मुखमें अपना स्तन दे देती थी उसीका शरीर तत्काल नष्ट हो जाता था॥ ८॥ कृष्णचन्द्रने क्रोधपूर्वक उसके स्तनको अपने हाथोंसे खूब दबाकर पकड़ लिया और उसे उसके प्राणोंके सहित पीने लगे॥ ९॥ तब स्नायु-बन्धनोंके शिथिल हो जानेसे पूतना घोर शब्द करती हुई मरते समय महाभयंकर रूप धारणकर पृथिवीपर गिर पड़ी॥ १०॥ उसके घोर नादको सुनकर भयभीत हुए व्रजवासीगण जाग उठे और देखा कि कृष्ण पूतनाकी गोदमें हैं और वह मारी गयी है॥ ११॥

हे द्विजोत्तम! तब भयभीता यशोदाने कृष्णको गोदमें लेकर उन्हें गौकी पूँछसे झाड़कर बालकका ग्रह-दोष निवारण किया॥ १२॥ नन्दगोपने भी आगेके वाक्य कहकर विधिपूर्वक रक्षा करते हुए कृष्णके मस्तकपर गोबरका चूर्ण लगाया॥ १३॥

नन्दगोप बोले—जिनकी नाभिसे प्रकट हुए कमलसे सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है वे सम्पूर्ण भूतोंके आदिस्थान श्रीहरि तेरी रक्षा करें॥ १४॥ जिनकी दाढ़ोंके अग्रभागपर स्थापित होकर भूमि सम्पूर्ण जगत्को धारण करती है, वे वराहरूप-धारी श्रीकेशव तेरी रक्षा करें॥ १५॥ जिन विभुने अपने नखाग्रोंसे शत्रुके वक्षःस्थलको विदीर्ण कर दिया था, वे नृसिंहरूपी जनार्दन तेरी सर्वत्र रक्षा करें॥ १६॥ जिन्होंने क्षणमात्रमें सशस्त्र त्रिविक्रमरूप धारण करके अपने तीन पगोंसे त्रिलोकीको नाप लिया था, वे वामनभगवान्

तेरी सर्वदा रक्षा करें॥ १७॥ गोविन्द तेरे सिरकी, केशव कण्ठकी, विष्णु गुह्यस्थान और जठरकी तथा जनार्दन जंघा और चरणोंकी रक्षा करें॥ १८॥ तेरे मुख, बाहु, प्रबाहु,* मन और सम्पूर्ण इन्द्रियोंकी अखण्ड-ऐश्वर्यसे सम्पन्न अविनाशी श्रीनारायण रक्षा करें॥ १९॥ तेरे अनिष्ट करनेवाले जो प्रेत, कूष्माण्ड और राक्षस हों वे शार्ङ्गधनुष, चक्र और गदा धारण करनेवाले विष्णुभगवान्‌की शंख-ध्वनिसे नष्ट हो जायँ॥ २०॥ भगवान् वैकुण्ठ दिशाओंमें, मधुसूदन विदिशाओं (कोणों)-में, हृषीकेश आकाशमें तथा पृथिवीको धारण करनेवाले श्रीशेषजी पृथिवीपर तेरी रक्षा करें॥ २१॥

श्रीपराशरजी बोले—इस प्रकार स्वस्तिवाचन कर नन्दगोपने बालक कृष्णको छकड़ेके नीचे एक खटोलेपर सुला दिया॥ २२॥ मरी हुई पूतनाके महान् कलेवरको देखकर उन सभी गोपोंको अत्यन्त भय और विस्मय हुआ॥ २३॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पाँचवें अंशमें पाँचवाँ अध्याय समाप्त॥ ५॥

छठा अध्याय

शकटभंजन, यमलार्जुन-उद्धार, व्रजवासियोंका गोकुलसे वृन्दावनमें जाना और वर्षा-वर्णन

श्रीपराशरजी बोले—एक दिन छकड़ेके नीचे सोये हुए मधुसूदनने दूधके लिये रोते-रोते ऊपरको लात मारी॥ १॥ उनकी लात लगते ही वह छकड़ा लोट गया, उसमें रखे हुए कुम्भ और भाण्ड आदि फूट गये और वह उलटा जा पड़ा॥ २॥ हे द्विज! उस समय हाहाकार मच गया, समस्त गोप-गोपीगण वहाँ आ पहुँचे और उस बालकको उतान सोये हुए देखा॥ ३॥ तब गोपगण पूछने लगे कि 'इस छकड़ेको किसने उलट दिया, किसने उलट दिया?' तो वहाँपर खेलते हुए बालकोंने कहा—"इस कृष्णने ही गिराया है॥ ४॥ हमने अपनी आँखोंसे देखा है कि रोते-रोते इसकी लात लगनेसे ही यह छकड़ा गिरकर उलट गया है। यह और किसीका काम नहीं है"॥ ५॥

यह सुनकर गोपगणके चित्तमें अत्यन्त विस्मय हुआ तथा नन्दगोपने अत्यन्त चकित होकर बालकको उठा लिया॥ ६॥ फिर यशोदाने भी छकड़ेमें रखे हुए फूटे भाण्डोंके टुकड़ोंकी और उस छकड़ेकी दही, पुष्प, अक्षत और फल आदिसे पूजा की॥ ७॥

इसी समय वसुदेवजीके कहनेसे गर्गाचार्यने गोपोंसे छिपे-छिपे गोकुलमें आकर उन दोनों बालकोंके [द्विजोचित] संस्कार किये॥ ८॥ उन दोनोंके नामकरण-संस्कार करते हुए महामति गर्गजीने बड़ेका नाम राम और छोटेका कृष्ण बतलाया॥ ९॥

हे विप्र! वे दोनों बालक थोड़े ही दिनोंमें गौओंके गोष्ठमें रेंगते-रेंगते हाथ और घुटनोंके बल चलनेवाले हो गये॥ १०॥ गोबर और राख-भरे शरीरसे इधर-उधर घूमते हुए उन बालकोंको यशोदा और रोहिणी रोक नहीं सकती थीं॥ ११॥ कभी वे गौओंके घोषमें खेलते और कभी बछड़ोंके मध्यमें चले जाते तथा कभी उसी दिन जन्मे हुए बछड़ोंकी पूँछ पकड़कर खींचने लगते॥ १२॥

* घुटनेके नीचेका भाग।

एक दिन जब यशोदा, सदा एक ही स्थानपर साथ-साथ खेलनेवाले उन दोनों अत्यन्त चंचल बालकोंको न रोक सकी तो उसने अनायास ही सब कर्म करनेवाले कृष्णको रस्सीसे कटिभागमें कसकर ऊखलमें बाँध दिया और रोषपूर्वक इस प्रकार कहने लगी— ॥ १३-१४ ॥ "अरे चंचल! अब तुझमें सामर्थ्य हो तो चला जा।" ऐसा कहकर कुटुम्बिनी यशोदा अपने घरके धन्धेमें लग गयी ॥ १५ ॥

उसके गृहकार्यमें व्यग्र हो जानेपर कमलनयन कृष्ण ऊखलको खींचते-खींचते यमलार्जुनके बीचमें गये ॥ १६ ॥ और उन दोनों वृक्षोंके बीचमें तिरछी पड़ी हुई ऊखलको खींचते हुए उन्होंने ऊँची शाखाओंवाले यमलार्जुन वृक्षको उखाड़ डाला ॥ १७ ॥ तब उनके उखड़नेका कट-कट शब्द सुनकर वहाँ व्रजवासीलोग दौड़ आये और उन दोनों महावृक्षोंको तथा उनके बीचमें कमरमें रस्सीसे कसकर बँधे हुए बालकको नन्हें-नन्हें अल्प दाँतोंकी श्वेत किरणोंसे शुभ्र हास करते देखा। तभीसे रस्सीसे बँधनेके कारण उनका नाम दामोदर पड़ा ॥ १८—२० ॥

तब नन्दगोप आदि समस्त वृद्ध गोपोंने महान् उत्पातोंके कारण अत्यन्त भयभीत होकर आपसमें यह सलाह की— ॥ २१ ॥ 'अब इस स्थानपर रहनेका हमारा कोई प्रयोजन नहीं है, हमें किसी और महावनको चलना चाहिये, क्योंकि यहाँ नाशके कारणस्वरूप, पूतना-वध, छकड़ेका लोट जाना तथा आँधी आदि किसी दोषके बिना ही वृक्षोंका गिर पड़ना इत्यादि बहुत-से उत्पात दिखायी देने लगे हैं ॥ २२-२३ ॥ अतः जबतक कोई भूमिसम्बन्धी महान् उत्पात व्रजको नष्ट न करे तबतक शीघ्र ही हमलोग इस स्थानसे वृन्दावनको चल दें' ॥ २४ ॥

इस प्रकार वे समस्त व्रजवासी चलनेका विचारकर अपने-अपने कुटुम्बके लोगोंसे कहने लगे—'शीघ्र ही चलो, देरी मत करो' ॥ २५ ॥ तब वे व्रजवासी वत्सपाल दल बाँधकर एक क्षणमें ही छकड़ों और गौओंके साथ उन्हें हाँकते हुए चल दिये ॥ २६ ॥ हे द्विज! वस्तुओंके अवशिष्टांशोंसे युक्त वह व्रजभूमि क्षणभरमें ही काक तथा भास आदि पक्षियोंसे व्याप्त हो गयी ॥ २७ ॥

तब लीलाविहारी भगवान् कृष्णने गौओंकी अभिवृद्धिकी इच्छासे अपने शुद्धचित्तसे वृन्दावन (नित्य-वृन्दावनधाम)-का चिन्तन किया ॥ २८ ॥ इससे, हे द्विजोत्तम! अत्यन्त रूक्ष ग्रीष्मकालमें भी वहाँ वर्षाऋतुके समान सब ओर नवीन दूब उत्पन्न हो गयी ॥ २९ ॥ तब चारों ओर अर्द्धचन्द्राकारसे छकड़ोंकी बाड़ लगाकर वे समस्त व्रजवासी वृन्दावनमें रहने लगे ॥ ३० ॥

तदनन्तर राम और कृष्ण भी बछड़ोंके रक्षक हो गये और एक स्थानपर रहकर गोष्ठमें बाललीला करते हुए विचरने लगे ॥ ३१ ॥ वे काकपक्षधारी दोनों बालक सिरपर मयूर-पिच्छका मुकुट धारणकर तथा वन्यपुष्पोंके कर्णभूषण पहन ग्वालोचित वंशी आदिसे सब प्रकारके बाजोंकी ध्वनि करते तथा पत्तोंके बाजेसे ही नाना प्रकारकी ध्वनि निकालते, स्कन्दके अंशभूत शाख-विशाख कुमारोंके समान हँसते और खेलते हुए उस महावनमें विचरने लगे ॥ ३२-३३ ॥ कभी एक-दूसरेको अपने पीठपर ले जाते तथा कभी अन्य ग्वाल-बालोंके साथ खेलते हुए वे बछड़ोंको चराते साथ-साथ घूमते रहते ॥ ३४ ॥ इस प्रकार उस महाव्रजमें रहते-रहते कुछ समय बीतनेपर वे निखिललोकपालक वत्सपाल सात वर्षके हो गये ॥ ३५ ॥

तब मेघसमूहसे आकाशको आच्छादित करता हुआ तथा अतिशय वारिधाराओंसे दिशाओंको एकरूप करता हुआ वर्षाकाल आया ॥ ३६ ॥

उस समय नवीन दूर्वाके बढ़ जाने और वीरबहूटियोंसे* व्याप्त हो जानेके कारण पृथिवी पद्मरागविभूषिता मरकतमयी-सी जान पड़ने लगी॥ ३७॥ जिस प्रकार नया धन पाकर दुष्ट पुरुषोंका चित्त उच्छृंखल हो जाता है, उसी प्रकार नदियोंका जल सब ओर अपना निर्दिष्ट मार्ग छोड़कर बहने लगा॥ ३८॥ जैसे मूर्ख मनुष्योंकी धृष्टतापूर्ण उक्तियोंसे अच्छे वक्ताकी वाणी भी मलिन पड़ जाती है वैसे ही मलिन मेघोंसे आच्छादित रहनेके कारण निर्मल चन्द्रमा भी शोभाहीन हो गया॥ ३९॥ जिस प्रकार विवेकहीन राजाके संगमें गुणहीन मनुष्य भी प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार आकाशमण्डलमें गुणरहित इन्द्र-धनुष स्थित हो गया॥ ४०॥ दुराचारी पुरुषमें कुलीन पुरुषकी निष्कपट शुभ चेष्टाके समान मेघमण्डलमें बगुलोंकी निर्मल पंक्ति सुशोभित होने लगी॥ ४१॥ श्रेष्ठ पुरुषके साथ दुर्जनकी मित्रताके समान अत्यन्त चंचला विद्युत् आकाशमें स्थिर न रह सकी॥ ४२॥ महामूर्ख मनुष्योंकी अन्यार्थिका उक्तियोंके समान मार्ग तृण और दूबसमूहसे आच्छादित होकर अस्पष्ट हो गये॥ ४३॥

उस समय उन्मत्त मयूर और चातकगणसे सुशोभित महावनमें कृष्ण और राम प्रसन्नतापूर्वक गोपकुमारोंके साथ विचरने लगे॥ ४४॥ वे दोनों कभी गौओंके साथ मनोहर गान और तान छेड़ते तथा कभी अत्यन्त शीतल वृक्षतलका आश्रय लेते हुए विचरते रहते थे॥ ४५॥ वे कभी तो कदम्बपुष्पोंके हारसे विचित्र वेष बना लेते, कभी मयूरपिच्छकी मालासे सुशोभित होते और कभी नाना प्रकारकी पर्वतीय धातुओंसे अपने शरीरको लिप्त कर लेते॥ ४६॥ कभी कुछ झपकी लेनेकी इच्छासे पत्तोंकी शय्यापर लेट जाते और कभी मेघके गर्जनेपर 'हा-हा' करके कोलाहल मचाने लगते॥ ४७॥ कभी दूसरे गोपोंके गानेपर आप दोनों उसकी प्रशंसा करते और कभी ग्वालोंकी-सी बाँसुरी बजाते हुए मयूरकी बोलीका अनुकरण करने लगते॥ ४८॥

इस प्रकार वे दोनों अत्यन्त प्रीतिके साथ नाना प्रकारके भावोंसे परस्पर खेलते हुए प्रसन्नचित्तसे उस वनमें विचरने लगे॥ ४९॥ सायंकालके समय वे महाबली बालक वनमें यथायोग्य विहार करनेके अनन्तर गौ और ग्वाल-बालोंके साथ व्रजमें लौट आते थे॥ ५०॥ इस तरह अपने समवयस्क गोपगणके साथ देवताओंके समान क्रीडा करते हुए वे महातेजस्वी राम और कृष्ण वहाँ रहने लगे॥ ५१॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पाँचवें अंशमें छठा अध्याय समाप्त॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

कालिय-दमन

श्रीपराशरजी बोले—एक दिन रामको बिना साथ लिये कृष्ण अकेले ही वृन्दावनको गये और वहाँ वन्य पुष्पोंकी मालाओंसे सुशोभित हो गोपगणसे घिरे हुए विचरने लगे॥ १॥ घूमते-घूमते वे चंचल तरंगोंसे शोभित यमुनाके तटपर जा पहुँचे जो किनारोंपर फेनके इकट्ठे हो जानेसे मानो सब ओरसे हँस रही थी॥ २॥ यमुनाजीमें उन्होंने विषाग्निसे सन्तप्त जलवाला कालियनागका

* एक प्रकारके लाल कीड़े, जो वर्षा-कालमें उत्पन्न होते हैं, उन्हें शक्रगोप और वीरबहूटी कहते हैं।

महाभयंकर कुण्ड देखा॥ ३॥ उसकी विषाग्निके प्रसारसे किनारेके वृक्ष जल गये थे और वायुके थपेड़ोंसे उछलते हुए जलकणोंका स्पर्श होनेसे पक्षिगण दग्ध हो जाते थे॥ ४॥

मृत्युके अपर मुखके समान उस महाभयंकर कुण्डको देखकर भगवान् मधुसूदनने विचार किया— ॥ ५॥ 'इसमें दुष्टात्मा कालियनाग रहता है जिसका विष ही शस्त्र है और जो दुष्ट मुझ [अर्थात् मेरी विभूति गरुड]-से पराजित हो समुद्रको छोड़कर भाग आया है॥ ६॥ इसने इस समुद्रगामिनी सम्पूर्ण यमुनाको दूषित कर दिया है, अब इसका जल प्यासे मनुष्यों और गौओंके भी काममें नहीं आता है॥ ७॥ अत: मुझे इस नागराजका दमन करना चाहिये, जिससे व्रजवासी लोग निर्भय होकर सुखपूर्वक रह सकें॥ ८॥ 'इन कुमार्गगामी दुरात्माओंको शान्त करना चाहिये, इसलिये ही तो मैंने इस लोकमें अवतार लिया है॥ ९॥ अत: अब मैं इस ऊँची-ऊँची शाखाओंवाले पासहीके कदम्बवृक्षपर चढ़कर वायुभक्षी नागराजके कुण्डमें कूदता हूँ'॥ १०॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! ऐसा विचारकर भगवान् अपनी कमर कसकर वेगपूर्वक नागराजके कुण्डमें कूद पड़े॥ ११॥ उनके कूदनेसे उस महाह्रदने अत्यन्त क्षोभित होकर दूरस्थित वृक्षोंको भी भिगो दिया॥ १२॥

उस सर्पके विषम विषकी ज्वालासे तपे हुए जलसे भीगनेके कारण वे वृक्ष तुरन्त ही जल उठे और उनकी ज्वालाओंसे सम्पूर्ण दिशाएँ व्याप्त हो गयीं॥ १३॥

तब कृष्णचन्द्रने उस नागकुण्डमें अपनी भुजाओंको ठोंका; उनका शब्द सुनते ही वह नागराज तुरंत उनके सम्मुख आ गया॥ १४॥ उसके नेत्र क्रोधसे कुछ ताम्रवर्ण हो रहे थे, मुखोंसे अग्निकी लपटें निकल रही थीं और वह महाविषैले अन्य वायुभक्षी सर्पोंसे घिरा हुआ था॥ १५॥ उसके साथमें मनोहर हारोंसे भूषिता और शरीर-कम्पनसे हिलते हुए कुण्डलोंकी कान्तिसे सुशोभिता सैकड़ों नागपत्नियाँ थीं॥ १६॥ तब सर्पोंने कुण्डलाकार होकर कृष्णचन्द्रको अपने शरीरसे बाँध लिया और अपने विषाग्नि-सन्तप्त मुखोंसे काटने लगे॥ १७॥

तदनन्तर गोपगण कृष्णचन्द्रको नागकुण्डमें गिरा हुआ और सर्पोंके फणोंसे पीडित होता देख व्रजमें चले आये और शोकसे व्याकुल होकर रोने लगे॥ १८॥

गोपगण बोले—आओ, आओ, देखो! यह कृष्ण कालीदहमें डूबकर मूर्च्छित हो गया है, देखो इसे नागराज खाये जाता है॥ १९॥ वज्रपातके समान उनके इन अमंगल वाक्योंको सुनकर गोपगण और यशोदा आदि गोपियाँ तुरंत ही कालीदहपर दौड़ आयीं॥ २०॥ 'हाय! हाय! वे कृष्ण कहाँ गये?' इस प्रकार अत्यन्त व्याकुलतापूर्वक रोती हुई गोपियाँ यशोदाके साथ शीघ्रतासे गिरती-पड़ती चलीं॥ २१॥ नन्दजी तथा अन्यान्य गोपगण और अद्भुत-विक्रमशाली बलरामजी भी कृष्णदर्शनकी लालसासे शीघ्रतापूर्वक यमुना-तटपर आये॥ २२॥

वहाँ आकर उन्होंने देखा कि कृष्णचन्द्र सर्पराजके चंगुलमें फँसे हुए हैं और उसने उन्हें अपने शरीरसे लपेटकर निरुपाय कर दिया है॥ २३॥ हे मुनिसत्तम! महाभागा यशोदा और नन्दगोप भी पुत्रके मुखपर टकटकी लगाकर चेष्टाशून्य हो गये॥ २४॥ अन्य गोपियोंने भी जब कृष्णचन्द्रको इस दशामें देखा तो वे शोकाकुल होकर रोने लगीं और भय तथा व्याकुलताके कारण गद्गदवाणीसे उनसे प्रीतिपूर्वक कहने लगीं॥ २५॥

गोपियाँ बोलीं—अब हम सब भी यशोदाके साथ इस सर्पराजके महाकुण्डमें ही डूबी जाती हैं, अब हमें व्रजमें जाना उचित नहीं है॥ २६॥ सूर्यके बिना दिन कैसा? चन्द्रमाके बिना रात्रि कैसी? साँड़के बिना गौएँ क्या? ऐसे ही कृष्णके बिना व्रजमें भी क्या रखा है?॥ २७॥

कृष्णके बिना साथ लिये अब हम गोकुल नहीं जायँगी; क्योंकि इनके बिना वह जलहीन सरोवरके समान अत्यन्त अभव्य और असेव्य है॥ २८॥ जहाँ नीलकमलदलकी-सी आभावाले ये श्यामसुन्दर हरि नहीं हैं उस मातृ-मन्दिरसे भी प्रीति होना अत्यन्त आश्चर्य ही है॥ २९॥ अरी! खिले हुए कमलदलके सदृश कान्तियुक्त नेत्रोंवाले श्रीहरिको देखे बिना अत्यन्त दीन हुई तुम किस प्रकार व्रजमें रह सकोगी?॥ ३०॥ जिन्होंने अपनी अत्यन्त मनोहर बोलीसे हमारे सम्पूर्ण मनोरथोंको अपने वशीभूत कर लिया है, उन कमलनयन कृष्णचन्द्रके बिना हम नन्दजीके गोकुलको नहीं जायँगी॥ ३१॥ अरी गोपियो! देखो, सर्पराजके फणसे आवृत होकर भी श्रीकृष्णका मुख हमें देखकर मधुर मुसकानसे सुशोभित हो रहा है॥ ३२॥

श्रीपराशरजी बोले—गोपियोंके ऐसे वचन सुनकर तथा त्रासविह्वल चकितनेत्र गोपोंको, पुत्रके मुखपर दृष्टि लगाये अत्यन्त दीन नन्दजीको और मूर्च्छाकुल यशोदाको देखकर महाबली रोहिणीनन्दन बलरामजीने अपने संकेतमें कृष्णजीसे कहा—॥ ३३-३४॥ "हे देवदेवेश्वर! क्या आप अपनेको अनन्त नहीं जानते? फिर किसलिये यह अत्यन्त-मानव भाव व्यक्त कर रहे हैं॥ ३५॥ पहियोंकी नाभि जिस प्रकार अरोंका आश्रय होती है उसी प्रकार आप ही जगत्के आश्रय, कर्ता, हर्ता और रक्षक हैं तथा आप ही त्रैलोक्यस्वरूप और वेदत्रयीमय हैं॥ ३६॥ हे अचिन्त्यात्मन्! इन्द्र, रुद्र, अग्नि, वसु, आदित्य, मरुद्गण और अश्विनीकुमार तथा समस्त योगिजन आपहीका चिन्तन करते हैं॥ ३७॥ हे जगन्नाथ! संसारके हितके लिये पृथिवीका भार उतारनेकी इच्छासे ही आपने मर्त्यलोकमें अवतार लिया है; आपका अग्रज मैं भी आपहीका अंश हूँ॥ ३८॥ हे भगवन्! आपके मनुष्य-लीला करनेपर ये गोपवेषधारी समस्त देवगण भी आपकी लीलाओंका अनुकरण करते हुए आपहीके साथ रहते हैं॥ ३९॥ हे शाश्वत! पहले अपने विहारार्थ देवांगनाओंको गोपीरूपसे गोकुलमें अवतीर्णकर पीछे आपने अवतार लिया है॥ ४०॥ हे कृष्ण! यहाँ अवतीर्ण होनेपर हम दोनोंके तो ये गोप और गोपियाँ ही बान्धव हैं; फिर अपने इन दुःखी बान्धवोंकी आप क्यों उपेक्षा करते हैं॥ ४१॥ हे कृष्ण! यह मनुष्यभाव और बालचापल्य तो आप बहुत दिखा चुके, अब तो शीघ्र ही इस दुष्टात्माका जिसके शस्त्र दाँत ही हैं, दमन कीजिये"॥ ४२॥

श्रीपराशरजी बोले—इस प्रकार स्मरण कराये जानेपर, मधुर मुसकानसे अपने ओष्ठसम्पुटको खोलते हुए श्रीकृष्णचन्द्रने उछलकर अपने शरीरको सर्पके बन्धनसे छुड़ा लिया॥ ४३॥ और फिर अपने दोनों हाथोंसे उसका बीचका फण झुकाकर उस नतमस्तक सर्पके ऊपर चढ़कर बड़े वेगसे नाचने लगे॥ ४४॥

कृष्णचन्द्रके चरणोंकी धमकसे उसके प्राण मुखमें आ गये, वह अपने जिस मस्तकको उठाता उसीपर कूदकर भगवान् उसे झुका देते॥ ४५॥ श्रीकृष्णचन्द्रजीकी भ्रान्ति (भ्रम), रेचक तथा दण्डपात नामकी [नृत्यसम्बन्धिनी] गतियोंके ताडनसे वह महासर्प मूर्छित हो गया और उसने बहुत-सा रुधिर वमन किया॥ ४६॥ इस प्रकार उसके सिर और ग्रीवाओंको झुके हुए तथा

मुखोंसे रुधिर बहता देख उसकी पत्नियाँ करुणासे भरकर श्रीकृष्णचन्द्रके पास आयीं॥ ४७॥

नागपत्नियाँ बोलीं—हे देवदेवेश्वर! हमने आपको पहचान लिया; आप सर्वज्ञ और सर्वश्रेष्ठ हैं, जो अचिन्त्य और परम ज्योति है आप उसीके अंश परमेश्वर हैं॥ ४८॥ जिन स्वयम्भू और व्यापक प्रभुकी स्तुति करनेमें देवगण भी समर्थ नहीं हैं उन्हीं आपके स्वरूपका हम स्त्रियाँ किस प्रकार वर्णन कर सकती हैं?॥ ४९॥ पृथिवी, आकाश, जल, अग्नि और वायुस्वरूप यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जिनका छोटे-से-छोटा अंश है, उसकी स्तुति हम किस प्रकार कर सकेंगी॥ ५०॥ योगिजन जिनके नित्यस्वरूपको यत्न करनेपर भी नहीं जान पाते तथा जो परमार्थरूप अणुसे भी अणु और स्थूलसे भी स्थूल है उसे हम नमस्कार करती हैं॥ ५१॥ जिनके जन्ममें विधाता और अन्तमें काल हेतु नहीं हैं तथा जिनका स्थितिकर्ता भी कोई अन्य नहीं है उन्हें सर्वदा नमस्कार करती हैं॥ ५२॥ इस कालियनागके दमनमें आपको थोड़ा-सा भी क्रोध नहीं है, केवल लोकरक्षा ही इसका हेतु है; अतः हमारा निवेदन सुनिये॥ ५३॥ हे क्षमाशीलोंमें श्रेष्ठ! साधु पुरुषोंको स्त्रियों तथा मूढ और दीन जन्तुओंपर सदा ही कृपा करनी चाहिये; अतः आप इस दीनका अपराध क्षमा कीजिये॥ ५४॥ प्रभो! आप सम्पूर्ण संसारके अधिष्ठान हैं और यह सर्प तो [आपकी अपेक्षा] अत्यन्त बलहीन है। आपके चरणोंसे पीडित होकर तो यह आधे मुहूर्तमें ही अपने प्राण छोड़ देगा॥ ५५॥

हे अव्यय! प्रीति समानसे और द्वेष उत्कृष्टसे देखे जाते हैं; फिर कहाँ तो यह अल्पवीर्य सर्प और कहाँ अखिलभुवनाश्रय आप? [इसके साथ आपका द्वेष कैसा?]॥ ५६॥ अतः हे जगत्स्वामिन्! इस दीनपर दया कीजिये। हे प्रभो! अब यह नाग अपने प्राण छोड़ने ही चाहता है; कृपया हमें पतिकी भिक्षा दीजिये॥ ५७॥ हे भुवनेश्वर! हे जगन्नाथ! हे महापुरुष! हे पूर्वज! यह नाग अब अपने प्राण छोड़ना ही चाहता है; कृपया आप हमें पतिकी भिक्षा दीजिये॥ ५८॥ हे वेदान्तवेद्यदेवेश्वर! हे दुष्ट-दैत्य-दलन!! अब यह नाग अपने प्राण छोड़ना ही चाहता है; आप हमें पतिकी भिक्षा दीजिये॥ ५९॥

श्रीपराशरजी बोले—नागपत्नियोंके ऐसा कहनेपर थका-माँदा होनेपर भी नागराज कुछ ढाँढस बाँधकर धीरे-धीरे कहने लगा "हे देवदेव! प्रसन्न होइये"॥ ६०॥

कालियनाग बोला—हे नाथ! आपका स्वाभाविक अष्टगुण विशिष्ट परम ऐश्वर्य निरतिशय है [अर्थात् आपसे बढ़कर किसीका भी ऐश्वर्य नहीं है], अतः मैं किस प्रकार आपकी स्तुति कर सकूँगा?॥ ६१॥ आप पर हैं, आप पर (मूलप्रकृति)-के भी आदिकारण हैं, हे परात्मक! परकी प्रवृत्ति भी आपहीसे हुई है,अतः आप परसे भी पर हैं फिर मैं किस प्रकार आपकी स्तुति कर सकूँगा?॥ ६२॥ जिनसे ब्रह्मा, रुद्र, चन्द्र, इन्द्र, मरुद्गण, अश्विनीकुमार, वसुगण और आदित्य आदि सभी उत्पन्न हुए हैं उन आपकी मैं किस प्रकार स्तुति कर सकूँगा?॥ ६३॥ यह सम्पूर्ण जगत् जिनके काल्पनिक अवयवका एक सूक्ष्म अवयवांशमात्र है, उन आपकी मैं किस प्रकार स्तुति कर सकूँगा?॥ ६४॥ जिन सदसत् (कार्य-कारण) स्वरूपके वास्तविक रूपको ब्रह्मा आदि देवेश्वरगण भी नहीं जानते उन आपकी मैं किस प्रकार स्तुति कर सकूँगा?॥ ६५॥ जिनकी पूजा ब्रह्मा आदि देवगण नन्दनवनके पुष्प, गन्ध और अनुलेपन आदिसे करते हैं उन आपकी मैं किस प्रकार पूजा कर सकता हूँ॥ ६६॥ देवराज इन्द्र

जिनके अवताररूपोंकी सर्वदा पूजा करते हैं तथापि यथार्थ रूपको नहीं जान पाते, उन आपकी मैं किस प्रकार पूजा कर सकता हूँ?॥ ६७ ॥ योगिगण अपनी समस्त इन्द्रियोंको उनके विषयोंसे खींचकर जिनका ध्यानद्वारा पूजन करते हैं, उन आपकी मैं किस प्रकार पूजा कर सकता हूँ॥ ६८ ॥ जिन प्रभुके स्वरूपकी चित्तमें भावना करके योगिजन भावमय पुष्प आदिसे ध्यानद्वारा उपासना करते हैं उन आपकी मैं किस प्रकार पूजा कर सकता हूँ?॥ ६९ ॥

हे देवेश्वर! आपकी पूजा अथवा स्तुति करनेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूँ, मेरी चित्तवृत्ति तो केवल आपकी कृपाकी ओर ही लगी हुई है, अतः आप मुझपर प्रसन्न होइये॥ ७० ॥ हे केशव! मेरा जिसमें जन्म हुआ है वह सर्पजाति अत्यन्त क्रूर होती है, यह मेरा जातीय स्वभाव है। हे अच्युत! इसमें मेरा कोई अपराध नहीं है॥ ७१ ॥ इस सम्पूर्ण जगत्की रचना और संहार आप ही करते हैं। संसारकी रचनाके साथ उसके जाति, रूप और स्वभावोंको भी आप ही बनाते हैं॥ ७२ ॥

हे ईश्वर! आपने मुझे जाति, रूप और स्वभावसे युक्त करके जैसा बनाया है उसीके अनुसार मैंने यह चेष्टा भी की है॥ ७३ ॥ हे देवदेव! यदि मेरा आचरण विपरीत हो तब तो अवश्य आपके कथनानुसार मुझे दण्ड देना उचित है॥ ७४॥ तथापि हे जगत्स्वामिन्! आपने मुझ अज्ञको जो दण्ड दिया है वह आपसे मिला हुआ दण्ड मेरे लिये कहीं अच्छा है, किन्तु दूसरेका वर भी अच्छा नहीं॥ ७५ ॥ हे अच्युत! आपने मेरे पुरुषार्थ और विषको नष्ट करके मेरा भली प्रकार मानमर्दन कर दिया है। अब केवल मुझे प्राणदान दीजिये और आज्ञा कीजिये कि मैं क्या करूँ?॥ ७६ ॥

श्रीभगवान् बोले—हे सर्प! अब तुझे इस यमुनाजलमें नहीं रहना चाहिये। तू शीघ्र ही अपने पुत्र और परिवारके सहित समुद्रके जलमें चला जा॥ ७७ ॥ तेरे मस्तकपर मेरे चरण-चिह्नोंको देखकर समुद्रमें रहते हुए भी सर्पोंका शत्रु गरुड तुझपर प्रहार नहीं करेगा॥ ७८ ॥

श्रीपराशरजी बोले—सर्पराज कालियसे ऐसा कह भगवान् हरिने उसे छोड़ दिया और वह उन्हें प्रणाम करके समस्त प्राणियोंके देखते-देखते अपने सेवक, पुत्र, बन्धु और स्त्रियोंके सहित अपने उस कुण्डको छोड़कर समुद्रको चला गया॥ ७९-८० ॥ सर्पके चले जानेपर गोपगण, लौटे हुए मृत पुरुषके समान कृष्णचन्द्रको आलिंगनकर प्रीतिपूर्वक उनके मस्तकको नेत्रजलसे भिगोने लगे॥ ८१ ॥ कुछ अन्य गोपगण यमुनाको स्वच्छ जलवाली देख प्रसन्न होकर लीलाविहारी कृष्णचन्द्रकी विस्मितचित्तसे स्तुति करने लगे॥ ८२ ॥ तदनन्तर अपने उत्तम चरित्रोंके कारण गोपियोंसे गीयमान और गोपोंसे प्रशंसित होते हुए कृष्णचन्द्र व्रजमें चले आये॥ ८३ ॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पाँचवें अंशमें सातवाँ अध्याय समाप्त॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

धेनुकासुर-वध

श्रीपराशरजी बोले—एक दिन बलराम और कृष्ण साथ-साथ गौ चराते अति रमणीय तालवनमें आये॥ १॥ उस दिव्य तालवनमें धेनुक नामक एक गधेके आकारवाला दैत्य मृगमांसका आहार करता हुआ सदा रहा करता था॥ २॥ उस तालवनको पके फलोंकी सम्पत्तिसे सम्पन्न देखकर उन्हें तोड़नेकी इच्छासे गोपगण बोले॥ ३॥

गोपोंने कहा—भैया राम और कृष्ण! इस भूमिप्रदेशकी रक्षा सदा धेनुकासुर करता है, इसीलिये यहाँ ऐसे पके-पके फल लगे हुए हैं॥ ४॥ अपनी गन्धसे सम्पूर्ण दिशाओंको आमोदित करनेवाले ये ताल-फल तो देखो; हमें इन्हें खानेकी इच्छा है; यदि आपको अच्छा लगे तो [थोड़े-से] झाड़ दीजिये॥ ५॥

श्रीपराशरजी बोले—गोपकुमारोंके ये वचन सुनकर बलरामजीने 'ऐसा ही करना चाहिये' यह कहकर फल गिरा दिये और पीछे कुछ फल कृष्णचन्द्रने भी पृथिवीपर गिराये॥ ६॥ गिरते हुए फलोंका शब्द सुनकर वह दुर्द्धर्ष और दुरात्मा गर्दभासुर क्रोधपूर्वक दौड़ आया और उस महाबलवान् असुरने अपने पिछले दो पैरोंसे बलरामजीकी छातीमें लात मारी। बलरामजीने उसके उन पैरोंको पकड़ लिया और आकाशमें घुमाने लगे। जब वह निर्जीव हो गया तो उसे अत्यन्त वेगसे उस तालवृक्षपर ही दे मारा॥ ७—९॥ उस गधेने गिरते-गिरते उस तालवृक्षसे बहुत-से फल इस प्रकार गिरा दिये जैसे प्रचण्ड वायु बादलोंको गिरा दे॥ १०॥ उसके सजातीय अन्य गर्दभासुरोंके आनेपर भी कृष्ण और रामने उन्हें अनायास ही तालवृक्षोंपर पटक दिया॥ ११॥ हे मैत्रेय! इस प्रकार एक क्षणमें ही पके हुए तालफलों और गर्दभासुरोंके देहोंसे विभूषिता होकर पृथिवी अत्यन्त सुशोभित होने लगी॥ १२॥ हे द्विज! तबसे उस तालवनमें गौएँ निर्विघ्न होकर सुखपूर्वक नवीन तृण चरने लगीं जो उन्हें पहले कभी चरनेको नसीब नहीं हुआ था॥ १३॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पाँचवें अंशमें आठवाँ अध्याय समाप्त॥ ८॥

नवाँ अध्याय

प्रलम्ब-वध

श्रीपराशरजी बोले—अपने अनुचरोंसहित उस गर्दभासुरके मारे जानेपर वह सुरम्य तालवन गोप और गोपियोंके लिये सुखदायक हो गया॥ १॥ तदनन्तर धेनुकासुरको मारकर वे दोनों वसुदेवपुत्र प्रसन्नमनसे भाण्डीर नामक वटवृक्षके तले आये॥ २॥ कन्धेपर गौ बाँधनेकी रस्सी डाले और वनमालासे विभूषित हुए वे दोनों महात्मा बालक सिंहनाद करते, गाते, वृक्षोंपर चढ़ते, दूरतक गौएँ चराते तथा उनका नाम ले-लेकर पुकारते हुए नये सींगोंवाले बछड़ोंके समान सुशोभित हो रहे थे॥ ३-४॥ उन दोनोंके वस्त्र [क्रमशः] सुनहरी और श्याम रंगसे रँगे हुए थे अतः वे इन्द्रधनुषयुक्त श्वेत और श्याम मेघके समान जान पड़ते थे॥ ५॥ वे समस्त लोकपालोंके प्रभु पृथिवीपर अवतीर्ण होकर नाना प्रकारकी लौकिक लीलाओंसे परस्पर खेल रहे थे॥ ६॥

मनुष्यधर्ममें तत्पर रहकर मनुष्यताका सम्मान करते हुए वे मनुष्यजातिके गुणोंकी क्रीडाएँ करते हुए वनमें विचर रहे थे॥ ७॥ वे दोनों महाबली बालक कभी झूलामें झूलकर, कभी परस्पर मल्लयुद्धकर और कभी पत्थर फेंककर नाना प्रकारसे व्यायाम कर रहे थे॥ ८॥ इसी समय उन दोनों खेलते हुए बालकोंको उठा ले जानेकी इच्छासे प्रलम्ब नामक दैत्य गोपवेषमें अपनेको छिपाकर वहाँ आया॥ ९॥ दानवश्रेष्ठ प्रलम्ब मनुष्य न होनेपर भी मनुष्यरूप धारणकर निश्शंकभावसे उन बालकोंके बीच घुस गया॥ १०॥ उन दोनोंकी असावधानताका अवसर देखनेवाले उस दैत्यने कृष्णको तो सर्वथा अजेय समझा; अत: उसने बलरामजीको मारनेका निश्चय किया॥ ११॥

तदनन्तर वे समस्त ग्वालबाल हरिणाक्रीडन* नामक खेल खेलते हुए आपसमें एक साथ दो-दो बालक उठे॥ १२॥ तब श्रीदामाके साथ कृष्णचन्द्र, प्रलम्बके साथ बलराम और इसी प्रकार अन्यान्य गोपोंके साथ और-और ग्वालबाल [होड़ बदकर] उछलते हुए चलने लगे॥ १३॥ अन्तमें, कृष्णचन्द्रने श्रीदामाको, बलरामजीने प्रलम्बको तथा अन्यान्य कृष्णपक्षीय गोपोंने अपने प्रतिपक्षियोंको हरा दिया॥ १४॥

उस खेलमें जो-जो बालक हारे थे, वे सब जीतनेवालोंको अपने-अपने कन्धोंपर चढ़ाकर भाण्डीरवटतक ले जाकर वहाँसे फिर लौट आये॥ १५॥ किन्तु प्रलम्बासुर अपने कन्धेपर बलरामजीको चढ़ाकर चन्द्रमाके सहित मेघके समान अत्यन्त वेगसे आकाशमण्डलको चल दिया॥ १६॥ वह दानवश्रेष्ठ रोहिणीनन्दन श्रीबलभद्रजीके भारको सहन न कर सकनेके कारण वर्षाकालीन मेघके समान बढ़कर अत्यन्त स्थूल शरीरवाला हो गया॥ १७॥ तब माला और आभूषण धारण किये, सिरपर मुकुट पहने, गाड़ीके पहियोंके समान भयानक नेत्रोंवाले, अपने पादप्रहारसे पृथिवीको कम्पायमान करते हुए तथा दग्धपर्वतके समान आकारवाले उस दैत्यको देखकर उस निर्भय राक्षसके द्वारा ले जाये जाते हुए बलभद्रजीने कृष्णचन्द्रसे कहा—॥ १८-१९॥ "भैया कृष्ण! देखो, छद्मपूर्वक गोपवेष धारण करनेवाला कोई पर्वतके समान महाकाय दैत्य मुझे हरे लिये जाता है॥ २०॥ हे मधुसूदन! अब मुझे क्या करना चाहिये, यह बतलाओ। देखो, यह दुरात्मा बड़ी शीघ्रतासे दौड़ा जा रहा है"॥ २१॥

श्रीपराशरजी बोले—तब रोहिणीनन्दनके बलवीर्यको जाननेवाले महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रने मधुर मुसकानसे अपने ओष्ठसम्पुटको खोलते हुए उन बलरामजीसे कहा॥ २२॥

श्रीकृष्णचन्द्र बोले—हे सर्वात्मन्! आप सम्पूर्ण गुह्य पदार्थोंमें अत्यन्त गुह्यस्वरूप होकर भी यह स्पष्ट मानवभाव क्यों अवलम्बन कर रहे हैं?॥ २३॥ आप अपने उस स्वरूपका स्मरण कीजिये जो समस्त संसारका कारण तथा कारणका भी पूर्ववर्ती है और प्रलयकालमें भी स्थित रहनेवाला है॥ २४॥ क्या आपको मालूम नहीं है कि आप और मैं दोनों ही इस संसारके एकमात्र कारण हैं और पृथिवीका भार उतारनेके लिये ही मर्त्यलोकमें आये हैं॥ २५॥ हे अनन्त! आकाश

* एक निश्चित लक्ष्यके पास दो-दो बालक एक-एक साथ हिरनकी भाँति उछलते हुए जाते हैं। जो दोनोंमें पहले पहुँच जाता है वह विजयी होता है, हारा हुआ बालक जीते हुएको अपनी पीठपर चढ़ाकर मुख्य स्थानतक ले आता है। यही हरिणाक्रीडन है।

आपका सिर है, मेघ केश हैं, पृथिवी चरण हैं, अग्नि मुख है, चन्द्रमा मन है, वायु श्वास-प्रश्वास हैं और चारों दिशाएँ बाहु हैं॥ २६॥ हे भगवन्! आप महाकाय हैं, आपके सहस्र मुख हैं तथा सहस्रों हाथ, पाँव आदि शरीरके भेद हैं। आप सहस्रों ब्रह्माओंके आदिकारण हैं, मुनिजन आपका सहस्रों प्रकार वर्णन करते हैं॥ २७॥ आपके दिव्य रूपको [आपके अतिरिक्त] और कोई नहीं जानता, अतः समस्त देवगण आपके अवताररूपकी ही उपासना करते हैं। क्या आपको विदित नहीं है कि अन्तमें यह सम्पूर्ण विश्व आपहीमें लीन हो जाता है॥ २८॥ हे अनन्तमूर्ते! आपहीसे धारण की हुई यह पृथिवी सम्पूर्ण चराचर विश्वको धारण करती है। हे अज! निमेषादि कालस्वरूप आप ही कृतयुग आदि भेदोंसे इस जगत्‌का ग्रास करते हैं॥ २९॥ जिस प्रकार बडवानलसे पीया हुआ जल वायुद्वारा हिमालयतक पहुँचाये जानेपर हिमका रूप धारण कर लेता है और फिर सूर्यकिरणोंका संयोग होनेसे जलरूप हो जाता है, उसी प्रकार हे ईश! यह समस्त जगत् [रुद्रादिरूपसे] आपहीके द्वारा विनष्ट होकर आप [परमेश्वर]-के ही अधीन रहता है और फिर प्रत्येक कल्पमें आपके [हिरण्यगर्भरूपसे] सृष्टि-रचनामें प्रवृत्त होनेपर यह [विराट्‌रूपसे] स्थूल जगद्रूप हो जाता है॥ ३०-३१॥ हे विश्वात्मन्! आप और मैं दोनों ही इस जगत्‌के एकमात्र कारण हैं। संसारके हितके लिये ही हमने भिन्न-भिन्न रूप धारण किये हैं॥ ३२॥ अतः हे अमेयात्मन्! आप अपने स्वरूपको स्मरण कीजिये और मनुष्यभावका ही अवलम्बन कर इस दैत्यको मारकर बन्धुजनोंका हित-साधन कीजिये॥ ३३॥

श्रीपराशरजी बोले—हे विप्र! महात्मा कृष्णचन्द्रद्वारा इस प्रकार स्मरण कराये जानेपर महाबलवान् बलरामजी हँसते हुए प्रलम्बासुरको पीडित करने लगे॥ ३४॥ उन्होंने क्रोधसे नेत्र लाल करके उसके मस्तकपर एक घूँसा मारा, जिसकी चोटसे उस दैत्यके दोनों नेत्र बाहर निकल आये॥ ३५॥

तदनन्तर वह दैत्यश्रेष्ठ मगज (मस्तिष्क) फट जानेपर मुखसे रक्त वमन करता हुआ पृथिवीपर गिर पड़ा और मर गया॥ ३६॥ अद्‌भुतकर्मा बलरामजीद्वारा प्रलम्बासुरको मरा हुआ देखकर गोपगण प्रसन्न होकर 'साधु, साधु' कहते हुए उनकी प्रशंसा करने लगे॥ ३७॥ प्रलम्बासुरके मारे जानेपर बलरामजी गोपोंद्वारा प्रशंसित होते हुए कृष्णचन्द्रके साथ गोकुलमें लौट आये॥ ३८॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पाँचवें अंशमें नवाँ अध्याय समाप्त॥ ९॥

दसवाँ अध्याय

शरद्वर्णन तथा गोवर्धनकी पूजा

श्रीपराशरजी बोले—इस प्रकार उन राम और कृष्णके व्रजमें विहार करते-करते वर्षाकाल बीत गया और प्रफुल्लित कमलोंसे युक्त शरद्-ऋतु आ गयी॥ १॥ जैसे गृहस्थ पुरुष पुत्र और क्षेत्र आदिमें लगी हुई ममतासे सन्ताप पाते हैं, उसी प्रकार मछलियाँ गड्ढोंके जलमें अत्यन्त ताप पाने लगीं॥ २॥ संसारकी असारताको जानकर जिस प्रकार योगिजन शान्त हो जाते हैं, उसी प्रकार मयूरगण मदहीन होकर मौन हो गये॥ ३॥ विज्ञानिगण [सब प्रकारकी ममता छोड़कर]

जैसे घरका त्याग कर देते हैं, वैसे ही निर्मल श्वेत मेघोंने अपना जलरूप सर्वस्व छोड़कर आकाशमण्डलका परित्याग कर दिया॥ ४॥ विविध पदार्थोंमें ममता करनेसे जैसे देहधारियोंके हृदय सारहीन हो जाते हैं वैसे ही शरत्कालीन सूर्यके तापसे सरोवर सूख गये॥ ५॥ निर्मलचित्त पुरुषोंके मन जिस प्रकार ज्ञानद्वारा समता प्राप्त कर लेते हैं, उसी प्रकार शरत्कालीन जलोंको [स्वच्छताके कारण] कुमुदोंसे योग्य सम्बन्ध प्राप्त हो गया॥ ६॥ जिस प्रकार साधु-कुलमें चरम-देह-धारी योगी सुशोभित होता है, उसी प्रकार तारकामण्डल-मण्डित निर्मल आकाशमें पूर्णचन्द्र विराजमान हुआ॥ ७॥

जिस प्रकार क्षेत्र और पुत्र आदिमें बढ़ी हुई ममताको विवेकीजन शनैः-शनैः त्याग देते हैं, वैसे ही जलाशयोंका जल धीरे-धीरे अपने तटको छोड़ने लगा॥ ८॥ जिस प्रकार अन्तरायों[1] (विघ्नों)-से विचलित हुए कुयोगियोंका क्लेशों[2] से पुनः संयोग हो जाता है उसी प्रकार पहले छोड़े हुए सरोवरके जलसे हंसका पुनः संयोग हो गया॥ ९॥ क्रमशः महायोग (सम्प्रज्ञातसमाधि) प्राप्त कर लेनेपर जैसे यति निश्चलात्मा हो जाता है, वैसे ही जलके स्थिर हो जानेसे समुद्र निश्चल हो गया॥ १०॥ जिस प्रकार सर्वगत भगवान् विष्णुको जान लेनेपर मेधावी पुरुषोंके चित्त शान्त हो जाते हैं वैसे ही समस्त जलाशयोंका जल स्वच्छ हो गया॥ ११॥

योगाग्निद्वारा क्लेशसमूहके नष्ट हो जानेपर जैसे योगियोंके चित्त स्वच्छ हो जाते हैं उसी प्रकार शीतके कारण मेघोंके लीन हो जानेसे आकाश निर्मल हो गया॥ १२॥ जिस प्रकार अहंकारजनित महान् दुःखको विवेक शान्त कर देता है, उसी प्रकार सूर्यकिरणोंसे उत्पन्न हुए तापको चन्द्रमाने शान्त कर दिया॥ १३॥ प्रत्याहार जैसे इन्द्रियोंको उनके विषयोंसे खींच लेता है वैसे ही शरत्कालने आकाशसे मेघोंको, पृथिवीसे धूलिको और जलसे मलको दूर कर दिया॥ १४॥ [पानीसे भर जानेके कारण] मानो तालाबोंके जल पूरक कर चुकनेपर अब [स्थिर रहने और सूखनेसे] रात-दिन कुम्भक एवं रेचक क्रियाद्वारा प्राणायामका अभ्यास कर रहे हैं॥ १५॥

इस प्रकार व्रजमण्डलमें निर्मल आकाश और नक्षत्रमय शरत्कालके आनेपर श्रीकृष्णचन्द्रने समस्त व्रजवासियोंको इन्द्रका उत्सव मनानेके लिये तैयारी करते देखा॥ १६॥ महामति कृष्णने उन गोपोंको उत्सवकी उमंगसे अत्यन्त उत्साहपूर्ण देखकर कुतूहलवश अपने बड़े-बूढ़ोंसे पूछा—॥ १७॥ "आपलोग जिसके लिये फूले नहीं समाते वह इन्द्रयज्ञ क्या है?" इस प्रकार अत्यन्त आदरपूर्वक पूछनेपर उनसे नन्दगोपने कहा—॥ १८॥

नन्दगोप बोले—मेघ और जलका स्वामी देवराज इन्द्र है। उसकी प्रेरणासे ही मेघगण

१-अन्तराय नौ हैं—

'व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः।

(यो० द० १।३०)

अर्थात् व्याधि, स्त्यान (साधनमें अप्रवृत्ति), संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति (वैराग्यहीनता), भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व (लक्ष्यकी उपलब्धि न होना) और अनवस्थितत्व (लक्ष्यमें स्थिर न होना) ये नौ अन्तराय हैं।

२-क्लेश पाँच हैं; जैसे—

अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः। (यो० द० २।३)

अर्थात् अविद्या, अस्मिता (अहंकार) राग, द्वेष और अभिनिवेश (मरणत्रास) ये पाँच क्लेश हैं।

जलरूप रसकी वर्षा करते हैं॥ १९॥ हम और अन्य समस्त देहधारी उस वर्षासे उत्पन्न हुए अन्नको ही बर्तते हैं तथा उसीको उपयोगमें लाते हुए देवताओंको भी तृप्त करते हैं॥ २०॥ उस (वर्षा)-से बढ़े हुए अन्नसे ही तृप्त होकर ये गौएँ तुष्ट और पुष्ट होकर वत्सवती एवं दूध देनेवाली होती हैं॥ २१॥ जिस भूमिपर बरसनेवाले मेघ दिखायी देते हैं, उसपर कभी अन्न और तृणका अभाव नहीं होता और न कभी वहाँके लोग भूखे रहते ही देखे जाते हैं॥ २२॥ यह पर्जन्यदेव (इन्द्र) पृथिवीके जलको सूर्यकिरणोंद्वारा खींचकर सम्पूर्ण प्राणियोंकी वृद्धिके लिये उसे मेघोंद्वारा पृथिवीपर बरसा देते हैं। इसलिये वर्षा-ऋतुमें समस्त राजालोग, हम और अन्य मनुष्यगण देवराज इन्द्रकी यज्ञोंद्वारा प्रसन्नतापूर्वक पूजा किया करते हैं॥ २३-२४॥

श्रीपराशरजी बोले—इन्द्रकी पूजाके विषयमें नन्दजीके ऐसे वचन सुनकर श्रीदामोदर देवराजको कुपित करनेके लिये ही इस प्रकार कहने लगे—॥ २५॥ "हे तात! हम न तो कृषक हैं और न व्यापारी, हमारे देवता तो गौएँ ही हैं; क्योंकि हमलोग वनचर हैं॥ २६॥ आन्वीक्षिकी (तर्कशास्त्र), त्रयी (कर्मकाण्ड), दण्डनीति और वार्ता—ये चार विद्याएँ हैं, इनमेंसे केवल वार्ताका विवरण सुनो॥ २७॥ हे महाभाग! वार्ता नामकी विद्या कृषि, वाणिज्य और पशुपालन इन तीन वृत्तियोंकी आश्रयभूता है॥ २८॥ वार्ताके इन तीनों भेदोंमेंसे कृषि किसानोंकी, वाणिज्य व्यापारियोंकी और गोपालन हमलोगोंकी उत्तम वृत्ति है॥ २९॥ जो व्यक्ति जिस विद्यासे युक्त है उसकी वही इष्टदेवता है, वही पूजा-अर्चाके योग्य है और वही परम उपकारिणी है॥ ३०॥ जो पुरुष एक व्यक्तिसे फल-लाभ करके अन्यकी पूजा करता है, उसका इहलोक अथवा परलोकमें कहीं भी शुभ नहीं होता॥ ३१॥ खेतोंके अन्तमें सीमा है तथा सीमाके अन्तमें वन हैं और वनोंके अन्तमें समस्त पर्वत हैं; वे पर्वत ही हमारी परमगति हैं॥ ३२॥ हमलोग न तो किंवाड़ें तथा भित्तिके अन्दर रहनेवाले हैं और न निश्चित गृह अथवा खेतवाले किसान ही हैं, बल्कि [वन-पर्वतादिमें स्वच्छन्द विचरनेवाले] हमलोग चक्रचारी* मुनियोंकी भाँति समस्त जनसमुदायमें सुखी हैं [अतः गृहस्थ किसानोंकी भाँति हमें इन्द्रकी पूजा करनेका कोई काम नहीं]"॥ ३३॥

"सुना जाता है कि इस वनके पर्वतगण कामरूपी (इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले) हैं। वे मनोवांछित रूप धारण करके अपने-अपने शिखरोंपर विहार किया करते हैं॥ ३४॥ जब कभी वनवासीगण इन गिरिदेवोंको किसी तरहकी बाधा पहुँचाते हैं तो वे सिंहादि रूप धारणकर उन्हें मार डालते हैं॥ ३५॥ अतः आजसे [इस इन्द्रयज्ञके स्थानमें] गिरियज्ञ अथवा गोयज्ञका प्रचार होना चाहिये। हमें इन्द्रसे क्या प्रयोजन है? हमारे देवता तो गौएँ और पर्वत ही हैं॥ ३६॥ ब्राह्मणलोग मन्त्र-यज्ञ तथा कृषकगण सीरयज्ञ (हलका पूजन) करते हैं, अतः पर्वत और वनोंमें रहनेवाले हमलोगोंको गिरियज्ञ और गोयज्ञ करने चाहिये॥ ३७॥

"अतएव आपलोग विधिपूर्वक मेध्य पशुओंकी बलि देकर विविध सामग्रियोंसे गोवर्धनपर्वतकी पूजा करें॥ ३८॥ आज सम्पूर्ण व्रजका दूध एकत्रित कर लो और उससे ब्राह्मणों

* चक्रचारी मुनि वे हैं जो शकट आदिसे सर्वत्र भ्रमण किया करते हैं और जिनका कोई खास निवास नहीं होता। जहाँ शाम हो जाती है वहीं रह जाते हैं। अतः उन्हें 'सायंगृह' भी कहते हैं।

तथा अन्यान्य याचकोंको भोजन कराओ; इस विषयमें और अधिक सोच-विचार मत करो॥ ३९॥ गोवर्धनकी पूजा, होम और ब्राह्मण-भोजन समाप्त होनेपर शरद्-ऋतुके पुष्पोंसे सजे हुए मस्तकवाली गौएँ गिरिराजकी प्रदक्षिणा करें॥ ४०॥ हे गोपगण! आपलोग यदि प्रीतिपूर्वक मेरी इस सम्मतिके अनुसार कार्य करेंगे तो इससे गौओंको, गिरिराज और मुझको अत्यन्त प्रसन्नता होगी''॥ ४१॥

श्रीपराशरजी बोले—कृष्णचन्द्रके इन वाक्योंको सुनकर नन्द आदि व्रजवासी गोपोंने प्रसन्नतासे खिले हुए मुखसे 'साधु, साधु' कहा॥ ४२॥ और बोले—हे वत्स! तुमने अपना जो विचार प्रकट किया है वह बड़ा ही सुन्दर है; हम सब ऐसा ही करेंगे; आज गिरियज्ञ किया जाय॥ ४३॥

तदनन्तर उन व्रजवासियोंने गिरियज्ञका अनुष्ठान किया तथा दही, खीर और फलों आदिसे पर्वतराजको बलि दी॥ ४४॥ सैकड़ों, हजारों ब्राह्मणोंको भोजन कराया तथा पुष्पार्चित गौओं और सजल जलधरके समान गर्जनेवाले साँड़ोंने गोवर्धनकी परिक्रमा की॥ ४५-४६॥ हे द्विज! उस समय कृष्णचन्द्रने पर्वतके शिखरपर अन्यरूपसे प्रकट होकर यह दिखलाते हुए कि मैं मूर्तिमान् गिरिराज हूँ, उन गोपश्रेष्ठोंके चढ़ाये हुए विविध व्यंजनोंको ग्रहण किया॥ ४७॥ कृष्णचन्द्रने अपने निजरूपसे गोपोंके साथ पर्वतराजके शिखरपर चढ़कर अपने ही दूसरे स्वरूपका पूजन किया॥ ४८॥ तदनन्तर उनके अन्तर्धान होनेपर गोपगण अपने अभीष्ट वर पाकर गिरियज्ञ समाप्त करके फिर अपने-अपने गोष्ठोंमें चले आये॥ ४९॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पाँचवें अंशमें दसवाँ अध्याय समाप्त॥ १०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

इन्द्रका कोप और श्रीकृष्णका गोवर्धन-धारण

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! अपने यज्ञके रुक जानेसे इन्द्रने अत्यन्त रोषपूर्वक संवर्तक नामक मेघोंके दलसे इस प्रकार कहा—॥ १॥ ''अरे मेघो! मेरा यह वचन सुनो और मैं जो कुछ कहूँ उसे मेरी आज्ञा सुनते ही, बिना कुछ सोचे-विचारे तुरन्त पूरा करो॥ २॥ देखो अन्य गोपोंके सहित दुर्बुद्धि नन्दगोपने कृष्णकी सहायताके बलसे अन्धा होकर मेरा यज्ञ भंग कर दिया है॥ ३॥ अत: जो उनकी परम जीविका और उनके गोपत्वका कारण है, उन गौओंको तुम मेरी आज्ञासे वर्षा और वायुके द्वारा पीडित कर दो॥ ४॥ मैं भी पर्वत शिखरके समान अत्यन्त ऊँचे अपने ऐरावत हाथीपर चढ़कर वायु और जल छोड़नेके समय तुम्हारी सहायता करूँगा''॥ ५॥

श्रीपराशरजी बोले—हे द्विज! इन्द्रकी ऐसी आज्ञा होनेपर गौओंको नष्ट करनेके लिये मेघोंने अति प्रचण्ड वायु और वर्षा छोड़ दी॥ ६॥ हे मुने! उस समय एक क्षणमें ही मेघोंकी छोड़ी हुई महान् जलधाराओंसे पृथिवी, दिशाएँ और आकाश एकरूप हो गये॥ ७॥ मेघगण मानो विद्युल्लतारूप दण्डाघातसे भयभीत होकर महान् शब्दसे दिशाओंको व्याप्त करते हुए मूसलाधार पानी बरसाने लगे॥ ८॥ इस प्रकार मेघोंके अहर्निश बरसनेसे संसारके अन्धकारपूर्ण हो जानेपर ऊपर-नीचे और सब ओरसे समस्त लोक जलमय-सा हो गया॥ ९॥

वर्षा और वायुके वेगपूर्वक चलते रहनेसे गौओंके कटि, जंघा और ग्रीवा आदि सुन्न हो गये और काँपते-काँपते अपने प्राण छोड़ने लगीं [अर्थात् मूर्च्छित हो गयीं] ॥ १० ॥ हे महामुने! कोई गौएँ तो अपने बछड़ोंको अपने नीचे छिपाये खड़ी रहीं और कोई जलके वेगसे वत्सहीना हो गयीं ॥ ११ ॥ वायुसे काँपते हुए दीनवदन बछड़े मानो व्याकुल होकर मन्द-स्वरसे कृष्णचन्द्रसे 'रक्षा करो, रक्षा करो' ऐसा कहने लगे ॥ १२ ॥

हे मैत्रेय! उस समय गो, गोपी और गोपगणके सहित सम्पूर्ण गोकुलको अत्यन्त व्याकुल देखकर श्रीहरिने विचारा ॥ १३ ॥ यज्ञ-भंगके कारण विरोध मानकर यह सब करतूत इन्द्र ही कर रहा है; अतः अब मुझे सम्पूर्ण व्रजकी रक्षा करनी चाहिये ॥ १४ ॥ अब मैं धैर्यपूर्वक बड़ी-बड़ी शिलाओंसे घनीभूत इस पर्वतको उखाड़कर इसे एक बड़े छत्रके समान व्रजके ऊपर धारण करूँगा ॥ १५ ॥

श्रीपराशरजी बोले—श्रीकृष्णचन्द्रने ऐसा विचारकर गोवर्धनपर्वतको उखाड़ लिया और उसे लीलासे ही अपने एक हाथपर उठा लिया ॥ १६ ॥ पर्वतको उखाड़ लेनेपर शूरनन्दन श्रीश्यामसुन्दरने गोपोंसे हँसकर कहा— "आओ, शीघ्र ही इस पर्वतके नीचे आ जाओ, मैंने वर्षासे बचनेका प्रबन्ध कर दिया है ॥ १७ ॥ यहाँ वायुहीन स्थानोंमें आकर सुखपूर्वक बैठ जाओ; निर्भय होकर प्रवेश करो, पर्वतके गिरने आदिका भय मत करो" ॥ १८ ॥

श्रीकृष्णचन्द्रके ऐसा कहनेपर जलकी धाराओंसे पीडित गोप और गोपी अपने बर्तन-भाँड़ोंको छकड़ोंमें रखकर गौओंके साथ पर्वतके नीचे चले गये ॥ १९ ॥ व्रजवासियोंद्वारा हर्ष और विस्मयपूर्वक टकटकी लगाकर देखे जाते हुए श्रीकृष्णचन्द्र भी गिरिराजको अत्यन्त निश्चलतापूर्वक धारण किये रहे ॥ २० ॥ जो प्रीतिपूर्वक आँखें फाड़कर देख रहे थे उन हर्षितचित्त गोप और गोपियोंसे अपने चरितोंका स्तवन होते हुए श्रीकृष्णचन्द्र पर्वतको धारण किये रहे ॥ २१ ॥

हे विप्र! गोपोंके नाशकर्ता इन्द्रकी प्रेरणासे नन्दजीके गोकुलमें सात रात्रितक महाभयंकर मेघ बरसते रहे ॥ २२ ॥ किंतु जब श्रीकृष्णचन्द्रने पर्वत धारणकर गोकुलकी रक्षा की तो अपनी प्रतिज्ञा व्यर्थ हो जानेसे इन्द्रने मेघोंको रोक दिया ॥ २३ ॥ आकाशके मेघहीन हो जानेसे इन्द्रकी प्रतिज्ञा भंग हो जानेपर समस्त गोकुलवासी वहाँसे निकलकर प्रसन्नतापूर्वक फिर अपने-अपने स्थानोंपर आ गये ॥ २४ ॥ और कृष्णचन्द्रने भी उन व्रजवासियोंके विस्मयपूर्वक देखते-देखते गिरिराज गोवर्धनको अपने स्थानपर रख दिया ॥ २५ ॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पाँचवें अंशमें ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११ ॥

बारहवाँ अध्याय

शक्र-कृष्ण-संवाद, कृष्ण-स्तुति

श्रीपराशरजी बोले—इस प्रकार गोवर्धनपर्वतका धारण और गोकुलकी रक्षा हो जानेपर देवराज इन्द्रको श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन करनेकी इच्छा हुई ॥ १ ॥ अतः शत्रुजित् देवराज गजराज ऐरावतपर चढ़कर गोवर्धनपर्वतपर आये और वहाँ सम्पूर्ण जगत्के रक्षक गोपवेषधारी महाबलवान् श्रीकृष्णचन्द्रको ग्वालबालोंके साथ गौएँ चराते देखा ॥ २-३ ॥ हे द्विज! उन्होंने यह भी

देखा कि पक्षिश्रेष्ठ गरुड अदृश्यभावसे उनके ऊपर रहकर अपने पंखोंसे उनकी छाया कर रहे हैं॥ ४॥ तब वे ऐरावतसे उतर पड़े और एकान्तमें श्रीमधुसूदनकी ओर प्रीतिपूर्वक दृष्टि फैलाते हुए मुसकाकर बोले॥ ५॥

इन्द्रने कहा—हे श्रीकृष्णचन्द्र! मैं जिस लिये आपके पास आया हूँ, वह सुनिये—हे महाबाहो! आप इसे अन्यथा न समझें॥ ६॥ हे अखिलाधार परमेश्वर! आपने पृथिवीका भार उतारनेके लिये ही पृथिवीपर अवतार लिया है॥ ७॥ यज्ञभंगसे विरोध मानकर ही मैंने गोकुलको नष्ट करनेके लिये महामेघोंको आज्ञा दी थी, उन्हींने यह संहार मचाया था॥ ८॥ किन्तु आपने पर्वतको उखाड़कर गौओंको बचा लिया। हे वीर! आपके इस अद्भुत कर्मसे मैं अति प्रसन्न हूँ॥ ९॥

हे कृष्ण! आपने जो अपने एक हाथपर गोवर्धन धारण किया है, इससे मैं देवताओंका प्रयोजन [आपके द्वारा] सिद्ध हुआ ही समझता हूँ॥ १०॥ [गोवंशकी रक्षाद्वारा] आपसे रक्षित [कामधेनु आदि] गौओंसे प्रेरित होकर ही मैं आपका विशेष सत्कार करनेके लिये यहाँ आपके पास आया हूँ॥ ११॥ हे कृष्ण! अब मैं गौओंके वाक्यानुसार ही आपका उपेन्द्र-पदपर अभिषेक करूँगा तथा आप गौओंके इन्द्र (स्वामी) हैं इसलिये आपका नाम 'गोविन्द' भी होगा॥ १२॥

श्रीपराशरजी बोले—तदनन्तर इन्द्रने अपने वाहन गजराज ऐरावतका घण्टा लिया और उसमें पवित्र जल भरकर उससे कृष्णचन्द्रका अभिषेक किया॥ १३॥ श्रीकृष्णचन्द्रका अभिषेक होते समय गौओंने तुरन्त ही अपने स्तनोंसे टपकते हुए दुग्धसे पृथिवीको भिगो दिया॥ १४॥

इस प्रकार गौओंके कथनानुसार श्रीजनार्दनको उपेन्द्र-पदपर अभिषिक्त कर शचीपति इन्द्रने पुनः प्रीति और विनयपूर्वक कहा—॥ १५॥ "हे महाभाग! यह तो मैंने गौओंका वचन पूरा किया, अब पृथिवीके भार उतारनेकी इच्छासे मैं आपसे जो कुछ और निवेदन करता हूँ वह भी सुनिये॥ १६॥ हे पृथिवीधर! हे पुरुषसिंह! अर्जुन नामक मेरे अंशने पृथिवीपर अवतार लिया है; आप कृपा करके उसकी सर्वदा रक्षा करें॥ १७॥ हे मधुसूदन! वह वीर पृथिवीका भार उतारनेमें आपका साथ देगा, अतः आप उसकी अपने शरीरके समान ही रक्षा करें"॥ १८॥

श्रीभगवान् बोले—भरतवंशमें पृथाके पुत्र अर्जुनने तुम्हारे अंशसे अवतार लिया है—यह मैं जानता हूँ। मैं जबतक पृथिवीपर रहूँगा, उसकी रक्षा करूँगा॥ १९॥ हे शत्रुसूदन देवेन्द्र! मैं जबतक महीतलपर रहूँगा तबतक अर्जुनको युद्धमें कोई भी न जीत सकेगा॥ २०॥ हे देवेन्द्र! विशाल भुजाओंवाला कंस नामक दैत्य, अरिष्टासुर, केशी, कुवलयापीड और नरकासुर आदि अन्यान्य दैत्योंका नाश होनेपर यहाँ महाभारत-युद्ध होगा। हे सहस्राक्ष! उसी समय पृथिवीका भार उतरा हुआ समझना॥ २१-२२॥ अब तुम प्रसन्नतापूर्वक जाओ, अपने पुत्र अर्जुनके लिये तुम किसी प्रकारकी चिन्ता मत करो; मेरे रहते हुए अर्जुनका कोई भी शत्रु सफल न हो सकेगा॥ २३॥ अर्जुनके लिये ही मैं महाभारतके अन्तमें युधिष्ठिर आदि समस्त पाण्डवोंको अक्षत-शरीरसे कुन्तीको दूँगा॥ २४॥

श्रीपराशरजी बोले—कृष्णचन्द्रके ऐसा कहनेपर देवराज इन्द्र उनका आलिंगन कर ऐरावत हाथीपर आरूढ हो स्वर्गको चले गये॥ २५॥ तदनन्तर कृष्णचन्द्र भी गोपियोंके दृष्टिपातसे पवित्र हुए मार्गद्वारा गोपकुमारों और गौओंके साथ व्रजको लौट आये॥ २६॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पाँचवें अंशमें बारहवाँ अध्याय समाप्त॥ १२॥

तेरहवाँ अध्याय

गोपोंद्वारा भगवान्‌का प्रभाववर्णन तथा भगवान्‌का गोपियोंके साथ रासक्रीडा करना

श्रीपराशरजी बोले—इन्द्रके चले जानेपर लीलाविहारी श्रीकृष्णचन्द्रको बिना प्रयास ही गोवर्धन-पर्वत धारण करते देख गोपगण उनसे प्रीतिपूर्वक बोले— ॥ १ ॥ हे भगवन्! हे महाभाग! आपने गिरिराजको धारण कर हमारी और गौओंकी इस महान् भयसे रक्षा की है॥ २ ॥ हे तात! कहाँ आपकी यह अनुपम बाललीला, कहाँ निन्दित गोपजाति और कहाँ ये दिव्य कर्म? यह सब क्या है, कृपया हमें बतलाइये॥ ३ ॥ आपने यमुनाजलमें कालियनागका दमन किया, धेनुकासुरको मारा और फिर यह गोवर्धनपर्वत धारण किया; आपके इन अद्‌भुत कर्मोंसे हमारे चित्तमें बड़ी शंका हो रही है॥ ४ ॥ हे अमितविक्रम! हम भगवान् हरिके चरणोंकी शपथ करके आपसे सच-सच कहते हैं कि आपके ऐसे बल-वीर्यको देखकर हम आपको मनुष्य नहीं मान सकते॥ ५ ॥ हे केशव! स्त्री और बालकोंके सहित सभी व्रजवासियोंकी आपपर अत्यन्त प्रीति है। आपका यह कर्म तो देवताओंके लिये भी दुष्कर है॥ ६ ॥ हे कृष्ण! आपकी यह बाल्यावस्था, विचित्र बल-वीर्य और हम-जैसे नीच पुरुषोंमें जन्म लेना—हे अमेयात्मन्! ये सब बातें विचार करनेपर हमें शंकामें डाल देती हैं॥ ७ ॥ आप देवता हों, दानव हों, यक्ष हों अथवा गन्धर्व हों; इन बातोंका विचार करनेसे हमें क्या प्रयोजन है? हमारे तो आप बन्धु ही हैं, अतः आपको नमस्कार है॥ ८ ॥

श्रीपराशरजी बोले—गोपगणके ऐसा कहनेपर महामति कृष्णचन्द्र कुछ देरतक चुप रहे और फिर कुछ प्रणयजन्य कोपपूर्वक इस प्रकार कहने लगे— ॥ ९ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—हे गोपगण! यदि आपलोगोंको मेरे सम्बन्धसे किसी प्रकारकी लज्जा न हो तो मैं आपलोगोंसे प्रशंसनीय हूँ इस बातका विचार करनेकी भी क्या आवश्यकता है?॥ १० ॥ यदि मुझमें आपकी प्रीति है और यदि मैं आपकी प्रशंसाका पात्र हूँ तो आपलोग मुझमें बान्धव-बुद्धि ही करें॥ ११ ॥ मैं न देव हूँ, न गन्धर्व हूँ, न यक्ष हूँ और न दानव हूँ। मैं तो आपके बान्धवरूपसे ही उत्पन्न हुआ हूँ; आपलोगोंको इस विषयमें और कुछ विचार न करना चाहिये॥ १२ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे महाभाग! श्रीहरिके प्रणयकोपयुक्त होकर कहे हुए इन वाक्योंको सुनकर वे समस्त गोपगण चुपचाप वनको चले गये॥ १३ ॥

तब श्रीकृष्णचन्द्रने निर्मल आकाश, शरच्चन्द्रकी चन्द्रिका और दिशाओंको सुरभित करनेवाली विकसित कुमुदिनी तथा वन-खण्डीको मुखर मधुकरोंसे मनोहर देखकर गोपियोंके साथ रमण करनेकी इच्छा की॥ १४-१५ ॥ उस समय बलरामजीके बिना ही श्रीमुरलीमनोहर स्त्रियोंको प्रिय लगनेवाला अत्यन्त मधुर, अस्फुट एवं मृदुल पद ऊँचे और धीमे स्वरसे गाने लगे॥ १६ ॥ उनकी उस सुरम्य गीतध्वनिको सुनकर गोपियाँ अपने-अपने घरोंको छोड़कर तत्काल जहाँ श्रीमधुसूदन थे वहाँ चली आयीं॥ १७ ॥

वहाँ आकर कोई गोपी तो उनके स्वर-में-स्वर मिलाकर धीरे-धीरे गाने लगी और कोई मन-ही-मन उन्हींका स्मरण करने लगी॥ १८ ॥ कोई 'हे कृष्ण, हे कृष्ण' ऐसा कहती हुई लज्जावश

संकुचित हो गयी और कोई प्रेमोन्मादिनी होकर तुरन्त उनके पास जा खड़ी हुई॥ १९॥ कोई गोपी बाहर गुरुजनोंको देखकर अपने घरमें ही रहकर आँख मूँदकर तन्मयभावसे श्रीगोविन्दका ध्यान करने लगी॥ २०॥ तथा कोई गोपकुमारी जगत्के कारण परब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्णचन्द्रका चिन्तन करते-करते [मूर्च्छावस्थामें] प्राणापानके रुक जानेसे मुक्त हो गयी, क्योंकि भगवद्ध्यानके विमल आह्लादसे उसकी समस्त पुण्यराशि क्षीण हो गयी और भगवान्‌की अप्राप्तिके महान् दुःखसे उसके समस्त पाप लीन हो गये थे॥ २१-२२॥ गोपियोंसे घिरे हुए रासारम्भरूप रसके लिये उत्कण्ठित श्रीगोविन्दने उस शरच्चन्द्रसुशोभिता रात्रिको [रास करके] सम्मानित किया॥ २३॥

उस समय भगवान् कृष्णके अन्यत्र चले जानेपर कृष्णचेष्टाके अधीन हुईं गोपियाँ यूथ बनाकर वृन्दावनके अन्दर विचरने लगीं॥ २४॥ कृष्णमें निबद्धचित्त हुई वे व्रजांगनाएँ परस्पर इस प्रकार वार्तालाप करने लगीं—[उसमेंसे एक गोपी कहती थी—] "मैं ही कृष्ण हूँ; देखो, कैसी सुन्दर चालसे चलता हूँ; तनिक मेरी गति तो देखो।" दूसरी कहती—"कृष्ण तो मैं हूँ, अहा! मेरा गाना तो सुनो"॥ २५-२६॥ कोई अन्य गोपी भुजाएँ ठोंककर बोल उठती—"अरे दुष्ट कालिय! मैं कृष्ण हूँ, तनिक ठहर तो जा" ऐसा कहकर वह कृष्णके सारे चरित्रोंका लीलापूर्वक अनुकरण करने लगती॥ २७॥ कोई और गोपी कहने लगती—"अरे गोपगण! मैंने गोवर्धन धारण कर लिया है, तुम वर्षासे मत डरो, निश्शंक होकर इसके नीचे आकर बैठ जाओ"॥ २८॥ कोई दूसरी गोपी कृष्णलीलाओंका अनुकरण करती हुई बोलने लगती—"मैंने धेनुकासुरको मार दिया है, अब यहाँ गौएँ स्वच्छन्द होकर विचरें"॥ २९॥

इस प्रकार समस्त गोपियाँ श्रीकृष्णचन्द्रकी नाना प्रकारकी चेष्टाओंमें व्यग्र होकर साथ-साथ अति सुरम्य वृन्दावनके अन्दर विचरने लगीं॥ ३०॥ खिले हुए कमल-जैसे नेत्रोंवाली एक सुन्दरी गोपांगना सर्वांग पुलकित हो पृथिवीकी ओर देखकर कहने लगी—॥ ३१॥ अरी आली! ये लीलाललितगामी कृष्णचन्द्रके ध्वजा, वज्र, अंकुश और कमल आदिकी रेखाओंसे सुशोभित पदचिह्न तो देखो॥ ३२॥ और देखो, उनके साथ कोई पुण्यवती मदमाती युवती भी आ गयी है, उसके ये घने छोटे-छोटे और पतले चरणचिह्न दिखायी दे रहे हैं॥ ३३॥ यहाँ निश्चय ही दामोदरने ऊँचे होकर पुष्पचयन किये हैं; इसी कारण यहाँ उन महात्माके चरणोंके केवल अग्रभाग ही अंकित हुए हैं॥ ३४॥ यहाँ बैठकर उन्होंने निश्चय ही किसी बड़भागिनीका पुष्पोंसे शृंगार किया है; अवश्य ही उसने अपने पूर्वजन्ममें सर्वात्मा श्रीविष्णुभगवान्‌की उपासना की होगी॥ ३५॥ और यह देखो, पुष्पबन्धनके सम्मानसे गर्विता होकर उसके मान करनेपर श्रीनन्दनन्दन उसे छोड़कर इस मार्गसे चले गये हैं॥ ३६॥ अरी सखियो! देखो, यहाँ कोई नितम्बभारके कारण मन्दगामिनी गोपी कृष्णचन्द्रके पीछे-पीछे गयी है। वह अपने गन्तव्य स्थानको तीव्रगतिसे गयी है, इसीसे उसके चरणचिह्नोंके अग्रभाग कुछ नीचे दिखायी देते हैं॥ ३७॥ यहाँ वह सखी उनके हाथमें अपना पाणिपल्लव देकर चली है, इसीसे उसके चरणचिह्न पराधीन-से दिखलायी देते हैं॥ ३८॥ देखो, यहाँसे उस मन्दगामिनीके निराश होकर लौटनेके चरणचिह्न दीख रहे हैं, मालूम होता है उस धूर्तने [उसकी अन्य आन्तरिक अभिलाषाओंको पूर्ण किये बिना ही] केवल कर-स्पर्श करके उसका अपमान किया है॥ ३९॥ यहाँ कृष्णने अवश्य उस गोपीसे

कहा है '[तू यहीं बैठ] मैं शीघ्र ही जाता हूँ [इस वनमें रहनेवाले राक्षसको मारकर] पुन: तेरे पास लौट आऊँगा। इसीलिये यहाँ उनके चरणोंके चिह्न शीघ्र गतिके-से दीख रहे हैं'॥ ४०॥ यहाँसे कृष्णचन्द्र गहन वनमें चले गये हैं, इसीसे उनके चरण-चिह्न दिखलायी नहीं देते; अब सब लौट चलो; इस स्थानपर चन्द्रमाकी किरणें नहीं पहुँच सकतीं॥ ४१॥

तदनन्तर वे गोपियाँ कृष्ण-दर्शनसे निराश होकर लौट आयीं और यमुनातटपर आकर उनके चरितोंको गाने लगीं॥ ४२॥ तब गोपियोंने प्रसन्नमुखारविन्द त्रिभुवनरक्षक लीलाविहारी श्रीकृष्णचन्द्रको वहाँ आते देखा॥ ४३॥ उस समय कोई गोपी तो श्रीगोविन्दको आते देखकर अति हर्षित हो केवल 'कृष्ण! कृष्ण!! कृष्ण!!!' इतना ही कहती रह गयी और कुछ न बोल सकी॥ ४४॥ कोई [प्रणयकोपवश] अपनी भ्रूभंगीसे ललाट सिकोड़कर श्रीहरिको देखते हुए अपने नेत्ररूप भ्रमरोंद्वारा उनके मुखकमलका मकरन्द पान करने लगी॥ ४५॥ कोई गोपी गोविन्दको देख नेत्र मूँदकर उन्हींके रूपका ध्यान करती हुई योगारूढ-सी भासित होने लगी॥ ४६॥

तब श्रीमाधव किसीसे प्रिय भाषण करके, किसीकी ओर भ्रूभंगीसे देखकर और किसीका हाथ पकड़कर उन्हें मनाने लगे॥ ४७॥ फिर उदारचरित श्रीहरिने उन प्रसन्नचित्त गोपियोंके साथ रासमण्डल बनाकर आदरपूर्वक रमण किया॥ ४८॥ किन्तु उस समय कोई भी गोपी कृष्णचन्द्रकी सन्निधिको न छोड़ना चाहती थी; इसलिये एक ही स्थानपर स्थिर रहनेके कारण रासोचित मण्डल न बन सका॥ ४९॥ तब उन गोपियोंमेंसे एक-एकका हाथ पकड़कर श्रीहरिने रासमण्डलकी रचना की। उस समय उनके करस्पर्शसे प्रत्येक गोपीकी आँखें आनन्दसे मुँद जाती थीं॥ ५०॥

तदनन्तर रासक्रीडा आरम्भ हुई। उसमें गोपियोंके चंचल कंकणोंकी झनकार होने लगी और फिर क्रमश: शरद्वर्णन-सम्बन्धी गीत होने लगे॥ ५१॥ उस समय कृष्णचन्द्र चन्द्रमा, चन्द्रिका और कुमुदवन-सम्बन्धी गान करने लगे; किन्तु गोपियोंने तो बारम्बार केवल कृष्णनामका ही गान किया॥ ५२॥ फिर एक गोपीने नृत्य करते-करते थककर चंचल कंकणकी झनकारसे युक्त अपनी बाहु-लता श्रीमधुसूदनके गलेमें डाल दी॥ ५३॥ किसी निपुण गोपीने भगवान्‌के गानकी प्रशंसा करनेके बहाने भुजा फैलाकर श्रीमधुसूदनको आलिंगन करके चूम लिया॥ ५४॥ श्रीहरिकी भुजाएँ गोपियोंके कपोलोंका चुम्बन पाकर उन (कपोलों)-में पुलकावलिरूप धान्यकी उत्पत्तिके लिये स्वेदरूप जलके मेघ बन गयीं॥ ५५॥

कृष्णचन्द्र जितने उच्चस्वरसे रासोचित गान गाते थे उससे दूने शब्दसे गोपियाँ "धन्य कृष्ण! धन्य कृष्ण!!" की ही ध्वनि लगा रही थीं॥ ५६॥ भगवान्‌के आगे जानेपर गोपियाँ उनके पीछे जातीं और लौटनेपर सामने चलतीं, इस प्रकार वे अनुलोम और प्रतिलोम-गतिसे श्रीहरिका साथ देती थीं॥ ५७॥ श्रीमधुसूदन भी गोपियोंके साथ इस प्रकार रासक्रीडा कर रहे थे कि उनके बिना एक क्षण भी गोपियोंको करोड़ों वर्षोंके समान बीतता था॥ ५८॥ वे रास-रसिक गोपांगनाएँ पति, माता-पिता और भ्राता आदिके रोकनेपर भी रात्रिमें श्रीश्यामसुन्दरके साथ विहार करती थीं॥ ५९॥ शत्रुहन्ता अमेयात्मा श्रीमधुसूदन भी अपनी किशोरावस्थाका मान करते हुए रात्रिके समय उनके साथ रमण करते थे॥ ६०॥ वे सर्वव्यापी ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्र गोपियोंमें, उनके पतियोंमें तथा समस्त प्राणियोंमें आत्मस्वरूपसे

वायुके समान व्याप्त थे॥ ६१॥ जिस प्रकार आकाश, अग्नि, पृथिवी, जल, वायु और आत्मा समस्त प्राणियोंमें व्याप्त हैं उसी प्रकार वे भी सब पदार्थोंमें व्यापक हैं॥ ६२॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पाँचवें अंशमें तेरहवाँ अध्याय समाप्त॥ १३॥

चौदहवाँ अध्याय

वृषभासुर-वध

श्रीपराशरजी बोले— एक दिन सायंकालके समय जब श्रीकृष्णचन्द्र रासक्रीडामें आसक्त थे, अरिष्ट नामक एक मदोन्मत्त असुर [वृषभरूप धारणकर] सबको भयभीत करता व्रजमें आया॥ १॥ इस अरिष्टासुरकी कान्ति सजल जलधरके समान कृष्णवर्ण थी, सींग अत्यन्त तीक्ष्ण थे, नेत्र सूर्यके समान तेजस्वी थे और अपने खुरोंकी चोटसे वह मानो पृथिवीको फाड़े डालता था॥ २॥ वह दाँत पीसता हुआ पुनः-पुनः अपनी जिह्वासे ओठोंको चाट रहा था, उसने क्रोधवश अपनी पूँछ उठा रखी थी तथा उसके स्कन्धबन्धन कठोर थे॥ ३॥ उसके ककुद (कुहान) और शरीरका प्रमाण अत्यन्त ऊँचा एवं दुर्लङ्घ्य था, पृष्ठभाग गोबर और मूत्रसे लिथड़ा हुआ था। तथा वह समस्त गौओंको भयभीत कर रहा था॥ ४॥ उसकी ग्रीवा अत्यन्त लम्बी और मुख वृक्षके खोंखलेके समान अति गम्भीर था। वह वृषभरूपधारी दैत्य गौओंके गर्भोंको गिराता हुआ और तपस्वियोंको मारता हुआ सदा वनमें विचरा करता था॥ ५-६॥

तब उस अति भयानक नेत्रोंवाले दैत्यको देखकर गोप और गोपांगनाएँ भयभीत होकर 'कृष्ण, कृष्ण' पुकारने लगीं॥ ७॥ उनका शब्द सुनकर श्रीकेशवने घोर सिंहनाद किया और ताली बजायी। उसे सुनते ही वह श्रीदामोदरकी ओर फिरा॥ ८॥ दुरात्मा वृषभासुर आगेको सींग करके तथा कृष्णचन्द्रकी कुक्षिमें दृष्टि लगाकर उनकी ओर दौड़ा॥ ९॥ किन्तु महाबली कृष्ण वृषभासुरको अपनी ओर आता देख अवहेलनासे लीलापूर्वक मुसकराते हुए उस स्थानसे विचलित न हुए॥ १०॥ निकट आनेपर श्रीमधुसूदनने उसे इस प्रकार पकड़ लिया जैसे ग्राह किसी क्षुद्र जीवको पकड़ लेता है; तथा सींग पकड़नेसे अचल हुए उस दैत्यकी कोखमें घुटनेसे प्रहार किया॥ ११॥

इस प्रकार सींग पकड़े हुए उस दैत्यका दर्प भंगकर भगवान्‌ने अरिष्टासुरकी ग्रीवाको गीले वस्त्रके समान मरोड़ दिया॥ १२॥ तदनन्तर उसका एक सींग उखाड़कर उसीसे उसपर आघात किया, जिससे वह महादैत्य मुखसे रक्त वमन करता हुआ मर गया॥ १३॥ जम्भके मरनेपर जैसे देवताओंने इन्द्रकी स्तुति की थी उसी प्रकार अरिष्टासुरके मरनेपर गोपगण श्रीजनार्दनकी प्रशंसा करने लगे॥ १४॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पाँचवें अंशमें चौदहवाँ अध्याय समाप्त॥ १४॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

कंसका श्रीकृष्णको बुलानेके लिये अक्रूरको भेजना

श्रीपराशरजी बोले—वृषभरूपधारी अरिष्टासुर, धेनुक और प्रलम्ब आदिका वध, गोवर्धन-पर्वतका धारण करना, कालियनागका दमन, दो विशाल वृक्षोंका उखाड़ना, पूतनावध तथा शकटका उलट देना आदि अनेक लीलाएँ हो जानेपर एक दिन नारदजीने कंसको, यशोदा और देवकीके गर्भ-परिवर्तनसे लेकर जैसा-जैसा हुआ था, वह सब वृत्तान्त क्रमशः सुना दिया॥ १—३॥

देवदर्शन नारदजीसे ये सब बातें सुनकर दुर्बुद्धि कंसने वसुदेवजीके प्रति अत्यन्त क्रोध प्रकट किया॥ ४॥ उसने अत्यन्त कोपसे वसुदेवजीको सम्पूर्ण यादवोंकी सभामें डाँटा तथा समस्त यादवोंकी भी निन्दा की और यह कार्य विचारने लगा—'ये अत्यन्त बालक राम और कृष्ण जबतक पूर्ण बल प्राप्त नहीं करते हैं तभीतक मुझे इन्हें मार देना चाहिये; क्योंकि युवावस्था प्राप्त होनेपर तो ये अजेय हो जायँगे॥ ५-६॥ मेरे यहाँ महावीर्यशाली चाणूर और महाबली मुष्टिक-जैसे मल्ल हैं। मैं इनके साथ मल्लयुद्ध कराकर उन दोनों दुर्बुद्धियोंको मरवा डालूँगा॥ ७॥ उन्हें महान् धनुर्यज्ञके मिससे व्रजसे बुलाकर ऐसे-ऐसे उपाय करूँगा, जिससे वे नष्ट हो जायँ॥ ८॥ उन्हें लानेके लिये मैं श्वफल्कके पुत्र यादवश्रेष्ठ शूरवीर अक्रूरको गोकुल भेजूँगा॥ ९॥ साथ ही वृन्दावनमें विचरनेवाले घोर असुर केशीको भी आज्ञा दूँगा, जिससे वह महाबली दैत्य उन्हें वहीं नष्ट कर देगा॥ १०॥ अथवा [यदि किसी प्रकार बचकर] वे दोनों वसुदेवपुत्र गोप मेरे पास आ भी गये तो उन्हें मेरा कुवलयापीड हाथी मार डालेगा'॥ ११॥

श्रीपराशरजी बोले—ऐसा सोचकर उस दुष्टात्मा कंसने वीरवर राम और कृष्णको मारनेका निश्चय कर अक्रूरजीसे कहा॥ १२॥

कंस बोला—हे दानपते! मेरी प्रसन्नताके लिये आप मेरी एक बात स्वीकार कर लीजिये। यहाँसे रथपर चढ़कर आप नन्दके गोकुलको जाइये॥ १३॥ वहाँ वसुदेवके विष्णुअंशसे उत्पन्न दो पुत्र हैं। मेरे नाशके लिये उत्पन्न हुए वे दुष्ट बालक वहाँ पोषित हो रहे हैं॥ १४॥ मेरे यहाँ चतुर्दशीको धनुषयज्ञ होनेवाला है; अतः आप वहाँ जाकर उन्हें मल्लयुद्धके लिये ले आइये॥ १५॥ मेरे चाणूर और मुष्टिक नामक मल्ल युग्म-युद्धमें अति कुशल हैं, [उस धनुर्यज्ञके दिन] उन दोनोंके साथ मेरे इन पहलवानोंका द्वन्द्वयुद्ध यहाँ सब लोग देखें॥ १६॥ अथवा महावतसे प्रेरित हुआ कुवलयापीड नामक गजराज उन दोनों दुष्ट वसुदेव-पुत्र बालकोंको नष्ट कर देगा॥ १७॥ इस प्रकार उन्हें मारकर मैं दुर्मति वसुदेव, नन्दगोप और इस अपने मन्दमति पिता उग्रसेनको भी मार डालूँगा॥ १८॥ तदनन्तर, मेरे वधकी इच्छावाले इन समस्त दुष्ट गोपोंके सम्पूर्ण गोधन तथा धनको मैं छीन लूँगा॥ १९॥ हे दानपते! आपके अतिरिक्त ये सभी यादवगण मुझसे द्वेष करते हैं, अतः मैं क्रमशः इन सभीको नष्ट करनेका प्रयत्न करूँगा॥ २०॥ फिर मैं आपके साथ मिलकर इस यादवहीन राज्यको निर्विघ्नतापूर्वक भोगूँगा, अतः हे वीर! मेरी प्रसन्नताके लिये आप शीघ्र ही जाइये॥ २१॥ आप गोकुलमें पहुँचकर गोपगणोंसे इस प्रकार कहें जिससे वे माहिष्य (भैंसके) घृत और दधि आदि उपहारोंके सहित शीघ्र ही यहाँ आ जायँ॥ २२॥

श्रीपराशरजी बोले—हे द्विज! कंससे ऐसी आज्ञा पा महाभागवत अक्रूरजी 'कल मैं शीघ्र ही

श्रीकृष्णचन्द्रको देखूँगा'—यह सोचकर अति प्रसन्न हुए॥ २३॥ माधव-प्रिय अक्रूरजी राजा कंससे 'जो आज्ञा' कह एक अति सुन्दर रथपर चढ़े और मथुरापुरीसे बाहर निकल आये॥ २४॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पाँचवें अंशमें पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त॥ १५॥

सोलहवाँ अध्याय

केशि-वध

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! इधर कंसके दूतद्वारा भेजा हुआ महाबली केशी भी कृष्णचन्द्रके वधकी इच्छासे [घोड़ेका रूप धारण कर] वृन्दावनमें आया॥ १॥ वह अपने खुरोंसे पृथिवीतलको खोदता, ग्रीवाके बालोंसे बादलोंको छिन्न-भिन्न करता तथा वेगसे चन्द्रमा और सूर्यके मार्गको भी पार करता गोपोंकी ओर दौड़ा॥ २॥ उस अश्वरूप दैत्यके हिनहिनानेके शब्दसे भयभीत होकर समस्त गोप और गोपियाँ श्रीगोविन्दकी शरणमें आये॥ ३॥ तब उनके त्राहि-त्राहि शब्दको सुनकर भगवान् कृष्णचन्द्र सजल मेघकी गर्जनाके समान गम्भीर वाणीसे बोले—॥ ४॥ "हे गोपालगण! आपलोग केशी (केशधारी अश्व)-से न डरें, आप तो गोप-जातिके हैं, फिर इस प्रकार भयभीत होकर आप अपने वीरोचित पुरुषार्थका लोप क्यों करते हैं?॥ ५॥ यह अल्पवीर्य, हिनहिनानेसे आतंक फैलानेवाला और नाचनेवाला दुष्ट अश्व जिसपर राक्षसगण बलपूर्वक चढ़ा करते हैं, आपलोगोंका क्या बिगाड़ सकता है?"॥ ६॥

[इस प्रकार गोपोंको धैर्य बँधाकर वे केशीसे कहने लगे—] "अरे दुष्ट! इधर आ, पिनाकधारी वीरभद्रने जिस प्रकार पूषाके दाँत उखाड़े थे, उसी प्रकार मैं कृष्ण तेरे मुखसे सारे दाँत गिरा दूँगा"॥ ७॥ ऐसा कहकर श्रीगोविन्द उछलकर केशीके सामने आये और वह अश्वरूपधारी दैत्य भी मुँह खोलकर उनकी ओर दौड़ा॥ ८॥ तब जनार्दनने अपनी बाँह फैलाकर उस अश्वरूपधारी दुष्ट दैत्यके मुखमें डाल दी॥ ९॥ केशीके मुखमें घुसी हुई भगवान् कृष्णकी बाहुसे टकराकर उसके समस्त दाँत शुभ्र मेघखण्डोंके समान टूटकर बाहर गिर पड़े॥ १०॥

हे द्विज! उत्पत्तिके समयसे ही उपेक्षा की गयी व्याधि जिस प्रकार नाश करनेके लिये बढ़ने लगती है, उसी प्रकार केशीके देहमें प्रविष्ट हुई कृष्णचन्द्रकी भुजा बढ़ने लगी॥ ११॥ अन्तमें ओठोंके फट जानेसे वह फेनसहित रुधिर वमन करने लगा और उसकी आँखें स्नायुबन्धनके ढीले हो जानेसे फूट गयीं॥ १२॥ तब वह मल-मूत्र छोड़ता हुआ पृथिवीपर पैर पटकने लगा, उसका शरीर पसीनेसे भरकर ठण्डा पड़ गया और वह निश्चेष्ट हो गया॥ १३॥ इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रकी भुजासे जिसके मुखका विशाल रन्ध्र फैलाया गया है वह महान् असुर मरकर वज्रपातसे गिरे हुए वृक्षके समान दो खण्ड होकर पृथिवीपर गिर पड़ा॥ १४॥ केशीके शरीरके वे दोनों खण्ड दो पाँव, आधी पीठ, आधी मूँछ तथा एक-एक कान-आँख और नासिकारन्ध्रके सहित सुशोभित हुए॥ १५॥

इस प्रकार केशीको मारकर प्रसन्नचित्त ग्वालबालोंसे घिरे हुए श्रीकृष्णचन्द्र बिना श्रमके स्वस्थचित्तसे हँसते हुए वहीं खड़े रहे॥ १६॥

केशीके मारे जानेसे विस्मित हुए गोप और गोपियोंने अनुरागवश अत्यन्त मनोहर लगनेवाले कमलनयन श्रीश्यामसुन्दरकी स्तुति की॥ १७॥

हे विप्र! उसे मरा देख मेघपटलमें छिपे हुए श्रीनारदजी हर्षितचित्तसे कहने लगे— ॥ १८॥ "हे जगन्नाथ! हे अच्युत!! आप धन्य हैं, धन्य हैं। अहा! आपने देवताओंको दुःख देनेवाले इस केशीको लीलासे ही मार डाला॥ १९॥ मैं मनुष्य और अश्वके इस पहले और कहीं न होनेवाले युद्धको देखनेके लिये ही अत्यन्त उत्कण्ठित होकर स्वर्गसे यहाँ आया था॥ २०॥ हे मधुसूदन! आपने अपने इस अवतारमें जो-जो कर्म किये हैं उनसे मेरा चित्त अत्यन्त विस्मित और सन्तुष्ट हो रहा है॥ २१॥ हे कृष्ण! जिस समय यह अश्व अपनी सटाओंको हिलाता और हींसता हुआ आकाशकी ओर देखता था तो इससे सम्पूर्ण देवगण और इन्द्र भी डर जाते थे॥ २२॥ हे जनार्दन! आपने इस दुष्टात्मा केशीको मारा है; इसलिये आप लोकमें 'केशव' नामसे विख्यात होंगे॥ २३॥ हे केशिनिषूदन! आपका कल्याण हो, अब मैं जाता हूँ। परसों कंसके साथ आपका युद्ध होनेके समय मैं फिर आऊँगा॥ २४॥ हे पृथिवीधर! अनुगामियोंसहित उग्रसेनके पुत्र कंसके मारे जानेपर आप पृथिवीका भार उतार देंगे॥ २५॥ हे जनार्दन! उस समय मैं अनेक राजाओंके साथ आप आयुष्मान् पुरुषके किये हुए अनेक प्रकारके युद्ध देखूँगा॥ २६॥ हे गोविन्द! अब मैं जाना चाहता हूँ। आपने देवताओंका बहुत बड़ा कार्य किया है। आप सभी कुछ जानते हैं [मैं अधिक क्या कहूँ?] आपका मंगल हो, मैं जाता हूँ"॥ २७॥

तदनन्तर नारदजीके चले जानेपर गोपगणसे सम्मानित गोपियोंके नेत्रोंके एकमात्र दृश्य श्रीकृष्णचन्द्रने ग्वालबालोंके साथ गोकुलमें प्रवेश किया॥ २८॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पाँचवें अंशमें सोलहवाँ अध्याय समाप्त॥ १६॥

सत्रहवाँ अध्याय

अक्रूरजीकी गोकुलयात्रा

श्रीपराशरजी बोले—अक्रूरजी भी तुरंत ही मथुरापुरीसे निकलकर श्रीकृष्ण-दर्शनकी लालसासे एक शीघ्रगामी रथद्वारा नन्दजीके गोकुलको चले॥ १॥ अक्रूरजी सोचने लगे 'आज मुझ-जैसा बड़भागी और कोई नहीं है; क्योंकि अपने अंशसे अवतीर्ण चक्रधारी श्रीविष्णुभगवान्‌का मुख मैं अपने नेत्रोंसे देखूँगा॥ २॥ आज मेरा जन्म सफल हो गया; आजकी रात्रि [अवश्य] सुन्दर प्रभातवाली थी, जिससे कि मैं आज खिले हुए कमलके समान नेत्रवाले श्रीविष्णुभगवान्‌के मुखका दर्शन करूँगा॥ ३॥ प्रभुका जो संकल्पमय मुखारविन्द स्मरणमात्रसे पुरुषोंके पापोंको दूर कर देता है, आज मैं विष्णुभगवान्‌के उसी कमलनयन मुखको देखूँगा॥ ४॥ जिससे सम्पूर्ण वेद और वेदांगोंकी उत्पत्ति हुई है, आज मैं सम्पूर्ण तेजस्वियोंके परम आश्रय उसी भगवत्-मुखारविन्दका दर्शन करूँगा॥ ५॥ समस्त पुरुषोंके द्वारा यज्ञोंमें जिन अखिल विश्वके आधारभूत पुरुषोत्तमका यज्ञपुरुषरूपसे यजन (पूजन) किया जाता है, आज मैं उन्हीं जगत्पतिका दर्शन करूँगा॥ ६॥ जिनका सौ यज्ञोंसे यजन करके इन्द्रने देवराज-पदवी प्राप्त की है, आज मैं उन्हीं अनादि और अनन्त केशवका दर्शन करूँगा॥ ७॥

जिनके स्वरूपको ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, अश्विनीकुमार, वसुगण, आदित्य और मरुद्गण आदि कोई भी नहीं जानते आज वे ही हरि मेरे नेत्रोंके विषय होंगे॥ ८॥ जो सर्वात्मा, सर्वज्ञ, सर्वस्वरूप और सब भूतोंमें अवस्थित हैं तथा जो अचिन्त्य, अव्यय और सर्वव्यापक हैं, अहो! आज स्वयं वे ही मेरे साथ बातें करेंगे॥ ९॥ जिन अजन्माने मत्स्य, कूर्म, वराह, हयग्रीव और नृसिंह आदि रूप धारणकर जगत्की रक्षा की है, आज वे ही मुझसे वार्तालाप करेंगे॥ १०॥

'इस समय उन अव्ययात्मा जगत्प्रभुने अपने मनमें सोचा हुआ कार्य करनेके लिये अपनी ही इच्छासे मनुष्य-देह धारण किया है॥ ११॥ जो अनन्त (शेषजी) अपने मस्तकपर रखी हुई पृथिवीको धारण करते हैं, संसारके हितके लिये अवतीर्ण हुए वे ही आज मुझसे 'अक्रूर' कहकर बोलेंगे॥ १२॥

'जिनकी इस पिता, पुत्र, सुहृद्, भ्राता, माता और बन्धुरूपिणी मायाको पार करनेमें संसार सर्वथा असमर्थ है, उन मायापतिको बारम्बार नमस्कार है॥ १३॥ जिनमें हृदयको लगा देनेसे पुरुष इस योगमायारूप विस्तृत अविद्याको पार कर जाता है, उन विद्यास्वरूप श्रीहरिको नमस्कार है॥ १४॥ जिन्हें याज्ञिकलोग 'यज्ञपुरुष', सात्वत (यादव अथवा भगवद्भक्त)-गण 'वासुदेव' और वेदान्तवेत्ता 'विष्णु' कहते हैं उन्हें बारम्बार नमस्कार है॥ १५॥ जिस (सत्य)-से यह सदसद्रूप जगत् उस जगदाधार विधातामें ही स्थित है उस सत्यबलसे ही वे प्रभु मुझपर प्रसन्न हों॥ १६॥ जिनके स्मरणमात्रसे पुरुष सर्वथा कल्याणपात्र हो जाता है, मैं सर्वदा उन अजन्मा हरिकी शरणमें प्राप्त होता हूँ'॥ १७॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! भक्तिविनम्रचित्त अक्रूरजी इस प्रकार श्रीविष्णुभगवान्का चिन्तन करते कुछ-कुछ सूर्य रहते ही गोकुलमें पहुँच गये॥ १८॥ वहाँ पहुँचनेपर पहले उन्होंने खिले हुए नीलकमलकी-सी कान्तिवाले श्रीकृष्णचन्द्रको गौओंके दोहनस्थानमें बछड़ोंके बीच विराजमान देखा॥ १९॥ जिनके नेत्र खिले हुए कमलके समान थे, वक्षःस्थलमें श्रीवत्स-चिह्न सुशोभित था, भुजाएँ लम्बी-लम्बी थीं, वक्षःस्थल विशाल और ऊँचा था तथा नासिका उन्नत थी॥ २०॥ जो सविलास हासयुक्त मनोहर मुखारविन्दसे सुशोभित थे तथा उन्नत और रक्तनखयुक्त चरणोंसे पृथिवीपर विराजमान थे॥ २१॥ जो दो पीताम्बर धारण किये थे, वन्यपुष्पोंसे विभूषित थे तथा जिनका श्वेत कमलके आभूषणोंसे युक्त श्याम शरीर सचन्द्र नीलाचलके समान सुशोभित था॥ २२॥

हे द्विज! श्रीव्रजचन्द्रके पीछे उन्होंने हंस, कुन्द और चन्द्रमाके समान गौरवर्ण नीलाम्बरधारी यदुनन्दन श्रीबलभद्रजीको देखा॥ २३॥ विशाल भुजदण्ड, उन्नत स्कन्ध और विकसित मुखारविन्द श्रीबलभद्रजी मेघमालासे घिरे हुए दूसरे कैलासपर्वतके समान जान पड़ते थे॥ २४॥

हे मुने! उन दोनों बालकोंको देखकर महामति अक्रूरजीका मुखकमल प्रफुल्लित हो गया तथा उनके सर्वांगमें पुलकावली छा गयी॥ २५॥ [और वे मन-ही-मन कहने लगे—] इन दो रूपोंमें जो यह भगवान् वासुदेवका अंश स्थित है वही परमधाम है और वही परमपद है॥ २६॥ इन जगद्विधाताके दर्शन पाकर आज मेरे नेत्रयुगल तो सफल हो गये; किंतु क्या अब भगवत्कृपासे इनका अंग-संग पाकर मेरा शरीर भी कृतकृत्य हो सकेगा?॥ २७॥ जिनकी अंगुलीके स्पर्शमात्रसे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हुए पुरुष निर्दोषसिद्धि (कैवल्यमोक्ष) प्राप्त

कर लेते हैं क्या वे अनन्तमूर्ति श्रीमान् हरि मेरी पीठपर अपना करकमल रखेंगे?॥ २८॥

जिन्होंने अग्नि, विद्युत् और सूर्यकी किरणमालाके समान अपने उग्र चक्रका प्रहार कर दैत्यपतिकी सेनाको नष्ट करते हुए असुर-सुन्दरियोंकी आँखोंके अंजन धो डाले थे॥ २९॥ जिनको एक जलबिन्दु प्रदान करनेसे राजा बलिने पृथिवीतलमें अति मनोज्ञ भोग और एक मन्वन्तरतक देवत्वलाभपूर्वक शत्रुविहीन इन्द्रपद प्राप्त किया था॥ ३०॥

वे ही विष्णुभगवान् मुझ निर्दोषको भी कंसके संसर्गसे दोषी ठहराकर क्या मेरी अवज्ञा कर देंगे? मेरे ऐसे साधुजनबहिष्कृत पुरुषके जन्मको धिक्कार है॥ ३१॥ अथवा संसारमें ऐसी कौन वस्तु है जो उन ज्ञानस्वरूप, शुद्धसत्त्वराशि, दोषहीन, नित्य-प्रकाश और समस्त भूतोंके हृदयस्थित प्रभुको विदित न हो?॥ ३२॥

अत: मैं उन ईश्वरोंके ईश्वर, आदि, मध्य और अन्तरहित पुरुषोत्तम भगवान् विष्णुके अंशावतार श्रीकृष्णचन्द्रके पास भक्ति-विनम्रचित्तसे जाता हूँ। [मुझे पूर्ण आशा है, वे मेरी कभी अवज्ञा न करेंगे]॥ ३३॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पाँचवें अंशमें सत्रहवाँ अध्याय समाप्त॥ १७॥

अठारहवाँ अध्याय

भगवान्‌का मथुराको प्रस्थान, गोपियोंकी विरह-कथा और अक्रूरजीका मोह

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! यदुवंशी अक्रूरजीने इस प्रकार चिन्तन करते श्रीगोविन्दके पास पहुँचकर उनके चरणोंमें सिर झुकाते हुए 'मैं अक्रूर हूँ' ऐसा कहकर प्रणाम किया॥ १॥ भगवान्‌ने भी अपने ध्वजा-वज्र-पद्मांकित करकमलोंसे उन्हें स्पर्शकर और प्रीतिपूर्वक अपनी ओर खींचकर गाढ़ आलिंगन किया॥ २॥ तदनन्तर अक्रूरजीके यथायोग्य प्रणामादि कर चुकनेपर श्रीबलरामजी और कृष्णचन्द्र अति आनन्दित हो उन्हें साथ लेकर अपने घर आये॥ ३॥ फिर उनके द्वारा सत्कृत होकर यथायोग्य भोजनादि कर चुकनेपर अक्रूरने उनसे वह सम्पूर्ण वृत्तान्त कहना आरम्भ किया, जैसे कि दुरात्मा दानव कंसने आनकदुन्दुभि वसुदेव और देवी देवकीको डाँटा था तथा जिस प्रकार वह दुरात्मा अपने पिता उग्रसेनसे दुर्व्यवहार कर रहा है और जिस लिये उसने उन्हें (अक्रूरजीको) वृन्दावन भेजा है॥ ४—६॥

भगवान् देवकीनन्दनने यह सम्पूर्ण वृत्तान्त विस्तारपूर्वक सुनकर कहा—"हे दानपते! ये सब बातें मुझे मालूम हो गयीं॥ ७॥ हे महाभाग! इस विषयमें मुझे जो उपयुक्त जान पड़ेगा वही करूँगा। अब तुम कंसको मेरेद्वारा मरा हुआ ही समझो, इसमें किसी और तरहका विचार न करो॥ ८॥ भैया बलराम और मैं दोनों ही कल तुम्हारे साथ मथुरा चलेंगे, हमारे साथ ही दूसरे बड़े-बूढ़े गोप भी बहुत-सा उपहार लेकर जायँगे॥ ९॥ हे वीर! आप यह रात्रि सुखपूर्वक बिताइये, किसी प्रकारकी चिन्ता न कीजिये। तीन रात्रिके भीतर मैं कंसको उसके अनुचरोंसहित अवश्य मार डालूँगा"॥ १०॥

श्रीपराशरजी बोले—तदनन्तर अक्रूरजी, श्रीकृष्णचन्द्र और बलरामजी सम्पूर्ण गोपोंको कंसकी आज्ञा सुना नन्दगोपके घर सो गये॥ ११॥ दूसरे दिन निर्मल प्रभातकाल होते ही महातेजस्वी

राम और कृष्णको अक्रूरके साथ मथुरा चलनेकी तैयारी करते देख जिनकी भुजाओंके कंकण ढीले हो गये हैं वे गोपियाँ नेत्रोंमें आँसू भरकर तथा दुःखार्त्त होकर दीर्घ निश्श्वास छोड़ती हुई परस्पर कहने लगीं— ॥ १२-१३ ॥ "अब मथुरापुरी जाकर श्रीकृष्णचन्द्र फिर गोकुलमें क्यों आने लगे? क्योंकि वहाँ तो ये अपने कानोंसे नगरनारियोंके मधुर आलापरूप मधुका ही पान करेंगे ॥ १४ ॥

नगरकी [विदग्ध] वनिताओंके विलासयुक्त वचनोंके रसपानमें आसक्त होकर फिर इनका चित्त गँवारी गोपियोंकी ओर क्यों जाने लगा ? ॥ १५ ॥ आज निर्दयी दुरात्मा विधाताने समस्त व्रजके सारभूत (सर्वस्वस्वरूप) श्रीहरिको हरकर हम गोपनारियोंपर घोर आघात किया है ॥ १६ ॥ नगरकी नारियोंमें भावपूर्ण मुसकानमयी बोली, विलासललित गति और कटाक्षपूर्ण चितवनकी स्वभावसे ही अधिकता होती है। उनके विलास-बन्धनोंसे बँधकर यह ग्राम्य हरि फिर किस युक्तिसे तुम्हारे [हमारे] पास आवेगा ? ॥ १७-१८ ॥ देखो, देखो, क्रूर एवं निर्दयी अक्रूरके बहकावेमें आकर ये कृष्णचन्द्र रथपर चढ़े हुए मथुरा जा रहे हैं ॥ १९ ॥ यह नृशंस अक्रूर क्या अनुरागीजनोंके हृदयका भाव तनिक भी नहीं जानता? जो यह इस प्रकार हमारे नयनानन्दवर्धन नन्दनन्दनको अन्यत्र लिये जाता है ॥ २० ॥ देखो, यह अत्यन्त निष्ठुर गोविन्द रामके साथ रथपर चढ़कर जा रहे हैं; अरी ! इन्हें रोकनेमें शीघ्रता करो" ॥ २१ ॥

[इसपर गुरुजनोंके सामने ऐसा करनेमें असमर्थता प्रकट करनेवाली किसी गोपीको लक्ष्य करके उसने फिर कहा—] "अरी ! तू क्या कह रही है कि अपने गुरुजनोंके सामने हम ऐसा नहीं कर सकतीं ?" भला अब विरहाग्निसे भस्मीभूत हुई हमलोगोंका गुरुजन क्या करेंगे ? ॥ २२ ॥ देखो, यह नन्दगोप आदि गोपगण भी उन्हींके साथ जानेकी तैयारी कर रहे हैं। इनमेंसे भी कोई गोविन्दको लौटानेका प्रयत्न नहीं करता ॥ २३ ॥ आजकी रात्रि मथुरावासिनी स्त्रियोंके लिये सुन्दर प्रभातवाली हुई है; क्योंकि आज उनके नयन-भृंग श्रीअच्युतके मुखारविन्दका मकरन्द पान करेंगे ॥ २४ ॥ जो लोग इधरसे बिना रोक-टोक श्रीकृष्णचन्द्रका अनुगमन कर रहे हैं वे धन्य हैं; क्योंकि वे उनका दर्शन करते हुए अपने रोमांचयुक्त शरीरका वहन करेंगे ॥ २५ ॥ 'आज श्रीगोविन्दके अंग-प्रत्यंगोंको देखकर मथुरावासियोंके नेत्रोंको अत्यन्त महोत्सव होगा ॥ २६ ॥ आज न जाने उन भाग्यशालिनियोंने ऐसा कौन शुभ स्वप्न देखा है जो वे कान्तिमय विशाल नयनोंवाली (मथुरापुरीकी स्त्रियाँ) स्वच्छन्दतापूर्वक श्रीअधोक्षजको निहारेंगी ? ॥ २७ ॥ अहो ! निष्ठुर विधाताने गोपियोंको महानिधि दिखलाकर आज उनके नेत्र निकाल लिये ॥ २८ ॥ देखो ! हमारे प्रति श्रीहरिके अनुरागमें शिथिलता आ जानेसे हमारे हाथोंके कंकण भी तुरंत ही ढीले पड़ गये हैं ॥ २९ ॥

भला हम-जैसी दुःखिनी अबलाओंपर किसे दया न आवेगी ? परन्तु देखो, यह क्रूर-हृदय अक्रूर तो बड़ी शीघ्रतासे घोड़ोंको हाँक रहा है ! ॥ ३० ॥ देखो, यह कृष्णचन्द्रके रथकी धूलि दिखलायी दे रही है; किन्तु हा ! अब तो श्रीहरि इतनी दूर चले गये कि वह धूलि भी नहीं दीखती' ॥ ३१ ॥

श्रीपराशरजी बोले—इस प्रकार गोपियोंके अति अनुरागसहित देखते-देखते श्रीकृष्णचन्द्रने बलरामजीके सहित व्रजभूमिको त्याग दिया ॥ ३२ ॥ तब वे राम, कृष्ण और अक्रूर शीघ्रगामी घोड़ोंवाले रथसे चलते-चलते मध्याह्नके समय यमुनातटपर आ गये ॥ ३३ ॥ वहाँ पहुँचनेपर अक्रूरने

श्रीकृष्णचन्द्रसे कहा—"जबतक मैं यमुनाजलमें मध्याह्नकालीन उपासनासे निवृत्त होऊँ तबतक आप दोनों यहीं विराजें"॥ ३४॥

श्रीपराशरजी बोले—हे विप्र ! तब भगवान्‌के 'बहुत अच्छा' कहनेपर महामति अक्रूरजी यमुनाजलमें घुसकर स्नान और आचमन आदिके अनन्तर परब्रह्मका ध्यान करने लगे॥ ३५॥ उस समय उन्होंने देखा कि बलभद्रजी सहस्रफणावलिसे सुशोभित हैं, उनका शरीर कुन्दमालाओंके समान [शुभ्रवर्ण] है तथा नेत्र प्रफुल्ल कमलदलके समान विशाल हैं॥ ३६॥ वे वासुकि और रम्भ आदि महासर्पोंसे घिरकर उनसे प्रशंसित हो रहे हैं तथा अत्यन्त सुगन्धित वनमालाओंसे विभूषित हैं॥ ३७॥ वे दो श्याम वस्त्र धारण किये, सुन्दर कर्णभूषण पहने तथा मनोहर कुण्डली (गँडुली) मारे जलके भीतर विराजमान हैं॥ ३८॥

उनकी गोदमें उन्होंने आनन्दमय कमलभूषण श्रीकृष्णचन्द्रको देखा, जो मेघके समान श्यामवर्ण, कुछ लाल-लाल विशाल नयनोंवाले, चतुर्भुज, मनोहर अंगोपांगोंवाले तथा शंख-चक्रादि आयुधोंसे सुशोभित हैं; जो पीताम्बर पहने हुए हैं और विचित्र वनमालासे विभूषित हैं, तथा [उनके कारण] इन्द्रधनुष और विद्युन्मालामण्डित सजल मेघके समान जान पड़ते हैं तथा जिनके वक्षःस्थलमें श्रीवत्सचिह्न और कानोंमें देदीप्यमान मकराकृत कुण्डल विराजमान हैं॥ ३९—४१॥ [अक्रूरजीने यह भी देखा कि] सनकादि मुनिजन और निष्पाप सिद्ध तथा योगिजन उस जलमें ही स्थित होकर नासिकाग्र दृष्टिसे उन (श्रीकृष्णचन्द्र)-का ही चिन्तन कर रहे हैं॥ ४२॥

इस प्रकार वहाँ राम और कृष्णको पहचानकर अक्रूरजी बड़े ही विस्मित हुए और सोचने लगे कि ये यहाँ इतनी शीघ्रतासे रथसे कैसे आ गये?॥ ४३॥ जब उन्होंने कुछ कहना चाहा तो भगवान्‌ने उनकी वाणी रोक दी। तब वे जलसे निकलकर रथके पास आये और देखा कि वहाँ भी राम और कृष्ण दोनों ही मनुष्य-शरीरसे पूर्ववत् रथपर बैठे हुए हैं॥ ४४-४५॥ तदनन्तर, उन्होंने जलमें घुसकर उन्हें फिर गन्धर्व, सिद्ध, मुनि और नागादिकोंसे स्तुति किये जाते देखा॥ ४६॥ तब तो दानपति अक्रूरजी वास्तविक रहस्य जानकर उन सर्वविज्ञानमय अच्युत भगवान्‌की स्तुति करने लगे॥ ४७॥

अक्रूरजी बोले—जो सन्मात्रस्वरूप, अचिन्त्यमहिम, सर्वव्यापक तथा [कार्यरूपसे] अनेक और [कारणरूपसे] एक रूप हैं उन परमात्माको नमस्कार है, नमस्कार है॥ ४८॥ हे अचिन्तनीय प्रभो! आप सर्वरूप एवं हविःस्वरूप परमेश्वरको नमस्कार है। आप बुद्धिसे अतीत और प्रकृतिसे परे हैं, आपको बारम्बार नमस्कार है॥ ४९॥ आप भूतस्वरूप, इन्द्रियस्वरूप और प्रधानस्वरूप हैं तथा आप ही जीवात्मा और परमात्मा हैं। इस प्रकार आप अकेले ही पाँच प्रकारसे स्थित हैं॥ ५०॥ हे सर्व! हे सर्वात्मन्! हे क्षराक्षरमय ईश्वर! आप प्रसन्न होइये। एक आप ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि कल्पनाओंसे वर्णन किये जाते हैं॥ ५१॥ हे परमेश्वर! आपके स्वरूप, प्रयोजन और नाम आदि सभी अनिर्वचनीय हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ॥ ५२॥

हे नाथ! जहाँ नाम और जाति आदि कल्पनाओंका सर्वथा अभाव है आप वही नित्य अविकारी और अजन्मा परब्रह्म हैं॥ ५३॥ क्योंकि कल्पनाके बिना किसी भी पदार्थका ज्ञान नहीं होता इसीलिये आपका कृष्ण, अच्युत, अनन्त और विष्णु आदि नामोंसे स्तवन किया जाता है [वास्तवमें तो आपका किसी भी नामसे निर्देश नहीं किया

जा सकता] ॥ ५४ ॥ हे अज! जिन देवता आदि कल्पनामय पदार्थोंसे अनन्त विश्वकी उत्पत्ति हुई है, वे समस्त पदार्थ आप ही हैं तथा आप ही विकारहीन आत्मवस्तु हैं, अतः आप विश्वरूप हैं। हे प्रभो! इन सम्पूर्ण पदार्थोंमें आपसे भिन्न और कुछ भी नहीं है ॥ ५५ ॥ आप ही ब्रह्मा, महादेव, अर्यमा, विधाता, धाता, इन्द्र, वायु, अग्नि, वरुण, कुबेर और यम हैं। इस प्रकार एक आप ही भिन्न-भिन्न कार्यवाले अपनी शक्तियोंके भेदसे इस सम्पूर्ण जगत्की रक्षा कर रहे हैं ॥ ५६ ॥ हे विश्वेश! सूर्यकी किरणरूप होकर आप ही [वृष्टिद्वारा] विश्वकी रचना करते हैं, अतः यह गुणमय प्रपंच आपका ही रूप है। 'सत्' पद ['ॐ तत्, सत्' इस रूपसे] जिसका वाचक है वह 'ॐ' अक्षर आपका परम स्वरूप है, आपके उस ज्ञानात्मा सदसत्स्वरूपको नमस्कार है ॥ ५७ ॥ हे प्रभो! वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्धस्वरूप आपको बारम्बार नमस्कार है ॥ ५८ ॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पाँचवें अंशमें अठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १८ ॥

उन्नीसवाँ अध्याय

भगवान्का मथुरा-प्रवेश, रजक-वध तथा मालीपर कृपा

श्रीपराशरजी बोले—यदुकुलोत्पन्न अक्रूरजीने श्रीविष्णुभगवान्का जलके भीतर इस प्रकार स्तवनकर उन सर्वेश्वरका मनःकल्पित धूप, दीप और पुष्पादिसे पूजन किया ॥ १ ॥ उन्होंने अपने मनको अन्य विषयोंसे हटाकर उन्हींमें लगा दिया और चिरकालतक उन ब्रह्मभूतमें ही समाहितभावसे स्थित रहकर फिर समाधिसे विरत हो गये ॥ २ ॥ तदनन्तर महामति अक्रूरजी अपनेको कृतकृत्य-सा मानते हुए यमुनाजलसे निकलकर फिर रथके पास चले आये ॥ ३ ॥ वहाँ आकर उन्होंने आश्चर्ययुक्त नेत्रोंसे राम और कृष्णको पूर्ववत् रथमें बैठे देखा। उस समय श्रीकृष्णचन्द्रने अक्रूरजीसे कहा ॥ ४ ॥

श्रीकृष्णजी बोले—अक्रूरजी! आपने अवश्य ही यमुनाजलमें कोई आश्चर्यजनक बात देखी है, क्योंकि आपके नेत्र आश्चर्यचकित दीख पड़ते हैं ॥ ५ ॥

अक्रूरजी बोले—हे अच्युत! मैंने यमुनाजलमें जो आश्चर्य देखा है उसे मैं इस समय भी अपने सामने मूर्तिमान् देख रहा हूँ ॥ ६ ॥ हे कृष्ण! यह महान् आश्चर्यमय जगत् जिस महात्माका स्वरूप है उन्हीं परम आश्चर्यस्वरूप आपके साथ मेरा समागम हुआ है ॥ ७ ॥ हे मधुसूदन! अब उस आश्चर्यके विषयमें और अधिक कहनेसे लाभ ही क्या है? चलो, हमें शीघ्र ही मथुरा पहुँचना है; मुझे कंससे बहुत भय लगता है। दूसरेके दिये हुए अन्नसे जीनेवाले पुरुषोंके जीवनको धिक्कार है! ॥ ८ ॥

ऐसा कहकर अक्रूरजीने वायुके समान वेगवाले घोड़ोंको हाँका और सायंकालके समय मथुरापुरीमें पहुँच गये ॥ ९ ॥ मथुरापुरीको देखकर अक्रूरने राम और कृष्णसे कहा—"हे वीरवरो! अब मैं अकेला ही रथसे जाऊँगा, आप दोनों पैदल चले आवें ॥ १० ॥ मथुरामें पहुँचकर आप वसुदेवजीके घर न जायँ; क्योंकि आपके कारण ही उन वृद्ध वसुदेवजीका कंस सर्वदा निरादर करता रहता है" ॥ ११ ॥

श्रीपराशरजी बोले—ऐसा कह अक्रूरजी मथुरापुरीमें चले गये। उनके पीछे राम और कृष्ण

भी नगरमें प्रवेशकर राजमार्गपर आये॥ १२॥ वहाँके नर-नारियोंसे आनन्दपूर्वक देखे जाते हुए वे दोनों वीर मतवाले तरुण हाथियोंके समान लीलापूर्वक जा रहे थे॥ १३॥

मार्गमें उन्होंने एक वस्त्र रँगनेवाले रजकको घूमते देख उससे रंग-विरंगे सुन्दर वस्त्र माँगे॥ १४॥ वह रजक कंसका था और राजाके मुँहलगा होनेसे बड़ा घमण्डी हो गया था, अतः राम और कृष्णके वस्त्र माँगनेपर उसने विस्मित होकर उनसे बड़े जोरोंके साथ अनेक दुर्वाक्य कहे॥ १५॥ तब श्रीकृष्णचन्द्रने क्रुद्ध होकर अपने करतलके प्रहारसे उस दुष्ट रजकका सिर पृथिवीपर गिरा दिया॥ १६॥ इस प्रकार उसे मारकर राम और कृष्णने उसके वस्त्र छीन लिये तथा क्रमशः नील और पीत वस्त्र धारणकर वे प्रसन्नचित्तसे मालीके घर गये॥ १७॥

हे मैत्रेय! उन्हें देखते ही उस मालीके नेत्र आनन्दसे खिल गये और वह आश्चर्यचकित होकर सोचने लगा कि 'ये किसके पुत्र हैं और कहाँसे आये हैं?'॥ १८॥ पीले और नीले वस्त्र धारण किये उन अति मनोहर बालकोंको देखकर उसने समझा मानो दो देवगण ही पृथिवीतलपर पधारे हैं॥ १९॥ जब उन विकसितमुखकमल बालकोंने उससे पुष्प माँगे तो उसने अपने दोनों हाथ पृथिवीपर टेककर सिरसे भूमिको स्पर्श किया॥ २०॥ फिर उस मालीने कहा—"हे नाथ! आपलोग बड़े ही कृपालु हैं जो मेरे घर पधारे। मैं धन्य हूँ, क्योंकि आज मैं आपका पूजन कर सकूँगा"॥ २१॥ तदनन्तर उसने 'देखिये, ये बहुत सुन्दर हैं, ये बहुत सुन्दर हैं'—इस प्रकार प्रसन्नमुखसे लुभा-लुभाकर उन्हें इच्छानुसार पुष्प दिये॥ २२॥ उसने उन दोनों पुरुषश्रेष्ठोंको पुनः-पुनः प्रणामकर अति निर्मल और सुगन्धित मनोहर पुष्प दिये॥ २३॥

तब कृष्णचन्द्रने भी प्रसन्न होकर उस मालीको यह वर दिया कि "हे भद्र! मेरे आश्रित रहनेवाली लक्ष्मी तुझे कभी न छोड़ेगी॥ २४॥ हे सौम्य! तेरे बल और धनका ह्रास कभी न होगा और जबतक दिन (सूर्य)-की सत्ता रहेगी तबतक तेरी सन्तानका उच्छेद न होगा॥ २५॥ तू भी यावज्जीवन नाना प्रकारके भोग भोगता हुआ अन्तमें मेरी कृपासे मेरा स्मरण करनेके कारण दिव्य लोकको प्राप्त होगा॥ २६॥ हे भद्र! तेरा मन सर्वदा धर्मपरायण रहेगा तथा तेरे वंशमें जन्म लेनेवालोंकी आयु दीर्घ होगी॥ २७॥ हे महाभाग! जबतक सूर्य रहेगा तबतक तेरे वंशमें उत्पन्न हुआ कोई भी व्यक्ति उपसर्ग (आकस्मिक रोग) आदि दोषोंको प्राप्त न होगा"॥ २८॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! ऐसा कहकर श्रीकृष्णचन्द्र बलभद्रजीके सहित मालाकारसे पूजित हो उसके घरसे चल दिये॥ २९॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पाँचवें अंशमें उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त॥ १९॥

बीसवाँ अध्याय

कुब्जापर कृपा, धनुर्भंग, कुवलयापीड और चाणूरादि मल्लोंका नाश तथा कंस-वध

श्रीपराशरजी बोले—तदनन्तर श्रीकृष्णचन्द्रने राजमार्गमें एक नवयौवना कुब्जा स्त्रीको अनुलेपनका पात्र लिये आती देखा॥ १॥ तब श्रीकृष्णने उससे विलासपूर्वक कहा—"अयि कमललोचने! तू

सच-सच बता यह अनुलेपन किसके लिये ले जा रही है?" ॥ २ ॥ भगवान् कृष्णके कामुक पुरुषकी भाँति इस प्रकार पूछनेपर अनुरागिणी कुब्जाने उनके दर्शनसे हठात् आकृष्टचित्त हो अति ललितभावसे इस प्रकार कहा— ॥ ३ ॥ "हे कान्त! क्या आप मुझे नहीं जानते? मैं अनेकवक्रा नामसे विख्यात हूँ, राजा कंसने मुझे अनुलेपन-कार्यमें नियुक्त किया है ॥ ४ ॥ राजा कंसको मेरे अतिरिक्त और किसीका पीसा हुआ उबटन पसन्द नहीं है, अतः मैं उनकी अत्यन्त कृपापात्री हूँ" ॥ ५ ॥

श्रीकृष्णजी बोले—हे सुमुखि! यह सुन्दर सुगन्धमय अनुलेपन तो राजाके ही योग्य है, हमारे शरीरके योग्य भी कोई अनुलेपन हो तो दो ॥ ६ ॥

श्रीपराशरजी बोले—यह सुनकर कुब्जाने कहा— 'लीजिये' और फिर उन दोनोंको आदरपूर्वक उनके शरीरयोग्य चन्दनादि दिये ॥ ७ ॥ उस समय वे दोनों पुरुषश्रेष्ठ [कपोल आदि अंगोंमें] पत्ररचनाविधिसे यथावत् अनुलिप्त होकर इन्द्रधनुषयुक्त श्याम और श्वेत मेघके समान सुशोभित हुए ॥ ८ ॥ तत्पश्चात् उल्लापन (सीधे करनेकी)-विधिके जाननेवाले भगवान् कृष्णचन्द्रने उसकी ठोड़ीमें अपनी आगेकी दो अँगुलियाँ लगा उसे उचकाकर हिलाया तथा उसके पैर अपने पैरोंसे दबा लिये। इस प्रकार श्रीकेशवने उसे ऋजुकाय (सीधे शरीरवाली) कर दी। तब सीधी हो जानेपर वह सम्पूर्ण स्त्रियोंमें सुन्दरी हो गयी ॥ ९-१० ॥

तब वह श्रीगोविन्दका पल्ला पकड़कर अन्तर्गर्भित प्रेम-भारसे अलसायी हुई विलासललित वाणीमें बोली—'आप मेरे घर चलिये' ॥ ११ ॥ उसके ऐसा कहनेपर श्रीकृष्णचन्द्रने उस कुब्जासे, जो पहले अनेक अंगोंसे टेढ़ी थी, परंतु अब सुन्दरी हो गयी थी, बलरामजीके मुखकी ओर देखकर हँसते हुए कहा— ॥ १२ ॥ 'हाँ, तुम्हारे घर भी आऊँगा'—ऐसा कहकर श्रीहरिने उसे मुसकाते हुए विदा किया और बलभद्रजीके मुखकी ओर देखते हुए जोर-जोरसे हँसने लगे ॥ १३ ॥

तदनन्तर पत्र-रचनादि विधिसे अनुलिप्त तथा चित्र-विचित्र मालाओंसे सुशोभित राम और कृष्ण क्रमशः नीलाम्बर और पीताम्बर धारण किये हुए यज्ञशालातक आये ॥ १४ ॥ वहाँ पहुँचकर उन्होंने यज्ञरक्षकोंसे उस यज्ञके उद्देश्यस्वरूप धनुषके विषयमें पूछा और उनके बतलानेपर श्रीकृष्णचन्द्रने उसे सहसा उठाकर प्रत्यंचा (डोरी) चढ़ा दी ॥ १५ ॥ उसपर बलपूर्वक प्रत्यंचा चढ़ाते समय वह धनुष टूट गया, उस समय उसने ऐसा घोर शब्द किया कि उससे सम्पूर्ण मथुरापुरी गूँज उठी ॥ १६ ॥ तब धनुष टूट जानेपर उसके रक्षकोंने उनपर आक्रमण किया, उस रक्षक सेनाका संहार कर वे दोनों बालक धनुश्शालासे बाहर आये ॥ १७ ॥

तदनन्तर अक्रूरके आनेका समाचार पाकर तथा उस महान् धनुषको भग्न हुआ सुनकर कंसने चाणूर और मुष्टिकसे कहा ॥ १८ ॥

कंस बोला—यहाँ दोनों गोपालबालक आ गये हैं। वे मेरा प्राण-हरण करनेवाले हैं, अतः तुम दोनों मल्लयुद्धसे उन्हें मेरे सामने मार डालो। यदि तुमलोग मल्लयुद्धमें उन दोनोंका विनाश करके मुझे सन्तुष्ट कर दोगे तो मैं तुम्हारी समस्त इच्छाएँ पूर्ण कर दूँगा; मेरे इस कथनको तुम मिथ्या न समझना। तुम न्यायसे अथवा अन्यायसे मेरे इन महाबलवान् अपकारियोंको अवश्य मार डालो। उनके मारे जानेपर यह सारा राज्य [हमारा और] तुम दोनोंका सामान्य होगा ॥ १९—२१ ॥

मल्लोंको इस प्रकार आज्ञा दे कंसने अपने महावतको बुलाया और उसे आज्ञा दी कि तू कुवलयापीड हाथीको मल्लोंकी रंगभूमिके द्वारपर

खड़ा रख और जब वे गोपकुमार युद्धके लिये यहाँ आवें तो उन्हें इससे नष्ट करा दे॥ २२-२३॥ इस प्रकार उसे आज्ञा देकर और समस्त सिंहासनोंको यथावत् रखे देखकर, जिसकी मृत्यु पास आ गयी है वह कंस सूर्योदयकी प्रतीक्षा करने लगा॥ २४॥

प्रात:काल होनेपर समस्त मंचोंपर नागरिक लोग और राजमंचोंपर अपने अनुचरोंके सहित राजालोग बैठे॥ २५॥ तदनन्तर रंगभूमिके मध्यभागके समीप कंसने युद्धपरीक्षकोंको बैठाया और फिर स्वयं आप भी एक ऊँचे सिंहासनपर बैठा॥ २६॥ वहाँ अन्त:पुरकी स्त्रियोंके लिये पृथक् मचान बनाये गये थे तथा मुख्य-मुख्य वारांगनाओं और नगरकी महिलाओंके लिये भी अलग-अलग मंच थे॥ २७॥ कुछ अन्य मंचोंपर नन्दगोप आदि गोपगण बिठाये गये थे और उन मंचोंके पास ही अक्रूर और वसुदेवजी बैठे थे॥ २८॥ नगरकी नारियोंके बीचमें 'चलो, अन्तकालमें ही पुत्रका मुख तो देख लूँगी' ऐसा विचारकर पुत्रके लिये मंगलकामना करती हुई देवकीजी बैठी थीं॥ २९॥

तदनन्तर जिस समय तूर्य आदिके बजने तथा चाणूरके अत्यन्त उछलने और मुष्टिकके ताल ठोंकनेपर दर्शकगण हाहाकार कर रहे थे, गोपवेषधारी वीर बालक बलभद्र और कृष्ण कुछ हँसते हुए रंगभूमिके द्वारपर आये॥ ३०-३१॥ वहाँ आते ही महावतकी प्रेरणासे कुवलयापीड नामक हाथी उन दोनों गोपकुमारोंको मारनेके लिये बड़े वेगसे दौड़ा॥ ३२॥ हे द्विजश्रेष्ठ! उस समय रंगभूमिमें महान् हाहाकार मच गया तथा बलदेवजीने अपने अनुज कृष्णकी ओर देखकर कहा—"हे महाभाग! इस हाथीको शत्रुने ही प्रेरित किया है; अत: इसे मार डालना चाहिये"॥ ३३-३४॥

हे द्विज! ज्येष्ठ भ्राता बलरामजीके ऐसा कहनेपर शत्रुसूदन श्रीश्यामसुन्दरने बड़े जोरसे सिंहनाद किया॥ ३५॥ फिर केशिनिषूदन भगवान् श्रीकृष्णने बलमें ऐरावतके समान उस महाबली हाथीकी सूँड अपने हाथसे पकड़कर उसे घुमाया॥ ३६॥ भगवान् कृष्ण यद्यपि सम्पूर्ण जगत्के स्वामी हैं तथापि उन्होंने बहुत देरतक उस हाथीके दाँत और चरणोंके बीचमें खेलते-खेलते अपने दाएँ हाथसे उसका बायाँ दाँत उखाड़कर उससे महावतपर प्रहार किया। इससे उसके सिरके सैकड़ों टुकड़े हो गये॥ ३७-३८॥ उसी समय बलभद्रजीने भी क्रोधपूर्वक उसका दायाँ दाँत उखाड़कर उससे आस-पास खड़े हुए महावतोंको मार डाला॥ ३९॥ तदनन्तर महाबली रोहिणीनन्दनने रोषपूर्वक अति वेगसे उछलकर उस हाथीके मस्तकपर अपनी बायीं लात मारी॥ ४०॥ इस प्रकार वह हाथी बलभद्रजीद्वारा लीलापूर्वक मारा जाकर इन्द्र-वज्रसे आहत पर्वतके समान गिर पड़ा॥ ४१॥

तब महावतसे प्रेरित कुवलयापीडको मारकर उसके मद और रक्तसे लथपथ राम और कृष्ण उसके दाँतोंको लिये हुए गर्वयुक्त लीलामयी चितवनसे निहारते उस महान् रंगभूमिमें इस प्रकार आये जैसे मृगसमूहके बीचमें सिंह चला जाता है॥ ४२-४३॥ उस समय महान् रंगभूमिमें बड़ा कोलाहल होने लगा और सब लोगोंमें 'ये कृष्ण हैं, ये बलभद्र हैं' ऐसा विस्मय छा गया॥ ४४॥

[वे कहने लगे—] "जिसने बालघातिनी घोर राक्षसी पूतनाको मारा था, शकटको उलट दिया था और यमलार्जुनको उखाड़ डाला था वह यही है। जिस बालकने कालियनागके ऊपर चढ़कर उसका मान मर्दन किया था और सात रात्रितक महापर्वत गोवर्द्धनको अपने हाथपर धारण किया था वह यही है॥ ४५-४६॥ जिस महात्माने अरिष्टासुर, धेनुकासुर और केशी आदि

दुष्टोंको लीलासे ही मार डाला था; देखो, वह अच्युत यही हैं॥ ४७॥ ये इनके आगे इनके बड़े भाई महाबाहु बलभद्रजी हैं जो बड़े लीलापूर्वक चल रहे हैं। ये स्त्रियोंके मन और नयनोंको बड़ा ही आनन्द देनेवाले हैं? ॥ ४८ ॥ पुराणार्थवेत्ता विद्वान् लोग कहते हैं कि ये गोपालजी डूबे हुए यदुवंशका उद्धार करेंगे॥ ४९ ॥ ये सर्वलोकमय और सर्वकारण भगवान् विष्णुके ही अंश हैं, इन्होंने पृथिवीका भार उतारनेके लिये ही भूमिपर अवतार लिया है'' ॥ ५० ॥

राम और कृष्णके विषयमें पुरवासियोंके इस प्रकार कहते समय देवकीके स्तनोंसे स्नेहके कारण दूध बहने लगा और उनके हृदयमें बड़ा अनुताप हुआ॥ ५१ ॥ पुत्रोंका मुख देखनेसे अत्यन्त उल्लास-सा प्राप्त होनेके कारण वसुदेवजी भी मानो आयी हुई जराको छोड़कर फिरसे नवयुवक-से हो गये॥ ५२ ॥

राजाके अन्त:पुरकी स्त्रियाँ तथा नगर निवासिनी महिलाएँ भी उन्हें एकटक देखते-देखते उपराम न हुईं॥ ५३ ॥ [वे परस्पर कहने लगीं—] ''अरी सखियो! अरुणनयनसे युक्त श्रीकृष्णचन्द्रका अति सुन्दर मुख तो देखो, जो कुवलयापीडके साथ युद्ध करनेके परिश्रमसे स्वेद बिन्दुपूर्ण होकर हिम-कण-सिंचित शरत्कालीन प्रफुल्ल कमलको लज्जित कर रहा है। अरी! इसका दर्शन करके अपने नेत्रोंका होना सफल कर लो'' ॥ ५४-५५ ॥

[एक स्त्री बोली—] ''हे भामिनि! इस बालकका यह लक्ष्मी आदिका आश्रयभूत श्रीवत्सांकयुक्त वक्ष:स्थल तथा शत्रुओंको पराजित करनेवाली इसकी दोनों भुजाएँ तो देखो!'' ॥ ५६ ॥

[दूसरी०—] ''अरी! क्या तुम नीलाम्बर धारण किये इन दुग्ध, चन्द्र अथवा कमलनालके समान शुभ्रवर्ण बलदेवजीको आते हुए नहीं देखती हो?'' ॥ ५७ ॥

[तीसरी०—] ''अरी सखियो! [अखाड़ेमें] चक्कर देकर घूमनेवाले चाणूर और मुष्टिकके साथ क्रीडा करते हुए बलभद्र तथा कृष्णका हँसना देख लो।'' ॥ ५८ ॥

[चौथी०—] ''हाय! सखियो! देखो तो चाणूरसे लड़नेके लिये ये हरि आगे बढ़ रहे हैं; क्या इन्हें छुड़ानेवाले कोई भी बड़े-बूढ़े यहाँ नहीं हैं?'' ॥ ५९ ॥ 'कहाँ तो यौवनमें प्रवेश करनेवाले सुकुमार-शरीर श्याम और कहाँ वज्रके समान कठोर शरीरवाला यह महान् असुर!' ॥ ६० ॥ ये दोनों नवयुवक तो बड़े ही सुकुमार शरीरवाले हैं, [किंतु इनके प्रतिपक्षी] ये चाणूर आदि दैत्य मल्ल अत्यन्त दारुण हैं॥ ६१ ॥ मल्लयुद्धके परीक्षकगणोंका यह बहुत बड़ा अन्याय है जो वे मध्यस्थ होकर भी इन बालक और बलवान् मल्लोंके बीच युद्ध करा रहे हैं॥ ६२ ॥

श्रीपराशरजी बोले—नगरकी स्त्रियोंके इस प्रकार वार्तालाप करते समय भगवान् कृष्णचन्द्र अपनी कमर कसकर उन समस्त दर्शकोंके बीचमें पृथिवीको कम्पायमान करते हुए रंगभूमिमें कूद पड़े॥ ६३ ॥ श्रीबलभद्रजी भी अपने भुजदण्डोंको ठोंकते हुए अति मनोहरभावसे उछलने लगे। उस समय उनके पद-पदपर पृथिवी नहीं फटी, यही बड़ा आश्चर्य है॥ ६४ ॥

तदनन्तर अमित-विक्रम कृष्णचन्द्र चाणूरके साथ और द्वन्द्वयुद्धकुशल राक्षस मुष्टिक बलभद्रके साथ युद्ध करने लगे॥ ६५ ॥ कृष्णचन्द्र चाणूरके साथ परस्पर भिड़कर, नीचे गिराकर, उछालकर, घूँसे और वज्रके समान कोहनी मारकर, पैरोंसे ठोकर मारकर तथा एक-दूसरेके अंगोंको रगड़कर लड़ने लगे। उस समय उनमें महान् युद्ध होने लगा॥ ६६-६७ ॥

इस प्रकार उस समाजोत्सवके समीप केवल बल और प्राणशक्तिसे ही सम्पन्न होनेवाला उनका अति भयंकर और दारुण शस्त्रहीन युद्ध हुआ॥ ६८॥ चाणूर जैसे-जैसे भगवान्‌से भिड़ता गया वैसे-ही-वैसे उसकी प्राणशक्ति थोड़ी-थोड़ी करके अत्यन्त क्षीण होती गयी॥ ६९॥ जगन्मय भगवान् कृष्ण भी, श्रम और कोपके कारण अपने पुष्पमय शिरोभूषणोंमें लगे हुए केशरको हिलानेवाले उस चाणूरसे लीलापूर्वक लड़ने लगे॥ ७०॥ उस समय चाणूरके बलका क्षय और कृष्णचन्द्रके बलका उदय देख कंसने खीझकर तूर्य आदि बाजे बन्द करा दिये॥ ७१॥ रंगभूमिमें मृदंग और तूर्य आदिके बन्द हो जानेपर आकाशमें अनेक दिव्य तूर्य एक साथ बजने लगे॥ ७२॥ और देवगण अत्यन्त हर्षित होकर अलक्षितभावसे कहने लगे—"हे गोविन्द! आपकी जय हो। हे केशव ! आप शीघ्र ही इस चाणूर दानवको मार डालिये।"॥ ७३॥

भगवान् मधुसूदन बहुत देरतक चाणूरके साथ खेल करते रहे, फिर उसका वध करनेके लिये उद्यत होकर उसे उठाकर घुमाया॥ ७४॥ शत्रुविजयी श्रीकृष्णचन्द्रने उस दैत्य मल्लको सैकड़ों बार घुमाकर आकाशमें ही निर्जीव हो जानेपर पृथिवीपर पटक दिया॥ ७५॥ भगवान्‌के द्वारा पृथिवीपर गिराये जाते ही चाणूरके शरीरके सैकड़ों टुकड़े हो गये और उस समय उसने रक्तस्रावसे पृथिवीको अत्यन्त कीचड़मय कर दिया॥ ७६॥ इधर, जिस प्रकार भगवान् कृष्ण चाणूरसे लड़ रहे थे, उसी प्रकार महाबली बलभद्रजी भी उस समय दैत्य मल्ल मुष्टिकसे भिड़े हुए थे॥ ७७॥ बलरामजीने उसके मस्तकपर घूँसोंसे तथा वक्ष:स्थलमें जानुसे प्रहार किया और उस गतायु दैत्यको पृथिवीपर पटककर रौंद डाला॥ ७८॥

तदनन्तर श्रीकृष्णचन्द्रने महाबली मल्लराज तोशलको बायें हाथसे घूँसा मारकर पृथिवीपर गिरा दिया॥ ७९॥ मल्लश्रेष्ठ चाणूर और मुष्टिकके मारे जानेपर तथा मल्लराज तोशलके नष्ट होनेपर समस्त मल्लगण भाग गये॥ ८०॥ तब कृष्ण और संकर्षण अपने समवयस्क गोपोंको बलपूर्वक खींचकर [आलिंगन करते हुए] हर्षसे रंगभूमिमें उछलने लगे॥ ८१॥

तदनन्तर कंसने क्रोधसे नेत्र लाल करके वहाँ एकत्रित हुए पुरुषोंसे कहा—"अरे! इस समाजसे इन ग्वालबालोंको बलपूर्वक निकाल दो॥ ८२॥ पापी नन्दको लोहेकी शृंखलामें बाँधकर पकड़ लो तथा वृद्ध पुरुषोंके अयोग्य दण्ड देकर वसुदेवको भी मार डालो॥ ८३॥ मेरे सामने कृष्णके साथ ये जितने गोपबालक उछल रहे हैं इन सबको भी मार डालो तथा इनकी गौएँ और जो कुछ अन्य धन हो वह सब छीन लो"॥ ८४॥ जिस समय कंस इस प्रकार आज्ञा दे रहा था, उसी समय श्रीमधुसूदन हँसते-हँसते उछलकर मंचपर चढ़ गये और शीघ्रतासे उसे पकड़ लिया॥ ८५॥ भगवान् कृष्णने उसके केशोंको खींचकर उसे पृथिवीपर पटक दिया तथा उसके ऊपर आप भी कूद पड़े, इस समय उसका मुकुट सिरसे खिसककर अलग जा पड़ा॥ ८६॥ सम्पूर्ण जगत्‌के आधार भगवान् कृष्णके ऊपर गिरते ही उग्रसेनात्मज राजा कंसने अपने प्राण छोड़ दिये॥ ८७॥ तब महाबली कृष्णचन्द्रने मृतक कंसके केश पकड़कर उसके देहको रंगभूमिमें घसीटा॥ ८८॥ कंसका देह बहुत भारी था, इसलिये उसे घसीटनेसे जलके महान् वेगसे हुई दरारके समान पृथिवीपर परिघा बन गयी॥ ८९॥

श्रीकृष्णचन्द्रद्वारा कंसके पकड़ लिये जानेपर उसके भाई सुमालीने क्रोधपूर्वक आक्रमण किया। उसे बलरामजीने लीलासे ही मार डाला॥ ९०॥

इस प्रकार मथुरापति कंसको कृष्णचन्द्रद्वारा अवज्ञापूर्वक मरा हुआ देखकर रंगभूमिमें उपस्थित सम्पूर्ण जनता हाहाकार करने लगी॥ ९१॥ उसी समय महाबाहु कृष्णचन्द्र बलदेवजी-सहित वसुदेव और देवकीके चरण पकड़ लिये॥ ९२॥ तब वसुदेव और देवकीको पूर्वजन्ममें कहे हुए भगवद्वाक्योंका स्मरण हो आया और उन्होंने श्रीजनार्दनको पृथिवीपरसे उठा लिया तथा उनके सामने प्रणतभावसे खड़े हो गये॥ ९३॥

श्रीवसुदेवजी बोले—हे प्रभो! अब आप हमपर प्रसन्न होइये। हे केशव! आपने आर्त्त देवगणोंको जो वर दिया था, वह हम दोनोंपर अनुग्रह करके पूर्ण कर दिया॥ ९४॥ भगवन्! आपने जो मेरी आराधनासे दुष्टजनोंके नाशके लिये मेरे घरमें जन्म लिया, उससे हमारे कुलको पवित्र कर दिया है॥ ९५॥ आप सर्वभूतमय हैं और समस्त भूतोंके भीतर स्थित हैं। हे समस्तात्मन्! भूत और भविष्यत् आपहीसे प्रवृत्त होते हैं॥ ९६॥

हे अचिन्त्य! हे सर्वदेवमय! हे अच्युत! समस्त यज्ञोंसे आपहीका यजन किया जाता है तथा हे परमेश्वर! आप ही यज्ञ करनेवालोंके यष्टा और यज्ञस्वरूप हैं॥ ९७॥ हे जनार्दन! आप तो सम्पूर्ण जगत्के उत्पत्ति-स्थान हैं, आपके प्रति पुत्रवात्सल्यके कारण जो मेरा और देवकीका चित्त भ्रान्तियुक्त हो रहा है यह बड़ी ही हँसीकी बात है॥ ९८-९९॥ आप आदि और अन्तसे रहित हैं तथा समस्त प्राणियोंके उत्पत्तिकर्त्ता हैं, ऐसा कौन मनुष्य है जिसकी जिह्वा आपको 'पुत्र' कहकर सम्बोधन करेगी?॥ १००॥

हे जगन्नाथ! जिन आपसे यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है वही आप बिना मायाशक्तिके और किस प्रकार हमसे उत्पन्न हो सकते हैं॥ १०१॥ जिसमें सम्पूर्ण स्थावर-जंगम जगत् स्थित है वह प्रभु कुक्षि (कोख) और गोदमें शयन करनेवाला मनुष्य कैसे हो सकता है?॥ १०२॥

हे परमेश्वर! वही आप हमपर प्रसन्न होइये और अपने अंशावतारसे विश्वकी रक्षा कीजिये। आप मेरे पुत्र नहीं हैं। हे ईश! ब्रह्मासे लेकर वृक्षादिपर्यन्त यह सम्पूर्ण जगत् आपहीसे उत्पन्न हुआ है, फिर हे पुरुषोत्तम! आप हमें क्यों मोहित कर रहे हैं?॥ १०३॥ हे निर्भय! 'आप मेरे पुत्र हैं' इस मायासे मोहित होकर मैंने कंससे अत्यन्त भय माना था और उस शत्रुके भयसे ही मैं आपको गोकुल ले गया था। हे ईश! आप वहीं रहकर इतने बड़े हुए हैं, इसलिये अब आपमें मेरी ममता नहीं रही है॥ १०४॥ अबतक मैंने आपके ऐसे अनेक कर्म देखे हैं जो रुद्र, मरुद्गण, अश्विनीकुमार और इन्द्रके लिये भी साध्य नहीं हैं। अब मेरा मोह दूर हो गया है। हे ईश! [मैंने निश्चयपूर्वक जान लिया है कि] आप साक्षात् श्रीविष्णुभगवान् ही जगत्के उपकारके लिये प्रकट हुए हैं॥ १०५॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पाँचवें अंशमें बीसवाँ अध्याय समाप्त॥ २०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

उग्रसेनका राज्याभिषेक तथा भगवान्‌का विद्याध्ययन

श्रीपराशरजी बोले—अपने अति अद्‌भुत कर्मोंको देखनेसे वसुदेव और देवकीको विज्ञान उत्पन्न हुआ देखकर भगवान्‌ने यदुवंशियोंको मोहित करनेके लिये अपनी वैष्णवी मायाका विस्तार किया॥ १॥ और बोले—"हे मात:! हे पिताजी! बलरामजी और मैं बहुत दिनोंसे कंसके भयसे छिपे हुए आपके दर्शनोंके लिये उत्कण्ठित थे, सो आज आपका दर्शन हुआ है॥ २॥ जो समय माता-पिताकी सेवा किये बिना बीतता है वह असाधु पुरुषोंकी ही आयुका भाग व्यर्थ जाता है॥ ३॥ हे तात! गुरु, देव, ब्राह्मण और माता-पिताका पूजन करते रहनेसे देहधारियोंका जीवन सफल हो जाता है॥ ४॥ अत: हे तात! कंसके वीर्य और प्रतापसे भीत हम परवशोंसे जो कुछ अपराध हुआ हो वह क्षमा करें"॥ ५॥

श्रीपराशरजी बोले—राम और कृष्णने इस प्रकार कह माता-पिताको प्रणाम किया और फिर क्रमश: समस्त यदुवृद्धोंका यथायोग्य अभिवादन कर पुरवासियोंका सम्मान किया॥ ६॥ उस समय कंसकी पत्नियाँ और माताएँ पृथिवीपर पड़े हुए मृतक कंसको घेरकर दु:ख-शोकसे पूर्ण हो विलाप करने लगीं॥ ७॥ तब कृष्णचन्द्रने भी अत्यन्त पश्चात्तापसे विह्वल हो स्वयं आँखोंमें आँसू भरकर उन्हें अनेकों प्रकारसे ढाँढ़स बँधाया॥ ८॥

तदनन्तर श्रीमधुसूदनने उग्रसेनको बन्धनसे मुक्त किया और पुत्रके मारे जानेपर उन्हें अपने राज्यपदपर अभिषिक्त किया॥ ९॥ श्रीकृष्णचन्द्रद्वारा राज्याभिषिक्त होकर यदुश्रेष्ठ उग्रसेनने अपने पुत्र तथा और भी जो लोग वहाँ मारे गये थे, उन सबके और्ध्वदैहिक कर्म किये॥ १०॥ और्ध्वदैहिक कर्मोंसे निवृत्त होनेपर सिंहासनारूढ़ उग्रसेनसे श्रीहरि बोले—"हे विभो! हमारे योग्य जो सेवा हो उसके लिये हमें निश्शंक होकर आज्ञा दीजिये॥ ११॥ ययातिका शाप होनेसे यद्यपि हमारा वंश राज्यका अधिकारी नहीं है तथापि इस समय मुझ दासके रहते हुए राजाओंको तो क्या, आप देवताओंको भी आज्ञा दे सकते हैं"॥ १२॥

श्रीपराशरजी बोले—उग्रसेनसे इस प्रकार कह [धर्मसंस्थापनादि] कार्यसिद्धिके लिये मनुष्यरूप धारण करनेवाले भगवान् कृष्णने वायुका स्मरण किया और वह उसी समय वहाँ उपस्थित हो गया। तब भगवान्‌ने उससे कहा—॥ १३॥ "हे वायो! तुम जाओ और इन्द्रसे कहो कि हे वासव! व्यर्थ गर्व छोड़कर तुम उग्रसेनको अपनी सुधर्मा नामकी सभा दो॥ १४॥ कृष्णचन्द्रकी आज्ञा है कि यह सुधर्मा-सभा नामक सर्वोत्तम रत्न राजाके ही योग्य है इसमें यादवोंका विराजमान होना उपयुक्त है"॥ १५॥

श्रीपराशरजी बोले—भगवान्‌की ऐसी आज्ञा होनेपर वायुने यह सारा समाचार इन्द्रसे जाकर कह दिया और इन्द्रने भी तुरन्त ही अपनी सुधर्मा नामकी सभा वायुको दे दी॥ १६॥ वायुद्वारा लायी हुई उस सर्वरत्न-सम्पन्न दिव्य सभाका सम्पूर्ण भोग वे यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्णचन्द्रकी भुजाओंके आश्रित रहकर करने लगे॥ १७॥

तदनन्तर समस्त विज्ञानोंको जानते हुए और सर्वज्ञान-सम्पन्न होते हुए भी वीरवर कृष्ण और बलराम गुरु-शिष्य-सम्बन्धको प्रकाशित करनेके लिये उपनयन-संस्कारके अनन्तर विद्योपार्जनके लिये काशीमें उत्पन्न हुए अवन्तिपुरवासी सान्दीपनि मुनिके यहाँ गये॥ १८-१९॥ वीर संकर्षण और जनार्दन सान्दीपनिका शिष्यत्व स्वीकार कर

वेदाभ्यासपरायण हो यथायोग्य गुरुशुश्रूषादिमें प्रवृत्त रह सम्पूर्ण लोकोंको यथोचित शिष्टाचार प्रदर्शित करने लगे॥ २०॥ हे द्विज! यह बड़े आश्चर्यकी बात हुई कि उन्होंने केवल चौंसठ दिनमें रहस्य (अस्त्र-मन्त्रोपनिषद्) और संग्रह (अस्त्रप्रयोग)-के सहित सम्पूर्ण धनुर्वेद सीख लिया॥ २१॥ सान्दीपनिने जब उनके इस असम्भव और अतिमानुष-कर्मको देखा तो यही समझा कि साक्षात् सूर्य और चन्द्रमा ही मेरे घर आ गये हैं॥ २२॥ उन दोनोंने अंगोंसहित चारों वेद, सम्पूर्ण शास्त्र और सब प्रकारकी अस्त्रविद्या एक बार सुनते ही प्राप्त कर ली और फिर गुरुजीसे कहा—"कहिये, आपको क्या गुरुदक्षिणा दें?"॥ २३-२४॥ महामति सान्दीपनिने उनके अतीन्द्रिय-कर्म देखकर प्रभासक्षेत्रके खारे समुद्रमें डूबकर मरे हुए अपने पुत्रको माँगा॥ २५॥ तदनन्तर जब वे शस्त्र ग्रहणकर समुद्रके पास पहुँचे तो समुद्र अर्घ्य लेकर उनके सम्मुख उपस्थित हुआ और कहा—"मैंने सान्दीपनिका पुत्र हरण नहीं किया॥ २६॥ हे दैत्यदवन! मेरे जलमें ही पंचजन नामक एक दैत्य शंखरूपसे रहता है; उसीने उस बालकको पकड़ लिया था"॥ २७॥

श्रीपराशरजी बोले—समुद्रके इस प्रकार कहनेपर कृष्णचन्द्रने जलके भीतर जाकर पंचजनका वध किया और उसकी अस्थियोंसे उत्पन्न हुए शंखको ले लिया॥ २८॥ जिसके शब्दसे दैत्योंका बल नष्ट हो जाता है, देवताओंका तेज बढ़ता है और अधर्मका क्षय होता है॥ २९॥ तदनन्तर उस पांचजन्य शंखको बजाते हुए श्रीकृष्णचन्द्र और बलवान् बलराम यमपुरको गये और सूर्यपुत्र यमको जीतकर यमयातना भोगते हुए उस बालकको पूर्ववत् शरीरयुक्त कर उसके पिताको दे दिया॥ ३०-३१॥

इसके पश्चात् वे राम और कृष्ण राजा उग्रसेनद्वारा परिपालित मथुरापुरीमें, जहाँके स्त्री-पुरुष [उनके आगमनसे] आनन्दित हो रहे थे, पधारे॥ ३२॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पाँचवें अंशमें इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त॥ २१॥

बाईसवाँ अध्याय

जरासन्धकी पराजय

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! महाबली कंसने जरासन्धकी पुत्री अस्ति और प्राप्तिसे विवाह किया था, अतः वह अत्यन्त बलिष्ठ मगधराज क्रोधपूर्वक एक बहुत बड़ी सेना लेकर अपनी पुत्रियोंके स्वामी कंसको मारनेवाले श्रीहरिको यादवोंके सहित मारनेकी इच्छासे मथुरापर चढ़ आया॥ १-२॥ मगधेश्वर जरासन्धने तेईस अक्षौहिणी सेनाके सहित आकर मथुराको चारों ओरसे घेर लिया॥ ३॥

तब महाबली राम और जनार्दन थोड़ी-सी सेनाके साथ नगरसे निकलकर जरासन्धके प्रबल सैनिकोंसे युद्ध करने लगे॥ ४॥ हे मुनिश्रेष्ठ! उस समय राम और कृष्णने अपने पुरातन शस्त्रोंको ग्रहण करनेका विचार किया॥ ५॥ हे विप्र! हरिके स्मरण करते ही उनका शार्ङ्गधनुष, अक्षय बाणयुक्त दो तरकश और कौमोदकी नामकी गदा आकाशसे आकर उपस्थित हो गये॥ ६॥ हे द्विज! बलभद्रजीके पास भी उनका मनोवांछित महान् हल और सुनन्द नामक मूसल आकाशसे आ गये॥ ७॥

तदनन्तर दोनों वीर राम और कृष्ण सेनाके सहित मगधराजको युद्धमें हराकर मथुरापुरीमें चले आये॥ ८॥ हे महामुने! दुराचारी जरासन्धको जीत लेनेपर भी उसके जीवित चले जानेके कारण कृष्णचन्द्रने अपनेको अपराजित नहीं समझा॥ ९॥

हे द्विजोत्तम! जरासन्ध फिर उतनी ही सेना लेकर आया, किन्तु राम और कृष्णसे पराजित होकर भाग गया॥ १०॥ इस प्रकार अत्यन्त दुर्धर्ष मगधराज जरासन्धने राम और कृष्ण आदि यादवोंसे अट्ठारह बार युद्ध किया॥ ११॥ इन सभी युद्धोंमें अधिक सैन्यशाली जरासन्ध थोड़ी-सी सेनावाले यदुवंशियोंसे हारकर भाग गया॥ १२॥ यादवोंकी थोड़ी-सी सेना भी जो [उसकी अनेक बड़ी सेनाओंसे] पराजित न हुई, यह सब भगवान् विष्णुके अंशावतार श्रीकृष्णचन्द्रकी सन्निधिका ही माहात्म्य था॥ १३॥ उन मानवधर्मशील जगत्पतिकी यह लीला ही है जो कि ये अपने शत्रुओंपर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र छोड़ रहे हैं॥ १४॥ जो केवल संकल्पमात्रसे ही संसारकी उत्पत्ति और संहार कर देते हैं, उन्हें अपने शत्रुपक्षका नाश करनेके लिये भला उद्योग फैलानेकी कितनी आवश्यकता है?॥ १५॥ तथापि वे बलवानोंसे सन्धि और बलहीनोंसे युद्ध करके मानव-धर्मोंका अनुवर्तन कर रहे थे॥ १६॥ वे कहीं साम, कहीं दान और कहीं भेदनीतिका व्यवहार करते थे तथा कहीं दण्ड देते और कहींसे स्वयं भाग भी जाते थे॥ १७॥ इस प्रकार मानवदेहधारियोंकी चेष्टाओंका अनुवर्तन करते हुए श्रीजगत्पतिकी अपनी इच्छानुसार लीलाएँ होती रहती थीं॥ १८॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पाँचवें अंशमें बाईसवाँ अध्याय समाप्त॥ २२॥

तेईसवाँ अध्याय

द्वारका-दुर्गकी रचना, कालयवनका भस्म होना तथा मुचुकुन्दकृत भगवत्स्तुति

श्रीपराशरजी बोले—हे द्विज! एक बार महर्षि गार्ग्यसे उनके सालेने यादवोंकी गोष्ठीमें नपुंसक कह दिया। उस समय समस्त यदुवंशी हँस पड़े॥ १॥ तब गार्ग्यने अत्यन्त कुपित हो दक्षिण-समुद्रके तटपर जा यादवसेनाको भयभीत करनेवाले पुत्रकी प्राप्तिके लिये तपस्या की॥ २॥ उन्होंने श्रीमहादेवजीकी उपासना करते हुए केवल लोहचूर्ण भक्षण किया तब भगवान् शंकरने बारहवें वर्षमें प्रसन्न होकर उन्हें अभीष्ट वर दिया॥ ३॥

एक पुत्रहीन यवनराजने महर्षि गार्ग्यकी अत्यन्त सेवाकर उन्हें सन्तुष्ट किया, उसकी स्त्रीके संगसे ही इनके एक भौंरेके समान कृष्णवर्ण बालक हुआ॥ ४॥

वह यवनराज उस कालयवन नामक बालकको, जिसका वक्षःस्थल वज्रके समान कठोर था, अपने राज्यपदपर अभिषिक्त कर स्वयं वनको चला गया॥ ५॥

तदनन्तर वीर्यमदोन्मत्त कालयवनने नारदजीसे पूछा कि पृथिवीपर बलवान् राजा कौन-कौनसे हैं? इसपर नारदजीने उसे यादवोंको ही सबसे अधिक बलशाली बतलाया॥ ६॥ यह सुनकर कालयवनने हजारों हाथी, घोड़े और रथोंके सहित सहस्रों करोड़ म्लेच्छसेनाको साथ ले बड़ी भारी तैयारी की॥ ७॥ और यादवोंके प्रति क्रुद्ध होकर वह प्रतिदिन [हाथी, घोड़े आदिके थक जानेपर] उन वाहनोंका त्याग करता हुआ [अन्य

वाहनोंपर चढ़कर] अविच्छिन्न-गतिसे मथुरापुरीपर चढ़ आया॥ ८॥

[एक ओर जरासन्धका आक्रमण और दूसरी ओर कालयवनकी चढ़ाई देखकर] श्रीकृष्णचन्द्रने सोचा—''यवनोंके साथ युद्ध करनेसे क्षीण हुई यादव-सेना अवश्य ही मगधनरेशसे पराजित हो जायगी॥ ९॥ और यदि प्रथम मगधनरेशसे लड़ते हैं तो उससे क्षीण हुई यादवसेनाको बलवान् कालयवन नष्ट कर देगा। हाय! इस प्रकार यादवोंपर [एक ही साथ] यह दो तरहकी आपत्ति आ पहुँची है॥ १०॥ अत: मैं यादवोंके लिये एक ऐसा दुर्जय दुर्ग तैयार कराता हूँ जिसमें बैठकर वृष्णिश्रेष्ठ यादवोंकी तो बात ही क्या है, स्त्रियाँ भी युद्ध कर सकें॥ ११॥ उस दुर्गमें रहनेपर यदि मैं मत्त, प्रमत्त (असावधान), सोया अथवा कहीं बाहर भी गया होऊँ तब भी, अधिक-से-अधिक दुष्ट शत्रुगण भी यादवोंको पराभूत न कर सकें''॥ १२॥

ऐसा विचारकर श्रीगोविन्दने समुद्रसे बारह योजन भूमि माँगी और उसमें द्वारकापुरी निर्माण की॥ १३॥ जो इन्द्रकी अमरावतीपुरीके समान महान् उद्यान, गहरी खाईं, सैकड़ों सरोवर तथा अनेकों महलोंसे सुशोभित थी॥ १४॥ कालयवनके समीप आ जानेपर श्रीजनार्दन सम्पूर्ण मथुरा-निवासियोंको द्वारकामें ले आये और फिर स्वयं मथुरा लौट गये॥ १५॥ जब कालयवनकी सेनाने मथुराको घेर लिया तो श्रीकृष्णचन्द्र बिना शस्त्र लिये मथुरासे बाहर निकल आये। तब यवनराज कालयवनने उन्हें देखा॥ १६॥ महायोगीश्वरोंका चित्त भी जिन्हें प्राप्त नहीं कर पाता उन्हीं वासुदेवको केवल बाहुरूप शस्त्रोंसे ही युक्त [अर्थात् खाली हाथ] देखकर वह उनके पीछे दौड़ा॥ १७॥

कालयवनसे पीछा किये जाते हुए श्रीकृष्णचन्द्र उस महा गुहामें घुस गये जिसमें महावीर्यशाली राजा मुचुकुन्द सो रहा था॥ १८॥ उस दुर्मति यवनने भी उस गुफामें जाकर सोये हुए राजाको कृष्ण समझकर लात मारी॥ १९॥ उसके लात मारनेसे उठकर राजा मुचुकुन्दने उस यवनराजको देखा। हे मैत्रेय! उनके देखते ही वह यवन उसकी क्रोधाग्निसे जलकर भस्मीभूत हो गया॥ २०-२१॥

पूर्वकालमें राजा मुचुकुन्द देवताओंकी ओरसे देवासुर-संग्राममें गये थे; असुरोंको मार चुकनेपर अत्यन्त निद्रालु होनेके कारण उन्होंने देवताओंसे बहुत समयतक सोनेका वर माँगा था॥ २२॥ उस समय देवताओंने कहा था कि तुम्हारे शयन करनेपर तुम्हें जो कोई जगावेगा वह तुरन्त ही अपने शरीरसे उत्पन्न हुई अग्निसे जलकर भस्म हो जायगा॥ २३॥

इस प्रकार पापी कालयवनको दग्ध कर चुकनेपर राजा मुचुकुन्दने श्रीमधुसूदनको देखकर पूछा—'आप कौन हैं?' तब भगवान्ने कहा—''मैं चन्द्रवंशके अन्तर्गत यदुकुलमें वसुदेवजीके पुत्ररूपसे उत्पन्न हुआ हूँ''॥ २४॥ तब मुचुकुन्दको वृद्ध गार्ग्य मुनिके वचनोंका स्मरण हुआ। उनका स्मरण होते ही उन्होंने सर्वरूप सर्वेश्वर श्रीहरिको प्रणाम करके कहा—''हे परमेश्वर! मैंने आपको जान लिया है; आप साक्षात् भगवान् विष्णुके अंश हैं॥ २५-२६॥ पूर्वकालमें गार्ग्य मुनिने कहा था कि अट्ठाईसवें युगमें द्वापरके अन्तमें यदुकुलमें श्रीहरिका जन्म होगा॥ २७॥ निस्सन्देह आप भगवान् विष्णुके अंश हैं और मनुष्योंके उपकारके लिये ही अवतीर्ण हुए हैं तथापि मैं आपके महान् तेजको सहन करनेमें समर्थ नहीं हूँ॥ २८॥ हे भगवन्! आपका शब्द सजल मेघकी घोर गर्जनाके समान अति गम्भीर है तथा आपके चरणोंसे

पीडिता होकर पृथिवी झुकी हुई है॥ २९॥ हे देव! देवासुर-महासंग्राममें दैत्य-सेनाके बड़े-बड़े योद्धागण भी मेरा तेज नहीं सह सके थे और मैं आपका तेज सहन नहीं कर सकता॥ ३०॥ संसारमें पतित जीवोंके एकमात्र आप ही परम आश्रय हैं। हे शरणागतोंका दुःख दूर करनेवाले! आप प्रसन्न होइये और मेरे अमंगलोंको नष्ट कीजिये॥ ३१॥

आप ही समुद्र हैं, आप ही पर्वत हैं, आप ही नदियाँ हैं और आप ही वन हैं तथा आप ही पृथिवी, आकाश, वायु, जल, अग्नि और मन हैं॥ ३२॥ आप ही बुद्धि, अव्याकृत, प्राण और प्राणोंका अधिष्ठाता पुरुष हैं; तथा पुरुषसे भी परे जो व्यापक और जन्म तथा विकारसे शून्य तत्त्व है वह भी आप ही हैं॥ ३३॥ जो शब्दादिसे रहित, अजर, अमेय, अक्षय और नाश तथा वृद्धिसे रहित है, वह आद्यन्तहीन ब्रह्म भी आप ही हैं॥ ३४॥ आपहीसे देवता, पितृगण, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध और अप्सरागण उत्पन्न हुए हैं। आपहीसे मनुष्य, पशु, पक्षी, सरीसृप और मृग आदि हुए हैं तथा आपहीसे सम्पूर्ण वृक्ष और जो कुछ भी भूत-भविष्यत् चराचर जगत् है वह सब हुआ है॥ ३५-३६॥ हे प्रभो! मूर्त-अमूर्त, स्थूल-सूक्ष्म तथा और भी जो कुछ है वह सब आप जगत्कर्ता ही हैं,आपसे भिन्न और कुछ भी नहीं है॥ ३७॥

हे भगवन्! तापत्रयसे अभिभूत होकर सर्वदा इस संसार-चक्रमें भ्रमण करते हुए मुझे कभी शान्ति प्राप्त नहीं हुई॥ ३८॥ हे नाथ! जलकी आशासे मृगतृष्णाके समान मैंने दुःखोंको ही सुख समझकर ग्रहण किया था; परन्तु वे मेरे सन्तापके ही कारण हुए॥ ३९॥ हे प्रभो! राज्य, पृथिवी, सेना, कोश, मित्रपक्ष, पुत्रगण, स्त्री तथा सेवक आदि और शब्दादि विषय इन सबको मैंने अविनाशी तथा सुख-बुद्धिसे ही अपनाया था; किन्तु हे ईश! परिणाममें वे ही दुःखरूप सिद्ध हुए॥ ४०-४१॥ हे नाथ! जब देवलोक प्राप्त करके भी देवताओंको मेरी सहायताकी इच्छा हुई तो उस (स्वर्गलोक)-में भी नित्य-शान्ति कहाँ है?॥ ४२॥ हे परमेश्वर! सम्पूर्ण जगत्‌की उत्पत्तिके आदि-स्थान आपकी आराधना किये बिना कौन शाश्वत शान्ति प्राप्त कर सकता है?॥ ४३॥ हे प्रभो! आपकी मायासे मूढ हुए पुरुष जन्म, मृत्यु और जरा आदि सन्तापोंको भोगते हुए अन्तमें यमराजका दर्शन करते हैं॥ ४४॥ आपके स्वरूपको न जाननेवाले पुरुष नरकोंमें पड़कर अपने कर्मोंके फलस्वरूप नाना प्रकारके दारुण क्लेश पाते हैं॥ ४५॥ हे परमेश्वर! मैं अत्यन्त विषयी हूँ और आपकी मायासे मोहित होकर ममत्वाभिमानके गड्ढेमें भटकता रहा हूँ॥ ४६॥ वही मैं आज अपार और अप्रमेय परमपदरूप आप परमेश्वरकी शरणमें आया हूँ जिससे भिन्न दूसरा कुछ भी नहीं है और संसारभ्रमणके खेदसे खिन्न-चित्त होकर मैं निरतिशय तेजोमय निर्वाणस्वरूप आपका ही अभिलाषी हूँ''॥ ४७॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पाँचवें अंशमें तेईसवाँ अध्याय समाप्त॥ २३॥

चौबीसवाँ अध्याय

मुचुकुन्दका तपस्याके लिये प्रस्थान और बलरामजीकी व्रजयात्रा

श्रीपराशरजी बोले—परम बुद्धिमान् राजा मुचुकुन्दके इस प्रकार स्तुति करनेपर सर्वभूतोंके ईश्वर अनादिनिधन भगवान् हरि बोले॥ १॥

श्रीभगवान्ने कहा—हे नरेश्वर! तुम अपने अभिमत दिव्य लोकोंको जाओ; मेरी कृपासे तुम्हें अव्याहत परम ऐश्वर्य प्राप्त होगा॥ २॥ वहाँ अत्यन्त दिव्य भोगोंको भोगकर तुम अन्तमें एक महान् कुलमें जन्म लोगे, उस समय तुम्हें अपने पूर्वजन्मका स्मरण रहेगा और फिर मेरी कृपासे तुम मोक्षपद प्राप्त करोगे॥ ३॥

श्रीपराशरजी बोले—भगवान्के इस प्रकार कहनेपर राजा मुचुकुन्दने जगदीश्वर श्रीअच्युतको प्रणाम किया और गुफासे निकलकर देखा कि लोग बहुत छोटे-छोटे हो गये हैं॥ ४॥ उस समय कलियुगको वर्तमान समझकर राजा तपस्या करनेके लिये श्रीनरनारायणके स्थान गन्धमादनपर्वतपर चले गये॥ ५॥ इस प्रकार कृष्णचन्द्रने उपायपूर्वक शत्रुको नष्टकर फिर मथुरामें आ उसकी हाथी, घोड़े और रथादिसे सुशोभित सेनाको अपने वशीभूत किया और उसे द्वारकामें लाकर राजा उग्रसेनको अर्पण कर दिया। तबसे यदुवंश शत्रुओंके दमनसे निःशंक हो गया॥ ६-७॥

हे मैत्रेय! इस सम्पूर्ण विग्रहके शान्त हो जानेपर बलदेवजी अपने बान्धवोंके दर्शनकी उत्कण्ठासे नन्दजीके गोकुलको गये॥ ८॥ वहाँ पहुँचकर शत्रुजित् बलभद्रजीने गोप और गोपियोंका पहलेहीकी भाँति अति आदर और प्रेमके साथ अभिवादन किया॥ ९॥ किसीने उनका आलिंगन किया और किसीको उन्होंने गले लगाया तथा किन्हीं गोप और गोपियोंके साथ उन्होंने हास-परिहास किया॥ १०॥ गोपोंने बलरामजीसे अनेकों प्रिय वचन कहे तथा गोपियोंमेंसे कोई प्रणयकुपित होकर बोलीं और किन्हींने उपालम्भयुक्त बातें की॥ ११॥

किन्हीं अन्य गोपियोंने पूछा—चंचल एवं अल्प प्रेम करना ही जिनका स्वभाव है, वे नगर-नारियोंके प्राणाधार कृष्ण तो आनन्दमें हैं न?॥ १२॥ वे क्षणिक स्नेहवाले नन्दनन्दन हमारी चेष्टाओंका उपहास करते हुए क्या नगरकी महिलाओंके सौभाग्यका मान नहीं बढ़ाया करते?॥ १३॥ क्या कृष्णचन्द्र कभी हमारे गीतानुयायी मनोहर स्वरका स्मरण करते हैं? क्या वे एक बार अपनी माताको भी देखनके लिये यहाँ आवेंगे?॥ १४॥ अथवा अब उनकी बात करनेसे हमें क्या प्रयोजन है, कोई और बात करो। जब उनकी हमारे बिना निभ गयी तो हम भी उनके बिना निभा ही लेंगी॥ १५॥ क्या माता, क्या पिता, क्या बन्धु, क्या पति और क्या कुटुम्बके लोग? हमने उनके लिये सभीको छोड़ दिया, किन्तु वे तो अकृतज्ञोंकी ध्वजा ही निकले॥ १६॥ तथापि बलरामजी! सच-सच बतलाइये क्या कृष्ण कभी यहाँ आनेके विषयमें भी कोई बातचीत करते हैं?॥ १७॥ हमें ऐसा प्रतीत होता है कि दामोदर कृष्णका चित्त नागरी-नारियोंमें फँस गया है; हममें अब उनकी प्रीति नहीं है, अतः अब हमें तो उनका दर्शन दुर्लभ ही जान पड़ता है॥ १८॥

श्रीपराशरजी बोले—तदनन्तर श्रीहरिने जिनका चित्त हर लिया है, वे गोपियाँ बलरामजीको कृष्ण और दामोदर कहकर सम्बोधन करने लगीं और फिर उच्चस्वरसे हँसने लगीं॥ १९॥ तब बलभद्रजीने कृष्णचन्द्रका अति मनोहर और शान्तिमय, प्रेमगर्भित और गर्वहीन सन्देश सुनाकर

गोपियोंको सान्त्वना दी॥ २०॥ तथा गोपोंके साथ हास्य करते हुए उन्होंने पहलेकी भाँति बहुत-सी मनोहर बातें कीं और उनके साथ व्रजभूमिमें नाना प्रकारकी लीलाएँ करते रहे॥ २१॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पाँचवें अंशमें चौबीसवाँ अध्याय समाप्त॥ २४॥

पचीसवाँ अध्याय

बलभद्रजीका व्रज-विहार तथा यमुनाकर्षण

श्रीपराशरजी बोले—अपने कार्योंसे पृथिवीको विचलित करनेवाले, बड़े विकट कार्य करनेवाले, धरणीधर शेषजीके अवतार माया-मानवरूप महात्मा बलरामजीको गोपोंके साथ वनमें विचरते देख उनके उपभोगके लिये वरुणने वारुणी (मदिरा)-से कहा— ॥ १-२ ॥ "हे मदिरे! जिन महाबलशाली अनन्तदेवको तुम सर्वदा प्रिय हो; हे शुभे! तुम उनके उपभोग और प्रसन्नताके लिये जाओ"॥ ३ ॥ वरुणकी ऐसी आज्ञा होनेपर वारुणी वृन्दावनमें उत्पन्न हुए कदम्ब-वृक्षके कोटरमें रहने लगी॥ ४॥

तब मनोहर मुखवाले बलदेवजीको वनमें विचरते हुए मदिराकी अति उत्तम गन्ध सूँघनेसे उसे पीनेकी इच्छा हुई॥ ५॥ हे मैत्रेय! उसी समय कदम्बसे मद्यकी धारा गिरती देख हलधारी बलरामजी बड़े प्रसन्न हुए॥ ६॥ तथा गाने-बजानेमें कुशल गोप और गोपियोंके मधुर स्वरसे गाते हुए उन्होंने उनके साथ प्रसन्नतापूर्वक मद्यपान किया॥ ७॥

तदनन्तर अत्यन्त घामके कारण स्वेद-बिन्दुरूप मोतियोंसे सुशोभित मदोन्मत्त बलरामजीने विह्वल होकर कहा—"यमुने! आ, मैं स्नान करना चाहता हूँ"॥ ८॥ उनके वाक्यको उन्मत्तका प्रलाप समझकर यमुनाने उसपर कुछ भी ध्यान न दिया और वह वहाँ न आयी। इसपर हलधरने क्रोधित होकर अपना हल उठाया॥ ९॥ और मदसे विह्वल होकर यमुनाको हलकी नोकसे पकड़कर खींचते हुए कहा—"अरी पापिनि! तू नहीं आती थी! अच्छा अब [यदि शक्ति हो तो] इच्छानुसार अन्यत्र जा तो सही॥ १०॥" इस प्रकार बलरामजीके खींचनेपर यमुनाने अकस्मात् अपना मार्ग छोड़ दिया और जिस वनमें बलरामजी खड़े थे उसे आप्लावित कर दिया॥ ११॥

तब वह शरीर धारणकर बलरामजीके पास आयी और भयवश डबडबाती आँखोंसे कहने लगी— "हे मुसलायुध! आप प्रसन्न होइये और मुझे छोड़ दीजिये"॥ १२॥ उसके उन मधुर वचनोंको सुनकर हलायुध बलभद्रजीने कहा— "अरी नदि! क्या तू मेरे बल-वीर्यकी अवज्ञा करती है? देख, इस हलसे मैं अभी तेरे हजारों टुकड़े कर डालूँगा"॥ १३॥

श्रीपराशरजी बोले—बलरामजीद्वारा इस प्रकार कही जानेसे भयभीत हुई यमुनाके उस भू-भागमें बहने लगनेपर उन्होंने प्रसन्न होकर उसे छोड़ दिया॥ १४॥ उस समय स्नान करनेपर महात्मा बलरामजीकी अत्यन्त शोभा हुई। तब लक्ष्मीजीने [सशरीर प्रकट होकर] उन्हें एक सुन्दर कर्णफूल, एक कुण्डल, एक वरुणकी भेजी हुई कभी न कुम्हलानेवाले कमल-पुष्पोंकी माला और दो समुद्रके समान कान्तिवाले नीलवर्ण वस्त्र दिये॥ १५-१६॥ उन कर्णफूल, सुन्दर कुण्डल, नीलाम्बर और पुष्प-मालाको धारणकर श्रीबलरामजी अतिशय कान्तियुक्त हो सुशोभित होने

लगे॥ १७॥ इस प्रकार विभूषित होकर श्रीबलभद्रजीने व्रजमें अनेकों लीलाएँ कीं और फिर दो मास पश्चात् द्वारकापुरीको चले आये॥ १८॥ वहाँ आकर बलदेवजीने राजा रैवतकी पुत्री रेवतीसे विवाह किया; उससे उनके निशठ और उल्मुक नामक दो पुत्र हुए॥ १९॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पाँचवें अंशमें पचीसवाँ अध्याय समाप्त॥ २५॥

छब्बीसवाँ अध्याय

रुक्मिणी-हरण

श्रीपराशरजी बोले—विदर्भदेशान्तर्गत कुण्डिनपुर नामक नगरमें भीष्मक नामक एक राजा थे। उनके रुक्मी नामक पुत्र और रुक्मिणी नामकी एक सुमुखी कन्या थी॥ १॥ श्रीकृष्णने रुक्मिणीकी और चारुहासिनी रुक्मिणीने श्रीकृष्णचन्द्रकी अभिलाषा की, किंतु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके प्रार्थना करनेपर भी उनसे द्वेष करनेके कारण रुक्मीने उन्हें रुक्मिणी न दी॥ २॥ महापराक्रमी भीष्मकने जरासन्धकी प्रेरणासे रुक्मीसे सहमत होकर शिशुपालको रुक्मिणी देनेका निश्चय किया॥ ३॥ तब शिशुपालके हितैषी जरासन्ध आदि सम्पूर्ण राजागण विवाहमें सम्मिलित होनेके लिये भीष्मकके नगरमें गये॥ ४॥ इधर बलभद्र आदि यदुवंशियोंके सहित श्रीकृष्णचन्द्र भी चेदिराजका विवाहोत्सव देखनेके लिये कुण्डिनपुर आये॥ ५॥

तदनन्तर विवाहका एक दिन रहनेपर अपने विपक्षियोंका भार बलभद्र आदि बन्धुओंको सौंपकर श्रीहरिने उस कन्याका हरण कर लिया॥ ६॥ तब श्रीमान् पौण्ड्रक, दन्तवक्त्र, विदूरथ, शिशुपाल, जरासन्ध और शाल्व आदि राजाओंने क्रोधित होकर श्रीहरिको मारनेका महान् उद्योग किया, किन्तु वे सब बलराम आदि यदुश्रेष्ठोंसे मुठभेड़ होनेपर पराजित हो गये॥ ७-८॥ तब रुक्मीने यह प्रतिज्ञाकर कि 'मैं युद्धमें कृष्णको मारे बिना कुण्डिनपुरमें प्रवेश न करूँगा' कृष्णको मारनेके लिये उनका पीछा किया॥ ९॥ किन्तु श्रीकृष्णने लीलासे ही हाथी, घोड़े, रथ और पदातियोंसे युक्त उसकी सेनाको नष्ट करके उसे जीत लिया और पृथिवीमें गिरा दिया॥ १०॥

इस प्रकार रुक्मीको युद्धमें परास्तकर श्रीमधुसूदनने राक्षसविवाहसे मिली हुई रुक्मिणीका सम्यक् (वेदोक्त) रीतिसे पाणिग्रहण किया॥ ११॥ उससे उनके कामदेवके अंशसे उत्पन्न हुए वीर्यवान् प्रद्युम्नजीका जन्म हुआ, जिन्हें शम्बरासुर हर ले गया था और फिर जिन्होंने [काल-क्रमसे] शम्बरासुरका वध किया था॥ १२॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पाँचवें अंशमें छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त॥ २६॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

प्रद्युम्न-हरण तथा शम्बर-वध

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे मुने! वीरवर प्रद्युम्नको शम्बरासुरने कैसे हरण किया था? और फिर उस महाबली शम्बरको प्रद्युम्नने कैसे मारा?॥ १॥ जिसको पहले उसने हरण किया था उसीने पीछे उसे किस प्रकार मार डाला? हे गुरो! मैं यह सम्पूर्ण प्रसंग विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ॥ २॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मुने! कालके समान विकराल शम्बरासुरने प्रद्युम्नको, जन्म लेनेके छठे ही दिन 'यह मेरा मारनेवाला है' ऐसा जानकर सूतिकागृहसे हर लिया॥ ३॥ उसको हरण करके शम्बरासुरने लवणसमुद्रमें डाल दिया, जो तरंगमालाजनित आवर्तोंसे पूर्ण और बड़े भयानक मकरोंका घर है॥ ४॥ वहाँ फेंके हुए उस बालकको एक मत्स्यने निगल लिया, किन्तु वह उसकी जठराग्निसे जलकर भी न मरा॥ ५॥

कालान्तरमें कुछ मछेरोंने उसे अन्य मछलियोंके साथ अपने जालमें फँसाया और असुरश्रेष्ठ शम्बरको निवेदन किया॥ ६॥ उसकी नाममात्रकी पत्नी मायावती सम्पूर्ण अन्तःपुरकी स्वामिनी थी और वह सुलक्षणा सम्पूर्ण सूदों (रसोइयों)-का आधिपत्य करती थी॥ ७॥ उस मछलीका पेट चीरते ही उसमें एक अति सुन्दर बालक दिखायी दिया जो दग्ध हुए कामवृक्षका प्रथम अंकुर था॥ ८॥ 'तब यह कौन है और किस प्रकार इस मछलीके पेटमें डाला गया' इस प्रकार अत्यन्त आश्चर्यचकित हुई उस सुन्दरीसे देवर्षि नारदने आकर कहा—॥ ९॥ "हे सुन्दर भृकुटिवाली! यह सम्पूर्ण जगत्के स्थिति और संहारकर्ता भगवान् विष्णुका पुत्र है; इसे शम्बरासुरने सूतिकागृहसे चुराकर समुद्रमें फेंक दिया था। वहाँ इसे यह मत्स्य निगल गया और अब इसीके द्वारा यह तेरे घर आ गया है। तू इस नररत्नका विश्वस्त होकर पालन कर"॥ १०-११॥

श्रीपराशरजी बोले—नारदजीके ऐसा कहनेपर मायावतीने उस बालककी अतिशय सुन्दरतासे मोहित हो बाल्यावस्थासे ही उसका अति अनुरागपूर्वक पालन किया॥ १२॥ हे महामते! जिस समय वह नवयौवनके समागमसे सुशोभित हुआ तब वह गजगामिनी उसके प्रति कामनायुक्त अनुराग प्रकट करने लगी॥ १३॥

हे महामुने! जो अपना हृदय और नेत्र प्रद्युम्नमें अर्पित कर चुकी थी उस मायावतीने अनुरागसे अन्धी होकर उसे सब प्रकारकी माया सिखा दी॥ १४॥ इस प्रकार अपने ऊपर आसक्त हुई उस कमललोचनासे कृष्णनन्दन प्रद्युम्नने कहा—"आज तुम मातृभावको छोड़कर यह अन्य प्रकारका भाव क्यों प्रकट करती हो?"॥ १५॥ तब मायावतीने कहा—"तुम मेरे पुत्र नहीं हो, तुम भगवान् विष्णुके तनय हो। तुम्हें कालशम्बरने हरकर समुद्रमें फेंक दिया था; तुम मुझे एक मत्स्यके उदरमें मिले हो। हे कान्त! आपकी पुत्रवत्सला जननी आज भी रोती होगी"॥ १६-१७॥

श्रीपराशरजी बोले—मायावतीके इस प्रकार कहनेपर महाबलवान् प्रद्युम्नजीने क्रोधसे विह्वल हो शम्बरासुरको युद्धके लिये ललकारा और उससे युद्ध करने लगे॥ १८॥ यादवश्रेष्ठ प्रद्युम्नजीने उस दैत्यकी सम्पूर्ण सेना मार डाली और उसकी सात मायाओंको जीतकर स्वयं आठवीं मायाका प्रयोग किया॥ १९॥ उस मायासे उन्होंने दैत्यराज कालशम्बरको मार डाला और मायावतीके साथ [विमानद्वारा] उड़कर आकाशमार्गसे अपने पिताके नगरमें आ गये॥ २०॥

मायावतीके सहित अन्तःपुरमें उतरनेपर श्रीकृष्णचन्द्रकी रानियोंने उन्हें देखकर कृष्ण ही समझा॥ २१॥ किन्तु अनिन्दिता रुक्मिणीके नेत्रोंमें प्रेमवश आँसू भर आये और वे कहने लगीं—"अवश्य ही यह नवयौवनको प्राप्त हुआ किसी बड़भागिनीका पुत्र है॥ २२॥ यदि मेरा पुत्र प्रद्युम्न जीवित होगा तो उसकी भी यही आयु होगी। हे वत्स! तू ठीक-ठीक बता तूने किस भाग्यवती जननीको विभूषित किया है?॥ २३॥ अथवा, बेटा! जैसा मुझे तेरे प्रति

स्नेह हो रहा है और जैसा तेरा स्वरूप है, उससे मुझे ऐसा भी प्रतीत होता है कि तू श्रीहरिका ही पुत्र है"॥ २४॥

श्रीपराशरजी बोले—इसी समय श्रीकृष्णचन्द्रके साथ वहाँ नारदजी आ गये। उन्होंने अन्त:पुरनिवासिनी देवी रुक्मिणीको आनन्दित करते हुए कहा—॥ २५॥ "हे सुभ्रु! यह तेरा ही पुत्र है। यह शम्बरासुरको मारकर आ रहा है, जिसने कि इसे बाल्यावस्थामें सूतिकागृहसे हर लिया था॥ २६॥ यह सती मायावती भी तेरे पुत्रकी ही स्त्री है; यह शम्बरासुरकी पत्नी नहीं है। इसका कारण सुन॥ २७॥ पूर्वकालमें कामदेवके भस्म हो जानेपर उसके पुनर्जन्मकी प्रतीक्षा करती हुई इसने अपने मायामयरूपसे शम्बरासुरको मोहित किया था॥ २८॥

यह मत्तविलोचना उस दैत्यको विहारादि उपभोगोंके समय अपने अति सुन्दर मायामय रूप दिखलाती रहती थी॥ २९॥ कामदेवने ही तेरे पुत्ररूपसे जन्म लिया है और यह सुन्दरी उसकी प्रिया रति ही है। हे शोभने! यह तेरी पुत्रवधू है, इसमें तू किसी प्रकारकी विपरीत शंका न कर"॥ ३०॥

यह सुनकर रुक्मिणी और कृष्णको अतिशय आनन्द हुआ तथा समस्त द्वारकापुरी भी 'साधु-साधु' कहने लगी॥ ३१॥ उस समय चिरकालसे खोये हुए पुत्रके साथ रुक्मिणीका समागम हुआ देख द्वारकापुरीके सभी नागरिकोंको बड़ा आश्चर्य हुआ॥ ३२॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पाँचवें अंशमें सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त॥ २७॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

रुक्मीका वध

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! रुक्मिणीके [प्रद्युम्नके अतिरिक्त] चारुदेष्ण, सुदेष्ण, वीर्यवान्, चारुदेह, सुषेण, चारुगुप्त, भद्रचारु, चारुविन्द, सुचारु और बलवानोंमें श्रेष्ठ चारु नामक पुत्र तथा चारुमती नामकी एक कन्या हुई॥ १-२॥ रुक्मिणीके अतिरिक्त श्रीकृष्णचन्द्रके कालिन्दी, मित्रविन्दा, नग्नजित्की पुत्री सत्या, जाम्बवान्की पुत्री कामरूपिणी रोहिणी, अति-शीलवती मद्रराजसुता सुशीला भद्रा, सत्राजित्की पुत्री सत्यभामा और चारुहासिनी लक्ष्मणा—ये अति सुन्दरी सात स्त्रियाँ और थीं, इनके सिवा उनके सोलह हजार स्त्रियाँ और भी थीं॥ ३—५॥

महावीर प्रद्युम्नने रुक्मीकी सुन्दरी कन्याको और उस कन्याने भी भगवान्के पुत्र प्रद्युम्नजीको स्वयंवरमें ग्रहण किया॥ ६॥ उससे प्रद्युम्नजीके अनिरुद्ध नामक एक महाबलपराक्रमसम्पन्न पुत्र हुआ जो युद्धमें रुद्ध (प्रतिहत) न होनेवाला, बलका समुद्र तथा शत्रुओंका दमन करनेवाला था॥ ७॥ कृष्णचन्द्रने उस (अनिरुद्ध)-के लिये भी रुक्मीकी पौत्रीका वरण किया और रुक्मीने कृष्णचन्द्रसे ईर्ष्या रखते हुए भी अपने दौहित्रको अपनी पौत्री देना स्वीकार कर लिया॥ ८॥

हे द्विज! उसके विवाहमें सम्मिलित होनेके लिये कृष्णचन्द्रके साथ बलभद्र आदि अन्य यादवगण भी रुक्मीकी राजधानी भोजकट नामक नगरको गये॥ ९॥ जब प्रद्युम्न-पुत्र महात्मा अनिरुद्धका विवाह-संस्कार हो चुका तो कलिंगराज आदि राजाओंने रुक्मीसे कहा—॥ १०॥ "ये

बलभद्र द्यूतक्रीडा [अच्छी तरह] जानते तो हैं नहीं तथापि इन्हें उसका व्यसन बहुत है; तो फिर हम इन महाबली रामको जुएसे ही क्यों न जीत लें?" ॥ ११ ॥

श्रीपराशरजी बोले—तब बलके मदसे उन्मत्त रुक्मीने उन राजाओंसे कहा—'बहुत अच्छा' और सभामें बलरामजीके साथ द्यूतक्रीडा आरम्भ कर दी ॥ १२ ॥ रुक्मीने पहले ही दाँवमें बलरामजीसे एक सहस्र निष्क जीते तथा दूसरे दाँवमें एक सहस्र निष्क और जीत लिये ॥ १३ ॥ तब बलभद्रजीने दस हजार निष्कका एक दाँव और लगाया। उसे भी पक्के जुआरी रुक्मीने ही जीत लिया ॥ १४ ॥ हे द्विज! इसपर मूढ कलिंगराज दाँत दिखाता हुआ जोरसे हँसने लगा और मदोन्मत्त रुक्मीने कहा— ॥ १५ ॥ "द्यूतक्रीडासे अनभिज्ञ इन बलभद्रजीको मैंने हरा दिया है; ये वृथा ही अक्षके घमण्डसे अन्धे होकर अक्षकुशल पुरुषोंका अपमान करते थे" ॥ १६ ॥

इस प्रकार कलिंगराजको दाँत दिखाते और रुक्मीको दुर्वाक्य कहते देख हलायुध बलभद्रजी अत्यन्त क्रोधित हुए ॥ १७ ॥ तब उन्होंने अत्यन्त कुपित होकर करोड़ निष्कका दाँव लगाया और रुक्मीने भी उसे ग्रहणकर उसके निमित्त पाँसे फेंके ॥ १८ ॥ उसे बलदेवजीने ही जीता और वे जोरसे बोल उठे, 'मैंने जीता।' इसपर रुक्मी भी चिल्लाकर बोला—'बलराम! असत्य बोलनेसे कुछ लाभ नहीं हो सकता, यह दाँव भी मैंने ही जीता है ॥ १९ ॥ आपने इस दाँवके विषयमें जिक्र अवश्य किया था, किंतु मैंने उसका अनुमोदन तो नहीं किया। इस प्रकार यदि आपने इसे जीता है तो मैंने भी क्यों नहीं जीता?" ॥ २० ॥

श्रीपराशरजी बोले—उसी समय महात्मा बलदेवजीके क्रोधको बढ़ाती हुई आकाशवाणीने गम्भीर स्वरमें कहा— ॥ २१ ॥ "इस दाँवको धर्मानुसार तो बलरामजी ही जीते हैं; रुक्मी झूठ बोलता है क्योंकि [अनुमोदनसूचक] वचन न कहनेपर भी [पाँसे फेंकने आदि] कार्यसे वह अनुमोदित ही माना जायगा" ॥ २२ ॥

तब क्रोधसे अरुणनयन हुए महाबली बलभद्रजीने उठकर रुक्मीको जुआ खेलनेके पाँसोंसे ही मार डाला ॥ २३ ॥ फिर फड़कते हुए कलिंगराजको बलपूर्वक पकड़कर बलरामजीने उसके दाँत, जिन्हें दिखलाता हुआ वह हँसा था, तोड़ दिये ॥ २४ ॥ इनके सिवा उसके पक्षके और भी जो कोई राजालोग थे, उन्हें बलरामजीने अत्यन्त कुपित होकर एक सुवर्णमय स्तम्भ उखाड़कर उससे मार डाला ॥ २५ ॥ हे द्विज! उस समय बलरामजीके कुपित होनेसे हाहाकार मच गया और सम्पूर्ण राजालोग भयभीत होकर भागने लगे ॥ २६ ॥

हे मैत्रेय! उस समय रुक्मीको मारा गया देख श्रीमधुसूदनने एक ओर रुक्मिणीके और दूसरी ओर बलरामजीके भयसे कुछ भी नहीं कहा ॥ २७ ॥ तदनन्तर, हे द्विजश्रेष्ठ! यादवोंके सहित श्रीकृष्णचन्द्र सपत्नीक अनिरुद्धको लेकर द्वारकापुरीमें चले आये ॥ २८ ॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पाँचवें अंशमें अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २८ ॥

उनतीसवाँ अध्याय

नरकासुरका वध

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! एक बार जब श्रीभगवान् द्वारकामें ही थे, त्रिभुवनपति इन्द्र अपने मत्त गजराज ऐरावतपर चढ़कर उनके पास आये॥ १॥ द्वारकामें आकर वे भगवान्से मिले और उनसे नरकासुरके अत्याचारोंका वर्णन किया॥ २॥ [वे बोले—] ''हे मधुसूदन! इस समय मनुष्यरूपमें स्थित होकर भी आप सम्पूर्ण देवताओंके स्वामीने हमारे समस्त दुःखोंको शान्त कर दिया है॥ ३॥ जो अरिष्ट, धेनुक और केशी आदि असुर सर्वदा तपस्वियोंको क्लेशित करते रहते थे उन सबको आपने मार डाला॥ ४॥ कंस, कुवलयापीड और बालघातिनी पूतना तथा और भी जो-जो संसारके उपद्रवरूप थे उन सबको आपने नष्ट कर दिया॥ ५॥ आपके बाहुदण्डकी सत्तासे त्रिलोकीके सुरक्षित हो जानेके कारण याजकोंके दिये हुए यज्ञभागोंको प्राप्तकर देवगण तृप्त हो रहे हैं॥ ६॥ हे जनार्दन! इस समय जिस निमित्तसे मैं आपके पास उपस्थित हुआ हूँ, उसे सुनकर आप उसके प्रतीकारका प्रयत्न करें॥ ७॥

हे शत्रुदमन! यह पृथिवीका पुत्र नरकासुर प्राग्ज्योतिषपुरका स्वामी है; इस समय यह सम्पूर्ण जीवोंका घात कर रहा है॥ ८॥ हे जनार्दन! उसने देवता, सिद्ध, असुर और राजा आदिकोंकी कन्याओंको बलात् लाकर अपने अन्तःपुरमें बन्द कर रखा है॥ ९॥ इस दैत्यने वरुणका जल बरसानेवाला छत्र और मन्दराचलका मणिपर्वत नामक शिखर भी हर लिया है॥ १०॥

हे कृष्ण! उसने मेरी माता अदितिके अमृतस्रावी दोनों दिव्य कुण्डल ले लिये हैं और अब इस ऐरावत हाथीको भी लेना चाहता है॥ ११॥ हे गोविन्द! मैंने आपको उसकी ये सब अनीतियाँ सुना दी हैं; इनका जो प्रतीकार होना चाहिये, वह आप स्वयं विचार लें''॥ १२॥

श्रीपराशरजी बोले—इन्द्रके ये वचन सुनकर श्रीदेवकीनन्दन मुसकाये और इन्द्रका हाथ पकड़कर अपने श्रेष्ठ आसनसे उठे॥ १३॥ फिर स्मरण करते ही उपस्थित हुए आकाशगामी गरुडपर सत्यभामाको चढ़ाकर स्वयं चढ़े और प्राग्ज्योतिषपुरको चले॥ १४॥ तदनन्तर इन्द्र भी ऐरावतपर चढ़कर देवलोकको गये तथा भगवान् कृष्णचन्द्र सब द्वारकावासियोंके देखते-देखते [नरकासुरको मारने] चले गये॥ १५॥

हे द्विजोत्तम! प्राग्ज्योतिषपुरके चारों ओर पृथिवी सौ योजनतक मुर दैत्यके बनाये हुए छुरेकी धाराके समान अति तीक्ष्ण पाशोंसे घिरी हुई थी॥ १६॥ भगवान्ने उन पाशोंको सुदर्शनचक्र फेंककर काट डाला; फिर मुर दैत्य भी सामना करनेके लिये उठा तब श्रीकेशवने उसे भी मार डाला॥ १७॥ तदनन्तर श्रीहरिने मुरके सात हजार पुत्रोंको भी अपने चक्रकी धाररूप अग्निमें पतंगके समान भस्म कर दिया॥ १८॥ हे द्विज! इस प्रकार मतिमान् भगवान्ने मुर, हयग्रीव एवं पंचजन आदि दैत्योंको मारकर बड़ी शीघ्रतासे प्राग्ज्योतिषपुरमें प्रवेश किया॥ १९॥ वहाँ पहुँचकर भगवान्का अधिक सेनावाले नरकासुरसे युद्ध हुआ, जिसमें श्रीगोविन्दने उसके सहस्रों दैत्योंको मार डाला॥ २०॥ दैत्यदलका दलन करनेवाले महाबलवान् भगवान् चक्रपाणिने शस्त्रास्त्रकी वर्षा करते हुए भूमिपुत्र नरकासुरके सुदर्शनचक्र फेंककर दो टुकड़े कर दिये॥ २१॥ नरकासुरके मरते ही

पृथिवी अदितिके कुण्डल लेकर उपस्थित हुई और श्रीजगन्नाथसे कहने लगी॥ २२॥

पृथिवी बोली—हे नाथ! जिस समय वराहरूप धारणकर आपने मेरा उद्धार किया था, उसी समय आपके स्पर्शसे मेरे यह पुत्र उत्पन्न हुआ था॥ २३॥ इस प्रकार आपहीने मुझे यह पुत्र दिया था और अब आपहीने इसको नष्ट किया है; आप ये कुण्डल लीजिये और अब इसकी सन्तानकी रक्षा कीजिये॥ २४॥ हे प्रभो! मेरे ऊपर प्रसन्न होकर ही आप मेरा भार उतारनेके लिये अपने अंशसे इस लोकमें अवतीर्ण हुए हैं॥ २५॥ हे अच्युत! इस जगत्‌के आप ही कर्ता, आप ही विकर्ता (पोषक) और आप ही हर्ता (संहारक) हैं; आप ही इसकी उत्पत्ति और लयके स्थान हैं तथा आप ही जगत्-रूप हैं। फिर हम आपकी स्तुति किस प्रकार करें?॥ २६॥ हे भगवन्! जब कि व्याप्ति, व्याप्य, क्रिया, कर्ता और कार्यरूप आप ही हैं, तब सबके आत्मस्वरूप आपकी किस प्रकार स्तुति की जा सकती है?॥ २७॥ हे नाथ! जब आप ही परमात्मा, आप ही भूतात्मा और आप ही अव्यय जीवात्मा हैं, तब किस वस्तुको लेकर आपकी स्तुति हो सकती है?॥ २८॥ हे सर्वभूतात्मन्! आप प्रसन्न होइये और इस नरकासुरके सम्पूर्ण अपराध क्षमा कीजिये। निश्चय ही आपने अपने पुत्रको निर्दोष करनेके लिये ही स्वयं मारा है॥ २९॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! तदनन्तर भगवान् भूतभावनने पृथिवीसे कहा—"तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो" और फिर नरकासुरके महलसे नाना प्रकारके रत्न लिये॥ ३०॥ हे महामुने! अतुलविक्रम श्रीभगवान्‌ने नरकासुरके कन्यान्तःपुरमें जाकर सोलह हजार एक सौ कन्याएँ देखीं॥ ३१॥ तथा चार दाँतवाले छः हजार गजश्रेष्ठ और इक्कीस लाख काम्बोजदेशीय अश्व देखे॥ ३२॥ उन कन्याओं, हाथियों और घोड़ोंको श्रीकृष्णचन्द्रने नरकासुरके सेवकोंद्वारा तुरन्त ही द्वारकापुरी पहुँचवा दिया॥ ३३॥

तदनन्तर भगवान्‌ने वरुणका छत्र और मणिपर्वत देखा, उन्हें उठाकर उन्होंने पक्षिराज गरुडपर रख लिया॥ ३४॥ और सत्यभामाके सहित स्वयं भी उसीपर चढ़कर अदितिके कुण्डल देनेके लिये स्वर्गलोकको गये॥ ३५॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पाँचवें अंशमें उनतीसवाँ अध्याय समाप्त॥ २९॥

तीसवाँ अध्याय

पारिजात-हरण

श्रीपराशरजी बोले—पक्षिराज गरुड उस वारुणछत्र, मणिपर्वत और सत्यभामाके सहित श्रीकृष्णचन्द्रको लीलासे-ही लेकर चलने लगे॥ १॥ स्वर्गके द्वारपर पहुँचते ही श्रीहरिने अपना शंख बजाया। उसका शब्द सुनते ही देवगण अर्घ्य लेकर भगवान्‌के सामने उपस्थित हुए॥ २॥ देवताओंसे पूजित होकर श्रीकृष्णचन्द्रजीने देवमाता अदितिके श्वेत मेघशिखरके समान गृहमें जाकर उनका दर्शन किया॥ ३॥ तब श्रीजनार्दनने इन्द्रके साथ देवमाताको प्रणामकर उसके अत्युत्तम कुण्डल दिये और उसे नरक-वधका वृत्तान्त सुनाया॥ ४॥ तदनन्तर जगन्माता अदितिने प्रसन्नतापूर्वक तन्मय होकर जगद्धाता श्रीहरिकी अव्यग्रभावसे स्तुति की॥ ५॥

अदिति बोली—हे कमलनयन! हे भक्तोंको

अभय करनेवाले! हे सनातनस्वरूप! हे सर्वात्मन्! हे भूतस्वरूप! हे भूतभावन! आपको नमस्कार है॥ ६॥ हे मन, बुद्धि और इन्द्रियोंके रचयिता! हे गुणस्वरूप! हे त्रिगुणातीत! हे निर्द्वन्द्व! हे शुद्धसत्त्व! हे अन्तर्यामिन्! आपको नमस्कार है॥ ७॥ हे नाथ! आप श्वेत, दीर्घ आदि सम्पूर्ण कल्पनाओंसे रहित हैं, जन्मादि विकारोंसे पृथक् हैं तथा स्वप्नादि अवस्थात्रयसे परे हैं; आपको नमस्कार है॥ ८॥ हे अच्युत! सन्ध्या, रात्रि, दिन, भूमि, आकाश, वायु, जल, अग्नि, मन, बुद्धि और अहंकार—ये सब आप ही हैं॥ ९॥

हे ईश्वर! आप ब्रह्मा, विष्णु और शिव नामक अपनी मूर्तियोंसे जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और नाशके कर्ता हैं तथा आप कर्ताओंके भी स्वामी हैं॥ १०॥ देवता, दैत्य, यक्ष, राक्षस, सिद्ध, पन्नग (नाग), कूष्माण्ड, पिशाच, गन्धर्व, मनुष्य, पशु, मृग, पतंग, सरीसृप (साँप), अनेकों वृक्ष, गुल्म और लताएँ, समस्त तृणजातियाँ तथा स्थूल-मध्यम-सूक्ष्म और सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म जितने देह-भेद पुर्गल (परमाणु)- के आश्रित हैं वे सब आप ही हैं॥ ११—१३॥

हे प्रभो! आपकी माया ही परमार्थतत्त्वके न जाननेवाले पुरुषोंको मोहित करनेवाली है, जिससे मूढ पुरुष अनात्मामें आत्मबुद्धि करके बन्धनमें पड़ जाते हैं॥ १४॥ हे नाथ! पुरुषको जो अनात्मामें आत्मबुद्धि और 'मैं-मेरा' आदि भाव प्रायः उत्पन्न होते हैं वह सब आपकी जगज्जननी मायाका ही विलास है॥ १५॥ हे नाथ! जो स्वधर्मपरायण पुरुष आपकी आराधना करते हैं, वे अपने मोक्षके लिये इस सम्पूर्ण मायाको पार कर जाते हैं॥ १६॥ ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण देवगण तथा मनुष्य और पशु आदि सभी विष्णुमायारूप महान् आवर्तमें पड़कर मोहरूप अन्धकारसे आवृत हैं॥ १७॥ हे भगवन्! [जन्म और मरणके चक्रमें पड़े हुए] ये पुरुष जीवके भव-बन्धनको नष्ट करनेवाले आपकी आराधना करके भी जो नाना प्रकारकी कामनाएँ ही माँगते हैं, यह आपकी माया ही है॥ १८॥ मैंने भी पुत्रोंकी जयकामनासे शत्रुपक्षको पराजित करनेके लिये ही आपकी आराधना की है, मोक्षके लिये नहीं। यह भी आपकी मायाका ही विलास है॥ १९॥ पुण्यहीन पुरुषोंको जो कल्पवृक्षसे भी कौपीन और आच्छादन-वस्त्रमात्रकी ही कामना होती है यह उनका कर्म-दोष-जन्य अपराध ही है॥ २०॥

हे अखिलजगन्माया-मोहकारी अव्यय प्रभो! आप प्रसन्न होइये और हे भूतेश्वर! 'मैं ज्ञानवान् हूँ' मेरे इस अज्ञानको नष्ट कीजिये॥ २१॥ हे चक्रपाणे! आपको नमस्कार है, हे शार्ङ्गधर! आपको नमस्कार है; हे गदाधर! आपको नमस्कार है; हे शंखपाणे! हे विष्णो! आपको बारम्बार नमस्कार है॥ २२॥ मैं स्थूल चिह्नोंसे प्रतीत होनेवाले आपके इस रूपको ही देखती हूँ; आपके वास्तविक परस्वरूपको मैं नहीं जानती; हे परमेश्वर! आप प्रसन्न होइये॥ २३॥

श्रीपराशरजी बोले—अदितिद्वारा इस प्रकार स्तुति किये जानेपर भगवान् विष्णु देवमातासे हँसकर बोले—"हे देवि! तुम तो हमारी माता हो; तुम प्रसन्न होकर हमें वरदायिनी होओ"॥ २४॥

अदिति बोली—हे पुरुषसिंह! तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो। तुम मर्त्यलोकमें सम्पूर्ण सुरासुरोंसे अजेय होगे॥ २५॥

श्रीपराशरजी बोले—तदनन्तर शक्रपत्नी शचीके सहित कृष्णप्रिया सत्यभामाने अदितिको पुनः-पुनः प्रणाम करके कहा—"माता! आप प्रसन्न होइये"॥ २६॥

अदिति बोली—हे सुन्दर भृकुटिवाली!

मेरी कृपासे तुझे कभी वृद्धावस्था या विरूपता व्याप्त न होगी। हे अनिन्दितांगि! तेरा नवयौवन सदा स्थिर रहेगा॥ २७॥

श्रीपराशरजी बोले—तदनन्तर अदितिकी आज्ञासे देवराजने अत्यन्त आदर-सत्कारके साथ श्रीकृष्णचन्द्रका पूजन किया॥ २८॥ किन्तु कल्पवृक्षके पुष्पोंसे अलंकृता इन्द्राणीने सत्यभामाको मानुषी समझकर वे पुष्प न दिये॥ २९॥ हे साधुश्रेष्ठ! तदनन्तर सत्यभामाके सहित श्रीकृष्णचन्द्रने भी देवताओंके नन्दन आदि मनोहर उद्यानोंको देखा॥ ३०॥ वहाँपर केशिनिषूदन जगन्नाथ श्रीकृष्णने सुगन्धपूर्ण मंजरी-पुंजधारी, नित्याह्लादकारी और ताम्रवर्ण बाल पत्तोंसे सुशोभित, अमृत-मन्थनके समय प्रकट हुआ तथा सुनहरी छालवाला पारिजात-वृक्ष देखा॥ ३१-३२॥

हे द्विजोत्तम! उस अत्युत्तम वृक्षराजको देखकर परम प्रीतिवश सत्यभामा अति प्रसन्न हुई और श्रीगोविन्दसे बोली—"हे कृष्ण! इस वृक्षको द्वारकापुरी क्यों नहीं ले चलते?॥ ३३॥ यदि आपका यह वचन कि 'तुम ही मेरी अत्यन्त प्रिया हो' सत्य है तो मेरे गृहोद्यानमें लगानेके लिये इस वृक्षको ले चलिये॥ ३४॥ हे कृष्ण! आपने कई बार मुझसे यह प्रिय वाक्य कहा है कि 'हे सत्ये! मुझे तू जितनी प्यारी है उतनी न जाम्बवती है और न रुक्मिणी ही'॥ ३५॥ हे गोविन्द! यदि आपका यह कथन सत्य है—केवल मुझे बहलाना ही नहीं है—तो यह पारिजातवृक्ष मेरे गृहका भूषण हो॥ ३६॥ मेरी ऐसी इच्छा है कि मैं अपने केश-कलापोंमें पारिजातपुष्प गूँथकर अपनी अन्य सपत्नियोंमें सुशोभित होऊँ"॥ ३७॥

श्रीपराशरजी बोले—सत्यभामाके इस प्रकार कहनेपर श्रीहरिने हँसते हुए उस पारिजातवृक्षको गरुडपर रख लिया; तब नन्दनवनके रक्षकोंने कहा—॥ ३८॥ "हे गोविन्द! देवराज इन्द्रकी पत्नी जो महारानी शची हैं यह पारिजातवृक्ष उनकी सम्पत्ति है, आप इसका हरण न कीजिये॥ ३९॥ क्षीर-समुद्रसे उत्पन्न होनेके अनन्तर यह देवराजको दिया गया था; फिर हे महाभाग! देवराजने कुतूहलवश इसे अपनी महिषी शचीदेवीको दे दिया है॥ ४०॥ समुद्र-मन्थनके समय शचीको विभूषित करनेके लिये ही देवताओंने इसे उत्पन्न किया था; इसे लेकर आप कुशलपूर्वक नहीं जा सकेंगे॥ ४१॥

देवराज भी जिसका मुँह देखते रहते हैं, उस शचीकी सम्पत्ति इस पारिजातकी इच्छा आप मूढताहीसे करते हैं; इसे लेकर भला कौन सकुशल जा सकता है?॥ ४२॥ हे कृष्ण! देवराज इन्द्र इस वृक्षका बदला चुकानेके लिये अवश्य ही वज्र लेकर उद्यत होंगे और फिर देवगण भी अवश्य ही उनका अनुगमन करेंगे॥ ४३॥ अत: हे अच्युत! समस्त देवताओंके साथ रार बढ़ानेसे आपका कोई लाभ नहीं; क्योंकि जिस कर्मका परिणाम कटु होता है, पण्डितजन उसे अच्छा नहीं कहते"॥ ४४॥

श्रीपराशरजी बोले—उद्यान-रक्षकोंके इस प्रकार कहनेपर सत्यभामाने अत्यन्त क्रुद्ध होकर कहा—"शची अथवा देवराज इन्द्र ही इस पारिजातके कौन होते हैं?॥ ४५॥ यदि यह अमृत-मन्थनके समय उत्पन्न हुआ है, तो सबकी समान सम्पत्ति है। अकेला इन्द्र ही इसे कैसे ले सकता है?॥ ४६॥ अरे वनरक्षको! जिस प्रकार [समुद्रसे उत्पन्न हुए] मदिरा, चन्द्रमा और लक्ष्मीका सब लोग समानतासे भोग करते हैं, उसी प्रकार पारिजातवृक्ष भी सभीकी सम्पत्ति है॥ ४७॥ यदि पतिके बाहुबलसे गर्विता होकर शचीने ही इसपर अपना अधिकार जमा रखा है तो उससे कहना कि सत्यभामा उस वृक्षको हरण कराकर लिये जाती है, तुम्हें क्षमा करनेकी आवश्यकता नहीं है॥ ४८॥ अरे मालियो! तुम तुरन्त जाकर मेरे ये

शब्द शचीसे कहो कि सत्यभामा अत्यन्त गर्वपूर्वक कड़े अक्षरोंमें यह कहती है कि यदि तुम अपने पतिको अत्यन्त प्यारी हो और वे तुम्हारे वशीभूत हैं तो मेरे पतिको पारिजात हरण करनेसे रोकें॥ ४९-५०॥ मैं तुम्हारे पति शक्रको जानती हूँ और यह भी जानती हूँ कि वे देवताओंके स्वामी हैं तथापि मैं मानवी ही तुम्हारे इस पारिजातवृक्षको लिये जाती हूँ''॥ ५१॥

श्रीपराशरजी बोले—सत्यभामाके इस प्रकार कहनेपर वनरक्षकोंने शचीके पास जाकर उससे सम्पूर्ण वृत्तान्त ज्यों-का-त्यों कह दिया। यह सब सुनकर शचीने अपने पति देवराज इन्द्रको उत्साहित किया॥ ५२॥ हे द्विजोत्तम! तब देवराज इन्द्र पारिजातवृक्षको छुड़ानेके लिये सम्पूर्ण देवसेनाके सहित श्रीहरिसे लड़नेके लिये चले॥ ५३॥ जिस समय इन्द्रने अपने हाथमें वज्र लिया उसी समय सम्पूर्ण देवगण परिघ, निस्त्रिंश, गदा और शूल आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित हो गये॥ ५४॥ तदनन्तर देवसेनासे घिरे हुए ऐरावतारूढ इन्द्रको युद्धके लिये उद्यत देख श्रीगोविन्दने सम्पूर्ण दिशाओंको शब्दायमान करते हुए शंख-ध्वनि की और हजारों-लाखों तीखे बाण छोड़े॥ ५५-५६॥ इस प्रकार सम्पूर्ण दिशाओं और आकाशको सैकड़ों बाणोंसे पूर्ण देख देवताओंने अनेकों अस्त्र-शस्त्र छोड़े॥ ५७॥

त्रिलोकीके स्वामी श्रीमधुसूदनने देवताओंके छोड़े हुए प्रत्येक अस्त्र-शस्त्रके लीलासे ही हजारों टुकड़े कर दिये॥ ५८॥ सर्पाहारी गरुडने जलाधिपति वरुणके पाशको खींचकर अपनी चोंचसे सर्पके बच्चेके समान उसके कितने ही टुकड़े कर डाले॥ ५९॥ श्रीदेवकीनन्दनने यमके फेंके हुए दण्डको अपनी गदासे खण्ड-खण्ड कर पृथिवीपर गिरा दिया॥ ६०॥ कुबेरके विमानको भगवान्‌ने सुदर्शनचक्रद्वारा तिल-तिल कर डाला और सूर्यको अपनी तेजोमय दृष्टिसे देखकर ही निस्तेज कर दिया॥ ६१॥ भगवान्‌ने तदनन्तर बाण बरसाकर अग्निको शीतल कर दिया और वसुओंको दिशा-विदिशाओंमें भगा दिया तथा अपने चक्रसे त्रिशूलोंकी नोंक काटकर रुद्रगणको पृथिवीपर गिरा दिया॥ ६२॥ भगवान्‌के चलाये हुए बाणोंसे साध्यगण, विश्वेदेवगण, मरुद्‌गण और गन्धर्वगण सेमलकी रूईके समान आकाशमें ही लीन हो गये॥ ६३॥ श्रीभगवान्‌के साथ गरुडजी भी अपनी चोंच, पंख और पंजोंसे देवताओंको खाते, मारते और फाड़ते फिर रहे थे॥ ६४॥

फिर जिस प्रकार दो मेघ जलकी धाराएँ बरसाते हों उसी प्रकार देवराज इन्द्र और श्रीमधुसूदन एक-दूसरेपर बाण बरसाने लगे॥ ६५॥ उस युद्धमें गरुडजी ऐरावतके साथ और श्रीकृष्णचन्द्र इन्द्र तथा सम्पूर्ण देवताओंके साथ लड़ रहे थे॥ ६६॥ सम्पूर्ण बाणोंके चूक जाने और अस्त्र-शस्त्रोंके कट जानेपर इन्द्रने शीघ्रतासे वज्र और कृष्णने सुदर्शनचक्र हाथमें लिया॥ ६७॥ हे द्विजश्रेष्ठ! उस समय सम्पूर्ण त्रिलोकीमें इन्द्र और कृष्णचन्द्रको क्रमशः वज्र और चक्र लिये हुए देखकर हाहाकार मच गया॥ ६८॥ श्रीहरिने इन्द्रके छोड़े हुए वज्रको अपने हाथोंसे पकड़ लिया और स्वयं चक्र न छोड़कर इन्द्रसे कहा—''अरे, ठहर!''॥ ६९॥

इस प्रकार वज्र छिन जाने और अपने वाहन ऐरावतके गरुडद्वारा क्षत-विक्षत हो जानेके कारण भागते हुए वीर इन्द्रसे सत्यभामाने कहा—॥ ७०॥ ''हे त्रैलोक्येश्वर! तुम शचीके पति हो, तुम्हें इस प्रकार युद्धमें पीठ दिखलाना उचित नहीं है। तुम भागो मत, पारिजात-पुष्पोंकी मालासे विभूषिता होकर शची शीघ्र ही तुम्हारे पास आवेगी॥ ७१॥

अब प्रेमवश अपने पास आयी हुई शचीको पहलेकी भाँति पारिजात-पुष्पकी मालासे अलंकृत न देखकर तुम्हें देवराजत्वका क्या सुख होगा?॥ ७२॥ हे शक्र! अब तुम्हें अधिक प्रयास करनेकी आवश्यकता नहीं है, तुम संकोच मत करो; इस पारिजात-वृक्षको ले जाओ। इसे पाकर देवगण सन्तापरहित हों॥ ७३॥ अपने पतिके बाहुबलसे अत्यन्त गर्विता शचीने अपने घर जानेपर भी मुझे कुछ अधिक सम्मानकी दृष्टिसे नहीं देखा था॥ ७४॥ स्त्री होनेसे मेरा चित्त भी अधिक गम्भीर नहीं है, इसलिये मैंने भी अपने पतिका गौरव प्रकट करनेके लिये ही तुमसे यह लड़ाई ठानी थी॥ ७५॥ मुझे दूसरेकी सम्पत्ति इस पारिजातको ले जानेकी क्या आवश्यकता है? शची अपने रूप और पतिके कारण गर्विता है तो ऐसी कौन-सी स्त्री है जो इस प्रकार गर्वीली न हो?''॥ ७६॥

श्रीपराशरजी बोले—हे द्विज! सत्यभामाके इस प्रकार कहनेपर देवराज लौट आये और बोले—''हे क्रोधिते! मैं तुम्हारा सुहृद् हूँ, अत: मेरे लिये ऐसी वैमनस्य बढ़ानेवाली उक्तियोंके विस्तार करनेका कोई प्रयोजन नहीं है?॥ ७७॥ जो सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करनेवाले हैं, उन विश्वरूप प्रभुसे पराजित होनेमें भी मुझे कोई संकोच नहीं है॥ ७८॥ जिस आदि और मध्यरहित प्रभुसे यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है, जिसमें यह स्थित है और फिर जिसमें लीन होकर अन्तमें यह न रहेगा; हे देवि! जगत्की उत्पत्ति, प्रलय और पालनके कारण उस परमात्मासे ही परास्त होनेमें मुझे कैसे लज्जा हो सकती है?॥ ७९॥ जिसकी अत्यन्त अल्प और सूक्ष्म मूर्तिको, जो सम्पूर्ण जगत्को उत्पन्न करनेवाली है, सम्पूर्ण वेदोंको जाननेवाले अन्य पुरुष भी नहीं जान पाते तथा जिसने जगत्के उपकारके लिये अपनी इच्छासे ही मनुष्यरूप धारण किया है उस अजन्मा, अकर्ता और नित्य ईश्वरको जीतनेमें कौन समर्थ है?''॥ ८०॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पाँचवें अंशमें तीसवाँ अध्याय समाप्त॥ ३०॥

इकतीसवाँ अध्याय

भगवान्का द्वारकापुरीमें लौटना और सोलह हजार एक सौ कन्याओंसे विवाह करना

श्रीपराशरजी बोले—हे द्विजोत्तम! इन्द्रने जब इस प्रकार स्तुति की तो भगवान् कृष्णचन्द्र गम्भीर भावसे हँसते हुए इस प्रकार बोले—॥ १॥

श्रीकृष्णजी बोले—हे जगत्पते! आप देवराज इन्द्र हैं और हम मरणधर्मा मनुष्य हैं। हमने आपका जो अपराध किया है उसे आप क्षमा करें॥ २॥ मैंने जो यह पारिजातवृक्ष लिया था इसे इसके योग्य स्थान (नन्दनवन)-को ले जाइये। हे शक्र! मैंने तो इसे सत्यभामाके कहनेसे ही ले लिया था॥ ३॥ और आपने जो वज्र फेंका था उसे भी ले लीजिये; क्योंकि हे शक्र! यह शत्रुओंको नष्ट करनेवाला शस्त्र आपहीका है॥ ४॥

इन्द्र बोले—हे ईश! 'मैं मनुष्य हूँ' ऐसा कहकर मुझे क्यों मोहित करते हैं? हे भगवन्! मैं तो आपके इस सगुणस्वरूपको ही जानता हूँ, हम आपके सूक्ष्मस्वरूपको जाननेवाले नहीं हैं॥ ५॥ हे नाथ! आप जो हैं वही हैं, [हम तो

इतना ही जानते हैं कि] हे दैत्यदलन! आप लोकरक्षामें तत्पर हैं और इस संसारके काँटोंको निकाल रहे हैं॥ ६॥ हे कृष्ण! इस पारिजात-वृक्षको आप द्वारकापुरी ले जाइये, जिस समय आप मर्त्यलोक छोड़ देंगे, उस समय वह भूर्लोकमें नहीं रहेगा॥ ७॥ हे देवदेव! हे जगन्नाथ! हे कृष्ण! हे विष्णो! हे महाबाहो! हे शंखचक्रगदापाणे! मेरी इस धृष्टताको क्षमा कीजिये॥ ८॥

श्रीपराशरजी बोले—तदनन्तर श्रीहरि देवराजसे 'तुम्हारी जैसी इच्छा है वैसा ही सही' ऐसा कहकर सिद्ध, गन्धर्व और देवर्षिगणसे स्तुत हो भूर्लोकमें चले आये॥ ९॥ हे द्विज! द्वारकापुरीके ऊपर पहुँचकर श्रीकृष्णचन्द्रने [अपने आनेकी सूचना देते हुए] शंख बजाकर द्वारकावासियोंको आनन्दित किया॥ १०॥ तदनन्तर सत्यभामाके सहित गरुडसे उतरकर उस पारिजात-महावृक्षको [सत्यभामाके] गृहोद्यानमें लगा दिया॥ ११॥ जिसके पास आकर सब मनुष्योंको अपने पूर्वजन्मका स्मरण हो आता है और जिसके पुष्पोंसे निकली हुई गन्धसे तीन योजनतक पृथिवी सुगन्धित रहती है॥ १२॥ यादवोंने उस वृक्षके पास जाकर अपना मुख देखा तो उन्हें अपना शरीर अमानुष दिखलायी दिया॥ १३॥

तदनन्तर महामति श्रीकृष्णचन्द्रने नरकासुरके सेवकोंद्वारा लाये हुए हाथी-घोड़े आदि धनको अपने बन्धु-बान्धवोंमें बाँट दिया और नरकासुरकी वरण की हुई कन्याओंको स्वयं ले लिया॥ १४-१५॥ शुभ समय प्राप्त होनेपर श्रीजनार्दनने उन समस्त कन्याओंके साथ, जिन्हें नरकासुर बलात् हर लाया था, विवाह किया॥ १६॥ हे महामुने! श्रीगोविन्दने एक ही समय पृथक्-पृथक् भवनोंमें उन सबके साथ विधिवत् धर्मपूर्वक पाणिग्रहण किया॥ १७॥ वे सोलह हजार एक सौ स्त्रियाँ थीं; उन सबके साथ पाणिग्रहण करते समय श्रीमधुसूदनने इतने ही रूप बना लिये॥ १८॥ हे मैत्रेय! परंतु उस समय प्रत्येक कन्या 'भगवान्ने मेरा ही पाणिग्रहण किया है' इस प्रकार उन्हें एक ही समझ रही थी॥ १९॥ हे विप्र! जगत्स्रष्टा विश्वरूपधारी श्रीहरि रात्रिके समय उन सभीके घरोंमें रहते थे॥ २०॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पाँचवें अंशमें इकतीसवाँ अध्याय समाप्त॥ ३१॥

बत्तीसवाँ अध्याय

उषा-चरित्र

श्रीपराशरजी बोले—रुक्मिणीके गर्भसे उत्पन्न हुए भगवान्के प्रद्युम्न आदि पुत्रोंका वर्णन हम पहले ही कर चुके हैं; सत्यभामाने भानु और भौमेरिक आदिको जन्म दिया॥ १॥ श्रीहरिके रोहिणीके गर्भसे दीप्तिमान् और ताम्रपक्ष आदि तथा जाम्बवतीसे बलशाली साम्ब आदि पुत्र हुए॥ २॥ नाग्नजिती (सत्या)-से महाबली भद्रविन्द आदि और शैव्या (मित्रविन्दा)-से संग्रामजित् आदि उत्पन्न हुए॥ ३॥ माद्रीसे वृक आदि, लक्ष्मणासे गात्रवान् आदि तथा कालिन्दीसे श्रुत आदि पुत्रोंका जन्म हुआ॥ ४॥ इसी प्रकार भगवान्की अन्य स्त्रियोंके भी आठ अयुत आठ हजार आठ सौ (अट्ठासी हजार आठ सौ) पुत्र हुए॥ ५॥

इन सब पुत्रोंमें रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्न सबसे बड़े थे; प्रद्युम्नसे अनिरुद्धका जन्म हुआ और अनिरुद्धसे वज्र उत्पन्न हुआ॥ ६॥ हे द्विजोत्तम!

महाबली अनिरुद्ध युद्धमें किसीसे रोके नहीं जा सकते थे। उन्होंने बलिकी पौत्री एवं बाणासुरकी पुत्री उषासे विवाह किया था॥ ७॥ उस विवाहमें श्रीहरि और भगवान् शंकरका घोर युद्ध हुआ था और श्रीकृष्णचन्द्रने बाणासुरकी सहस्र भुजाएँ काट डाली थीं॥ ८॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे ब्रह्मन्! उषाके लिये श्रीमहादेव और कृष्णका युद्ध क्यों हुआ और श्रीहरिने बाणासुरकी भुजाएँ क्यों काट डालीं?॥ ९॥ हे महाभाग! आप मुझसे यह सम्पूर्ण वृत्तान्त कहिये; मुझे श्रीहरिकी यह कथा सुननेका बड़ा कुतूहल हो रहा है॥ १०॥

श्रीपराशरजी बोले—हे विप्र! एक बार बाणासुरकी पुत्री उषाने श्रीशंकरके साथ पार्वतीजीको क्रीडा करती देख स्वयं भी अपने पतिके साथ रमण करनेकी इच्छा की॥ ११॥ तब सर्वान्तर्यामिनी श्रीपार्वतीजीने उस सुकुमारीसे कहा—"तू अधिक सन्तप्त मत हो, यथासमय तू भी अपने पतिके साथ रमण करेगी"॥ १२॥ पार्वतीजीके ऐसा कहनेपर उषाने मन-ही-मन यह सोचकर कि 'न जाने ऐसा कब होगा? और मेरा पति भी कौन होगा?' [इस सम्बन्धमें] पार्वतीजीसे पूछा, तब पार्वतीजीने उससे फिर कहा—॥ १३॥

पार्वतीजी बोलीं—हे राजपुत्रि! वैशाख शुक्ला द्वादशीकी रात्रिको जो पुरुष स्वप्नमें तुझसे हठात् सम्भोग करेगा वही तेरा पति होगा॥ १४॥

श्रीपराशरजी बोले—तदनन्तर उसी तिथिको उषाकी स्वप्नावस्थामें किसी पुरुषने उससे, जैसा श्रीपार्वतीदेवीने कहा था, उसी प्रकार सम्भोग किया और उसका भी उसमें अनुराग हो गया॥ १५॥ हे मैत्रेय! तब उसके बाद स्वप्नसे जगनेपर जब उसने उस पुरुषको न देखा तो वह उसे देखनेके लिये अत्यन्त उत्सुक होकर अपनी सखीकी ओर लक्ष्य करके निर्लज्जतापूर्वक कहने लगी—"हे नाथ! आप कहाँ चले गये?"॥ १६॥

बाणासुरका मन्त्री कुम्भाण्ड था; उसकी चित्रलेखा नामकी पुत्री थी, वह उषाकी सखी थी, [उषाका यह प्रलाप सुनकर] उसने पूछा—"यह तुम किसके विषयमें कह रही हो?"॥ १७॥ किन्तु जब लज्जावश उषाने उसे कुछ भी न बतलाया तब चित्रलेखाने [सब बात गुप्त रखनेका] विश्वास दिलाकर उषासे सब वृत्तान्त कहला लिया॥ १८॥ चित्रलेखाके सब बात जान लेनेपर उषाने जो कुछ श्रीपार्वतीजीने कहा था, वह भी उसे सुना दिया और कहा कि अब जिस प्रकार उसका पुनः समागम हो वही उपाय करो॥ १९॥

चित्रलेखाने कहा—हे प्रिये! तुमने जिस पुरुषको देखा है उसे तो जानना भी बहुत कठिन है फिर उसे बतलाना या पाना कैसे हो सकता है? तथापि मैं तुम्हारा कुछ-न-कुछ उपकार तो करूँगी ही॥ २०॥ तुम सात या आठ दिनतक मेरी प्रतीक्षा करना—ऐसा कहकर वह अपने घरके भीतर गयी और उस पुरुषको ढूँढनेका उपाय करने लगी॥ २१॥

श्रीपराशरजी बोले—तदनन्तर [सात-आठ दिन पश्चात् लौटकर] चित्रलेखाने चित्रपटपर मुख्य-मुख्य देवता, दैत्य, गन्धर्व और मनुष्योंके चित्र लिखकर उषाको दिखलाये॥ २२॥ तब उषाने गन्धर्व, नाग, देवता और दैत्य आदिको छोड़कर केवल मनुष्योंपर और उनमें भी विशेषतः अन्धक और वृष्णिवंशी यादवोंपर ही दृष्टि दी॥ २३॥ हे द्विज! राम और कृष्णके चित्र देखकर वह सुन्दर भृकुटिवाली लज्जासे जडवत् हो गयी तथा प्रद्युम्नको देखकर उसने लज्जावश अपनी दृष्टि हटा ली॥ २४॥ तत्पश्चात् प्रद्युम्नतनय प्रियतम अनिरुद्धजीको देखते ही उस अत्यन्त

विलासिनीकी लज्जा मानो कहीं चली गयी॥ २५॥ [वह बोल उठी]—'वह यही है, वह यही है।' उसके इस प्रकार कहनेपर योगगामिनी चित्रलेखाने उस बाणासुरकी कन्यासे कहा—॥ २६॥

चित्रलेखा बोली—देवीने प्रसन्न होकर यह कृष्णका पौत्र ही तेरा पति निश्चित किया है; इसका नाम अनिरुद्ध है और यह अपनी सुन्दरताके लिये प्रसिद्ध है॥ २७॥ यदि तुझको यह पति मिल गया तब तो तूने मानो सभी कुछ पा लिया; किन्तु कृष्णचन्द्रद्वारा सुरक्षित द्वारकापुरीमें पहले प्रवेश ही करना कठिन है॥ २८॥ तथापि हे सखि! किसी उपायसे मैं तेरे पतिको लाऊँगी ही, तू इस गुप्त रहस्यको किसीसे भी न कहना॥ २९॥ मैं शीघ्र ही आऊँगी, इतनी देर तू मेरे वियोगको सहन कर। अपनी सखी उषाको इस प्रकार ढाढस बँधाकर चित्रलेखा द्वारकापुरीको गयी॥ ३०॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पाँचवें अंशमें बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त॥ ३२॥

तैंतीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण और बाणासुरका युद्ध

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! एक बार बाणासुरने भी भगवान् त्रिलोचनको प्रणाम करके कहा था कि हे देव! बिना युद्धके इन हजार भुजाओंसे मुझे बड़ा ही खेद हो रहा है॥ १॥ क्या कभी मेरी इन भुजाओंको सफल करनेवाला युद्ध होगा? भला बिना युद्धके इन भाररूप भुजाओंसे मुझे लाभ ही क्या है?॥ २॥

श्रीशंकरजी बोले—हे बाणासुर! जिस समय तेरी मयूरचिह्नवाली ध्वजा टूट जायगी, उसी समय तेरे सामने मांसभोजी यक्ष-पिशाचादिको आनन्द देनेवाला युद्ध उपस्थित होगा॥ ३॥

श्रीपराशरजी बोले—तदनन्तर, वरदायक श्रीशंकरको प्रणामकर बाणासुर अपने घर आया और फिर कालान्तरमें उस ध्वजाको टूटी देखकर अति आनन्दित हुआ॥ ४॥ इसी समय अप्सराश्रेष्ठ चित्रलेखा अपने योगबलसे अनिरुद्धको वहाँ ले आयी॥ ५॥ अनिरुद्धको कन्यान्तःपुरमें आकर उषाके साथ रमण करता जान अन्तःपुररक्षकोंने सम्पूर्ण वृत्तान्त दैत्यराज बाणासुरसे कह दिया॥ ६॥ तब महावीर बाणासुरने अपने सेवकोंको उससे युद्ध करनेकी आज्ञा दी; किंतु शत्रु-दमन अनिरुद्धने अपने सम्मुख आनेपर उस सम्पूर्ण सेनाको एक लोहमय दण्डसे मार डाला॥ ७॥

अपने सेवकोंके मारे जानेपर बाणासुर अनिरुद्धको मार डालनेकी इच्छासे रथपर चढ़कर उनके साथ युद्ध करने लगा; किंतु अपनी शक्तिभर युद्ध करनेपर भी वह यदुवीर अनिरुद्धजीसे परास्त हो गया॥ ८॥ तब वह मन्त्रियोंकी प्रेरणासे मायापूर्वक युद्ध करने लगा और यदुनन्दन अनिरुद्धको नागपाशसे बाँध लिया॥ ९॥

इधर द्वारकापुरीमें जिस समय समस्त यादवोंमें यह चर्चा हो रही थी कि 'अनिरुद्ध कहाँ गये?' उसी समय देवर्षि नारदने उनके बाणासुरद्वारा बाँधे जानेकी सूचना दी॥ १०॥ नारदजीके मुखसे योगविद्यामें निपुण युवती चित्रलेखाद्वारा उन्हें शोणितपुर ले जाये गये सुनकर यादवोंको विश्वास हो गया कि देवताओंने उन्हें नहीं चुराया*॥ ११॥ तब स्मरणमात्रसे उपस्थित हुए गरुडपर चढ़कर

* अबतक यादवगण यही सोच रहे थे कि पारिजात-हरणसे चिढ़कर देवता ही अनिरुद्धको चुरा ले गये हैं।

श्रीहरि बलराम और प्रद्युम्नके सहित बाणासुरकी राजधानीमें आये ॥ १२ ॥ नगरमें घुसते ही उन तीनोंका भगवान् शंकरके पार्षद प्रमथगणोंसे युद्ध हुआ; उन्हें नष्ट करके श्रीहरि बाणासुरकी राजधानीके समीप चले गये ॥ १३ ॥

तदनन्तर बाणासुरकी रक्षाके लिये तीन सिर और तीन पैरवाला माहेश्वर नामक महान् ज्वर आगे बढ़कर श्रीभगवान्से लड़ने लगा ॥ १४ ॥ [उस ज्वरका ऐसा प्रभाव था कि] उसके फेंके हुए भस्मके स्पर्शसे सन्तप्त हुए श्रीकृष्णचन्द्रके शरीरका आलिंगन करनेपर बलदेवजीने भी शिथिल होकर नेत्र मूँद लिये ॥ १५ ॥ इस प्रकार भगवान् शार्ङ्गधरके साथ [उनके शरीरमें व्याप्त होकर] युद्ध करते हुए उस माहेश्वर ज्वरको वैष्णव ज्वरने तुरंत उनके शरीरसे निकाल दिया ॥ १६ ॥ उस समय श्रीनारायणकी भुजाओंके आघातसे उस माहेश्वर ज्वरको पीड़ित और विह्वल हुआ देखकर पितामह ब्रह्माजीने भगवान्से कहा—'इसे क्षमा कीजिये' ॥ १७ ॥ तब भगवान् मधुसूदनने 'अच्छा, मैंने क्षमा की' ऐसा कहकर उस वैष्णव ज्वरको अपनेमें लीन कर लिया ॥ १८ ॥

ज्वर बोला—जो मनुष्य आपके साथ मेरे इस युद्धका स्मरण करेंगे वे ज्वरहीन हो जायँगे, ऐसा कहकर वह चला गया ॥ १९ ॥

तदनन्तर भगवान् कृष्णचन्द्रने पंचाग्नियोंको जीतकर नष्ट किया और फिर लीलासे ही दानवसेनाको नष्ट करने लगे ॥ २० ॥ तब सम्पूर्ण दैत्यसेनाके सहित बलि-पुत्र बाणासुर, भगवान् शंकर और स्वामिकार्त्तिकेयजी भगवान् कृष्णके साथ युद्ध करने लगे ॥ २१ ॥ श्रीहरि और श्रीमहादेवजीका परस्पर बड़ा घोर युद्ध हुआ, इस युद्धमें प्रयुक्त शस्त्रास्त्रोंके किरणजालसे सन्तप्त होकर सम्पूर्ण लोक क्षुब्ध हो गये ॥ २२ ॥ इस घोर युद्धके उपस्थित होनेपर देवताओंने समझा कि निश्चय ही यह सम्पूर्ण जगत्का प्रलयकाल आ गया है ॥ २३ ॥ श्रीगोविन्दने जृम्भकास्त्र छोड़ा जिससे महादेवजी निद्रित-से होकर जमुहाई लेने लगे; उनकी ऐसी दशा देखकर दैत्य और प्रमथगण चारों ओर भागने लगे ॥ २४ ॥ भगवान् शंकर निद्राभिभूत होकर रथके पिछले भागमें बैठ गये और फिर अनायास ही अद्भुत कर्म करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रसे युद्ध न कर सके ॥ २५ ॥ तदनन्तर गरुडद्वारा वाहनके नष्ट हो जानेसे, प्रद्युम्नजीके शस्त्रोंसे पीड़ित होनेसे तथा कृष्णचन्द्रके हुंकारसे शक्तिहीन हो जानेसे स्वामिकार्त्तिकेय भी भागने लगे ॥ २६ ॥

इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रद्वारा महादेवजीके निद्राभिभूत, दैत्य-सेनाके नष्ट, स्वामिकार्त्तिकेयके पराजित और शिवगणोंके क्षीण हो जानेपर कृष्ण, प्रद्युम्न और बलभद्रजीके साथ युद्ध करनेके लिये वहाँ बाणासुर साक्षात् नन्दीश्वरद्वारा हाँके जाते हुए महान् रथपर चढ़कर आया ॥ २७-२८ ॥ उसके आते ही महावीर्यशाली बलभद्रजीने अनेकों बाण बरसाकर बाणासुरकी सेनाको छिन्न-भिन्न कर डाला; तब वह वीरधर्मसे भ्रष्ट होकर भागने लगी ॥ २९ ॥ बाणासुरने देखा कि उसकी सेनाको बलभद्रजी बड़ी फुर्तीसे हलसे खींच-खींचकर मूसलसे मार रहे हैं और श्रीकृष्णचन्द्र उसे बाणोंसे बीधें डालते हैं ॥ ३० ॥ तब बाणासुरका श्रीकृष्णचन्द्रके साथ घोर युद्ध छिड़ गया। वे दोनों परस्पर कवचभेदी बाण छोड़ने लगे। परंतु भगवान् कृष्णने बाणासुरके छोड़े हुए तीखे बाणोंको अपने बाणोंसे काट डाला, और फिर बाणासुर कृष्णको तथा कृष्ण बाणासुरको बींधने लगे ॥ ३१-३२ ॥ हे द्विज! उस समय परस्पर चोट करनेवाले बाणासुर और कृष्ण दोनों ही विजयकी इच्छासे निरन्तर शीघ्रतापूर्वक अस्त्र-शस्त्र छोड़ने लगे ॥ ३३ ॥

अन्तमें, समस्त बाणोंके छिन्न और सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंके निष्फल हो जानेपर श्रीहरिने बाणासुरको मार डालनेका विचार किया॥ ३४॥ तब दैत्यमण्डलके शत्रु भगवान् कृष्णने सैकड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान अपने सुदर्शनचक्रको हाथमें ले लिया॥ ३५॥

जिस समय भगवान् मधुसूदन बाणासुरको मारनेके लिये चक्र छोड़ना ही चाहते थे उसी समय दैत्योंकी विद्या (मन्त्रमयी कुलदेवी) कोटरी भगवान्‌के सामने नग्नावस्थामें उपस्थित हुई॥ ३६॥ उसे देखते ही भगवान्‌ने नेत्र मूँद लिये और बाणासुरको लक्ष्य करके उस शत्रुकी भुजाओंके वनको काटनेके लिये सुदर्शनचक्र छोड़ा॥ ३७॥ भगवान् अच्युतके द्वारा प्रेरित उस चक्रने दैत्योंके छोड़े हुए अस्त्रसमूहको काटकर क्रमशः बाणासुरकी भुजाओंको काट डाला [केवल दो भुजाएँ छोड़ दीं]॥ ३८॥ तब त्रिपुरशत्रु भगवान् शंकर जान गये कि श्रीमधुसूदन बाणासुरके बाहुवनको काटकर अपने हाथमें आये हुए चक्रको उसका वध करनेके लिये फिर छोड़ना चाहते है॥ ३९॥ अतः बाणासुरको अपने खण्डित भुजदण्डोंसे लोहूकी धारा बहाते देख श्रीउमापतिने गोविन्दके पास आकर सामपूर्वक कहा—॥ ४०॥

श्रीशंकरजी बोले—हे कृष्ण! हे कृष्ण!! हे जगन्नाथ!! मैं यह जानता हूँ कि आप पुरुषोत्तम परमेश्वर, परमात्मा और आदि-अन्तसे रहित श्रीहरि हैं॥ ४१॥ आप सर्वभूतमय हैं। आप जो देव, तिर्यक् और मनुष्यादि योनियोंमें शरीर धारण करते हैं यह आपकी स्वाधीन चेष्टाकी उपलक्षिका लीला ही है॥ ४२॥ हे प्रभो! आप प्रसन्न होइये। मैंने इस बाणासुरको अभयदान दिया है। हे नाथ! मैंने जो वचन दिया है उसे आप मिथ्या न करें॥ ४३॥ हे अव्यय! यह आपका अपराधी नहीं है; यह तो मेरा आश्रय पानेसे ही इतना गर्वीला हो गया है। इस दैत्यको मैंने ही वर दिया था, इसलिये मैं ही आपसे इसके लिये क्षमा कराता हूँ॥ ४४॥

श्रीपराशरजी बोले—त्रिशूलपाणि भगवान् उमापतिके इस प्रकार कहनेपर श्रीगोविन्दने बाणासुरके प्रति क्रोधभाव त्याग दिया और प्रसन्नवदन होकर उनसे कहा—॥ ४५॥

श्रीभगवान् बोले—हे शंकर! यदि आपने इसे वर दिया है तो यह बाणासुर जीवित रहे। आपके वचनका मान रखनेके लिये मैं इस चक्रको रोके लेता हूँ॥ ४६॥ आपने जो अभय दिया है वह सब मैंने भी दे दिया। हे शंकर! आप अपनेको मुझसे सर्वथा अभिन्न देखें॥ ४७॥ आप यह भली प्रकार समझ लें कि जो मैं हूँ सो आप हैं तथा यह सम्पूर्ण जगत्, देव, असुर और मनुष्य आदि कोई भी मुझसे भिन्न नहीं हैं॥ ४८॥ हे हर! जिन लोगोंका चित्त अविद्यासे मोहित है, वे भिन्नदर्शी पुरुष ही हम दोनोंमें भेद देखते और बतलाते हैं। हे वृषभध्वज! मैं प्रसन्न हूँ, आप पधारिये, मैं भी अब जाऊँगा॥ ४९-५०॥

श्रीपराशरजी बोले—इस प्रकार कहकर भगवान् कृष्ण जहाँ प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्ध थे वहाँ गये। उनके पहुँचते ही अनिरुद्धके बन्धनरूप समस्त नागगण गरुडके वेगसे उत्पन्न हुए वायुके प्रहारसे नष्ट हो गये॥ ५१॥ तदनन्तर सपत्नीक अनिरुद्धको गरुडपर चढ़ाकर बलराम, प्रद्युम्न और कृष्णचन्द्र द्वाराकापुरीमें लौट आये॥ ५२॥ हे विप्र! वहाँ भू-भार-हरणकी इच्छासे रहते हुए श्रीजनार्दन अपने पुत्र-पौत्रादिसे घिरे रहकर अपनी रानियोंके साथ रमण करने लगे॥ ५३॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पाँचवें अंशमें तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त॥ ३३॥

चौंतीसवाँ अध्याय

पौण्ड्रक-वध तथा काशीदहन

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे गुरो! श्रीविष्णुभगवान्‌ने मनुष्य-शरीर धारणकर जो लीलासे ही इन्द्र, शंकर और सम्पूर्ण देवगणको जीतकर महान् कर्म किये थे [वह मैं सुन चुका]॥ १॥ इनके सिवा देवताओंकी चेष्टाओंका विघात करनेवाले उन्होंने और भी जो कर्म किये थे, हे महाभाग! वे सब मुझे सुनाइये; मुझे उनके सुननेका बड़ा कुतूहल हो रहा है॥ २॥

श्रीपराशरजी बोले—हे ब्रह्मर्षे! भगवान्‌ने मनुष्यावतार लेकर जिस प्रकार काशीपुरी जलायी थी वह मैं सुनाता हूँ, तुम ध्यान देकर सुनो॥ ३॥ पौण्ड्रकवंशीय वासुदेव नामक एक राजाको अज्ञानमोहित पुरुष 'आप वासुदेवरूपसे पृथिवीपर अवतीर्ण हुए हैं' ऐसा कहकर स्तुति किया करते थे॥ ४॥ अन्तमें वह भी यही मानने लगा कि 'मैं वासुदेवरूपसे पृथिवीमें अवतीर्ण हुआ हूँ!' इस प्रकार आत्मविस्मृत हो जानेसे उसने विष्णुभगवान्‌के समस्त चिह्न धारण कर लिये॥ ५॥ और महात्मा कृष्णचन्द्रके पास यह सन्देश लेकर दूत भेजा कि "हे मूढ़! अपने वासुदेव नामको छोड़कर मेरे चक्र आदि सम्पूर्ण चिह्नोंको छोड़ दे और यदि तुझे जीवनकी इच्छा है तो मेरी शरणमें आ"॥ ६-७॥

दूतने जब इसी प्रकार कहा तो श्रीजनार्दन उससे हँसकर बोले—"ठीक है, मैं अपने चिह्न चक्रको तेरे प्रति छोड़ूँगा। हे दूत! मेरी ओरसे तू पौण्ड्रकसे जाकर यह कहना कि मैंने तेरे वाक्यका वास्तविक भाव समझ लिया है, तुझे जो करना हो सो कर॥ ८-९॥ मैं अपने चिह्न और वेष धारणकर तेरे नगरमें आऊँगा और निस्सन्देह अपने चिह्न चक्रको तेरे ऊपर छोड़ूँगा॥ १०॥ 'और तूने जो आज्ञा करते हुए 'आ' ऐसा कहा है, सो मैं उसे भी अवश्य पालन करूँगा और कल शीघ्र ही तेरे पास पहुँचूँगा॥ ११॥ हे राजन्! तेरी शरणमें आकर मैं वही उपाय करूँगा जिससे फिर तुझसे मुझे कोई भय न रहे॥ १२॥

श्रीपराशरजी बोले—श्रीकृष्णचन्द्रके ऐसा कहनेपर जब दूत चला गया तो भगवान् स्मरण करते ही उपस्थित हुए गरुडपर चढ़कर तुरंत उसकी राजधानीको चले॥ १३॥

भगवान्‌के आक्रमणका समाचार सुनकर काशीनरेश भी उसका पृष्ठपोषक (सहायक) होकर अपनी सम्पूर्ण सेना ले उपस्थित हुआ॥ १४॥ तदनन्तर अपनी महान् सेनाके सहित काशीनरेशकी सेना लेकर पौण्ड्रक वासुदेव श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख आया॥ १५॥ भगवान्‌ने दूरसे ही उसे हाथमें चक्र, गदा, शार्ङ्गधनुष और पद्म लिये एक उत्तम रथपर बैठे देखा॥ १६॥ श्रीहरिने देखा कि उसके कण्ठमें वैजयन्तीमाला है, शरीरमें पीताम्बर है, गरुडरचित ध्वजा है और वक्ष:स्थलमें श्रीवत्सचिह्न हैं॥ १७॥ उसे नाना प्रकारके रत्नोंसे सुसज्जित किरीट और कुण्डल धारण किये देखकर श्रीगरुडध्वज भगवान् गम्भीरभावसे हँसने लगे॥ १८॥ और हे द्विज! उसकी हाथी-घोड़ोंसे बलिष्ठ तथा निस्त्रिंश खड्ग, गदा, शूल, शक्ति और धनुष आदिसे सुसज्जित सेनासे युद्ध करने लगे॥ १९॥ श्रीभगवान्‌ने एक क्षणमें ही अपने शार्ङ्गधनुषसे छोड़े हुए शत्रुओंको विदीर्ण करनेवाले तीक्ष्ण बाणों तथा गदा और चक्रसे उसकी सम्पूर्ण सेनाको नष्ट कर डाला॥ २०॥ इसी प्रकार काशिराजकी सेनाको भी नष्ट करके श्रीजनार्दनने अपने चिह्नोंसे युक्त मूढमति पौण्ड्रकसे कहा॥ २१॥

श्रीभगवान् बोले—हे पौण्ड्रक! मेरे प्रति तूने जो दूतके मुखसे यह कहलाया था कि मेरे चिह्नोंको छोड़ दे सो मैं तेरे सम्मुख उस आज्ञाको सम्पन्न करता हूँ॥ २२॥ देख, यह मैंने चक्र छोड़ दिया, यह तेरे ऊपर गदा भी छोड़ दी और यह गरुड भी छोड़े देता हूँ, यह तेरी ध्वजापर आरूढ़ हों॥ २३॥

श्रीपराशरजी बोले—ऐसा कहकर छोड़े हुए चक्रने पौण्ड्रकको विदीर्ण कर डाला, गदाने नीचे गिरा दिया और गरुडने उसकी ध्वजा तोड़ डाली॥ २४॥ तदनन्तर सम्पूर्ण सेनामें हाहाकार मच जानेपर अपने मित्रका बदला चुकानेके लिये खड़ा हुआ काशीनरेश श्रीवासुदेवसे लड़ने लगा॥ २५॥ तब भगवान्ने शार्ङ्गधनुषसे छोड़े हुए एक बाणसे उसका सिर काटकर सम्पूर्ण लोगोंको विस्मित करते हुए काशीपुरीमें फेंक दिया॥ २६॥ इस प्रकार पौण्ड्रक और काशीनरेशको अनुचरोंसहित मारकर भगवान् फिर द्वारकाको लौट आये और वहाँ स्वर्ग-सदृश सुखका अनुभव करते हुए रमण करने लगे॥ २७॥

इधर काशीपुरीमें काशिराजका सिर गिरा देख सम्पूर्ण नगरनिवासी विस्मयपूर्वक कहने लगे—'यह क्या हुआ? इसे किसने काट डाला?'॥ २८॥

जब उसके पुत्रको मालूम हुआ कि उसे श्रीवासुदेवने मारा है तो उसने अपने पुरोहितके साथ मिलकर भगवान् शंकरको सन्तुष्ट किया॥ २९॥ अविमुक्त महाक्षेत्रमें उस राजकुमारसे सन्तुष्ट होकर श्रीशंकरने कहा—'वर माँग'॥ ३०॥ वह बोला—"हे भगवन्! हे महेश्वर!! आपकी कृपासे मेरे पिताका वध करनेवाले कृष्णका नाश करनेके लिये (अग्निसे) कृत्या उत्पन्न हो"*॥ ३१॥

श्रीपराशरजी बोले—भगवान् शंकरने कहा, 'ऐसा ही होगा।' उनके ऐसा कहनेपर दक्षिणाग्निका चयन करनेके अनन्तर उससे उस अग्निका ही विनाश करनेवाली कृत्या उत्पन्न हुई॥ ३२॥ उसका कराल मुख ज्वालामालाओंसे पूर्ण था तथा उसके केश अग्निशिखाके समान दीप्तिमान् और ताम्रवर्ण थे। वह क्रोधपूर्वक 'कृष्ण! कृष्ण!!' कहती द्वारकापुरीमें आयी॥ ३३॥

हे मुने! उसे देखकर लोगोंने भय-विचलित नेत्रोंसे जगद्गति भगवान् मधुसूदनकी शरण ली॥ ३४॥ जब भगवान् चक्रपाणिने जाना कि श्रीशंकरकी उपासना कर काशिराजके पुत्रने ही यह महाकृत्या उत्पन्न की है तो अक्षक्रीडामें लगे हुए उन्होंने लीलासे ही यह कहकर कि 'इस अग्निज्वालामयी जटाओंवाली भयंकर कृत्याको मार डाल' अपना चक्र छोड़ा॥ ३५-३६॥

तब भगवान् विष्णुके सुदर्शनचक्रने उस अग्नि-मालामण्डित जटाओंवाली और अग्नि-ज्वालाओंके कारण भयानक मुखवाली कृत्याका पीछा किया॥ ३७॥ उस चक्रके तेजसे दग्ध होकर छिन्न-भिन्न होती हुई वह माहेश्वरी कृत्या अति वेगसे दौड़ने लगी तथा वह चक्र भी उतने ही वेगसे उसका पीछा करने लगा॥ ३८॥ हे मुनिश्रेष्ठ! अन्तमें विष्णुचक्रसे हतप्रभाव हुई कृत्याने शीघ्रतासे काशीमें ही प्रवेश किया॥ ३९॥ उस समय काशी-नरेशकी सम्पूर्ण सेना और प्रमथगण अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित होकर उस चक्रके सम्मुख आये॥ ४०॥

तब वह चक्र अपने तेजसे शस्त्रास्त्र-प्रयोगमें कुशल उस सम्पूर्ण सेनाको दग्धकर कृत्याके

* इस वाक्यका अर्थ यह भी होता है कि 'मेरे वधके लिये मेरे पिताके मारनेवाले कृष्णके पास कृत्या उत्पन्न हो।' इसलिये यदि इस वरका विपरीत परिणाम हुआ तो उसमें शंका नहीं करनी चाहिये।

सहित सम्पूर्ण वाराणसीको जलाने लगा॥ ४१॥ जो राजा, प्रजा और सेवकोंसे पूर्ण थी; घोड़े, हाथी और मनुष्योंसे भरी थी; सम्पूर्ण गोष्ठ और कोशोंसे युक्त थी और देवताओंके लिये भी दुर्दर्शनीय थी, उसी काशीपुरीको भगवान् विष्णुके उस चक्रने उसके गृह, कोट और चबूतरोंमें अग्निकी ज्वालाएँ प्रकटकर जला डाला॥ ४२-४३॥ अन्तमें, जिसका क्रोध अभी शान्त नहीं हुआ तथा जो अत्यन्त उग्र कर्म करनेको उत्सुक था और जिसकी दीप्ति चारों ओर फैल रही थी, वह चक्र फिर लौटकर भगवान् विष्णुके हाथमें आ गया॥ ४४॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पाँचवें अंशमें चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त॥ ३४॥

पैंतीसवाँ अध्याय

साम्बका विवाह

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे ब्रह्मन्! अब मैं फिर मतिमान् बलभद्रजीके पराक्रमकी वार्ता सुनना चाहता हूँ, आप वर्णन कीजिये॥ १॥ हे भगवन्! मैंने उनके यमुनाकर्षणादि पराक्रम तो सुन लिये; अब हे महाभाग! उन्होंने जो और-और विक्रम दिखलाये हैं, उनका वर्णन कीजिये॥ २॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! अनन्त, अप्रमेय, धरणीधर शेषावतार श्रीबलरामजीने जो कर्म किये थे, वह सुनो—॥ ३॥

एक बार जाम्बवतीनन्दन वीरवर साम्बने स्वयंवरके अवसरपर दुर्योधनकी पुत्रीको बलात् हरण किया॥ ४॥ तब महावीर कर्ण, दुर्योधन, भीष्म और द्रोण आदिने क्रुद्ध होकर उसे युद्धमें हराकर बाँध लिया॥ ५॥ यह समाचार पाकर कृष्णचन्द्र आदि समस्त यादवोंने दुर्योधनादिपर क्रुद्ध होकर उन्हें मारनेके लिये बड़ी तैयारी की॥ ६॥ उनको रोककर श्रीबलरामजीने मदिराके उन्मादसे लड़खड़ाते हुए शब्दोंमें कहा—"कौरवगण मेरे कहनेसे साम्बको छोड़ देंगे, अतः मैं अकेला ही उनके पास जाता हूँ"॥ ७॥

श्रीपराशरजी बोले—तदनन्तर, श्रीबलदेवजी हस्तिनापुरके समीप पहुँचकर उसके बाहर एक उद्यानमें ठहर गये; उन्होंने नगरमें प्रवेश नहीं किया॥ ८॥ बलरामजीको आये जान दुर्योधन आदि राजाओंने उन्हें गौ, अर्घ्य और पाद्यादि निवेदन किये॥ ९॥

उन सबको विधिवत् ग्रहण कर बलभद्रजीने कौरवोंसे कहा—"राजा उग्रसेनकी आज्ञा है आपलोग साम्बको तुरन्त छोड़ दें"॥ १०॥

हे द्विजसत्तम! बलरामजीके इन वचनोंको सुनकर भीष्म, द्रोण, कर्ण और दुर्योधन आदि राजाओंको बड़ा क्षोभ हुआ॥ ११॥ और यदुवंशको राज्यपदके अयोग्य समझ बाह्लिक आदि सभी कौरवगण कुपित होकर मूसलधारी बलभद्रजीसे कहने लगे—॥ १२॥ "हे बलभद्र! तुम यह क्या कह रहे हो; ऐसा कौन यदुवंशी है जो कुरुकुलोत्पन्न किसी वीरको आज्ञा दे?॥ १३॥ यदि उग्रसेन भी कौरवोंको आज्ञा दे सकता है तो राजाओंके योग्य कौरवोंके इस श्वेत छत्रका क्या प्रयोजन है?॥ १४॥ अतः हे बलराम! तुम जाओ अथवा रहो, हमलोग तुम्हारी या उग्रसेनकी आज्ञासे अन्यायकर्मा साम्बको नहीं छोड़ सकते॥ १५॥ पूर्वकालमें कुकुर और अन्धकवंशीय यादवगण हम माननीयोंको प्रणाम किया करते थे सो अब

वे ऐसा नहीं करते तो न सही, किन्तु स्वामीको यह सेवककी ओरसे आज्ञा देना कैसा?॥ १६ ॥ तुमलोगोंके साथ समान आसन और भोजनका व्यवहार करके तुम्हें हमहीने गर्वीला बना दिया है; इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है; क्योंकि हमने ही प्रीतिवश नीतिका विचार नहीं किया॥ १७ ॥ हे बलराम! हमने जो तुम्हें यह अर्घ्य आदि निवेदन किया है यह प्रेमवश ही किया है, वास्तवमें हमारे कुलकी तरफसे तुम्हारे कुलको अर्घ्यादि देना उचित नहीं है''॥ १८ ॥

श्रीपराशरजी बोले—ऐसा कहकर कौरवगण यह निश्चय करके कि ''हम कृष्णके पुत्र साम्बको नहीं छोड़ेंगे'' तुरन्त हस्तिनापुरमें चले गये॥ १९ ॥ तदनन्तर हलायुध श्रीबलरामजीने उनके तिरस्कारसे उत्पन्न हुए क्रोधसे मत्त होकर घूरते हुए पृथिवीमें लात मारी॥ २० ॥ महात्मा बलरामजीके पाद-प्रहारसे पृथिवी फट गयी और वे अपने शब्दसे सम्पूर्ण दिशाओंको गुँजाकर कम्पायमान करने लगे तथा लाल-लाल नेत्र और टेढ़ी भृकुटि करके बोले- ॥ २१-२२ ॥ ''अहो! इन सारहीन दुरात्मा कौरवोंको यह कैसा राजमदका अभिमान है। कौरवोंका महीपालत्व तो स्वत:सिद्ध है और हमारा सामयिक—ऐसा समझकर ही आज ये महाराज उग्रसेनकी आज्ञा नहीं मानते; बल्कि उसका उल्लंघन कर रहे हैं॥ २३ ॥ आज राजा उग्रसेन सुधर्मा-सभामें स्वयं विराजमान होते हैं, उसमें शचीपति इन्द्र भी नहीं बैठने पाते। परन्तु इन कौरवोंको धिक्कार है जिन्हें सैकड़ों मनुष्योंके उच्छिष्ट राजसिंहासनमें इतनी तुष्टि है॥ २४ ॥ जिनके सेवकोंकी स्त्रियाँ भी पारिजात-वृक्षकी पुष्प-मंजरी धारण करती हैं वह भी इन कौरवोंके महाराज नहीं है? [यह कैसा आश्चर्य है?]॥ २५ ॥ वे उग्रसेन ही सम्पूर्ण राजाओंके महाराज बनकर रहें। आज मैं अकेला ही पृथिवीको कौरवहीन करके उनकी द्वारकापुरीको जाऊँगा॥ २६ ॥ आज कर्ण, दुर्योधन, द्रोण, भीष्म, बाह्लिक, दुश्शासनादि, भूरि, भूरिश्रवा, सोमदत्त, शल, भीम, अर्जुन, युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव तथा अन्यान्य समस्त कौरवोंको उनके हाथी-घोड़े और रथके सहित मारकर तथा नववधूके साथ वीरवर साम्बको लेकर ही मैं द्वारकापुरीमें जाकर उग्रसेन आदि अपने बन्धु-बान्धवोंको देखूँगा॥ २७—२९ ॥ अथवा समस्त कौरवोंके सहित उनके निवासस्थान इस हस्तिनापुर नगरको ही अभी गंगाजीमें फेंके देता हूँ''॥ ३० ॥

श्रीपराशरजी बोले—ऐसा कहकर मदसे अरुणनयन मुसलायुध श्रीबलभद्रजीने हलकी नोंकको हस्तिनापुरके खाईं और दुर्गसे युक्त प्राकारके मूलमें लगाकर खींचा॥ ३१ ॥ उस समय सम्पूर्ण हस्तिनापुर सहसा डगमगाता देख समस्त कौरवगण क्षुब्धचित्त होकर भयभीत हो गये॥ ३२ ॥ [और कहने लगे—] ''हे राम! हे राम! हे महाबाहो! क्षमा करो, क्षमा करो। हे मुसलायुध! अपना कोप शान्त करके प्रसन्न होइये॥ ३३ ॥ हे बलराम! हम आपको पत्नीके सहित इस साम्बको सौंपते हैं। हम आपका प्रभाव नहीं जानते थे, इसीसे आपका अपराध किया; कृपया क्षमा कीजिये''॥ ३४ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! तदनन्तर कौरवोंने तुरन्त ही अपने नगरसे बाहर आकर पत्नीसहित साम्बको श्रीबलरामजीके अर्पण कर दिया॥ ३५ ॥ तब प्रणामपूर्वक प्रिय वाक्य बोलते हुए भीष्म, द्रोण, कृप आदिसे वीरवर बलरामजीने कहा—''अच्छा मैंने क्षमा किया''॥ ३६ ॥ हे द्विज! इस समय भी हस्तिनापुर [गंगाकी ओर] कुछ झुका हुआ-सा दिखायी देता है, यह श्रीबलरामजीके बल और शूरवीरताका परिचय

देनेवाला उनका प्रभाव ही है॥ ३७॥ तदनन्तर कौरवोंने बलरामजीके सहित साम्बका पूजन किया तथा बहुत-से दहेज और वधूके सहित उन्हें द्वारकापुरी भेज दिया॥ ३८॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पाँचवें अंशमें पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त॥ ३५॥

छत्तीसवाँ अध्याय

द्विविद-वध

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! बलशाली बलरामजीका ऐसा ही पराक्रम था। अब, उन्होंने जो और एक कर्म किया था वह भी सुनो॥ १॥ द्विविद नामक एक महावीर्यशाली वानरश्रेष्ठ देवविरोधी दैत्यराज नरकासुरका मित्र था॥ २॥ भगवान् कृष्णने देवराज इन्द्रकी प्रेरणासे नरकासुरका वध किया था, इसलिये वीर वानर द्विविदने देवताओंसे वैर ठाना॥ ३॥ [उसने निश्चय किया कि] ''मैं मर्त्यलोकका क्षय कर दूँगा और इस प्रकार यज्ञ-यागादिका उच्छेद करके सम्पूर्ण देवताओंसे इसका बदला चुका लूँगा''॥ ४॥ तबसे वह अज्ञानमोहित होकर यज्ञोंको विध्वंस करने लगा और साधुमर्यादाको मिटाने तथा देहधारी जीवोंको नष्ट करने लगा॥ ५॥ वह वन, देश, पुर और भिन्न-भिन्न ग्रामोंको जला देता तथा कभी पर्वत गिराकर ग्रामादिकोंको चूर्ण कर डालता॥ ६॥ कभी पहाड़ोंकी चट्टान उखाड़कर समुद्रके जलमें छोड़ देता और फिर कभी समुद्रमें घुसकर उसे क्षुभित कर देता॥ ७॥ हे द्विज! उससे क्षुभित हुआ समुद्र ऊँची-ऊँची तरंगोंसे उठकर अति वेगसे युक्त हो अपने तीरवर्ती ग्राम और पुर आदिको डुबो देता था॥ ८॥ वह कामरूपी वानर महान् रूप धारणकर लोटने लगता था और अपने लुण्ठनके संघर्षसे सम्पूर्ण धान्यों (खेतों)-को कुचल डालता था॥ ९॥ हे द्विज! उस दुरात्माने इस सम्पूर्ण जगत्को स्वाध्याय और वषट्कारसे शून्य कर दिया था, जिससे यह अत्यन्त दुःखमय हो गया॥ १०॥

एक दिन श्रीबलभद्रजी रैवतोद्यानमें [क्रीड़ासक्त होकर] मद्यपान कर रहे थे। साथ ही महाभागा रेवती तथा अन्य सुन्दर रमणियाँ भी थीं॥ ११॥ उस समय यदुश्रेष्ठ श्रीबलरामजी मन्दराचलपर्वतपर कुबेरके समान [रैवतकपर स्वयं] रमण कर रहे थे॥ १२॥ इसी समय वहाँ द्विविद वानर आया और श्रीहलधरके हल और मूसल लेकर उनके सामने ही उनकी नकल करने लगा॥ १३॥ वह दुरात्मा वानर उन स्त्रियोंकी ओर देख-देखकर हँसने लगा और उसने मदिरासे भरे हुए घड़े फोड़कर फेंक दिये॥ १४॥

तब श्रीहलधरने क्रुद्ध होकर उसे धमकाया तथापि वह उनकी अवज्ञा करके किलकारी मारने लगा॥ १५॥ तदनन्तर श्रीबलरामजीने मुसकाकर क्रोधसे अपना मूसल उठा लिया तथा उस वानरने भी एक भारी चट्टान ले ली॥ १६॥ और उसे बलरामजीके ऊपर फेंकी, किन्तु यदुवीर बलभद्रजीने मूसलसे उसके हजारों टुकड़े कर दिये; जिससे वह पृथिवीपर गिर पड़ी॥ १७॥ तब उस वानरने बलरामजीके मूसलका वार बचाकर रोषपूर्वक अत्यन्त वेगसे उनकी छातीमें घूँसा मारा॥ १८॥ तत्पश्चात् बलभद्रजीने भी क्रुद्ध होकर द्विविदके सिरमें घूँसा मारा जिससे वह रुधिर वमन करता हुआ निर्जीव होकर

पृथिवीपर गिर पड़ा॥ १९॥ हे मैत्रेय! उसके गिरते समय उसके शरीरका आघात पाकर इन्द्र-वज्रसे विदीर्ण होनेके समान उस पर्वतके शिखरके सैकड़ों टुकड़े हो गये॥ २०॥

उस समय देवतालोग बलरामजीके ऊपर फूल बरसाने लगे और वहाँ आकर "आपने यह बड़ा अच्छा किया" ऐसा कहकर उनकी प्रशंसा करने लगे॥ २१॥ "हे वीर! दैत्यपक्षके उपकारक इस दुष्ट वानरने संसारको बड़ा कष्ट दे रखा था; यह बड़े ही सौभाग्यका विषय है कि आज यह आपके हाथों मारा गया।" ऐसा कहकर गुह्यकोंके सहित देवगण अत्यन्त हर्षपूर्वक स्वर्गलोकको चले आये॥ २२-२३॥

श्रीपराशरजी बोले—शेषावतार धरणीधर धीमान् बलभद्रजीके ऐसे ही अनेकों कर्म हैं, जिनका कोई परिमाण (तुलना) नहीं बताया जा सकता॥ २४॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पाँचवें अंशमें छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त॥ ३६॥

सैंतीसवाँ अध्याय

ऋषियोंका शाप, यदुवंशविनाश तथा भगवान्‌का स्वधाम सिधारना

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! इसी प्रकार संसारके उपकारके लिये बलभद्रजीके सहित श्रीकृष्णचन्द्रने दैत्यों और दुष्ट राजाओंका वध किया॥ १॥ तथा अन्तमें अर्जुनके साथ मिलकर भगवान् कृष्णने अठारह अक्षौहिणी सेनाको मारकर पृथिवीका भार उतारा॥ २॥ इस प्रकार सम्पूर्ण राजाओंको मारकर पृथिवीका भारावतरण किया और फिर ब्राह्मणोंके शापके मिषसे अपने कुलका भी उपसंहार कर दिया॥ ३॥ हे मुने! अन्तमें द्वारकापुरीको छोड़कर तथा अपने मानव-शरीरको त्यागकर श्रीकृष्णचन्द्रने अपने अंश (बलराम-प्रद्युम्नादि)-के सहित अपने विष्णुमय धाममें प्रवेश किया॥ ४॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे मुने! श्रीजनार्दनने विप्रशापके मिषसे किस प्रकार अपने कुलका नाश किया और अपने मानव-देहको किस प्रकार छोड़ा?॥ ५॥

श्रीपराशरजी बोले—एक बार कुछ यदुकुमारोंने महातीर्थ पिण्डारक क्षेत्रमें विश्वामित्र, कण्व और नारद आदि महामुनियोंको देखा॥ ६॥ तब यौवनसे उन्मत्त हुए उन बालकोंने होनहारकी प्रेरणासे जाम्बवतीके पुत्र साम्बका स्त्री वेष बनाकर उन मुनीश्वरोंको प्रणाम करनेके अनन्तर अति नम्रतासे पूछा—"इस स्त्रीको पुत्रकी इच्छा है, हे मुनिजन! कहिये यह क्या जनेगी?"॥ ७-८॥

श्रीपराशरजी बोले—यदुकुमारोंके इस प्रकार धोखा देनेपर उन दिव्य ज्ञानसम्पन्न मुनिजनोंने कुपित होकर कहा—"यह एक लोकोत्तर मूसल जनेगी, जो समस्त यादवोंके नाशका कारण होगा और जिससे यादवोंका सम्पूर्ण कुल संसारमें निर्मूल हो जायगा॥ ९-१०॥

मुनिगणके इस प्रकार कहनेपर उन कुमारोंने सम्पूर्ण वृत्तान्त ज्यों-का-त्यों राजा उग्रसेनसे कह दिया तथा साम्बके पेटसे एक मूसल उत्पन्न हुआ॥ ११॥ उग्रसेनने उस लोहमय मूसलका चूर्ण करा डाला और उसे उन बालकोंने [ले जाकर] समुद्रमें फेंक दिया, उससे वहाँ बहुत-से सरकण्डे उत्पन्न हो गये॥ १२॥ यादवोंद्वारा चूर्ण किये गये इस मूसलके लोहेका जो भालेकी नोंकके समान एक खण्ड चूर्ण करनेसे बचा उसे भी समुद्रहीमें

फिकवा दिया। उसे एक मछली निगल गयी। उस मछलीको मछेरोंने पकड़ लिया तथा चीरनेपर उसके पेटसे निकले हुए उस मूसलखण्डको जरा नामक व्याधने ले लिया॥ १३-१४॥ भगवान् मधुसूदन इन समस्त बातोंको यथावत् जानते थे तथापि उन्होंने विधाताकी इच्छाको अन्यथा करना न चाहा॥ १५॥

इसी समय देवताओंने वायुको भेजा। उसने एकान्तमें श्रीकृष्णचन्द्रको प्रणाम करके कहा— "भगवन्! मुझे देवताओंने दूत बनाकर भेजा है॥ १६॥ "हे विभो! वसुगण, अश्विनीकुमार, रुद्र, आदित्य, मरुद्गण और साध्यादिके सहित इन्द्रने आपको जो सन्देश भेजा है वह सुनिये॥ १७॥ हे भगवन्! देवताओंकी प्रेरणासे उनके ही साथ पृथिवीका भार उतारनेके लिये अवतीर्ण हुए आपको सौ वर्षसे अधिक बीत चुके हैं॥ १८॥ अब आप दुराचारी दैत्योंको मार चुके और पृथिवीका भार भी उतार चुके, अतः [हमारी प्रार्थना है कि] अब देवगण सर्वदा स्वर्गमें ही आपसे सनाथ हों [अर्थात् आप स्वर्ग पधारकर देवताओंको सनाथ करें]॥ १९॥ हे जगन्नाथ! आपको भूमण्डलमें पधारे हुए सौ वर्षसे अधिक हो गये, अब यदि आपको पसन्द आवे तो स्वर्गलोक पधारिये॥ २०॥ हे देव! देवगणका यह भी कथन है कि यदि आपको यहीं रहना अच्छा लगे तो रहें, सेवकोंका तो यही धर्म है कि [स्वामीको] यथासमय कर्तव्यका निवेदन कर दे"॥ २१॥

श्रीभगवान् बोले—हे दूत! तुम जो कुछ कहते हो वह मैं सब जानता हूँ, इसलिये अब मैंने यादवोंके नाशका आरम्भ कर ही दिया है॥ २२॥ इन यादवोंका संहार हुए बिना अभीतक पृथिवीका भार हल्का नहीं हुआ है, अतः अब सात रात्रिके भीतर [इनका संहार करके] पृथिवीका भार उतारकर मैं शीघ्र ही [जैसा तुम कहते हो] वही करूँगा॥ २३॥ जिस प्रकार यह द्वारकाकी भूमि मैंने समुद्रसे माँगी थी इसे उसी प्रकार उसे लौटाकर तथा यादवोंका उपसंहार कर मैं स्वर्गलोकमें आऊँगा॥ २४॥ अब देवराज इन्द्र और देवताओंको यह समझना चाहिये कि संकर्षणके सहित मैं मनुष्य-शरीरको छोड़कर स्वर्ग पहुँच ही चुका हूँ॥ २५॥ पृथिवीके भारभूत जो जरासन्ध आदि अन्य राजागण मारे गये हैं, ये यदुकुमार भी उनसे कम नहीं हैं॥ २६॥ अतः तुम देवताओंसे जाकर कहो कि मैं पृथिवीके इस महाभारको उतारकर ही देवलोकका पालन करनेके लिये स्वर्गमें आऊँगा॥ २७॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! भगवान् वासुदेवके इस प्रकार कहनेपर देवदूत वायु उन्हें प्रणाम करके अपनी दिव्य गतिसे देवराजके पास चले आये॥ २८॥ भगवान्ने देखा कि द्वारकापुरीमें रात-दिन नाशके सूचक दिव्य, भौम और अन्तरिक्ष-सम्बन्धी महान् उत्पात हो रहे हैं॥ २९॥ उन उत्पातोंको देखकर भगवान्ने यादवोंसे कहा— "देखो, ये कैसे घोर उपद्रव हो रहे हैं, चलो, शीघ्र ही इनकी शान्तिके लिये प्रभासक्षेत्रको चलें"॥ ३०॥

श्रीपराशरजी बोले—कृष्णचन्द्रके ऐसा कहनेपर महाभागवत यादवश्रेष्ठ उद्धवने श्रीहरिको प्रणाम करके कहा— ॥ ३१॥ "भगवन्! मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि अब आप इस कुलका नाश करेंगे; क्योंकि हे अच्युत! इस समय सब ओर इसके नाशके सूचक कारण दिखायी दे रहे हैं, अतः मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं क्या करूँ?"॥ ३२-३३॥

श्रीभगवान् बोले—हे उद्धव! अब तुम मेरी कृपासे प्राप्त हुई दिव्य गतिसे नर-नारायणके निवासस्थान गन्धमादनपर्वतपर जो पवित्र

बदरिकाश्रम क्षेत्र है वहाँ जाओ। पृथिवीतलपर वही सबसे पावन स्थान है॥ ३४॥ वहाँपर मुझमें चित्त लगाकर तुम मेरी कृपासे सिद्धि प्राप्त करोगे। अब मैं भी इस कुलका संहार करके स्वर्गलोकको चला जाऊँगा॥ ३५॥ मेरे छोड़ देनेपर सम्पूर्ण द्वारकाको समुद्र जलमें डुबो देगा; मुझसे भय माननेके कारण केवल मेरे भवनको छोड़ देगा; अपने इस भवनमें मैं भक्तोंकी हितकामनासे सर्वदा निवास करता हूँ॥ ३६॥

श्रीपराशरजी बोले—भगवान्‌के ऐसा कहनेपर उद्धवजी उन्हें प्रणामकर तुरन्त ही उनके बतलाये हुए तपोवन श्रीनर-नारायणके स्थानको चले गये॥ ३७॥ हे द्विज! तदनन्तर कृष्ण और बलराम आदिके सहित सम्पूर्ण यादव शीघ्रगामी रथोंपर चढ़कर प्रभासक्षेत्रमें आये॥ ३८॥ वहाँ पहुँचकर कुकुर, अन्धक और वृष्णि आदि वंशोंके समस्त यादवोंने कृष्णचन्द्रकी प्रेरणासे महापान और भोजन[1] किया॥ ३९॥ पान करते समय उनमें परस्पर कुछ विवाद हो जानेसे वहाँ कुवाक्यरूप ईंधनसे युक्त प्रलयकारिणी कलहाग्नि धधक उठी॥ ४०॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे द्विज! अपना-अपना भोजन करते हुए उन यादवोंमें किस कारणसे कलह (वाग्युद्ध) अथवा संघर्ष (हाथापाई) हुआ, सो आप कहिये॥ ४१॥

श्रीपराशरजी बोले—'मेरा भोजन शुद्ध है, तेरा अच्छा नहीं है।' इस प्रकार भोजनके अच्छे-बुरेकी चर्चा करते-करते उनमें परस्पर विवाद और हाथापाई हो गयी॥ ४२॥ तब वे दैवी प्रेरणासे विवश होकर आपसमें क्रोधसे रक्तनेत्र हुए एक-दूसरेपर शस्त्रप्रहार करने लगे और जब शस्त्र समाप्त हो गये तो पासहीमें उगे हुए सरकण्डे ले लिये॥ ४३-४४॥ उनके हाथमें लगे हुए वे सरकण्डे वज्रके समान प्रतीत होते थे, उन वज्रतुल्य सरकण्डोंसे ही वे उस दारुण युद्धमें एक-दूसरेपर प्रहार करने लगे॥ ४५॥

हे द्विज! प्रद्युम्न और साम्ब आदि कृष्णपुत्रगण, कृतवर्मा, सात्यकि और अनिरुद्ध आदि तथा पृथु, विपृथु, चारुवर्मा, चारुक और अक्रूर आदि यादवगण एक-दूसरेपर एरकारूपी वज्रोंसे प्रहार करने लगे॥ ४६-४७॥ जब श्रीहरिने उन्हें आपसमें लड़नेसे रोका तो उन्होंने उन्हें अपने प्रतिपक्षीका सहायक होकर आये हुए समझा और [उनकी बातकी अवहेलनाकर] एक-दूसरेको मारने लगे॥ ४८॥ कृष्णचन्द्रने भी कुपित होकर उनका वध करनेके लिये एक मुट्ठी सरकण्डे उठा लिये। वे मुट्ठीभर सरकण्डे लोहेके मूसल [समान] हो गये॥ ४९॥ उन मूसलरूप सरकण्डोंसे कृष्णचन्द्र सम्पूर्ण आततायी यादवोंको मारने लगे तथा अन्य समस्त यादव भी वहाँ आ-आकर एक-दूसरेको मारने लगे॥ ५०॥ हे द्विज! तदनन्तर भगवान् कृष्णचन्द्रका जैत्र नामक रथ घोड़ोंसे आकृष्ट हो दारुकके देखते-देखते समुद्रके मध्यपथसे चला गया॥ ५१॥ इसके पश्चात् भगवान्‌के शंख, चक्र, गदा, शार्ङ्गधनुष, तरकश और खड्ग आदि आयुध श्रीहरिकी प्रदक्षिणा कर सूर्यमार्गसे चले गये॥ ५२॥

हे महामुने! एक क्षणमें ही महात्मा कृष्णचन्द्र और उनके सारथी दारुकको छोड़कर और कोई यदुवंशी जीवित न बचा॥ ५३॥ उन दोनोंने वहाँ घूमते हुए देखा कि श्रीबलरामजी एक वृक्षके तले बैठे हैं और उनके मुखसे एक बहुत बड़ा सर्प

१. मैत्रेयजीके अग्रिम प्रश्न और पराशरजीके उत्तरसे वहाँ यदुवंशियोंका अन्न-भोजन करना भी सिद्ध होता है।

निकल रहा है॥ ५४॥ वह विशाल फणधारी सर्प उनके मुखसे निकलकर सिद्ध और नागोंसे पूजित हुआ समुद्रकी ओर गया॥ ५५॥ उसी समय समुद्र अर्घ्य लेकर उस (महासर्प)-के सम्मुख उपस्थित हुआ और वह नागश्रेष्ठोंसे पूजित हो समुद्रमें घुस गया॥ ५६॥

इस प्रकार श्रीबलरामजीका प्रयाण देखकर श्रीकृष्णचन्द्रने दारुकसे कहा—"तुम यह सब वृत्तान्त उग्रसेन और वसुदेवजीसे जाकर कहो"॥ ५७॥ बलभद्रजीका निर्याण, यादवोंका क्षय और मैं भी योगस्थ होकर शरीर छोड़ूँगा—[यह सब समाचार उन्हें] जाकर सुनाओ॥ ५८॥ सम्पूर्ण द्वारकावासी और आहुक (उग्रसेन)- से कहना कि अब इस सम्पूर्ण नगरीको समुद्र डुबो देगा॥ ५९॥ इसलिये आप सब केवल अर्जुनके आगमनकी प्रतीक्षा और करें तथा अर्जुनके यहाँसे लौटते ही फिर कोई भी व्यक्ति द्वारकामें न रहे; जहाँ वे कुरुनन्दन जायँ वहीं सब लोग चले जायँ॥ ६०-६१॥ कुन्तीपुत्र अर्जुनसे तुम मेरी ओरसे कहना कि "अपने सामर्थ्यानुसार तुम मेरे परिवारके लोगोंकी रक्षा करना"॥ ६२॥ और तुम द्वारकावासी सभी लोगोंको लेकर अर्जुनके साथ चले जाना। [हमारे पीछे] वज्र यदुवंशका राजा होगा॥ ६३॥

श्रीपराशरजी बोले—भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके इस प्रकार कहनेपर दारुकने उन्हें बारम्बार प्रणाम किया और उनकी अनेक परिक्रमाएँ कर उनके कथनानुसार चला गया॥ ६४॥ उस महाबुद्धिने द्वारकामें पहुँचकर सम्पूर्ण वृत्तान्त सुना दिया और अर्जुनको वहाँ लाकर वज्रको राज्याभिषिक्त किया॥ ६५॥

इधर भगवान् कृष्णचन्द्रने समस्त भूतोंमें व्याप्त वासुदेवस्वरूप परब्रह्मको अपने आत्मामें आरोपित कर उनका ध्यान किया तथा हे महाभाग! वे पुरुषोत्तम लीलासे ही अपने चित्तको निष्प्रपंच परमात्मामें लीनकर तुरीयपदमें स्थित हुए॥ ६६॥ हे मुनिश्रेष्ठ! दुर्वासाजीने [श्रीकृष्णचन्द्रके लिये] जैसा कहा था उस द्विज-वाक्यका* मान रखनेके लिये वे अपनी जानुओंपर चरण रखकर योगयुक्त होकर बैठे॥ ६७॥ इसी समय, जिसने मूसलके बचे हुए तोमर (बाणमें लगे हुए लोहेके टुकड़े)-के आकारवाले लोहखण्डको अपने बाणकी नोंकपर लगा लिया था; वह जरा नामक व्याध वहाँ आया॥ ६८॥ हे द्विजोत्तम! उस चरणको मृगाकार देख उस व्याधने उसे दूरहीसे खड़े-खड़े उसी तोमरसे बींध डाला॥ ६९॥ किंतु वहाँ पहुँचनेपर उसने एक चतुर्भुजधारी मनुष्य देखा। यह देखते ही वह चरणोंमें गिरकर बारम्बार उनसे कहने लगा—"प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये॥ ७०॥ मैंने बिना जाने ही मृगकी आशंकासे यह अपराध किया है, कृपया क्षमा कीजिये। मैं अपने पापसे दग्ध हो रहा हूँ, आप मेरी रक्षा कीजिये"॥ ७१॥

श्रीपराशरजी बोले—तब भगवान्ने उससे कहा—"लुब्धक! तू तनिक भी न डर; मेरी कृपासे तू अभी देवताओंके स्थान स्वर्गलोकको चला जा॥ ७२॥ इन भगवद्वाक्योंके समाप्त होते ही वहाँ एक विमान आया, उसपर चढ़कर वह व्याध भगवान्की कृपासे उसी समय स्वर्गको चला गया॥ ७३॥ उसके चले जानेपर भगवान् कृष्णचन्द्रने अपने आत्माको अव्यय, अचिन्त्य,

* महाभारतमें यह प्रसंग आया है कि—एक बार महर्षि दुर्वासा श्रीकृष्णचन्द्रजीके यहाँ आये और भगवान्से सत्कार पाकर उन्होंने कहा कि आप मेरा जूँठा जल अपने सारे शरीरमें लगाइये। भगवान्ने वैसा ही किया, परंतु 'ब्राह्मणका जूँठ पैरसे नहीं छूना चाहिये' ऐसा सोचकर पैरमें नहीं लगाया। इसपर दुर्वासाने शाप दिया कि आपके पैरमें कभी छेद हो जायगा।

वासुदेवस्वरूप, अमल, अजन्मा, अमर, अप्रमेय, अखिलात्मा और ब्रह्मस्वरूप विष्णुभगवान्‌में लीन कर त्रिगुणात्मक गतिको पार करके इस मनुष्य-शरीरको छोड़ दिया॥ ७४-७५॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पाँचवें अंशमें सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त॥ ३७॥

अड़तीसवाँ अध्याय

यादवोंका अन्त्येष्टि-संस्कार, परीक्षित्‌का राज्याभिषेक तथा पाण्डवोंका स्वर्गारोहण

श्रीपराशरजी बोले—अर्जुनने राम और कृष्ण तथा अन्यान्य मुख्य-मुख्य यादवोंके मृत देहोंकी खोज कराकर क्रमशः उन सबके और्ध्वदैहिक संस्कार किये॥ १॥ भगवान् कृष्णकी जो रुक्मिणी आदि आठ पटरानी बतलायी गयी हैं, उन सबने उनके शरीरका आलिंगन कर अग्निमें प्रवेश किया॥ २॥ सती रेवतीजी भी बलरामजीके देहका आलिंगन कर, उनके अंग-संगके आह्लादसे शीतल प्रतीत होती हुई प्रज्वलित अग्निमें प्रवेश कर गयीं॥ ३॥ इस सम्पूर्ण अनिष्टका समाचार सुनते ही उग्रसेन, वसुदेव, देवकी और रोहिणीने भी अग्निमें प्रवेश किया॥ ४॥

तदनन्तर अर्जुन उन सबका विधिपूर्वक प्रेत-कर्म कर वज्र तथा अन्यान्य कुटुम्बियोंको साथ लेकर द्वारकासे बाहर आये॥ ५॥ द्वारकासे निकली हुई कृष्णचन्द्रकी सहस्रों पत्नियों तथा वज्र और अन्यान्य बान्धवोंकी [सावधानतापूर्वक] रक्षा करते हुए अर्जुन धीरे-धीरे चले॥ ६॥ हे मैत्रेय! कृष्णचन्द्रके मर्त्यलोकका त्याग करते ही सुधर्मा सभा और पारिजात-वृक्ष भी स्वर्गलोकको चले गये॥ ७॥ जिस दिन भगवान् पृथिवीको छोड़कर स्वर्ग सिधारे थे, उसी दिनसे यह मलिनदेह महाबली कलियुग पृथिवीपर आ गया॥ ८॥ इस प्रकार जनशून्य द्वारकाको समुद्रने डुबो दिया, केवल एक कृष्णचन्द्रके भवनको वह नहीं डुबाता है॥ ९॥ हे ब्रह्मन्! उसे डुबानेमें समुद्र आज भी समर्थ नहीं है; क्योंकि उसमें भगवान् कृष्णचन्द्र सर्वदा निवास करते हैं॥ १०॥

वह भगवदैश्वर्यसम्पन्न स्थान अति पवित्र और समस्त पापोंको नष्ट करनेवाला है; उसके दर्शनमात्रसे मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है॥ ११॥

हे मुनिश्रेष्ठ! अर्जुनने उन समस्त द्वारकावासियोंको अत्यन्त धन-धान्य-सम्पन्न पंचनद (पंजाब) देशमें बसाया॥ १२॥ उस समय अनाथा स्त्रियोंको अकेले धनुर्धारी अर्जुनको ले जाते देख लुटेरोंको लोभ उत्पन्न हुआ॥ १३॥ तब उन अत्यन्त दुर्मद, पापकर्मा और लुब्धहृदय आभीर दस्युओंने परस्पर मिलकर सम्मति की—॥ १४॥ 'देखो, यह धनुर्धारी अर्जुन अकेला ही हमारा अतिक्रमण करके इन अनाथा स्त्रियोंको लिये जाता है; हमारे ऐसे बल-पुरुषार्थको धिक्कार है!॥ १५॥ यह भीष्म, द्रोण, जयद्रथ और कर्ण आदि [नगर-निवासियों]-को मारकर ही इतना अभिमानी हो गया है, अभी हम ग्रामीणोंके बलको यह नहीं जानता॥ १६॥ हमारे हाथोंमें लाठी देखकर यह दुर्मति धनुष लेकर हम सबकी अवज्ञा करता है, फिर हमारी इन ऊँची-ऊँची भुजाओंसे क्या लाभ है?'॥ १७॥

ऐसी सम्मतिकर वे सहस्रों लुटेरे लाठी और ढेले लेकर उन अनाथ द्वारकावासियोंपर टूट पड़े॥ १८॥ तब अर्जुनने उन लुटेरोंको झिड़ककर

हँसते हुए कहा—"अरे पापियो! यदि तुम्हें मरनेकी इच्छा न हो तो अभी लौट जाओ"॥ १९॥ किन्तु हे मैत्रेय! लुटेरोंने उनके कथनपर कुछ भी ध्यान न दिया और भगवान् कृष्णके सम्पूर्ण धन और स्त्रीधनको अपने अधीन कर लिया॥ २०॥ तब वीरवर अर्जुनने युद्धमें अक्षीण अपने गाण्डीव धनुषको चढ़ाना चाहा; किन्तु वे ऐसा न कर सके॥ २१॥ उन्होंने जैसे-तैसे अति कठिनतासे उसपर प्रत्यंचा (डोरी) चढ़ा भी ली तो फिर वे शिथिल हो गये और बहुत कुछ सोचनेपर भी उन्हें अपने अस्त्रोंका स्मरण न हुआ॥ २२॥ तब वे क्रुद्ध होकर अपने शत्रुओंपर बाण बरसाने लगे; किन्तु गाण्डीवधारी अर्जुनके छोड़े हुए उन बाणोंने केवल उनकी त्वचाको ही बींधा॥ २३॥ अर्जुनका उद्भव क्षीण हो जानेके कारण अग्निसे दिये हुए उनके अक्षय बाण भी उन अहीरोंके साथ लड़नेमें नष्ट हो गये॥ २४॥

तब अर्जुनने सोचा कि मैंने जो अपने शरसमूहसे अनेकों राजाओंको जीता था, वह सब कृष्णचन्द्रका ही प्रभाव था॥ २५॥ अर्जुनके देखते-देखते वे अहीर उन स्त्रीरत्नोंको खींच-खींचकर ले जाने लगे तथा कोई-कोई अपनी इच्छानुसार इधर-उधर भाग गयीं॥ २६॥

बाणोंके समाप्त हो जानेपर धनंजय अर्जुनने धनुषकी नोंकसे ही प्रहार करना आरम्भ किया, किन्तु हे मुने! वे दस्युगण उन प्रहारोंकी और भी हँसी उड़ाने लगे॥ २७॥

हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार अर्जुनके देखते-देखते वे म्लेच्छगण वृष्टि और अन्धकवंशकी उन समस्त स्त्रियोंको लेकर चले गये॥ २८॥ तब सर्वदा जयशील अर्जुन अत्यन्त दुःखी होकर 'हा! कैसा कष्ट है? कैसा कष्ट है?' ऐसा कहकर रोने लगे [और बोले—] "अहो! मुझे उन भगवान्ने ही ठग लिया॥ २९॥ देखो, वही धनुष है, वे ही शस्त्र हैं, वही रथ है और वे ही अश्व हैं, किन्तु अश्रोत्रियको दिये हुए दानके समान आज सभी एक साथ नष्ट हो गये॥ ३०॥ अहो! दैव बड़ा प्रबल है, जिसने आज उन महात्मा कृष्णके न रहनेपर असमर्थ और नीच अहीरोंको जय दे दी॥ ३१॥ देखो! मेरी वे ही भुजाएँ हैं, वही मेरी मुष्टि (मुट्ठी) है, वही (कुरुक्षेत्र) स्थान है और मैं भी वही अर्जुन हूँ तथापि पुण्यदर्शन कृष्णके बिना आज सब सारहीन हो गये॥ ३२॥ अवश्य ही मेरा अर्जुनत्व और भीमका भीमत्व भगवान् कृष्णकी कृपासे ही था। देखो, उनके बिना आज महारथियोंमें श्रेष्ठ मुझको तुच्छ आभीरोंने जीत लिया"॥ ३३॥

श्रीपराशरजी बोले—अर्जुन इस प्रकार कहते हुए अपनी राजधानी इन्द्रप्रस्थमें आये और वहाँ यादवनन्दन वज्रका राज्याभिषेक किया॥ ३४॥ तदनन्तर वे विपिनवासी व्यासमुनिसे मिले और उन महाभाग मुनिवरके निकट जाकर उन्हें विनयपूर्वक प्रणाम किया॥ ३५॥ अर्जुनको बहुत देरतक अपने चरणोंकी वन्दना करते देख मुनिवरने कहा—"आज तुम ऐसे कान्तिहीन क्यों हो रहे हो?॥ ३६॥ क्या तुमने भेड़ोंकी धूलिका अनुगमन किया है अथवा ब्रह्महत्या की है या तुम्हारी कोई सुदृढ़ आशा भंग हो गयी है? जिसके दुःखसे तुम इस समय इतने श्रीहीन हो रहे हो॥ ३७॥ तुमने किसी सन्तानके इच्छुकका विवाहके लिये याचना करनेपर निरादर तो नहीं किया अथवा किसी अगम्य स्त्रीसे रमण तो नहीं किया, जिससे तुम ऐसे तेजोहीन हो रहे हो॥ ३८॥ हे अर्जुन! तुम ब्राह्मणोंको बिना दिये मिष्टान्न अकेले तो नहीं खा लेते हो अथवा तुमने किसी कृपणका धन तो नहीं हर लिया है॥ ३९॥ हे अर्जुन! तुमने

सूपकी वायुका तो सेवन नहीं किया? क्या तुम्हारी आँखें दुखती हैं अथवा तुम्हें किसीने मारा है? तुम इस प्रकार श्रीहीन कैसे हो रहे हो?॥ ४०॥ तुमने नखजलका स्पर्श तो नहीं किया? तुम्हारे ऊपर घड़ेसे छलके हुए जलकी छींटें तो नहीं पड़ गयीं अथवा तुम्हें किसी हीनबल पुरुषने युद्धमें पराजित तो नहीं किया? फिर तुम इस तरह हतप्रभ कैसे हो रहे हो?"॥ ४१॥

श्रीपराशरजी बोले—तब अर्जुनने दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए कहा—"भगवन्! सुनिये" ऐसा कहकर उन्होंने अपने पराजयका सम्पूर्ण वृत्तान्त व्यासजीको ज्यों-का-त्यों सुना दिया॥ ४२॥

अर्जुन बोले—जो हरि मेरे एकमात्र बल, तेज, वीर्य, पराक्रम, श्री और कान्ति थे, वे हमें छोड़कर चले गये॥ ४३॥ जो सब प्रकार समर्थ होकर भी हमसे मित्रवत् हँस-हँसकर बातें किया करते थे, हे मुने! उन हरिके बिना हम आज तृणमय पुतलेके समान निःसत्त्व हो गये हैं॥ ४४॥ जो मेरे दिव्यास्त्रों, दिव्यबाणों और गाण्डीव धनुषके मूर्तिमान् सार थे वे पुरुषोत्तमभगवान् हमें छोड़कर चले गये हैं॥ ४५॥ जिनकी कृपादृष्टिसे श्री, जय, सम्पत्ति और उन्नतिने कभी हमारा साथ नहीं छोड़ा, वे ही भगवान् गोविन्द हमें छोड़कर चले गये हैं॥ ४६॥ जिनकी प्रभावाग्निमें भीष्म, द्रोण, कर्ण और दुर्योधन आदि अनेक शूरवीर दग्ध हो गये थे, उन कृष्णचन्द्रने इस भूमण्डलको छोड़ दिया है॥ ४७॥ हे तात! उन चक्रपाणि कृष्णचन्द्रके विरहमें एक मैं ही क्या, सम्पूर्ण पृथिवी ही यौवन, श्री और कान्तिसे हीन प्रतीत होती है॥ ४८॥ जिनके प्रभावसे अग्निरूप मुझमें भीष्म आदि महारथीगण पतंगवत् भस्म हो गये थे, आज उन्हीं कृष्णके बिना मुझे गोपोंने हरा दिया!॥ ४९॥ जिनके प्रभावसे यह गाण्डीव धनुष तीनों लोकोंमें विख्यात हुआ था उन्हींके बिना आज यह अहीरोंकी लाठियोंसे तिरस्कृत हो गया!॥ ५०॥ हे महामुने! भगवान्‌की जो सहस्रों स्त्रियाँ मेरी देख-रेखमें आ रही थीं उन्हें, मेरे सब प्रकार यत्न करते रहनेपर भी दस्युगण अपनी लाठियोंके बलसे ले गये॥ ५१॥ हे कृष्णद्वैपायन! लाठियाँ ही जिनके हथियार हैं उन आभीरोंने आज मेरे बलको कुण्ठितकर मेरे द्वारा साथ लाये हुए सम्पूर्ण कृष्ण-परिवारको हर लिया॥ ५२॥ ऐसी अवस्थामें मेरा श्रीहीन होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; हे पितामह! आश्चर्य तो यह है कि नीच पुरुषोंद्वारा अपमान-पंकमें सनकर भी मैं निर्लज्ज अभी जीवित ही हूँ॥ ५३॥

श्रीव्यासजी बोले—हे पार्थ! तुम्हारी लज्जा व्यर्थ है, तुम्हें शोक करना उचित नहीं है। तुम सम्पूर्ण भूतोंमें कालकी ऐसी ही गति जानो॥ ५४॥ हे पाण्डव! प्राणियोंकी उन्नति और अवनतिका कारण काल ही है, अतः हे अर्जुन! इन जय-पराजयोंको कालके अधीन समझकर तुम स्थिरता धारण करो॥ ५५॥ नदियाँ, समुद्र, गिरिगण, सम्पूर्ण पृथिवी, देव, मनुष्य, पशु, वृक्ष और सरीसृप आदि सम्पूर्ण पदार्थ कालके ही रचे हुए हैं और फिर कालहीसे ये क्षीण हो जाते हैं, अतः इस सारे प्रपंचको कालात्मक जानकर शान्त होओ॥ ५६-५७॥

हे धनंजय! तुमने कृष्णचन्द्रका जैसा माहात्म्य बतलाया है वह सब सत्य ही है; क्योंकि कमलनयन भगवान् कृष्ण साक्षात् कालस्वरूप ही हैं॥ ५८॥ उन्होंने पृथिवीका भार उतारनेके लिये ही मर्त्यलोकमें अवतार लिया था। एक समय पूर्वकालमें पृथिवी भाराक्रान्त होकर देवताओंकी सभामें गयी थी॥ ५९॥ कालस्वरूपी श्रीजनार्दनने उसीके लिये अवतार लिया था। अब सम्पूर्ण दुष्ट राजा मारे जा चुके, अतः वह कार्य सम्पन्न हो गया॥ ६०॥ हे पार्थ! वृष्णि और अन्धक आदि

सम्पूर्ण यदुकुलका भी उपसंहार हो गया; इसलिये उन प्रभुके लिये अब पृथिवीतलपर और कुछ भी कर्तव्य नहीं रहा॥ ६१॥ अत: अपना कार्य समाप्त हो चुकनेपर भगवान् स्वेच्छानुसार चले गये, ये देवदेव प्रभु सर्गके आरम्भमें सृष्टि-रचना करते हैं, स्थितिके समय पालन करते हैं और अन्तमें ये ही उसका नाश करनेमें समर्थ हैं—जैसे इस समय वे [राक्षस आदिका संहार करके] चले गये हैं॥ ६२॥

अत: हे पार्थ! तुझे अपनी पराजयसे दु:खी न होना चाहिये, क्योंकि अभ्युदय-काल उपस्थित होनेपर ही पुरुषोंसे ऐसे कर्म बनते हैं जिनसे उनकी स्तुति होती है॥ ६३॥ हे अर्जुन! जिस समय तुझ अकेलेने ही युद्धमें भीष्म, द्रोण और कर्ण आदिको मार डाला था वह क्या उन वीरोंका कालक्रमसे प्राप्त हीनबल पुरुषसे पराभव नहीं था?॥ ६४॥ जिस प्रकार भगवान् विष्णुके प्रभावसे तुमने उन सबोंको नीचा दिखलाया था, उसी प्रकार तुझे दस्युओंसे दबना पड़ा है॥ ६५॥ वे जगत्पति देवेश्वर ही शरीरोंमें प्रविष्ट होकर जगत्की स्थिति करते हैं और वे ही अन्तमें समस्त जीवोंका नाश करते हैं॥ ६६॥

हे कौन्तेय! जिस समय तेरा भाग्योदय हुआ था उस समय श्रीजनार्दन तेरे सहायक थे और जब उस (सौभाग्य)-का अन्त हो गया तो तेरे विपक्षियोंपर श्रीकेशवकी कृपादृष्टि हुई है॥ ६७॥ तू गंगानन्दन भीष्मपितामहके सहित सम्पूर्ण कौरवोंको मार डालेगा— इस बातको कौन मान सकता था और फिर यह भी किसे विश्वास होगा कि तू आभीरोंसे हार जायगा॥ ६८॥

हे पार्थ! यह सब सर्वात्मा भगवान्‌की लीलाका ही कौतुक है कि तुझ अकेलेने कौरवोंको नष्ट कर दिया और फिर स्वयं अहीरोंसे पराजित हो गया॥ ६९॥

हे अर्जुन! तू जो उन दस्युओंद्वारा हरण की गयी स्त्रियोंके लिये शोक करता है सो मैं तुझे उसका यथावत् रहस्य बतलाता हूँ॥ ७०॥ एक बार पूर्वकालमें विप्रवर अष्टावक्रजी सनातन ब्रह्मकी स्तुति करते हुए अनेकों वर्षतक जलमें रहे॥ ७१॥ उसी समय दैत्योंपर विजय प्राप्त करनेसे देवताओंने सुमेरुपर्वतपर एक महान् उत्सव किया। उसमें सम्मिलित होनेके लिये जाती हुई रम्भा और तिलोत्तमा आदि सैकड़ों-हजारों देवांगनाओंने मार्गमें उन मुनिवरको देखकर उनकी अत्यन्त स्तुति और प्रशंसा की॥ ७२-७३॥ वे देवांगनाएँ उन जटाधारी मुनिवरको कण्ठपर्यन्त जलमें डूबे देखकर विनयपूर्वक स्तुति करती हुई प्रणाम करने लगीं॥ ७४॥ हे कौरवश्रेष्ठ! जिस प्रकार वे द्विजश्रेष्ठ अष्टावक्रजी प्रसन्न हों उसी प्रकार वे अप्सराएँ उनकी स्तुति करने लगीं॥ ७५॥

अष्टावक्रजी बोले—हे महाभागाओ! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ, तुम्हारी जो इच्छा हो मुझसे वही वर माँग लो; मैं अति दुर्लभ होनेपर भी तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा॥ ७६॥ तब रम्भा और तिलोत्तमा आदि वैदिकी (वेदप्रसिद्ध) अप्सराओंने उनसे कहा—"हे द्विज! आपके प्रसन्न हो जानेपर हमें क्या नहीं मिल गया॥ ७७॥ तथा अन्य अप्सराओंने कहा—"यदि भगवान् हमपर प्रसन्न हैं तो हे विप्रेन्द्र! हम साक्षात् पुरुषोत्तमभगवान्‌को पतिरूपसे प्राप्त करना चाहती हैं"॥ ७८॥

श्रीव्यासजी बोले—तब 'ऐसा ही होगा'—यह कहकर मुनिवर अष्टावक्र जलसे बाहर आये। उनके बाहर आते समय अप्सराओंने आठ स्थानोंमें टेढ़े उनके कुरूप देहको देखा॥ ७९॥ उसे देखकर जिन अप्सराओंकी हँसी छिपानेपर

भी प्रकट हो गयी, हे कुरुनन्दन! उन्हें मुनिवरने क्रुद्ध होकर यह शाप दिया— ॥ ८० ॥ "मुझे कुरूप देखकर तुमने हँसते हुए मेरा अपमान किया है, इसलिये मैं तुम्हें यह शाप देता हूँ कि मेरी कृपासे श्रीपुरुषोत्तमको पतिरूपसे पाकर भी तुम मेरे शापके वशीभूत होकर लुटेरोंके हाथोंमें पड़ोगी" ॥ ८१-८२ ॥

श्रीव्यासजी बोले—मुनिका यह वाक्य सुनकर उन अप्सराओंने उन्हें फिर प्रसन्न किया, तब मुनिवरने उनसे कहा "उसके पश्चात् तुम फिर स्वर्गलोकमें चली जाओगी" ॥ ८३ ॥ इस प्रकार मुनिवर अष्टावक्रके शापसे ही वे देवांगनाएँ श्रीकृष्णचन्द्रको पति पाकर भी फिर दस्युओंके हाथमें पड़ी हैं ॥ ८४ ॥

हे पाण्डव! तुझे इस विषयमें तनिक भी शोक न करना चाहिये क्योंकि उन अखिलेश्वरने ही सम्पूर्ण यदुकुलका उपसंहार किया है ॥ ८५ ॥ तथा तुमलोगोंका अन्त भी अब निकट ही है; इसलिये उन सर्वेश्वरने तुम्हारे बल, तेज, वीर्य और माहात्म्यका संकोच कर दिया है ॥ ८६ ॥ 'जो उत्पन्न हुआ है उसकी मृत्यु निश्चित है, उन्नतका पतन अवश्यम्भावी है, संयोगका अन्त वियोग ही है तथा संचय (एकत्र करने)-के अनन्तर क्षय (व्यय) होना सर्वथा निश्चित ही है'—ऐसा जानकर जो बुद्धिमान् पुरुष लाभ या हानिमें हर्ष अथवा शोक नहीं करते उन्हींकी चेष्टाका अवलम्बन कर अन्य मनुष्य भी अपना वैसा आचरण बनाते हैं ॥ ८७-८८ ॥ इसलिये हे नरश्रेष्ठ! तुम ऐसा जानकर अपने भाइयोंसहित सम्पूर्ण राज्यको छोड़कर तपस्याके लिये वनको जाओ ॥ ८९ ॥ अब तुम जाओ तथा धर्मराज युधिष्ठिरसे मेरी ये सारी बातें कहो और जिस तरह परसों भाइयोंसहित वनको चले जा सको वैसा यत्न करो ॥ ९० ॥

मुनिवर व्यासजीके ऐसा कहनेपर अर्जुनने [इन्द्रप्रस्थमें] आकर पृथा-पुत्र (युधिष्ठिर और भीमसेन) तथा यमजों (नकुल और सहदेव)-से उन्होंने जो कुछ जैसा-जैसा देखा और सुना था, सब ज्यों-का-त्यों सुना दिया ॥ ९१ ॥ उन सब पाण्डु-पुत्रोंने अर्जुनके मुखसे व्यासजीका सन्देश सुनकर राज्यपदपर परीक्षित्को अभिषिक्त किया और स्वयं वनको चले गये ॥ ९२ ॥

हे मैत्रेय! भगवान् वासुदेवने यदुवंशमें जन्म लेकर जो-जो लीलाएँ की थीं, वह सब मैंने विस्तारपूर्वक तुम्हें सुना दीं ॥ ९३ ॥ जो पुरुष भगवान् कृष्णके इस चरित्रको सर्वदा सुनता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर अन्तमें विष्णुलोकको जाता है ॥ ९४ ॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके पाँचवें अंशमें अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३८ ॥

इस प्रकार श्रीपराशरमुनिद्वारा विरचित श्रीविष्णुपरत्वनिर्णायक श्रीविष्णुमहापुराणका पाँचवाँ अंश समाप्त।

ॐ

श्रीमन्नारायणाय नमः

श्रीविष्णुपुराण

छठा अंश

पहला अध्याय

कलिधर्मनिरूपण

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे महामुने! आपने सृष्टिरचना, वंश-परम्परा और मन्वन्तरोंकी स्थितिका तथा वंशोंके चरित्रोंका विस्तारसे वर्णन किया॥ १ ॥ अब मैं आपसे कल्पान्तमें होनेवाले महाप्रलय नामक संसारके उपसंहारका यथावत् वर्णन सुनना चाहता हूँ॥ २ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! कल्पान्तके समय प्राकृत प्रलयमें जिस प्रकार जीवोंका उपसंहार होता है, वह सुनो॥ ३ ॥ हे द्विजोत्तम! मनुष्योंका एक मास पितृगणका, एक वर्ष देवगणका और दो सहस्र चतुर्युग ब्रह्माका एक दिन-रात होता है॥ ४ ॥ सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि—ये चार युग हैं, इन सबका काल मिलाकर बारह हजार दिव्य वर्ष कहा जाता है॥ ५ ॥ हे मैत्रेय! [प्रत्येक मन्वन्तरके] आदि कृतयुग और अन्तिम कलियुगको छोड़कर शेष सब चतुर्युग स्वरूपसे एक समान हैं॥ ६ ॥ जिस प्रकार आद्य (प्रथम) सत्ययुगमें ब्रह्माजी जगत्की रचना करते हैं उसी प्रकार अन्तिम कलियुगमें वे उसका उपसंहार करते हैं॥ ७ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे भगवन्! कलिके स्वरूपका विस्तारसे वर्णन कीजिये, जिसमें चार चरणोंवाले भगवान् धर्मका प्राय: लोप हो जाता है॥ ८ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! आप जो कलियुगका स्वरूप सुनना चाहते हैं सो उस समय जो कुछ होता है वह संक्षेपसे सुनिये॥ ९ ॥ कलियुगमें मनुष्योंकी प्रवृत्ति वर्णाश्रम-धर्मानुकूल नहीं रहती और न वह ऋक्-साम-यजुरूप त्रयी-धर्मका सम्पादन करनेवाली ही होती है॥ १० ॥ उस समय धर्मविवाह, गुरु-शिष्य-सम्बन्धकी स्थिति, दाम्पत्यक्रम और अग्निमें देवयज्ञक्रियाका क्रम (अनुष्ठान) भी नहीं रहता॥ ११ ॥

कलियुगमें जो बलवान् होगा वही सबका स्वामी होगा चाहे किसी भी कुलमें क्यों न उत्पन्न हुआ हो, वह सभी वर्णोंसे कन्या ग्रहण करनेमें समर्थ होगा॥ १२ ॥ उस समय द्विजातिगण जिस-किसी उपायसे [अर्थात् निषिद्ध द्रव्य आदिसे] भी 'दीक्षित' हो जायँगे और जैसी-तैसी क्रियाएँ ही प्रायश्चित्त मान ली जायँगी॥ १३ ॥ हे द्विज! कलियुगमें जिसके मुखसे जो कुछ निकल जायगा वही शास्त्र समझा जायगा; उस समय सभी (भूत-प्रेत-मशान आदि) देवता होंगे और सभीके सब आश्रम होंगे॥ १४ ॥ उपवास, तीर्थाटनादि कायक्लेश, धन-दान तथा तप आदि अपनी रुचिके अनुसार अनुष्ठान किये हुए ही धर्म समझे जायँगे॥ १५ ॥

कलियुगमें अल्प धनसे ही लोगोंको

धनाढ्यताका गर्व हो जायगा और केशोंसे ही स्त्रियोंको सुन्दरताका अभिमान होगा॥ १६॥ उस समय सुवर्ण, मणि, रत्न और वस्त्रोंके क्षीण हो जानेसे स्त्रियाँ केश-कलापोंसे ही अपनेको विभूषित करेंगी॥ १७॥ जो पति धनहीन होगा उसे स्त्रियाँ छोड़ देंगी। कलियुगमें धनवान् पुरुष ही स्त्रियोंका पति होगा॥ १८॥ जो मनुष्य [चाहे वह कितनाहू निन्द्य हो] अधिक धन देगा वही लोगोंका स्वामी होगा; यह धन-दानका सम्बन्ध ही स्वामित्वका कारण होगा, कुलीनता नहीं॥ १९॥

कलिमें सारा द्रव्य-संग्रह घर बनानेमें ही समाप्त हो जायगा [दान-पुण्यादिमें नहीं], बुद्धि धन-संचयमें ही लगी रहेगी [आत्मज्ञानमें नहीं], सारी सम्पत्ति अपने उपभोगमें ही नष्ट हो जायगी [उससे अतिथि-सत्कारादि न होगा]॥ २०॥

कलिकालमें स्त्रियाँ सुन्दर पुरुषकी कामनासे स्वेच्छाचारिणी होंगी तथा पुरुष अन्यायोपार्जित धनके इच्छुक होंगे॥ २१॥ हे द्विज! कलियुगमें अपने सुहृदोंके प्रार्थना करनेपर भी लोग एक-एक दमड़ीके लिये भी स्वार्थहानि नहीं करेंगे॥ २२॥ कलिमें ब्राह्मणोंके साथ शूद्र आदि समानताका दावा करेंगे और दूध देनेके कारण ही गौओंका सम्मान होगा॥ २३॥

उस समय सम्पूर्ण प्रजा क्षुधाकी व्यथासे व्याकुल हो प्राय: अनावृष्टिके भयसे सदा आकाशकी ओर दृष्टि लगाये रहेगी॥ २४॥ मनुष्य [अन्नका अभाव होनेसे] तपस्वियोंके समान केवल कन्द, मूल और फल आदिके सहारे ही रहेंगे तथा अनावृष्टिके कारण दु:खी होकर आत्मघात करेंगे॥ २५॥ कलियुगमें असमर्थ लोग सुख और आनन्दके नष्ट हो जानेसे प्राय: सर्वदा दुर्भिक्ष तथा क्लेश ही भोगेंगे॥ २६॥ कलिके आनेपर लोग बिना स्नान किये ही भोजन करेंगे, अग्नि, देवता और अतिथिका पूजन न करेंगे और न पिण्डोदक क्रिया ही करेंगे॥ २७॥

उस समयकी स्त्रियाँ विषयलोलुप, छोटे शरीरवाली, अति भोजन करनेवाली, अधिक सन्तान पैदा करनेवाली और मन्दभाग्या होंगी॥ २८॥ वे दोनों हाथोंसे सिर खुजलाती हुई अपने गुरुजनों और पतियोंके आदेशका अनादरपूर्वक खण्डन करेंगी॥ २९॥ कलियुगकी स्त्रियाँ अपना ही पेट पालनेमें तत्पर, क्षुद्र चित्तवाली, शारीरिक शौचसे हीन तथा कटु और मिथ्या भाषण करनेवाली होंगी॥ ३०॥ उस समयकी कुलांगनाएँ निरन्तर दुश्चरित्र पुरुषोंकी इच्छा रखनेवाली एवं दुराचारिणी होंगी तथा पुरुषोंके साथ असद्व्यवहार करेंगी॥ ३१॥

ब्रह्मचारिगण वैदिक व्रत आदिसे हीन रहकर ही वेदाध्ययन करेंगे तथा गृहस्थगण न तो हवन करेंगे और न सत्पात्रको उचित दान ही देंगे॥ ३२॥ वानप्रस्थ [वनके कन्द-मूलादिको छोड़कर] ग्राम्य भोजनको स्वीकार करेंगे और संन्यासी अपने मित्रादिके स्नेह-बन्धनमें ही बँधे रहेंगे॥ ३३॥

कलियुगके आनेपर राजालोग प्रजाकी रक्षा नहीं करेंगे, बल्कि कर लेनेके बहाने प्रजाका ही धन छीनेंगे॥ ३४॥ उस समय जिस-जिसके पास बहुत-से हाथी, घोड़े और रथ होंगे वह-वह ही राजा होगा तथा जो-जो शक्तिहीन होगा वह-वह ही सेवक होगा॥ ३५॥ वैश्यगण कृषि-वाणिज्यादि अपने कर्मोंको छोड़कर शिल्पकारी आदिसे जीवन-निर्वाह करते हुए शूद्रवृत्तियोंमें ही लग जायँगे॥ ३६॥ आश्रमादिके चिह्नसे रहित अधम शूद्रगण संन्यास लेकर भिक्षावृत्तिमें तत्पर रहेंगे और लोगोंसे सम्मानित होकर पाषण्ड-वृत्तिका आश्रय लेंगे॥ ३७॥ प्रजाजन दुर्भिक्ष और करकी पीड़ासे अत्यन्त उपद्रवयुक्त और दु:खित होकर ऐसे देशोंमें चले जायँगे जहाँ गेहूँ और जौकी अधिकता होगी॥ ३८॥

उस समय वेदमार्गका लोप, मनुष्योंमें पाषण्डकी प्रचुरता और अधर्मकी वृद्धि हो जानेसे प्रजाकी आयु अल्प हो जायगी ॥ ३९ ॥ लोगोंके शास्त्रविरुद्ध घोर तपस्या करनेसे तथा राजाके दोषसे प्रजाओंकी बाल्यावस्थामें मृत्यु होने लगेगी ॥ ४० ॥

कलिमें पाँच-छः अथवा सात वर्षकी स्त्री और आठ-नौ या दस वर्षके पुरुषोंके ही सन्तान हो जायगी ॥ ४१ ॥ बारह वर्षकी अवस्थामें ही लोगोंके बाल पकने लगेंगे और कोई भी व्यक्ति बीस वर्षसे अधिक जीवित न रहेगा ॥ ४२ ॥ कलियुगमें लोग मन्द-बुद्धि, व्यर्थ चिह्न धारण करनेवाले और दुष्ट चित्तवाले होंगे, इसलिये वे अल्पकालमें ही नष्ट हो जायँगे ॥ ४३ ॥

हे मैत्रेय! जब-जब धर्मकी अधिक हानि दिखलायी दे तभी-तभी बुद्धिमान् मनुष्यको कलियुगकी वृद्धिका अनुमान करना चाहिये ॥ ४४ ॥ हे मैत्रेय! जब-जब पाषण्ड बढ़ा हुआ दीखे तभी-तभी महात्माओंको कलियुगकी वृद्धि समझनी चाहिये ॥ ४५ ॥ जब-जब वैदिक मार्गका अनुसरण करनेवाले सत्पुरुषोंका अभाव हो तभी-तभी बुद्धिमान् मनुष्य कलिकी वृद्धि हुई जाने ॥ ४६ ॥ हे मैत्रेय! जब धर्मात्मा पुरुषोंके आरम्भ किये हुए कार्योंमें असफलता हो तब पण्डितजन कलियुगकी प्रधानता समझें ॥ ४७ ॥ जब-जब यज्ञोंके अधीश्वर भगवान् पुरुषोत्तमका लोग यज्ञोंद्वारा यजन न करें तब-तब कलिका प्रभाव ही समझना चाहिये ॥ ४८ ॥ जब वेद-वादमें प्रीतिका अभाव हो और पाषण्डमें प्रेम हो तब बुद्धिमान् प्राज्ञ पुरुष कलियुगको बढ़ा हुआ जानें ॥ ४९ ॥

हे मैत्रेय! कलियुगमें लोग पाषण्डके वशीभूत हो जानेसे सबके रचयिता और प्रभु जगत्पति भगवान् विष्णुका पूजन नहीं करेंगे ॥ ५० ॥ हे विप्र! उस समय लोग पाषण्डके वशीभूत होकर कहेंगे—'इन देव, द्विज, वेद और जलसे होनेवाले शौचादिमें क्या रखा है?' ॥ ५१ ॥ हे विप्र! कलिके आनेपर वृष्टि अल्प जलवाली होगी, खेती थोड़ी उपजवाली होगी और फलादि अल्प सारयुक्त होंगे ॥ ५२ ॥ कलियुगमें प्रायः सनके बने हुए सबके वस्त्र होंगे, अधिकतर शमीके वृक्ष होंगे और चारों वर्ण बहुधा शूद्रवत् हो जायँगे ॥ ५३ ॥ कलिके आनेपर धान्य अत्यन्त अणु होंगे, प्रायः बकरियोंका ही दूध मिलेगा और उशीर (खस) ही एकमात्र अनुलेपन होगा ॥ ५४ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ! कलियुगमें सास और ससुर ही लोगोंके गुरुजन होंगे और हृदयहारिणी भार्या तथा साले ही सुहृद् होंगे ॥ ५५ ॥ लोग अपने ससुरके अनुगामी होकर कहेंगे कि 'कौन किसका पिता है और कौन किसकी माता; सब पुरुष अपने कर्मानुसार जन्मते-मरते रहते हैं' ॥ ५६ ॥

उस समय अल्पबुद्धि पुरुष बारम्बार वाणी, मन और शरीरादिके दोषोंके वशीभूत होकर प्रतिदिन पुनः-पुनः पापकर्म करेंगे ॥ ५७ ॥ शक्ति, शौच और लज्जाहीन पुरुषोंको जो-जो दुःख हो सकते हैं, कलियुगमें वे सभी दुःख उपस्थित होंगे ॥ ५८ ॥ उस समय संसारके स्वाध्याय और वषट्कारसे हीन तथा स्वधा और स्वाहासे वर्जित हो जानेसे कहीं-कहीं कुछ-कुछ धर्म रहेगा ॥ ५९ ॥ किंतु कलियुगमें मनुष्य थोड़ा-सा प्रयत्न करनेसे ही जो अत्यन्त उत्तम पुण्यराशि प्राप्त करता है वही सत्ययुगमें महान् तपस्यासे प्राप्त किया जा सकता है ॥ ६० ॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके छठे अंशमें पहला अध्याय समाप्त ॥ १ ॥

दूसरा अध्याय

श्रीव्यासजीद्वारा कलियुग, शूद्र और स्त्रियोंका महत्त्व-वर्णन

श्रीपराशरजी बोले—हे महाभाग! इसी विषयमें महामति व्यासदेवने जो कुछ कहा है वह मैं यथावत् वर्णन करता हूँ, सुनो ॥ १ ॥ एक बार मुनियोंमें [परस्पर] पुण्यके विषयमें यह वार्तालाप हुआ कि 'किस समयमें थोड़ा-सा पुण्य भी महान् फल देता है और कौन उसका सुखपूर्वक अनुष्ठान कर सकते हैं?' ॥ २ ॥ हे मैत्रेय! वे समस्त मुनिश्रेष्ठ इस सन्देहका निर्णय करनेके लिये महामुनि व्यासजीके पास यह प्रश्न पूछने गये ॥ ३ ॥ हे द्विज! वहाँ पहुँचनेपर उन मुनिजनोंने मेरे पुत्र महाभाग व्यासजीको गंगाजीमें आधा स्नान किये देखा ॥ ४ ॥ वे महर्षिगण व्यासजीके स्नान कर चुकनेकी प्रतीक्षामें उस महानदीके तटपर वृक्षोंके तले बैठे रहे ॥ ५ ॥

उस समय गंगाजीमें डुबकी लगाये मेरे पुत्र व्यासने जलसे उठकर उन मुनिजनोंके सुनते हुए 'कलियुग ही श्रेष्ठ है, शूद्र ही श्रेष्ठ है' यह वचन कहा। ऐसा कहकर उन्होंने फिर जलमें गोता लगाया और फिर उठकर कहा—"शूद्र! तुम ही श्रेष्ठ हो, तुम ही धन्य हो" ॥ ६-७ ॥ यह कहकर वे महामुनि फिर जलमें मग्न हो गये और फिर खड़े होकर बोले—"स्त्रियाँ ही साधु हैं, वे ही धन्य हैं, उनसे अधिक धन्य और कौन है?" ॥ ८ ॥

तदनन्तर जब मेरे महाभाग पुत्र व्यासजी स्नान करनेके अनन्तर नियमानुसार नित्यकर्मसे निवृत्त होकर आये तो वे मुनिजन उनके पास पहुँचे ॥ ९ ॥ वहाँ आकर जब वे यथायोग्य अभिवादनादिके अनन्तर आसनोंपर बैठ गये तो सत्यवतीनन्दन व्यासजीने उनसे पूछा—"आपलोग कैसे आये हैं?" ॥ १० ॥

तब मुनियोंने उनसे कहा—"हमलोग आपसे एक सन्देह पूछनेके लिये आये थे, किंतु इस समय उसे तो जाने दीजिये, एक और बात हमें बतलाइये ॥ ११ ॥ भगवन्! आपने जो स्नान करते समय कई बार कहा था कि 'कलियुग ही श्रेष्ठ है, शूद्र ही श्रेष्ठ हैं, स्त्रियाँ ही साधु और धन्य हैं', सो क्या बात है? हम यह सम्पूर्ण विषय सुनना चाहते हैं। हे महामुने! यदि गोपनीय न हो तो कहिये। इसके पीछे हम आपसे अपना आन्तरिक सन्देह पूछेंगे" ॥ १२-१३ ॥

श्रीपराशरजी बोले—मुनियोंके इस प्रकार पूछनेपर व्यासजीने हँसते हुए कहा—"हे मुनिश्रेष्ठो! मैंने जो इन्हें बारम्बार साधु-साधु कहा था, उसका कारण सुनो" ॥ १४ ॥

श्रीव्यासजी बोले—हे द्विजगण! जो फल सत्ययुगमें दस वर्ष तपस्या, ब्रह्मचर्य और जप आदि करनेसे मिलता है उसे मनुष्य त्रेतामें एक वर्ष, द्वापरमें एक मास और कलियुगमें केवल एक दिन-रातमें प्राप्त कर लेता है, इस कारण ही मैंने कलियुगको श्रेष्ठ कहा है ॥ १५-१६ ॥ जो फल सत्ययुगमें ध्यान, त्रेतामें यज्ञ और द्वापरमें देवार्चन करनेसे प्राप्त होता है वही कलियुगमें श्रीकृष्णचन्द्रका नाम-कीर्तन करनेसे मिल जाता है ॥ १७ ॥ हे धर्मज्ञगण! कलियुगमें थोड़े-से परिश्रमसे ही पुरुषको महान् धर्मकी प्राप्ति हो जाती है, इसीलिये मैं कलियुगसे अति सन्तुष्ट हूँ ॥ १८ ॥

[अब शूद्र क्यों श्रेष्ठ हैं, यह बतलाते हैं] द्विजातियोंको पहले ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करते हुए वेदाध्ययन करना पड़ता है और फिर स्वधर्माचरणसे उपार्जित धनके द्वारा विधिपूर्वक यज्ञ करने पड़ते हैं ॥ १९ ॥ इसमें भी व्यर्थ वार्तालाप, व्यर्थ भोजन और व्यर्थ यज्ञ उनके पतनके कारण

होते हैं; इसलिये उन्हें सदा संयमी रहना आवश्यक है॥ २०॥ सभी कामोंमें अनुचित (विधिके विपरीत) करनेसे उन्हें दोष लगता है; यहाँतक कि भोजन और पानादि भी वे अपने इच्छानुसार नहीं भोग सकते॥ २१॥ क्योंकि उन्हें सम्पूर्ण कार्योंमें परतन्त्रता रहती है। हे द्विजगण! इस प्रकार वे अत्यन्त क्लेशसे पुण्यलोकोंको प्राप्त करते हैं॥ २२॥ किंतु जिसे केवल [मन्त्रहीन] पाक-यज्ञका ही अधिकार है वह शूद्र द्विजोंकी सेवा करनेसे ही सद्‌गति प्राप्त कर लेता है, इसलिये वह अन्य जातियोंकी अपेक्षा धन्यतर है॥ २३॥ हे मुनिशार्दूलो! शूद्रको भक्ष्याभक्ष्य अथवा पेयापेयका कोई नियम नहीं है, इसलिये मैंने उसे साधु कहा है॥ २४॥

[अब स्त्रियोंको किस लिये श्रेष्ठ कहा, यह बतलाते हैं—] पुरुषोंको अपने धर्मानुकूल प्राप्त किये हुए धनसे ही सर्वदा सुपात्रको दान और विधिपूर्वक यज्ञ करना चाहिये॥ २५॥ हे द्विजोत्तमगण! इस द्रव्यके उपार्जन तथा रक्षणमें महान् क्लेश होता है और उसको अनुचित कार्यमें लगानेसे भी मनुष्योंको जो कष्ट भोगना पड़ता है वह मालूम ही है॥ २६॥ इस प्रकार हे द्विजसत्तमो! पुरुषगण इन तथा ऐसे ही अन्य कष्टसाध्य उपायोंसे क्रमशः प्राजापत्य आदि शुभ लोकोंको प्राप्त करते हैं॥ २७॥ किंतु स्त्रियाँ तो तन-मन-वचनसे पतिकी सेवा करनेसे ही उनकी हितकारिणी होकर पतिके समान शुभ लोकोंको अनायास ही प्राप्त कर लेती हैं जो कि पुरुषोंको अत्यन्त परिश्रमसे मिलते हैं। इसीलिये मैंने तीसरी बार यह कहा था कि 'स्त्रियाँ साधु हैं'॥ २८-२९॥ ''हे विप्रगण! मैंने आपलोगोंसे यह [अपने साधुवादका रहस्य] कह दिया, अब आप जिस लिये पधारे हैं वह इच्छानुसार पूछिये। मैं आपसे सब बातें स्पष्ट करके कह दूँगा''॥ ३०॥ तब ऋषियोंने कहा—''हे महामुने! हमें जो कुछ पूछना था उसका यथावत् उत्तर आपने इसी प्रश्नमें दे दिया है। [इसलिये अब हमें और कुछ पूछना नहीं है]॥ ३१॥

श्रीपराशरजी बोले—तब मुनिवर कृष्णद्वैपायनने विस्मयसे खिले हुए नेत्रोंवाले उन समागत तपस्वियोंसे हँसकर कहा॥ ३२॥ मैं दिव्य दृष्टिसे आपके इस प्रश्नको जान गया था इसीलिये मैंने आपलोगोंके प्रसंगसे ही 'साधु-साधु' कहा था॥ ३३॥ जिन पुरुषोंने गुणरूप जलसे अपने समस्त दोष धो डाले हैं उनके थोड़े-से प्रयत्नसे ही कलियुगमें धर्म सिद्ध हो जाता है॥ ३४॥ हे द्विजश्रेष्ठो! शूद्रोंको द्विजसेवापरायण होनेसे और स्त्रियोंको पतिकी सेवामात्र करनेसे ही अनायास धर्मकी सिद्धि हो जाती है॥ ३५॥ इसीलिये मेरे विचारसे ये तीनों धन्यतर हैं, क्योंकि सत्ययुगादि अन्य तीन युगोंमें भी द्विजातियोंको ही धर्म सम्पादन करनेमें महान् क्लेश उठाना पड़ता है॥ ३६॥ हे धर्मज्ञ ब्राह्मणो! इस प्रकार आपलोगोंका जो अभिप्राय था वह मैंने आपके बिना पूछे ही कह दिया, अब और क्या करूँ?''॥ ३७॥

श्रीपराशरजी बोले—तदनन्तर उन्होंने व्यासजीका पूजनकर उनकी बारम्बार प्रशंसा की और उनके कथनानुसार निश्चयकर जहाँसे आये थे वहाँ चले गये॥ ३८॥ हे महाभाग मैत्रेयजी! आपसे भी मैंने यह रहस्य कह दिया। इस अत्यन्त दुष्ट कलियुगमें यही एक महान् गुण है कि इस युगमें केवल कृष्णचन्द्रका नाम-संकीर्तन करनेसे ही मनुष्य परमपद प्राप्त कर लेता है॥ ३९॥ अब आपने मुझसे जो संसारके उपसंहार—प्राकृत प्रलय और अवान्तर प्रलयके विषयमें पूछा था वह भी सुनाता हूँ॥ ४०॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके छठे अंशमें दूसरा अध्याय समाप्त॥ २॥

तीसरा अध्याय

निमेषादि काल-मान तथा नैमित्तिक प्रलयका वर्णन

श्रीपराशरजी बोले—सम्पूर्ण प्राणियोंका प्रलय नैमित्तिक, प्राकृतिक और आत्यन्तिक तीन प्रकारका होता है॥ १॥ उनमेंसे जो कल्पान्तमें ब्राह्म प्रलय होता है वह नैमित्तिक, जो मोक्ष नामक प्रलय है वह आत्यन्तिक और जो दो परार्द्धके अन्तमें होता है वह प्राकृत प्रलय कहलाता है॥ २॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—भगवन्! आप मुझे परार्द्धकी संख्या बतलाइये, जिसको दूना करनेसे प्राकृत प्रलयका परिमाण जाना जा सके॥ ३॥

श्रीपराशरजी बोले—हे द्विज! एकसे लेकर क्रमश: दशगुण गिनते-गिनते जो अठारहवीं बार* गिनी जाती है वह संख्या परार्द्ध कहलाती है॥ ४॥ हे द्विज! इस परार्द्धकी दूनी संख्यावाला प्राकृत प्रलय है, उस समय यह सम्पूर्ण जगत् अपने कारण अव्यक्तमें लीन हो जाता है॥ ५॥ मनुष्यका निमेष ही एक मात्रावाले अक्षरके उच्चारण-कालके समान परिमाणवाला होनेसे मात्रा कहलाता है; उन पन्द्रह निमेषोंकी एक काष्ठा होती है और तीस काष्ठाकी एक कला कही जाती है॥ ६॥ पन्द्रह कला एक नाडिकाका प्रमाण है। वह नाडिका साढ़े बारह पल ताँबेके बने हुए जलके पात्रसे जानी जा सकती है॥ ७॥

मगधदेशीय मापसे वह पात्र जलप्रस्थ कहलाता है; उसमें चार अंगुल लम्बी चार मासेकी सुवर्ण-शलाकासे छिद्र किया रहता है [उसके छिद्रको ऊपर करके जलमें डुबो देनेसे जितनी देरमें वह पात्र भर जाय उतने ही समयको एक नाडिका समझना चाहिये]॥ ८॥ हे द्विजसत्तम! ऐसी दो नाडिकाओंका एक मुहूर्त होता है, तीस मुहूर्तका एक दिन-रात होता है तथा इतने (तीस) ही दिन-रातका एक मास होता है॥ ९॥ बारह मासका एक वर्ष होता है, देवलोकमें यही एक दिन-रात होता है। ऐसे तीन सौ साठ वर्षोंका देवताओंका एक वर्ष होता है॥ १०॥ ऐसे बारह हजार दिव्य वर्षोंका एक चतुर्युग होता है और एक हजार चतुर्युगका ब्रह्माका एक दिन होता है॥ ११॥

हे महामुने! यही एक कल्प है। इसमें चौदह मनु बीत जाते हैं। हे मैत्रेय! इसके अन्तमें ब्रह्माका नैमित्तिक प्रलय होता है॥ १२॥ हे मैत्रेय! सुनो, मैं उस नैमित्तिक प्रलयका अत्यन्त भयानक रूप वर्णन करता हूँ। इसके पीछे मैं तुमसे प्राकृत प्रलयका भी वर्णन करूँगा॥ १३॥ एक सहस्र चतुर्युग बीतनेपर जब पृथिवी क्षीणप्राय हो जाती है तो सौ वर्षतक अति घोर अनावृष्टि होती है॥ १४॥ हे मुनिश्रेष्ठ! उस समय जो पार्थिव जीव अल्प शक्तिवाले होते हैं वे सब अनावृष्टिसे पीड़ित होकर सर्वथा नष्ट हो जाते हैं॥ १५॥ तदनन्तर, रुद्ररूपधारी अव्ययात्मा भगवान् विष्णु संसारका क्षय करनेके लिये सम्पूर्ण प्रजाको अपनेमें लीन कर लेनेका प्रयत्न करते हैं॥ १६॥ हे मुनिसत्तम! उस समय भगवान् विष्णु सूर्यकी सातों किरणोंमें स्थित होकर सम्पूर्ण जलको सोख लेते हैं॥ १७॥ हे मैत्रेय! इस प्रकार प्राणियों तथा पृथिवीके अन्तर्गत सम्पूर्ण जलको सोखकर वे समस्त भूमण्डलको शुष्क कर देते हैं॥ १८॥ समुद्र तथा नदियोंमें, पर्वतीय सरिताओं और स्रोतोंमें तथा विभिन्न पातालोंमें जितना जल है वे उस सबको सुखा डालते हैं॥ १९॥ तब भगवान्के प्रभावसे प्रभावित होकर तथा जलपानसे पुष्ट होकर

* वायुपुराणमें इन अठारह संख्याओंके इस प्रकार नाम हैं—एक, दस, शत, सहस्र, अयुत, नियुत, प्रयुत, अर्बुद, न्यर्बुद, वृन्द, खर्ब, निखर्ब, शंख, पद्म, समुद्र, मध्य, अन्त, परार्द्ध।

वे सातों सूर्यरश्मियाँ सात सूर्य हो जाती हैं॥ २०॥ हे द्विज! उस समय ऊपर-नीचे सब ओर देदीप्यमान होकर वे सातों सूर्य पातालपर्यन्त सम्पूर्ण त्रिलोकीको भस्म कर डालते हैं॥ २१॥ हे द्विज! उन प्रदीप्त भास्करोंसे दग्ध हुई त्रिलोकी पर्वत, नदी और समुद्रादिके सहित सर्वथा नीरस हो जाती है॥ २२॥ उस समय सम्पूर्ण त्रिलोकीके वृक्ष और जल आदिके दग्ध हो जानेसे यह पृथिवी कछुएकी पीठके समान कठोर हो जाती है॥ २३॥

तब सबको नष्ट करनेके लिये उद्यत हुए श्रीहरि कालाग्निरुद्ररूपसे शेषनागके मुखसे प्रकट होकर नीचेसे पातालोंको जलाना आरम्भ करते हैं॥ २४॥ वह महान् अग्नि समस्त पातालोंको जलाकर पृथिवीपर पहुँचता है और सम्पूर्ण भूतलको भस्म कर डालता है॥ २५॥ तब वह दारुण अग्नि भुवर्लोक तथा स्वर्गलोकको जला डालता है और वह ज्वाला-समूहका महान् आवर्त वहीं चक्कर लगाने लगता है॥ २६॥ इस प्रकार अग्निके आवर्तोंसे घिरकर सम्पूर्ण चराचरके नष्ट हो जानेपर समस्त त्रिलोकी एक तप्त कराहके समान प्रतीत होने लगती है॥ २७॥ हे महामुने! तदनन्तर अवस्थाके परिवर्तनसे परलोककी चाहवाले भुवर्लोक और स्वर्गलोकमें रहनेवाले [मन्वादि] अधिकारिगण अग्निज्वालासे सन्तप्त होकर महर्लोकको चले जाते हैं, किन्तु वहाँ भी उस उग्र कालानलके महातापसे सन्तप्त होनेके कारण वे उससे बचनेके लिये जनलोकमें चले जाते हैं॥ २८-२९॥

हे मुनिश्रेष्ठ! तदनन्तर रुद्ररूपी भगवान् विष्णु सम्पूर्ण संसारको दग्ध करके अपने मुख-निःश्वाससे मेघोंको उत्पन्न करते हैं॥ ३०॥ तब विद्युत्से युक्त भयंकर गर्जना करनेवाले गजसमूहके समान बृहदाकार संवर्तक नामक घोर मेघ आकाशमें उठते हैं॥ ३१॥ उनमेंसे कोई मेघ नील कमलके समान श्यामवर्ण, कोई कुमुद-कुसुमके समान श्वेत, कोई धूम्रवर्ण और कोई पीतवर्ण होते हैं॥ ३२॥ कोई गधेके-से वर्णवाले, कोई लाखके-से रंगवाले, कोई वैडूर्य-मणिके समान और कोई इन्द्रनील-मणिके समान होते हैं॥ ३३॥ कोई शंख और कुन्दके समान श्वेत-वर्ण, कोई जाती (चमेली)-के समान उज्ज्वल और कोई कज्जलके समान श्यामवर्ण, कोई इन्द्रगोपके समान रक्तवर्ण और कोई मयूरके समान विचित्र वर्णवाले होते हैं॥ ३४॥ कोई गेरूके समान, कोई हरितालके समान और कोई महामेघ, नील-कण्ठके पंखके समान रंगवाले होते हैं॥ ३५॥ कोई नगरके समान, कोई पर्वतके समान और कोई कूटागार (गृहविशेष)-के समान बृहदाकार होते हैं तथा कोई पृथिवीतलके समान विस्तृत होते हैं॥ ३६॥ वे घनघोर शब्द करनेवाले महाकाय मेघगण आकाशको आच्छादित कर लेते हैं और मूसलाधार जल बरसाकर त्रिलोकव्यापी भयंकर अग्निको शान्त कर देते हैं॥ ३७॥ हे मुनिश्रेष्ठ! अग्निके नष्ट हो जानेपर भी अहर्निश निरन्तर बरसते हुए वे मेघ सम्पूर्ण जगत्को जलमें डुबो देते हैं॥ ३८॥

हे द्विज! अपनी अति स्थूल धाराओंसे भूर्लोकको जलमें डुबोकर वे भुवर्लोक तथा उसके भी ऊपरके लोकोंको भी जलमग्न कर देते हैं॥ ३९॥ इस प्रकार सम्पूर्ण संसारके अन्धकारमय हो जानेपर तथा सम्पूर्ण स्थावर-जंगम जीवोंके नष्ट हो जानेपर भी वे महामेघ सौ वर्षसे अधिक कालतक बरसते रहते हैं॥ ४०॥ हे मुनिश्रेष्ठ! सनातन परमात्मा वासुदेवके माहात्म्यसे कल्पान्तमें इसी प्रकार यह समस्त विप्लव होता है॥ ४१॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके छठे अंशमें तीसरा अध्याय समाप्त॥ ३॥

चौथा अध्याय

प्राकृत प्रलयका वर्णन

श्रीपराशरजी बोले—हे महामुने! जब जल सप्तर्षियोंके स्थानको भी पार कर जाता है तो यह सम्पूर्ण त्रिलोकी एक महासमुद्रके समान हो जाती है॥ १॥ हे मैत्रेय! तदनन्तर, भगवान् विष्णुके मुख-नि:श्वाससे प्रकट हुआ वायु उन मेघोंको नष्ट करके पुन: सौ वर्षतक चलता रहता है॥ २॥ फिर जनलोकनिवासी सनकादि सिद्धगणसे स्तुत और ब्रह्मलोकको प्राप्त हुए मुमुक्षुओंसे ध्यान किये जाते हुए सर्वभूतमय, अचिन्त्य, अनादि, जगत्के आदिकारण, आदिकर्ता, भूतभावन, मधुसूदन भगवान् हरि विश्वके सम्पूर्ण वायुको पीकर अपनी दिव्य-मायारूपिणी योगनिद्राका आश्रय ले अपने वासुदेवात्मक स्वरूपका चिन्तन करते हुए उस महासमुद्रमें शेषशय्यापर शयन करते हैं॥ ३—६॥ हे मैत्रेय! इस प्रलयके होनेमें ब्रह्मारूपधारी भगवान् हरिका शयन करना ही निमित्त है; इसलिये यह नैमित्तिक प्रलय कहलाता है॥ ७॥ जिस समय सर्वात्मा भगवान् विष्णु जागते रहते हैं उस समय सम्पूर्ण संसारकी चेष्टाएँ होती रहती हैं और जिस समय वे अच्युत मायारूपी शय्यापर सो जाते हैं उस समय संसार भी लीन हो जाता है॥ ८॥ जिस प्रकार ब्रह्माजीका दिन एक हजार चतुर्युगका होता है उसी प्रकार संसारके एकार्णवरूप हो जानेपर उनकी रात्रि भी उतनी ही बड़ी होती है॥ ९॥ उस रात्रिका अन्त होनेपर अजन्मा भगवान् विष्णु जागते हैं और ब्रह्मारूप धारणकर, जैसा तुमसे पहले कहा था उसी क्रमसे फिर सृष्टि रचते हैं॥ १०॥

हे द्विज! इस प्रकार तुमसे कल्पान्तमें होनेवाले नैमित्तिक एवं अवान्तर-प्रलयका वर्णन किया। अब दूसरे प्राकृत प्रलयका वर्णन सुनो॥ ११॥ हे मुने! अनावृष्टि आदिके संयोगसे सम्पूर्ण लोक और निखिल पातालोंके नष्ट हो जानेपर तथा भगवदिच्छासे उस प्रलयकालके उपस्थित होनेपर जब महत्तत्त्वसे लेकर [पृथिवी आदि पंच] विशेषपर्यन्त सम्पूर्ण विकार क्षीण हो जाते हैं तो प्रथम जल पृथिवीके गुण गन्धको अपनेमें लीन कर लेता है। इस प्रकार गन्ध छिन लिये जानेसे पृथिवीका प्रलय हो जाता है॥ १२—१४॥ गन्ध-तन्मात्राके नष्ट हो जानेपर पृथिवी जलमय हो जाती है, उस समय बड़े वेगसे घोर शब्द करता हुआ जल बढ़कर इस सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त कर लेता है। यह जल कभी स्थिर होता और कभी बहने लगता है। इस प्रकार तरंगमालाओंसे पूर्ण इस जलसे सम्पूर्ण लोक सब ओरसे व्याप्त हो जाते हैं॥ १५-१६॥ तदनन्तर जलके गुण रसको तेज अपनेमें लीन कर लेता है। इस प्रकार रस-तन्मात्राका क्षय हो जानेसे जल भी नष्ट हो जाता है॥ १७॥ तब रसहीन हो जानेसे जल अग्निरूप हो जाता है तथा अग्निके सब ओर व्याप्त हो जानेसे जलके अग्निमें स्थित हो जानेपर वह अग्नि सब ओर फैलकर सम्पूर्ण जलको सोख लेता है और धीरे-धीरे यह सम्पूर्ण जगत् ज्वालासे पूर्ण हो जाता है॥ १८-१९॥ जिस समय सम्पूर्ण लोक ऊपर-नीचे तथा सब ओर अग्नि-शिखाओंसे व्याप्त हो जाता है उस समय अग्निके प्रकाशक स्वरूपको वायु अपनेमें लीन कर लेता है॥ २०॥ सबके प्राणस्वरूप उस वायुमें जब अग्निका प्रकाशक रूप लीन हो जाता है तो रूप-तन्मात्राके नष्ट हो जानेसे अग्नि रूपहीन हो जाता है॥ २१॥ उस समय संसारके प्रकाशहीन और तेजके वायुमें लीन हो जानेसे अग्नि

शान्त हो जाता है और अति प्रचण्ड वायु चलने लगता है॥ २२ ॥ तब अपने उद्भवस्थान आकाशका आश्रय कर वह प्रचण्ड वायु ऊपर-नीचे तथा सब ओर दसों दिशाओंमें बड़े वेगसे चलने लगता है॥ २३ ॥ तदनन्तर वायुके गुण स्पर्शको आकाश लीन कर लेता है; तब वायु शान्त हो जाता है और आकाश आवरणहीन हो जाता है॥ २४॥ उस समय रूप, रस, स्पर्श, गन्ध तथा आकारसे रहित अत्यन्त महान् एक आकाश ही सबको व्याप्त करके प्रकाशित होता है॥ २५ ॥

उस समय चारों ओरसे गोल, छिद्रस्वरूप, शब्दलक्षण आकाश ही शेष रहता है; और वह शब्दमात्र आकाश सबको आच्छादित किये रहता है॥ २६ ॥ तदनन्तर, आकाशके गुण शब्दको भूतादि ग्रस लेता है। इस भूतादिमें ही एक साथ पंचभूत और इन्द्रियोंका भी लय हो जानेपर केवल अहंकारात्मक रह जानेसे यह तामस (तम:प्रधान) कहलाता है फिर इस भूतादिको भी [सत्त्वप्रधान होनेसे] बुद्धिरूप महत्तत्त्व ग्रस लेता है॥ २७-२८ ॥

जिस प्रकार पृथ्वी और महत्तत्त्व ब्रह्माण्डके अन्तर्जगत्की आदि-अन्त सीमाएँ हैं उसी प्रकार उसके बाह्य जगत्का भी है॥ २९ ॥ हे महाबुद्धे! इसी तरह जो सात आवरण बताये गये हैं वे सब भी प्रलयकालमें [पूर्ववत् पृथिवी आदि क्रमसे] परस्पर (अपने-अपने कारणोंमें) लीन हो जाते हैं॥ ३० ॥ जिससे यह समस्त लोक व्याप्त है वह सम्पूर्ण भूमण्डल सातों द्वीप, सातों समुद्र, सातों लोक और सकल पर्वतश्रेणियोंके सहित जलमें लीन हो जाता है॥ ३१ ॥ फिर जो जलका आवरण है उसे अग्नि पी जाता है तथा अग्नि वायुमें और वायु आकाशमें लीन हो जाता है॥ ३२ ॥ हे द्विज! आकाशको भूतादि (तामस अहंकार), भूतादिको महत्तत्त्व और इन सबके सहित महत्तत्त्वको मूल प्रकृति अपनेमें लीन कर लेती है॥ ३३ ॥ हे महामुने! न्यूनाधिकसे रहित जो सत्त्वादि तीनों गुणोंकी साम्यावस्था है उसीको प्रकृति कहते हैं; इसीका नाम प्रधान भी है। यह प्रधान ही सम्पूर्ण जगत्का परम कारण है॥ ३४॥ यह प्रकृति व्यक्त और अव्यक्तरूपसे सर्वमयी है। हे मैत्रेय! इसीलिये अव्यक्तमें व्यक्तरूप लीन हो जाता है॥ ३५ ॥

इससे पृथक् जो एक शुद्ध, अक्षर, नित्य और सर्वव्यापक पुरुष है वह भी सर्वभूत परमात्माका अंश ही है॥ ३६ ॥ जिस सत्तामात्रस्वरूप आत्मा (देहादि संघात)-से पृथक् रहनेवाले ज्ञानात्मा एवं ज्ञातव्य सर्वेश्वरमें नाम और जाति आदिकी कल्पना नहीं है वही सबका परम आश्रय परब्रह्म परमात्मा है और वही ईश्वर है। वह विष्णु ही इस अखिल विश्वरूपसे अवस्थित है उसको प्राप्त हो जानेपर योगिजन फिर इस संसारमें नहीं लौटते॥ ३७-३८ ॥ जिस व्यक्त और अव्यक्तस्वरूपिणी प्रकृतिका मैंने वर्णन किया है वह तथा पुरुष—ये दोनों भी उस परमात्मामें ही लीन हो जाते हैं॥ ३९ ॥ वह परमात्मा सबका आधार और एकमात्र अधीश्वर है; उसीका वेद और वेदान्तोंमें विष्णुनामसे वर्णन किया है॥ ४० ॥

वैदिक कर्म दो प्रकारका है—प्रवृत्तिरूप (कर्मयोग) और निवृत्तिरूप (सांख्ययोग)। इन दोनों प्रकारके कर्मोंसे उस सर्वभूत पुरुषोत्तमका ही यजन किया जाता है॥ ४१ ॥ ऋक्, यजु: और सामवेदोक्त प्रवृत्ति-मार्गसे लोग उन यज्ञपति पुरुषोत्तम यज्ञपुरुषका ही पूजन करते हैं॥ ४२ ॥ तथा निवृत्ति-मार्गमें स्थित योगिजन भी उन्हीं ज्ञानात्मा ज्ञानस्वरूप मुक्ति-फलदायक भगवान् विष्णुका ही ज्ञानयोगद्वारा यजन करते हैं॥ ४३ ॥ ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत—इन त्रिविध स्वरोंसे जो कुछ कहा जाता है तथा जो वाणीका विषय नहीं है वह सब भी अव्ययात्मा विष्णु ही है॥ ४४॥ वह विश्वरूपधारी विश्वरूप परमात्मा श्रीहरि ही व्यक्त, अव्यक्त एवं अविनाशी

पुरुष हैं॥ ४५॥ हे मैत्रेय! उन सर्वव्यापक और अविकृतरूप परमात्मामें ही व्यक्ताव्यक्तरूपिणी प्रकृति और पुरुष लीन हो जाते हैं॥ ४६॥

हे मैत्रेय! मैंने तुमसे जो द्विपरार्द्धकाल कहा है वह उन विष्णुभगवान्‌का केवल एक दिन है॥ ४७॥ हे महामुने! व्यक्त जगत्के अव्यक्त-प्रकृतिमें और प्रकृतिके पुरुषमें लीन हो जानेपर इतने ही कालकी विष्णुभगवान्‌की रात्रि होती है॥ ४८॥ हे द्विज! वास्तवमें तो उन नित्य परमात्माका न कोई दिन है और न रात्रि, तथापि केवल उपचार (अध्यारोप)-से ऐसा कहा जाता है॥ ४९॥ हे मैत्रेय! इस प्रकार मैंने तुमसे यह प्राकृत प्रलयका वर्णन किया, अब तुम आत्यन्तिक प्रलयका वर्णन और सुनो॥ ५०॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके छठे अंशमें चौथा अध्याय समाप्त॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

आध्यात्मिकादि त्रिविध तापोंका वर्णन, भगवान् तथा वासुदेव शब्दोंकी व्याख्या और भगवान्‌के पारमार्थिक स्वरूपका वर्णन

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—तीनों तापोंको जानकर ज्ञान और वैराग्य उत्पन्न होनेपर पण्डितजन आत्यन्तिक प्रलय प्राप्त करते हैं॥ १॥ आध्यात्मिक ताप शारीरिक और मानसिक दो प्रकारके होते हैं; उनमें शारीरिक तापके भी कितने ही भेद हैं, वह सुनो॥ २॥

शिरोरोग, प्रतिश्याय (पीनस), ज्वर, शूल, भगन्दर, गुल्म, अर्श (बवासीर), शोथ (सूजन), श्वास (दमा), छर्दि तथा नेत्ररोग, अतिसार और कुष्ठ आदि शारीरिक कष्ट-भेदसे दैहिक तापके कितने ही भेद हैं। अब मानसिक तापोंको सुनो॥ ३-४॥ हे द्विजश्रेष्ठ! काम, क्रोध, भय, द्वेष, लोभ, मोह, विषाद, शोक, असूया (गुणोंमें दोषारोपण), अपमान, ईर्ष्या और मात्सर्य आदि भेदोंसे मानसिक तापके अनेक भेद हैं। ऐसे ही नाना प्रकारके भेदोंसे युक्त तापको आध्यात्मिक कहते हैं॥ ५-६॥ मनुष्योंको जो दुःख मृग, पक्षी, मनुष्य, पिशाच, सर्प, राक्षस और सरीसृप (बिच्छू) आदिसे प्राप्त होता है उसे आधिभौतिक कहते हैं॥ ७॥ तथा हे द्विजवर! शीत, उष्ण, वायु, वर्षा, जल और विद्युत् आदिसे प्राप्त हुए दुःखको श्रेष्ठ पुरुष आधिदैविक कहते हैं॥ ८॥

हे मुनिश्रेष्ठ! इनके अतिरिक्त गर्भ, जन्म, जरा, अज्ञान, मृत्यु और नरकसे उत्पन्न हुए दुःखके भी सहस्रों प्रकारके भेद हैं॥ ९॥ अत्यन्त मलपूर्ण गर्भाशयमें उल्ब (गर्भकी झिल्ली)-से लिपटा हुआ यह सुकुमारशरीर जीव, जिसकी पीठ और ग्रीवाकी अस्थियाँ कुण्डलाकार मुड़ी रहती हैं, माताके खाये हुए अत्यन्त तापप्रद खट्टे, कड़वे, चरपरे, गर्म और खारे पदार्थोंसे जिसकी वेदना बहुत बढ़ जाती है, जो मल-मूत्ररूप महापंकमें पड़ा-पड़ा सम्पूर्ण अंगोंमें अत्यन्त पीड़ित होनेपर भी अपने अंगोंको फैलाने या सिकोड़नेमें समर्थ नहीं होता और चेतनायुक्त होनेपर भी श्वास नहीं ले सकता, अपने सैकड़ों पूर्वजन्मोंका स्मरण कर कर्मोंसे बँधा हुआ अत्यन्त दुःखपूर्वक गर्भमें पड़ा रहता है॥ १०—१३॥ उत्पन्न होनेके समय उसका मुख मल, मूत्र, रक्त और वीर्य आदिमें लिपटा रहता है और उसके सम्पूर्ण अस्थिबन्धन प्राजापत्य (गर्भको संकुचित करनेवाली) वायुसे अत्यन्त पीड़ित होते हैं॥ १४॥

प्रबल प्रसूति-वायु उसका मुख नीचेको कर देती है और वह आतुर होकर बड़े क्लेशके साथ माताके गर्भाशयसे बाहर निकल पाता है॥ १५॥

हे मुनिसत्तम! उत्पन्न होनेके अनन्तर बाह्य वायुका स्पर्श होनेसे अत्यन्त मूर्च्छित होकर वह जीव बेसुध हो जाता है॥ १६॥ उस समय वह जीव दुर्गन्धयुक्त फोड़ेमेंसे गिरे हुए किसी कण्टक-विद्ध अथवा आरेसे चीरे हुए कीड़ेके समान पृथिवीपर गिरता है॥ १७॥ उसे स्वयं खुजलाने अथवा करवट लेनेकी भी शक्ति नहीं रहती। वह स्नान तथा दुग्धपानादि आहार भी दूसरेहीकी इच्छासे प्राप्त करता है॥ १८॥ अपवित्र (मल-मूत्रादिमें सने हुए) बिस्तरपर पड़ा रहता है, उस समय कीड़े और डाँस आदि उसे काटते हैं तथापि वह उन्हें दूर करनेमें भी समर्थ नहीं होता॥ १९॥

इस प्रकार जन्मके समय और उसके अनन्तर बाल्यावस्थामें जीव आधिभौतिकादि अनेकों दुःख भोगता है॥ २०॥ अज्ञानरूप अन्धकारसे आवृत होकर मूढ़हृदय पुरुष यह नहीं जानता कि 'मैं कहाँसे आया हूँ? कौन हूँ? कहाँ जाऊँगा? तथा मेरा स्वरूप क्या है?॥ २१॥ मैं किस बन्धनसे बँधा हूँ? इस बन्धनका क्या कारण है? अथवा यह अकारण ही प्राप्त हुआ है? मुझे क्या करना चाहिये और क्या न करना चाहिये? तथा क्या कहना चाहिये और क्या न कहना चाहिये?॥ २२॥ धर्म क्या है? अधर्म क्या है? किस अवस्थामें मुझे किस प्रकार रहना चाहिये? क्या कर्तव्य है और क्या अकर्तव्य है? अथवा क्या गुणमय और क्या दोषमय है?'॥ २३॥ इस प्रकार पशुके समान विवेकशून्य शिश्नोदर-परायण पुरुष अज्ञानजनित महान् दुःख भोगते हैं॥ २४॥

हे द्विज! अज्ञान तामसिक भाव (विकार) है, अतः अज्ञानी पुरुषोंकी (तामसिक) कर्मोंके आरम्भमें प्रवृत्ति होती है; इससे वैदिक कर्मोंका लोप हो जाता है॥ २५॥ मनीषिजनोंने कर्म-लोपका फल नरक बतलाया है; इसलिये अज्ञानी पुरुषोंको इहलोक और परलोक दोनों जगह अत्यन्त ही दुःख भोगना पड़ता है॥ २६॥ शरीरके जरा-जर्जरित हो जानेपर पुरुषके अंग-प्रत्यंग शिथिल हो जाते हैं, उसके दाँत पुराने होकर उखड़ जाते हैं और शरीर झुर्रियों तथा नस-नाड़ियोंसे आवृत हो जाता है॥ २७॥ उसकी दृष्टि दूरस्थ विषयके ग्रहण करनेमें असमर्थ हो जाती है, नेत्रोंके तारे गोलकोंमें घुस जाते हैं, नासिकाके रन्ध्रोंमेंसे बहुत-से रोम बाहर निकल आते हैं और शरीर काँपने लगता है॥ २८॥ उसकी समस्त हड्डियाँ दिखलायी देने लगती हैं, मेरुदण्ड झुक जाता है तथा जठराग्निके मन्द पड़ जानेसे उसके आहार और पुरुषार्थ कम हो जाते हैं॥ २९॥ उस समय उसकी चलना-फिरना, उठना-बैठना और सोना आदि सभी चेष्टाएँ बड़ी कठिनतासे होती हैं, उसके श्रोत्र और नेत्रोंकी शक्ति मन्द पड़ जाती है तथा लार बहते रहनेसे उसका मुख मलिन हो जाता है॥ ३०॥ अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ स्वाधीन न रहनेके कारण वह सब प्रकार मरणासन्न हो जाता है तथा [स्मरणशक्तिके क्षीण हो जानेसे] वह उसी समय अनुभव किये हुए समस्त पदार्थोंको भी भूल जाता है॥ ३१॥ उसे एक वाक्य उच्चारण करनेमें भी महान् परिश्रम होता है तथा श्वास और खाँसी आदिके महान् कष्टके कारण वह [दिन-रात] जागता रहता है॥ ३२॥ वृद्ध पुरुष औरोंकी सहायतासे ही उठता तथा औरोंके बिठानेसे ही बैठ सकता है, अतः वह अपने सेवक और स्त्री-पुत्रादिके लिये सदा अनादरका पात्र बना रहता है॥ ३३॥ उसका समस्त शौचाचार नष्ट हो जाता है तथा भोग और भोजनकी लालसा बढ़ जाती है; उसके परिजन भी उसकी हँसी उड़ाते हैं और बन्धुजन उससे उदासीन हो जाते हैं॥ ३४॥ अपनी

युवावस्थाकी चेष्टाओंको अन्य जन्ममें अनुभव की हुई-सी स्मरण करके वह अत्यन्त सन्तापवश दीर्घ नि:श्वास छोड़ता रहता है॥ ३५॥

इस प्रकार वृद्धावस्थामें ऐसे ही अनेकों दु:ख अनुभव कर उसे मरणकालमें जो कष्ट भोगने पड़ते हैं वे भी सुनो॥ ३६॥ कण्ठ और हाथ-पैर शिथिल पड़ जाते तथा शरीरमें अत्यन्त कम्प छा जाता है। बार-बार उसे ग्लानि होती और कभी कुछ चेतना भी आ जाती है॥ ३७॥ उस समय वह अपने हिरण्य (सोना), धन-धान्य, पुत्र-स्त्री, भृत्य और गृह आदिके प्रति 'इन सबका क्या होगा?' इस प्रकार अत्यन्त ममतासे व्याकुल हो जाता है॥ ३८॥ उस समय मर्मभेदी क्रकच (आरे) तथा यमराजके विकराल बाणके समान महाभयंकर रोगोंसे उसके प्राण-बन्धन कटने लगते हैं॥ ३९॥ उसकी आँखोंके तारे चढ़ जाते हैं, वह अत्यन्त पीड़ासे बारम्बार हाथ-पैर पटकता है तथा उसके तालु और ओंठ सूखने लगते हैं॥ ४०॥ फिर क्रमश: दोष-समूहसे उसका कण्ठ रुक जाता है अत: वह 'घरघर' शब्द करने लगता है; तथा ऊर्ध्वश्वाससे पीड़ित और महान् तापसे व्याप्त होकर क्षुधा-तृष्णासे व्याकुल हो उठता है॥ ४१॥ ऐसी अवस्थामें भी यमदूतोंसे पीड़ित होता हुआ वह बड़े क्लेशसे शरीर छोड़ता है और अत्यन्त कष्टसे कर्मफल भोगनेके लिये यातना-देह प्राप्त करता है॥ ४२॥ मरणकालमें मनुष्योंको ये और ऐसे ही अन्य भयानक कष्ट भोगने पड़ते हैं; अब, मरणोपरान्त उन्हें नरकमें जो यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं वह सुनो— ॥ ४३॥

प्रथम यम-किंकर अपने पाशोंमें बाँधते हैं; फिर उनके दण्ड-प्रहार सहने पड़ते हैं, तदनन्तर यमराजका दर्शन होता है और वहाँतक पहुँचनेमें बड़ा दुर्गम मार्ग देखना पड़ता है॥ ४४॥

हे द्विज! फिर तप्त बालुका, अग्नि-यन्त्र और शस्त्रादिसे महाभयंकर नरकोंमें जो यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं वे अत्यन्त असह्य होती हैं॥ ४५॥ आरेसे चीरे जाने, मूसमें तपाये जाने, कुल्हाड़ीसे काटे जाने, भूमिमें गाड़े जाने, शूलीपर चढ़ाये जाने, सिंहके मुखमें डाले जाने, गिद्धोंके नोचने, हाथियोंसे दलित होने, तेलमें पकाये जाने, खारे दलदलमें फँसने, ऊपर ले जाकर नीचे गिराये जाने और क्षेपण-यन्त्रद्वारा दूर फेंके जानेसे नरकनिवासियोंको अपने पाप-कर्मोंके कारण जो-जो कष्ट उठाने पड़ते हैं उनकी गणना नहीं हो सकती॥ ४६—४९॥

हे द्विजश्रेष्ठ! केवल नरकमें ही दु:ख हों, सो बात नहीं है, स्वर्गमें भी पतनका भय लगे रहनेसे कभी शान्ति नहीं मिलती॥ ५०॥ [नरक अथवा स्वर्ग-भोगके अनन्तर] बार-बार वह गर्भमें आता है और जन्म ग्रहण करता है तथा फिर कभी गर्भमें ही नष्ट हो जाता है और कभी जन्म लेते ही मर जाता है॥ ५१॥ जो उत्पन्न हुआ है वह जन्मते ही, बाल्यावस्थामें, युवावस्थामें, मध्यमवयमें अथवा जराग्रस्त होनेपर अवश्य मर जाता है॥ ५२॥ जबतक जीता है तबतक नाना प्रकारके कष्टोंसे घिरा रहता है, जिस तरह कि कपासका बीज तन्तुओंके कारण सूत्रोंसे घिरा रहता है॥ ५३॥ द्रव्यके उपार्जन, रक्षण और नाशमें तथा इष्ट-मित्रोंके विपत्तिग्रस्त होनेपर भी मनुष्योंको अनेकों दु:ख उठाने पड़ते हैं॥ ५४॥

हे मैत्रेय! मनुष्योंको जो-जो वस्तुएँ प्रिय हैं, वे सभी दु:खरूपी वृक्षका बीज हो जाती हैं॥ ५५॥ स्त्री, पुत्र, मित्र, अर्थ, गृह, क्षेत्र और धन आदिसे पुरुषोंको जैसा दु:ख होता है वैसा सुख नहीं होता॥ ५६॥ इस प्रकार सांसारिक दु:खरूप सूर्यके तापसे जिनका अन्त:करण तप्त हो रहा है उन पुरुषोंको मोक्षरूपी वृक्षकी [घनी] छायाको छोड़कर और कहाँ सुख मिल सकता है?॥ ५७॥ अत:

मेरे मतमें गर्भ, जन्म और जरा आदि स्थानोंमें प्रकट होनेवाले आध्यात्मिकादि त्रिविध दु:ख-समूहकी एकमात्र सनातन ओषधि भगवत्प्राप्ति ही है जिसका निरतिशय आनन्दरूप सुखकी प्राप्ति कराना ही प्रधान लक्षण है॥ ५८-५९ ॥ इसलिये पण्डितजनोंको भगवत्प्राप्तिका प्रयत्न करना चाहिये। हे महामुने! कर्म और ज्ञान—ये दो ही उसकी प्राप्तिके कारण कहे गये हैं॥ ६० ॥

ज्ञान दो प्रकारका है—शास्त्रजन्य तथा विवेकज। शब्दब्रह्मका ज्ञान शास्त्रजन्य है और परब्रह्मका बोध विवेकज॥ ६१ ॥ हे विप्रर्षे! अज्ञान घोर अन्धकारके समान है। उसको नष्ट करनेके लिये शास्त्रजन्य* ज्ञान दीपकवत् और विवेकज ज्ञान सूर्यके समान है॥ ६२ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ! इस विषयमें वेदार्थका स्मरणकर मनुजीने जो कुछ कहा है वह बतलाता हूँ, श्रवण करो॥ ६३ ॥

ब्रह्म दो प्रकारका है—शब्दब्रह्म और परब्रह्म। शब्दब्रह्म (शास्त्रजन्य ज्ञान)-में निपुण हो जानेपर जिज्ञासु [विवेकज ज्ञानके द्वारा] परब्रह्मको प्राप्त कर लेता है॥ ६४॥ अथर्ववेदकी श्रुति है कि विद्या दो प्रकारकी है—परा और अपरा। परासे अक्षर ब्रह्मकी प्राप्ति होती है और अपरा ऋगादि वेदत्रयीरूपा है॥ ६५ ॥ जो अव्यक्त, अजर, अचिन्त्य, अज, अव्यय, अनिर्देश्य, अरूप, पाणि-पादादिशून्य, व्यापक, सर्वगत, नित्य, भूतोंका आदिकारण, स्वयं कारणहीन तथा जिससे सम्पूर्ण व्याप्य और व्यापक प्रकट हुआ है और जिसे पण्डितजन [ज्ञाननेत्रोंसे] देखते हैं वह परमधाम ही ब्रह्म है, मुमुक्षुओंको उसीका ध्यान करना चाहिये और वही भगवान् विष्णुका वेदवचनोंसे प्रतिपादित अति सूक्ष्म परमपद है॥ ६६—६८ ॥ परमात्माका वह स्वरूप ही 'भगवत्' शब्दका वाच्य है और भगवत् शब्द ही उस आद्य एवं अक्षय स्वरूपका वाचक है॥ ६९ ॥

जिसका ऐसा स्वरूप बतलाया गया है उस परमात्माके तत्त्वका जिसके द्वारा वास्तविक ज्ञान होता है वही परम ज्ञान (परा विद्या) है। त्रयीमय ज्ञान (कर्मकाण्ड) इससे पृथक् (अपरा विद्या) है॥ ७० ॥ हे द्विज! वह ब्रह्म यद्यपि शब्दका विषय नहीं है तथापि आदरप्रदर्शनके लिये उसका 'भगवत्' शब्दसे उपचारत: कथन किया जाता है॥ ७१ ॥ हे मैत्रेय! समस्त कारणोंके कारण, महाविभूतिसंज्ञक परब्रह्मके लिये ही 'भगवत्' शब्दका प्रयोग हुआ है॥ ७२ ॥ इस ('भगवत्' शब्द)-में भकारके दो अर्थ हैं—पोषण करनेवाला और सबका आधार तथा गकारके अर्थ कर्म-फल प्राप्त करनेवाला, लय करनेवाला और रचयिता हैं॥ ७३ ॥ सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य—इन छ:का नाम 'भग' है॥ ७४ ॥ उस अखिल भूतात्मामें समस्त भूतगण निवास करते हैं और वह स्वयं भी समस्त भूतोंमें विराजमान है, इसलिये वह अव्यय (परमात्मा) ही वकारका अर्थ है॥ ७५ ॥

हे मैत्रेय! इस प्रकार यह महान् 'भगवान्' शब्द परब्रह्मस्वरूप श्रीवासुदेवका ही वाचक है, किसी औरका नहीं॥ ७६ ॥ पूज्य पदार्थोंको सूचित करनेके लक्षणसे युक्त इस 'भगवान्' शब्दका परमात्मामें मुख्य प्रयोग है तथा औरोंके लिये गौण॥ ७७ ॥ क्योंकि जो समस्त प्राणियोंके उत्पत्ति और नाश, आना और जाना तथा विद्या और अविद्याको जानता है वही भगवान् कहलानेयोग्य है॥ ७८ ॥ त्याग करनेयोग्य [त्रिविध] गुण [और उनके क्लेश] आदिको छोड़कर ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज आदि सद्गुण ही 'भगवत्' शब्दके वाच्य हैं॥ ७९ ॥

* श्रवण-इन्द्रियद्वारा शास्त्रका ग्रहण होता है; इसलिये शास्त्रजन्य ज्ञान ही 'इन्द्रियोद्भव' शब्दसे कहा गया है।

उन परमात्मामें ही समस्त भूत बसते हैं और वे स्वयं भी सबके आत्मारूपसे सकल भूतोंमें विराजमान हैं, इसलिये उन्हें वासुदेव भी कहते हैं॥ ८०॥ पूर्वकालमें खाण्डिक्य जनकके पूछनेपर केशिध्वजने उनसे भगवान् अनन्तके 'वासुदेव' नामकी यथार्थ व्याख्या इस प्रकार की थी॥ ८१॥ 'प्रभु समस्त भूतोंमें व्याप्त हैं और सम्पूर्ण भूत भी उन्हींमें रहते हैं तथा वे ही संसारके रचयिता और रक्षक हैं; इसलिये वे 'वासुदेव' कहलाते हैं'॥ ८२॥ हे मुने! वे सर्वात्मा समस्त आवरणोंसे परे हैं। वे समस्त भूतोंकी प्रकृति, प्रकृतिके विकार तथा गुण और उनके कार्य आदि दोषोंसे विलक्षण हैं! पृथिवी और आकाशके बीचमें जो कुछ स्थित है उन्होंने वह सब व्याप्त किया है॥ ८३॥ वे सम्पूर्ण कल्याण-गुणोंके स्वरूप हैं, उन्होंने अपनी मायाशक्तिके लेशमात्रसे ही सम्पूर्ण प्राणियोंको व्याप्त किया है और वे अपनी इच्छासे स्वमनोऽनुकूल महान् शरीर धारणकर समस्त संसारका कल्याण-साधन करते हैं॥ ८४॥ वे तेज, बल, ऐश्वर्य, महाविज्ञान, वीर्य और शक्ति आदि गुणोंकी एकमात्र राशि हैं, प्रकृति आदिसे भी परे हैं और उन परावरेश्वरमें अविद्यादि सम्पूर्ण क्लेशोंका अत्यन्ताभाव है॥ ८५॥ वे ईश्वर ही समष्टि और व्यष्टिरूप हैं, वे ही व्यक्त और अव्यक्तस्वरूप हैं, वे ही सबके स्वामी, सबके साक्षी और सब कुछ जाननेवाले हैं तथा उन्हीं सर्वशक्तिमान्‌की परमेश्वर संज्ञा है॥ ८६॥ जिसके द्वारा वे निर्दोष, विशुद्ध, निर्मल और एकरूप परमात्मा देखे या जाने जाते हैं उसीका नाम ज्ञान (परा विद्या) है और जो इसके विपरीत है वही अज्ञान (अपरा विद्या) है॥ ८७॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके छठे अंशमें पाँचवाँ अध्याय समाप्त॥ ५॥

छठा अध्याय

केशिध्वज और खाण्डिक्यकी कथा

श्रीपराशरजी बोले—वे पुरुषोत्तम स्वाध्याय और संयमद्वारा देखे जाते हैं, ब्रह्मकी प्राप्तिका कारण होनेसे ये भी ब्रह्म ही कहलाते हैं॥ १॥ स्वाध्यायसे योगका और योगसे स्वाध्यायका आश्रय करे। इस प्रकार स्वाध्याय और योगरूप सम्पत्तिसे परमात्मा प्रकाशित (ज्ञानके विषय) होते हैं॥ २॥ ब्रह्मस्वरूप परमात्माको मांसमय चक्षुओंसे नहीं देखा जा सकता, उन्हें देखनेके लिये स्वाध्याय और योग ही दो नेत्र हैं॥ ३॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—भगवन्! जिसे जान लेनेपर मैं अखिलाधार परमेश्वरको देख सकूँगा उस योगको मैं जानना चाहता हूँ; उसका वर्णन कीजिये॥ ४॥

श्रीपराशरजी बोले—पूर्वकालमें जिस प्रकार इस योगका केशिध्वजने महात्मा खाण्डिक्य जनकसे वर्णन किया था मैं तुम्हें वही बतलाता हूँ॥ ५॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—ब्रह्मन्! यह खाण्डिक्य और विद्वान् केशिध्वज कौन थे? और उनका योगसम्बन्धी संवाद किस कारणसे हुआ था?॥ ६॥

श्रीपराशरजी बोले—पूर्वकालमें धर्मध्वज जनक नामक एक राजा थे। उनके अमितध्वज और कृतध्वज नामक दो पुत्र हुए। इनमें कृतध्वज सर्वदा अध्यात्मशास्त्रमें रत रहता था॥ ७॥ कृतध्वजका पुत्र केशिध्वज नामसे विख्यात हुआ और अमितध्वजका पुत्र खाण्डिक्य जनक हुआ॥ ८॥ पृथिवीमण्डलमें खाण्डिक्य कर्म-मार्गमें अत्यन्त

निपुण था और केशिध्वज अध्यात्मविद्याका विशेषज्ञ था॥ ९॥ वे दोनों परस्पर एक-दूसरेको पराजित करनेकी चेष्टामें लगे रहते थे। अन्तमें, कालक्रमसे केशिध्वजने खाण्डिक्यको राज्यच्युत कर दिया॥ १०॥ राज्यभ्रष्ट होनेपर खाण्डिक्य पुरोहित और मन्त्रियोंके सहित थोड़ी-सी सामग्री लेकर दुर्गम वनोंमें चला गया॥ ११॥ केशिध्वज ज्ञाननिष्ठ था तो भी अविद्या (कर्म)-द्वारा मृत्युको पार करनेके लिये ज्ञानदृष्टि रखते हुए उसने अनेकों यज्ञोंका अनुष्ठान किया॥ १२॥

हे योगिश्रेष्ठ! एक दिन जब राजा केशिध्वज यज्ञानुष्ठानमें स्थित थे उनकी धर्मधेनु (हविके लिये दूध देनेवाली गौ)-को निर्जन वनमें एक भयंकर सिंहने मार डाला॥ १३॥ व्याघ्रद्वारा गौको मारी गयी सुन राजाने ऋत्विजोंसे पूछा कि 'इसमें क्या प्रायश्चित्त करना चाहिये?'॥ १४॥ ऋत्विजोंने कहा—'हम [इस विषयमें] नहीं जानते; आप कशेरुसे पूछिये।' जब राजाने कशेरुसे यह बात पूछी तो उन्होंने भी उसी प्रकार कहा कि 'हे राजेन्द्र! मैं इस विषयमें नहीं जानता। आप भृगुपुत्र शुनकसे पूछिये, वे अवश्य जानते होंगे।' हे मुने! जब राजाने शुनकसे जाकर पूछा तो उन्होंने भी जो कुछ कहा, वह सुनिये—॥ १५-१६॥

"इस समय भूमण्डलमें इस बातको न कशेरु जानता है, न मैं जानता हूँ और न कोई और ही जानता है, केवल जिसे तुमने परास्त किया है वह तुम्हारा शत्रु खाण्डिक्य ही इस बातको जानता है"॥ १७॥ यह सुनकर केशिध्वजने कहा—'हे मुनिश्रेष्ठ! मैं अपने शत्रु खाण्डिक्यसे ही यह बात पूछने जाता हूँ। यदि उसने मुझे मार दिया तो भी मुझे महायज्ञका फल तो मिल ही जायगा और यदि मेरे पूछनेपर उसने मुझे सारा प्रायश्चित्त यथावत् बतला दिया तो मेरा यज्ञ निर्विघ्न पूर्ण हो जायगा'॥ १८-१९॥

श्रीपराशरजी बोले—ऐसा कहकर राजा केशिध्वज कृष्ण मृगचर्म धारणकर रथपर आरूढ़ हो वनमें, जहाँ महामति खाण्डिक्य रहते थे, आये॥ २०॥ खाण्डिक्यने अपने शत्रुको आते देखकर धनुष चढ़ा लिया और क्रोधसे नेत्र लाल करके कहा—॥ २१॥

खाण्डिक्य बोले—अरे! क्या तू कृष्णाजिनरूप कवच बाँधकर हमलोगोंको मारेगा? क्या तू यह समझता है कि कृष्ण मृगचर्म धारण किये हुए मुझपर यह प्रहार नहीं करेगा?॥ २२॥ हे मूढ़! मृगोंकी पीठपर क्या कृष्ण मृगचर्म नहीं होता, जिनपर कि मैंने और तूने दोनोंहीने तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा की है॥ २३॥ अतः अब मैं तुझे अवश्य मारूँगा, तू मेरे हाथसे जीवित बचकर नहीं जा सकता। हे दुर्बुद्धे! तू मेरा राज्य छीननेवाला शत्रु है, इसलिये आततायी है॥ २४॥

केशिध्वज बोले—हे खाण्डिक्य! मैं आपसे एक सन्देह पूछनेके लिये आया हूँ, आपको मारनेके लिये नहीं आया, इस बातको सोचकर आप मुझपर क्रोध अथवा बाण छोड़ दीजिये॥ २५॥

श्रीपराशरजी बोले—यह सुनकर महामति खाण्डिक्यने अपने सम्पूर्ण पुरोहित और मन्त्रियोंसे एकान्तमें सलाह की॥ २६॥ मन्त्रियोंने कहा कि 'इस समय शत्रु आपके वशमें है, इसे मार डालना चाहिये। इसको मार देनेपर यह सम्पूर्ण पृथिवी आपके अधीन हो जायगी'॥ २७॥ खाण्डिक्यने कहा—"यह निस्सन्देह ठीक है, इसके मारे जानेपर अवश्य सम्पूर्ण पृथिवी मेरे अधीन हो जायगी; किन्तु इसे पारलौकिक जय प्राप्त होगी और मुझे सम्पूर्ण पृथिवी। परन्तु यदि इसे नहीं मारूँगा तो मुझे पारलौकिक जय प्राप्त होगी और इसे सारी पृथिवी॥ २८-२९॥ मैं पारलौकिक जयसे पृथिवीको अधिक नहीं मानता; क्योंकि परलोक-जय अनन्तकालके लिये होती है और पृथिवी तो थोड़े

ही दिन रहती है। इसलिये मैं इसे मारूँगा नहीं, यह जो कुछ पूछेगा, बतला दूँगा"॥ ३०-३१॥

श्रीपराशरजी बोले—तब खाण्डिक्य जनकने अपने शत्रु केशिध्वजके पास आकर कहा—'तुम्हें जो कुछ पूछना हो पूछ लो, मैं उसका उत्तर दूँगा'॥ ३२॥

हे द्विज! तब केशिध्वजने जिस प्रकार धर्मधेनु मारी गयी थी वह सब वृत्तान्त खाण्डिक्यसे कहा और उसके लिये प्रायश्चित्त पूछा॥ ३३॥ खाण्डिक्यने भी वह सम्पूर्ण प्रायश्चित्त, जिसका कि उसके लिये विधान था, केशिध्वजको विधिपूर्वक बतला दिया॥ ३४॥ तदनन्तर पूछे हुए अर्थको जान लेनेपर महात्मा खाण्डिक्यकी आज्ञा लेकर वे यज्ञभूमिमें आये और क्रमशः सम्पूर्ण कर्म समाप्त किया॥ ३५॥

फिर कालक्रमसे यज्ञ समाप्त होनेपर अवभृथ (यज्ञान्त) स्नानके अनन्तर कृतकृत्य होकर राजा केशिध्वजने सोचा॥ ३६॥ "मैंने सम्पूर्ण ऋत्विज् ब्राह्मणोंका पूजन किया, समस्त सदस्योंका मान किया, याचकोंको उनकी इच्छित वस्तुएँ दीं, लोकाचारके अनुसार जो कुछ कर्तव्य था वह सभी मैंने किया, तथापि न जाने, क्यों मेरे चित्तमें किसी क्रियाका अभाव खटक रहा है?"॥ ३७-३८॥ इस प्रकार सोचते-सोचते राजाको स्मरण हुआ कि मैंने अभीतक खाण्डिक्यको गुरु-दक्षिणा नहीं दी॥ ३९॥ हे मैत्रेय! तब वे रथपर चढ़कर फिर उसी दुर्गम वनमें गये, जहाँ खाण्डिक्य रहते थे॥ ४०॥ खाण्डिक्य भी उन्हें फिर शस्त्र धारण किये आते देख मारनेके लिये उद्यत हुए। तब राजा केशिध्वजने कहा— ॥ ४१॥ "खाण्डिक्य! तुम क्रोध न करो, मैं तुम्हारा कोई अनिष्ट करनेके लिये नहीं आया, बल्कि तुम्हें गुरु-दक्षिणा देनेके लिये आया हूँ—ऐसा समझो॥ ४२॥ मैंने तुम्हारे उपदेशानुसार अपना यज्ञ भली प्रकार समाप्त कर दिया है, अब मैं तुम्हें गुरु-दक्षिणा देना चाहता हूँ, तुम्हें जो इच्छा हो माँग लो"॥ ४३॥

श्रीपराशरजी बोले—तब खाण्डिक्यने फिर अपने मन्त्रियोंसे परामर्श किया कि "यह मुझे गुरु-दक्षिणा देना चाहता है, मैं इससे क्या माँगूँ?"॥ ४४॥ मन्त्रियोंने कहा—"आप इससे सम्पूर्ण राज्य माँग लीजिये, बुद्धिमान् लोग शत्रुओंसे अपने सैनिकोंको कष्ट दिये बिना राज्य ही माँगा करते हैं"॥ ४५॥ तब महामति राजा खाण्डिक्यने उनसे हँसते हुए कहा—"मेरे-जैसे लोग कुछ ही दिन रहनेवाला राज्यपद कैसे माँग सकते हैं?॥ ४६॥ यह ठीक है आपलोग स्वार्थ-साधनके लिये ही परामर्श देनेवाले हैं; किन्तु 'परमार्थ क्या और कैसा है?' इस विषयमें आपको विशेष ज्ञान नहीं है"॥ ४७॥

श्रीपराशरजी बोले—यह कहकर राजा खाण्डिक्य केशिध्वजके पास आये और उनसे कहा, 'क्या तुम मुझे अवश्य गुरु-दक्षिणा दोगे?'॥ ४८॥ जब केशिध्वजने कहा कि 'मैं अवश्य दूँगा' तो खाण्डिक्य बोले—"आप आध्यात्मज्ञानरूप परमार्थ-विद्यामें बड़े कुशल हैं॥ ४९॥ सो यदि आप मुझे गुरु-दक्षिणा देना ही चाहते हैं तो जो कर्म समस्त क्लेशोंकी शान्ति करनेमें समर्थ हो वह बतलाइये"॥ ५०॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके छठे अंशमें छठा अध्याय समाप्त॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

ब्रह्मयोगका निर्णय

केशिध्वज बोले—क्षत्रियोंको तो राज्य-प्राप्तिसे अधिक प्रिय और कुछ भी नहीं होता, फिर तुमने मेरा निष्कण्टक राज्य क्यों नहीं माँगा?॥ १ ॥

खाण्डिक्य बोले—हे केशिध्वज! मैंने जिस कारणसे तुम्हारा राज्य नहीं माँगा वह सुनो। इन राज्यादिकी आकांक्षा तो मूर्खोंको हुआ करती है॥ २ ॥

क्षत्रियोंका धर्म तो यही है कि प्रजाका पालन करें और अपने राज्यके विरोधियोंका धर्म-युद्धसे वध करें॥ ३ ॥

शक्तिहीन होनेके कारण यदि तुमने मेरा राज्य हरण कर लिया है, तो [असमर्थतावश प्रजापालन न करनेपर भी] मुझे कोई दोष न होगा। [किन्तु राज्याधिकार होनेपर यथावत् प्रजापालन न करनेसे दोषका भागी होना पड़ता है] क्योंकि यद्यपि यह (स्वकर्म) अविद्या ही है तथापि नियमविरुद्ध त्याग करनेपर यह बन्धनका कारण होती है॥ ४ ॥ यह राज्यकी चाह मुझे तो जन्मान्तरके [कर्मोंद्वारा प्राप्त] सुखभोगके लिये होती है; और वही मन्त्री आदि अन्य जनोंको राग एवं लोभ आदि दोषोंसे उत्पन्न होती है केवल धर्मानुरोधसे नहीं॥ ५ ॥ 'उत्तम क्षत्रियोंका [राज्यादिकी] याचना करना धर्म नहीं है' यह महात्माओंका मत है। इसीलिये मैंने अविद्या (पालनादि कर्म)-के अन्तर्गत तुम्हारा राज्य नहीं माँगा॥ ६ ॥ जो लोग अहंकाररूपी मदिराका पान करके उन्मत्त हो रहे हैं तथा जिनका चित्त ममताग्रस्त हो रहा है वे मूढ़जन ही राज्यकी अभिलाषा करते हैं; मेरे-जैसे लोग राज्यकी इच्छा नहीं करते॥ ७ ॥

श्रीपराशरजी बोले—तब राजा केशिध्वजने प्रसन्न होकर खाण्डिक्य जनकको साधुवाद दिया और प्रीतिपूर्वक कहा, मेरा वचन सुनो—॥ ८ ॥ मैं अविद्याद्वारा मृत्युको पार करनेकी इच्छासे ही राज्य तथा विविध यज्ञोंका अनुष्ठान करता हूँ और नाना भोगोंद्वारा अपने पुण्योंका क्षय कर रहा हूँ॥ ९ ॥ हे कुलनन्दन! बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुम्हारा मन विवेकसम्पन्न हुआ है अत: तुम अविद्याका स्वरूप सुनो॥ १० ॥ संसार-वृक्षकी बीजभूता यह अविद्या दो प्रकारकी है—अनात्मामें आत्मबुद्धि और जो अपना नहीं है उसे अपना मानना॥ ११ ॥ यह कुमति जीव मोहरूपी अन्धकारसे आवृत होकर इस पंचभूतात्मक देहमें 'मैं' और 'मेरापन' का भाव करता है॥ १२ ॥ जब कि आत्मा आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी आदिसे सर्वथा पृथक् है तो कौन बुद्धिमान् व्यक्ति शरीरमें आत्मबुद्धि करेगा?॥ १३ ॥ और आत्माके देहसे परे होनेपर भी देहके उपभोग्य गृह-क्षेत्रादिको कौन प्राज्ञ पुरुष 'अपना' मान सकता है॥ १४ ॥ इस प्रकार इस शरीरके अनात्मा होनेसे इससे उत्पन्न हुए पुत्र-पौत्रादिमें भी कौन विद्वान् अपनापन करेगा॥ १५ ॥ मनुष्य सारे कर्म देहके ही उपभोगके लिये करता है; किन्तु जब कि यह देह अपनेसे पृथक् है, तो वे कर्म केवल बन्धन (देहोत्पत्ति)-के ही कारण होते हैं॥ १६ ॥ जिस प्रकार मिट्टीके घरको जल और मिट्टीसे लीपते-पोतते हैं उसी प्रकार यह पार्थिव शरीर भी मृत्तिका (मृण्मय अन्न) और जलकी सहायतासे ही स्थिर रहता है॥ १७ ॥ यदि यह पंचभूतात्मक शरीर पांचभौतिक पदार्थोंसे पुष्ट होता है तो इसमें पुरुषने क्या भोग किया॥ १८ ॥ यह जीव अनेक सहस्र जन्मोंतक सांसारिक भोगोंमें पड़े रहनेसे उन्हींकी वासनारूपी

धूलिसे आच्छादित हो जानेके कारण केवल मोहरूपी श्रमको ही प्राप्त होता है॥ १९॥ जिस समय ज्ञानरूपी गर्म जलसे उसकी वह धूलि धो दी जाती है तब इस संसार-पथके पथिकका मोहरूपी श्रम शान्त हो जाता है॥ २०॥ मोह-श्रमके शान्त हो जानेपर पुरुष स्वस्थ-चित्त हो जाता है और निरतिशय एवं निर्बाध परम निर्वाण पद प्राप्त कर लेता है॥ २१॥ यह ज्ञानमय निर्मल आत्मा निर्वाण-स्वरूप ही है, दुःख आदि जो अज्ञानमय धर्म हैं वे प्रकृतिके हैं, आत्माके नहीं॥ २२॥ हे राजन्! जिस प्रकार स्थाली (बटलोई)-के जलका अग्निसे संयोग नहीं होता तथापि स्थालीके संसर्गसे ही उसमें खौलनेके शब्द आदि धर्म प्रकट हो जाते हैं, उसी प्रकार प्रकृतिके संसर्गसे ही आत्मा अहंकारादिसे दूषित होकर प्राकृत धर्मोंको स्वीकार करता है; वास्तवमें तो वह अव्ययात्मा उनसे सर्वथा पृथक् है॥ २३-२४॥ इस प्रकार मैंने तुम्हें यह अविद्याका बीज बतलाया; इस अविद्यासे प्राप्त हुए क्लेशोंको नष्ट करनेवाला योगसे अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है॥ २५॥

खाण्डिक्य बोले—हे योगवेत्ताओंमें श्रेष्ठ महाभाग केशिध्वज! तुम निमिवंशमें योगशास्त्रके मर्मज्ञ हो, अतः उस योगका वर्णन करो॥ २६॥

केशिध्वज बोले—हे खाण्डिक्य! जिसमें स्थित होकर ब्रह्ममें लीन हुए मुनिजन फिर स्वरूपसे च्युत नहीं होते, मैं उस योगका वर्णन करता हूँ; श्रवण करो॥ २७॥

मनुष्यके बन्धन और मोक्षका कारण केवल मन ही है; विषयका संग करनेसे वह बन्धनकारी और विषयशून्य होनेसे मोक्षकारक होता है॥ २८॥ अतः विवेकज्ञानसम्पन्न मुनि अपने चित्तको विषयोंसे हटाकर मोक्षप्राप्तिके लिये ब्रह्मस्वरूप परमात्माका चिन्तन करे॥ २९॥ जिस प्रकार अयस्कान्तमणि अपनी शक्तिसे लोहेको खींचकर अपनेमें संयुक्त कर लेता है उसी प्रकार ब्रह्मचिन्तन करनेवाले मुनिको परमात्मा स्वभावसे ही स्वरूपमें लीन कर देता है॥ ३०॥ आत्मज्ञानके प्रयत्नभूत यम, नियम आदिकी अपेक्षा रखनेवाली जो मनकी विशिष्ट गति है, उसका ब्रह्मके साथ संयोग होना ही 'योग' कहलाता है॥ ३१॥ जिसका योग इस प्रकारके विशिष्ट धर्मसे युक्त होता है वह मुमुक्षु योगी कहा जाता है॥ ३२॥ जब मुमुक्षु पहले-पहले योगाभ्यास आरम्भ करता है तो उसे 'योगयुक्त योगी' कहते हैं और जब उसे परब्रह्मकी प्राप्ति हो जाती है तो वह 'विनिष्पन्नसमाधि' कहलाता है॥ ३३॥ यदि किसी विघ्नवश उस योगयुक्त योगीका चित्त दूषित हो जाता है तो जन्मान्तरमें भी उसी अभ्यासको करते रहनेसे वह मुक्त हो जाता है॥ ३४॥ विनिष्पन्नसमाधि योगी तो योगाग्निसे कर्मसमूहके भस्म हो जानेके कारण उसी जन्ममें थोड़े ही समयमें मोक्ष प्राप्त कर लेता है॥ ३५॥ योगीको चाहिये कि अपने चित्तको ब्रह्मचिन्तनके योग्य बनाता हुआ ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सत्य, अस्तेय और अपरिग्रहका निष्कामभावसे सेवन करे॥ ३६॥ तथा संयत चित्तसे स्वाध्याय, शौच, सन्तोष और तपका आचरण करे तथा मनको निरन्तर परब्रह्ममें लगाता रहे॥ ३७॥ ये पाँच-पाँच यम और नियम बतलाये गये हैं। इनका सकाम आचरण करनेसे पृथक्-पृथक् फल मिलते हैं और निष्कामभावसे सेवन करनेसे मोक्ष प्राप्त होता है॥ ३८॥

यतिको चाहिये कि भद्रासनादि आसनोंमेंसे किसी एकका अवलम्बन कर यम-नियमादि गुणोंसे युक्त हो योगाभ्यास करे॥ ३९॥ अभ्यासके द्वारा जो प्राणवायुको वशमें किया जाता है उसे 'प्राणायाम' समझना चाहिये। वह सबीज (ध्यान तथा मन्त्रपाठ आदि आलम्बनयुक्त) और निर्बीज (निरालम्ब) भेदसे दो प्रकारका है॥ ४०॥ सद्गुरुके

उपदेशसे जब योगी प्राण और अपानवायुद्वारा एक-दूसरेका निरोध करता है तो [क्रमशः रेचक और पूरक नामक] दो प्राणायाम होते हैं और इन दोनोंका एक ही समय संयम करनेसे [कुम्भक नामक] तीसरा प्राणायाम होता है॥ ४१॥ हे द्विजोत्तम! जब योगी सबीज प्राणायामका अभ्यास आरम्भ करता है तो उसका आलम्बन भगवान् अनन्तका हिरण्यगर्भ आदि स्थूलरूप होता है॥ ४२॥ तदनन्तर वह प्रत्याहारका अभ्यास करते हुए शब्दादि विषयोंमें अनुरक्त हुई अपनी इन्द्रियोंको रोककर अपने चित्तकी अनुगामिनी बनाता है॥ ४३॥ ऐसा करनेसे अत्यन्त चंचल इन्द्रियाँ उसके वशीभूत हो जाती हैं। इन्द्रियोंको वशमें किये बिना कोई योगी योग-साधन नहीं कर सकता॥ ४४॥ इस प्रकार प्राणायामसे वायु और प्रत्याहारसे इन्द्रियोंको वशीभूत करके चित्तको उसके शुभ आश्रयमें स्थित करे॥ ४५॥

खाण्डिक्य बोले—हे महाभाग! यह बतलाइये कि जिसका आश्रय करनेसे चित्तके सम्पूर्ण दोष नष्ट हो जाते हैं वह चित्तका शुभाश्रय क्या है?॥ ४६॥

केशिध्वज बोले—हे राजन्! चित्तका आश्रय ब्रह्म है जो कि मूर्त और अमूर्त अथवा अपर और पर-रूपसे स्वभावसे ही दो प्रकारका है॥ ४७॥ हे भूप! इस जगत्में ब्रह्म, कर्म और उभयात्मक नामसे तीन प्रकारकी भावनाएँ हैं॥ ४८॥ इनमें पहली कर्मभावना, दूसरी ब्रह्मभावना और तीसरी उभयात्मिकाभावना कहलाती है। इस प्रकार ये त्रिविध भावनाएँ हैं॥ ४९॥ सनन्दनादि मुनिजन ब्रह्मभावनासे युक्त हैं और देवताओंसे लेकर स्थावर-जंगमपर्यन्त समस्त प्राणी कर्मभावनायुक्त हैं॥ ५०॥ तथा [स्वरूपविषयक] बोध और [स्वर्गादिविषयक] अधिकारसे युक्त हिरण्यगर्भादिमें ब्रह्मकर्ममयी उभयात्मिकाभावना है॥ ५१॥

हे राजन्! जबतक विशेष ज्ञानके हेतु कर्म क्षीण नहीं होते तभीतक अहंकारादि भेदके कारण भिन्न दृष्टि रखनेवाले मनुष्योंको ब्रह्म और जगत्की भिन्नता प्रतीत होती है॥ ५२॥ जिसमें सम्पूर्ण भेद शान्त हो जाते हैं, जो सत्तामात्र और वाणीका अविषय है तथा स्वयं ही अनुभव करनेयोग्य है, वही ब्रह्मज्ञान कहलाता है॥ ५३॥ वही परमात्मा विष्णुका अरूप नामक परम रूप है, जो उनके विश्वरूपसे विलक्षण है॥ ५४॥

हे राजन्! योगाभ्यासी जन पहले-पहल उस रूपका चिन्तन नहीं कर सकते, इसलिये उन्हें श्रीहरिके विश्वमय स्थूल रूपका ही चिन्तन करना चाहिये॥ ५५॥ हिरण्यगर्भ, भगवान् वासुदेव, प्रजापति, मरुत्, वसु, रुद्र, सूर्य, तारे, ग्रहगण, गन्धर्व, यक्ष और दैत्य आदि समस्त देवयोनियाँ तथा मनुष्य, पशु, पर्वत, समुद्र, नदी, वृक्ष, सम्पूर्ण भूत एवं प्रधानसे लेकर विशेष (पंचतन्मात्रा) पर्यन्त उनके कारण तथा चेतन, अचेतन, एक, दो अथवा अनेक चरणोंवाले प्राणी और बिना चरणोंवाले जीव—ये सब भगवान् हरिके भावनात्रयात्मक मूर्तरूप हैं॥ ५६—५९॥ यह सम्पूर्ण चराचर जगत्, परब्रह्मस्वरूप भगवान् विष्णुका, उनकी शक्तिसे सम्पन्न 'विश्व' नामक रूप है॥ ६०॥

विष्णुशक्ति परा है, क्षेत्रज्ञ नामक शक्ति अपरा है और कर्म नामकी तीसरी शक्ति अविद्या कहलाती है॥ ६१॥ हे राजन्! इस अविद्या-शक्तिसे आवृत होकर वह सर्वगामिनी क्षेत्रज्ञ-शक्ति सब प्रकारके अति विस्तृत सांसारिक कष्ट भोगा करती है॥ ६२॥ हे भूपाल! अविद्या-शक्तिसे तिरोहित रहनेके कारण ही क्षेत्रज्ञ-शक्ति सम्पूर्ण प्राणियोंमें तारतम्यसे दिखलायी देती है॥ ६३॥ वह सबसे कम जड पदार्थोंमें है, उनसे

अधिक वृक्ष-पर्वतादि स्थावरोंमें, स्थावरोंसे अधिक सरीसृपादिमें और उनसे अधिक पक्षियोंमें है॥ ६४॥ पक्षियोंसे मृगोंमें और मृगोंसे पशुओंमें वह शक्ति अधिक है तथा पशुओंकी अपेक्षा मनुष्य भगवान्‌की उस (क्षेत्रज्ञ) शक्तिसे अधिक प्रभावित हैं॥ ६५॥ मनुष्योंसे नाग, गन्धर्व और यक्ष आदि समस्त देवगणोंमें, देवताओंसे इन्द्रमें, इन्द्रसे प्रजापतिमें और प्रजापतिसे हिरण्यगर्भमें उस शक्तिका विशेष प्रकाश है॥ ६६-६७॥ हे राजन्! ये सम्पूर्ण रूप उस परमेश्वरके ही शरीर हैं, क्योंकि ये सब आकाशके समान उनकी शक्तिसे व्याप्त हैं॥ ६८॥

हे महामते! विष्णु नामक ब्रह्मका दूसरा अमूर्त (आकारहीन) रूप है, जिसका योगिजन ध्यान करते हैं और जिसे बुधजन 'सत्' कहकर पुकारते हैं॥ ६९॥ हे नृप! जिसमें कि ये सम्पूर्ण शक्तियाँ प्रतिष्ठित हैं वही भगवान्‌का विश्वरूपसे विलक्षण द्वितीय रूप है॥ ७०॥ हे नरेश! भगवान्‌का वही रूप अपनी लीलासे देव, तिर्यक् और मनुष्यादिकी चेष्टाओंसे युक्त सर्वशक्तिमय रूप धारण करता है॥ ७१॥ इन रूपोंमें अप्रमेय भगवान्‌की जो व्यापक एवं अव्याहत चेष्टा होती है वह संसारके उपकारके लिये ही होती है, कर्मजन्य नहीं होती॥ ७२॥ हे राजन्! योगाभ्यासीको आत्म-शुद्धिके लिये भगवान् विश्वरूपके उस सर्वपापनाशक रूपका ही चिन्तन करना चाहिये॥ ७३॥ जिस प्रकार वायुसहित अग्नि ऊँची ज्वालाओंसे युक्त होकर शुष्क तृणसमूहको जला डालता है उसी प्रकार चित्तमें स्थित हुए भगवान् विष्णु योगियोंके समस्त पाप नष्ट कर देते हैं॥ ७४॥ इसलिये सम्पूर्ण शक्तियोंके आधार भगवान् विष्णुमें चित्तको स्थिर करे, यही शुद्ध धारणा है॥ ७५॥

हे राजन्! तीनों भावनाओंसे अतीत भगवान् विष्णु ही योगिजनोंकी मुक्तिके लिये उनके [स्वतः] चंचल तथा [किसी अनूठे विषयमें] स्थिर रहनेवाले चित्तके शुभ आश्रय हैं॥ ७६॥ हे पुरुषसिंह! इसके अतिरिक्त मनके आश्रयभूत जो अन्य देवता आदि कर्मयोनियाँ हैं, वे सब अशुद्ध हैं॥ ७७॥ भगवान्‌का यह मूर्तरूप चित्तको अन्य आलम्बनोंसे निःस्पृह कर देता है। इस प्रकार चित्तका भगवान्‌में स्थिर करना ही धारणा कहलाती है॥ ७८॥

हे नरेन्द्र! धारणा बिना किसी आधारके नहीं हो सकती; इसलिये भगवान्‌के जिस मूर्तरूपका जिस प्रकार ध्यान करना चाहिये, वह सुनो॥ ७९॥ जो प्रसन्नवदन और कमलदलके समान सुन्दर नेत्रोंवाले हैं, सुन्दर कपोल और विशाल भालसे अत्यन्त सुशोभित हैं तथा अपने सुन्दर कानोंमें मनोहर कुण्डल पहने हुए हैं, जिनकी ग्रीवा शंखके समान और विशाल वक्षःस्थल श्रीवत्सचिह्नसे सुशोभित है, जो तरंगाकार त्रिवली तथा नीची नाभिवाले उदरसे सुशोभित हैं, जिनके लम्बी-लम्बी आठ अथवा चार भुजाएँ हैं तथा जिनके जंघा एवं ऊरु समानभावसे स्थित हैं और मनोहर चरणारविन्द सुघरतासे विराजमान हैं उन निर्मल पीताम्बरधारी ब्रह्मस्वरूप भगवान् विष्णुका चिन्तन करे॥ ८०—८३॥ हे राजन्! किरीट, हार, केयूर और कटक आदि आभूषणोंसे विभूषित, शार्ङ्गधनुष, शंख, गदा, खड्ग, चक्र तथा अक्षमालासे युक्त वरद और अभययुक्त हाथोंवाले* [तथा अँगुलियोंमें धारण की हुई] रत्नमयी मुद्रिकासे

* चतुर्भुज-मूर्तिके ध्यानमें चारों हाथोंमें क्रमशः शंख, चक्र, गदा और पद्मकी भावना करे तथा अष्टभुजरूपका ध्यान करते समय छः हाथोंमें तो शार्ङ्ग आदि छः आयुधोंकी भावना करे तथा शेष दोमें पद्म और बाण अथवा वरद और अभय-मुद्राका चिन्तन करे।

शोभायमान भगवान्‌के दिव्य रूपका योगीको अपना चित्त एकाग्र करके तन्मयभावसे तबतक चिन्तन करना चाहिये जबतक यह धारणा दृढ़ न हो जाय॥ ८४—८६॥ जब चलते-फिरते, उठते-बैठते अथवा स्वेच्छानुकूल कोई और कर्म करते हुए भी ध्येय मूर्ति अपने चित्तसे दूर न हो तो इसे सिद्ध हुई माननी चाहिये॥ ८७॥

इसके दृढ़ होनेपर बुद्धिमान् व्यक्ति शंख, चक्र, गदा और शार्ङ्ग आदिसे रहित भगवान्‌के स्फटिकाक्षमाला और यज्ञोपवीतधारी शान्त स्वरूपका चिन्तन करे॥ ८८॥ जब यह धारणा भी पूर्ववत् स्थिर हो जाय तो भगवान्‌के किरीट, केयूरादि आभूषणोंसे रहित रूपका स्मरण करे॥ ८९॥ तदनन्तर विज्ञ पुरुष अपने चित्तमें एक (प्रधान) अवयव-विशिष्ट भगवान्‌का हृदयसे चिन्तन करे और फिर सम्पूर्ण अवयवोंको छोड़कर केवल अवयवीका ध्यान करे॥ ९०॥

हे राजन्! जिसमें परमेश्वरके रूपकी ही प्रतीति होती है, ऐसी जो विषयान्तरकी स्पृहासे रहित एक अनवरत धारा है उसे ही ध्यान कहते हैं; यह अपनेसे पूर्व यम-नियमादि छः अंगोंसे निष्पन्न होता है॥ ९१॥ उस ध्येय पदार्थका ही जो मनके द्वारा ध्यानसे सिद्ध होनेयोग्य कल्पनाहीन (ध्याता, ध्येय और ध्यानके भेदसे रहित) स्वरूप ग्रहण किया जाता है उसे ही समाधि कहते हैं॥ ९२॥ हे राजन्! [समाधिसे होनेवाला भगवत्साक्षात्काररूप] विज्ञान ही प्राप्तव्य परब्रह्मतक पहुँचानेवाला है तथा सम्पूर्ण भावनाओंसे रहित एकमात्र आत्मा ही प्रापणीय (वहाँतक पहुँचनेवाला) है॥ ९३॥ मुक्ति-लाभमें क्षेत्रज्ञ कर्ता है और ज्ञान करण है; [ज्ञानरूपी करणके द्वारा क्षेत्रज्ञके] मुक्तिरूपी कार्यको सिद्ध करके वह विज्ञान कृतकृत्य होकर निवृत्त हो जाता है॥ ९४॥ उस समय यह भगवद्भावसे भरकर परमात्मासे अभिन्न हो जाता है। इसका भेद-ज्ञान तो अज्ञानजन्य ही है॥ ९५॥ भेद उत्पन्न करनेवाले अज्ञानके सर्वथा नष्ट हो जानेपर ब्रह्म और आत्मामें असत् (अविद्यमान) भेद कौन कर सकता है?॥ ९६॥ हे खाण्डिक्य! इस प्रकार तुम्हारे पूछनेके अनुसार मैंने संक्षेप और विस्तारसे योगका वर्णन किया; अब मैं तुम्हारा और क्या कार्य करूँ?॥ ९७॥

खाण्डिक्य बोले—आपने इस महायोगका वर्णन करके मेरा सभी कार्य कर दिया, क्योंकि आपके उपदेशसे मेरे चित्तका सम्पूर्ण मल नष्ट हो गया है॥ ९८॥ हे राजन्! मैंने जो 'मेरा' कहा यह भी असत्य ही है, अन्यथा ज्ञेय वस्तुको जाननेवाले तो यह भी नहीं कह सकते॥ ९९॥ 'मैं' और 'मेरा' ऐसी बुद्धि और इनका व्यवहार भी अविद्या ही है, परमार्थ तो कहने-सुननेकी बात नहीं है क्योंकि वह वाणीका अविषय है॥ १००॥ हे केशिध्वज! आपने इस मुक्तिप्रद योगका वर्णन करके मेरे कल्याणके लिये सब कुछ कर दिया, अब आप सुखपूर्वक पधारिये॥ १०१॥

श्रीपराशरजी बोले—हे ब्रह्मन्! तदनन्तर खाण्डिक्यसे यथोचित पूजित हो राजा केशिध्वज अपने नगरमें चले आये॥ १०२॥ तथा खाण्डिक्य भी अपने पुत्रको राज्य दे* श्रीगोविन्दमें चित्त लगाकर योग सिद्ध करनेके लिये [निर्जन] वनको चले गये॥ १०३॥ वहाँ यमादि गुणोंसे युक्त होकर एकाग्रचित्तसे ध्यान करते हुए राजा खाण्डिक्य विष्णु नामक निर्मल ब्रह्ममें लीन हो गये॥ १०४॥ किन्तु केशिध्वज विदेहमुक्तिके लिये अपने

* यद्यपि खाण्डिक्य उस समय राजा नहीं था; तथापि वनमें जो उसके दुर्ग, मन्त्री और भृत्य आदि थे उन्हींका स्वामी अपने पुत्रको बनाया।

कर्मोंको क्षय करते हुए समस्त विषय भोगते रहे। उन्होंने फलकी इच्छा न करके अनेकों शुभ-कर्म किये॥ १०५॥ हे द्विज! इस प्रकार अनेकों कल्याणप्रद भोगोंको भोगते हुए उन्होंने पाप और मल (प्रारब्ध-कर्म) का क्षय हो जानेपर तापत्रयको दूर करनेवाली आत्यन्तिक सिद्धि प्राप्त कर ली॥ १०६॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके छठे अंशमें सातवाँ अध्याय समाप्त॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

शिष्यपरम्परा, माहात्म्य और उपसंहार

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! इस प्रकार मैंने तुमसे तीसरे आत्यन्तिक प्रलयका वर्णन किया, जो सनातन ब्रह्ममें लयरूप मोक्ष ही है॥ १॥ मैंने तुमसे संसारकी उत्पत्ति, प्रलय, वंश, मन्वन्तर तथा वंशोंके चरित्रोंका वर्णन किया॥ २॥ हे मैत्रेय! मैंने तुम्हें सुननेके लिये उत्सुक देखकर यह सम्पूर्ण शास्त्रोंमें श्रेष्ठ सर्वपापविनाशक और पुरुषार्थका प्रतिपादक वैष्णवपुराण सुना दिया। अब तुम्हें जो और कुछ पूछना हो पूछो। मैं उसका तुमसे वर्णन करूँगा॥ ३-४॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—भगवन्! मैंने आपसे जो कुछ पूछा था वह सभी आप कह चुके और मैंने भी उसे श्रद्धाभक्तिपूर्वक सुना, अब मुझे और कुछ भी पूछना नहीं है॥ ५॥ हे मुने! आपकी कृपासे मेरे समस्त सन्देह निवृत्त हो गये और मेरा चित्त निर्मल हो गया तथा मुझे संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयका ज्ञान हो गया॥ ६॥ हे गुरो! मैं चार प्रकारकी राशि[1] और तीन प्रकारकी शक्तियाँ[2] जान गया तथा मुझे त्रिविध भाव-भावनाओंका[3] भी सम्यक् बोध हो गया॥ ७॥ हे द्विज! आपकी कृपासे मैं, जो जानना चाहिये वह भली प्रकार जान गया कि यह सम्पूर्ण जगत् श्रीविष्णुभगवान्‌से भिन्न नहीं है, इसलिये अब मुझे अन्य बातोंके जाननेसे कोई लाभ नहीं॥ ८॥ हे महामुने! आपके प्रसादसे मैं निस्सन्देह कृतार्थ हो गया क्योंकि मैंने वर्ण-धर्म आदि सम्पूर्ण धर्म और प्रवृत्ति तथा निवृत्तिरूप समस्त कर्म जान लिये। हे विप्रवर! आप प्रसन्न रहें; अब मुझे और कुछ भी पूछना नहीं है॥ ९-१०॥ हे गुरो! मैंने आपको जो इस सम्पूर्ण पुराणके कथन करनेका कष्ट दिया है, उसके लिये आप मुझे क्षमा करें; साधुजनोंकी दृष्टिमें पुत्र और शिष्यमें कोई भेद नहीं होता॥ ११॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मुने! मैंने तुमको जो यह वेदसम्मत पुराण सुनाया है इसके श्रवणमात्रसे सम्पूर्ण दोषोंसे उत्पन्न हुआ पापपुंज नष्ट हो जाता है॥ १२॥ इसमें मैंने तुमसे सृष्टिकी उत्पत्ति, प्रलय, वंश, मन्वन्तर और वंशोंके चरित—इन सभीका वर्णन किया है॥ १३॥ इस ग्रन्थमें देवता, दैत्य, गन्धर्व, नाग, राक्षस, यक्ष, विद्याधर, सिद्ध और अप्सरागणका भी वर्णन किया गया है॥ १४॥ आत्माराम और तपोनिष्ठ मुनिजन चातुर्वर्ण्य-विभाग, महापुरुषोंके विशिष्ट चरित, पृथिवीके पवित्र क्षेत्र, पवित्र नदी और

१-देखिये—प्रथम अंश, अध्याय २२, श्लोक २३—३३।
२- '' षष्ठ अंश, अध्याय ७, श्लोक ६१—६३।
३- '' षष्ठ अंश, अध्याय ७, श्लोक ४८—५१।

समुद्र, अत्यन्त पावन पर्वत, बुद्धिमान् पुरुषोंके चरित, वर्ण-धर्म आदि धर्म तथा वेद और शास्त्रोंका भी इसमें सम्यक्रूपसे निरूपण हुआ है, जिनके स्मरणमात्रसे मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ १५—१७॥

जो अव्ययात्मा भगवान् हरि संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके एकमात्र कारण हैं उनका भी इसमें कीर्तन किया गया है॥ १८॥ जिनके नामका विवश होकर कीर्तन करनेसे ही मनुष्य सिंहसे डरे हुए गीदड़ोंके समान पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ १९॥ हे मैत्रेय! जिनका भक्तिपूर्वक किया हुआ नाम-संकीर्तन सम्पूर्ण धातुओंको पिघलानेवाले अग्निके समान समस्त पापोंका सर्वोत्तम विलयन (लीन कर देनेवाला) है॥ २०॥ जिनका एक बार भी स्मरण करनेसे मनुष्योंको नरक-यातनाएँ देनेवाला अति उग्र कलि-कल्मष तुरन्त नष्ट हो जाता है॥ २१॥ हे द्विजोत्तम! हिरण्यगर्भ, देवेन्द्र, रुद्र, आदित्य, अश्विनीकुमार, वायु, अग्नि, वसु, साध्य और विश्वेदेव आदि देवगण, यक्ष, राक्षस, उरग, सिद्ध, दैत्य, गन्धर्व, दानव, अप्सरा, तारा, नक्षत्र, समस्त ग्रह, सप्तर्षि, लोक, लोकपालगण, ब्राह्मणादि मनुष्य, पशु, मृग, सरीसृप, विहंग, पलाश आदि वृक्ष, वन, अग्नि, समुद्र, नदी, पाताल तथा पृथिवी आदि और शब्दादि विषयोंके सहित यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जिनके आगे सुमेरुके सामने एक रेणुके समान है तथा जो इसके उपादान-कारण हैं उन सर्व सर्वज्ञ सर्वस्वरूप रूपरहित और पापनाशक भगवान् विष्णुका इसमें कीर्तन किया गया है॥ २२—२७॥

हे मुनिसत्तम! अश्वमेध-यज्ञमें अवभृथ (यज्ञान्त) स्नान करनेसे जो फल मिलता है वही फल मनुष्य इसको सुनकर प्राप्त कर लेता है॥ २८॥ प्रयाग, पुष्कर, कुरुक्षेत्र तथा समुद्रतटपर रहकर उपवास करनेसे जो फल मिलता है वही इस पुराणको सुननेसे प्राप्त हो जाता है॥ २९॥ एक वर्षतक नियमानुसार अग्निहोत्र करनेसे मनुष्यको जो महान् पुण्यफल मिलता है वही इसे एक बार सुननेसे हो जाता है॥ ३०॥ ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशीके दिन मथुरापुरीमें यमुना-स्नान करके कृष्णचन्द्रका दर्शन करनेसे जो फल मिलता है हे विप्रर्षे! वही भगवान् कृष्णमें चित्त लगाकर इस पुराणके एक अध्यायको सावधानतापूर्वक सुननेसे मिल जाता है॥ ३१-३२॥

हे मुनिश्रेष्ठ! ज्येष्ठमासके शुक्लपक्षकी द्वादशीको मथुरापुरीमें उपवास करते हुए यमुना-स्नान करके समाहितचित्तसे श्रीअच्युतका भलीप्रकार पूजन करनेसे मनुष्यको अश्वमेध-यज्ञका सम्पूर्ण फल मिलता है॥ ३३-३४॥ कहते हैं अपने वंशजोंद्वारा [यमुनातटपर पिण्डदान करनेसे] उन्नति लाभ किये हुए अन्य पितरोंकी समृद्धि देखकर दूसरे लोगोंके पितृ-पितामहोंने [अपने वंशजोंको लक्ष्य करके] इस प्रकार कहा था— ॥ ३५॥ क्या हमारे कुलमें उत्पन्न हुआ कोई पुरुष ज्येष्ठ-मासके शुक्ल पक्षमें [द्वादशी तिथिको] मथुरामें उपवास करते हुए यमुनाजलमें स्नान करके श्रीगोविन्दका पूजन करेगा, जिससे हम भी अपने वंशजोंद्वारा उद्धार पाकर ऐसा परम ऐश्वर्य प्राप्त कर सकेंगे? जो बड़े भाग्यवान् होते हैं उन्हींके वंशधर ज्येष्ठमासीय शुक्लपक्षमें भगवान्का अर्चन करके यमुनामें पितृगणको पिण्डदान करते हैं॥ ३६—३८॥ उस समय यमुनाजलमें स्नान करके सावधानतापूर्वक भलीप्रकार भगवान्का पूजन करनेसे और पितृगणको पिण्ड देनेसे अपने पितामहोंको तारता हुआ पुरुष जिस पुण्यका भागी होता है वही पुण्य भक्तिपूर्वक इस पुराणका एक अध्याय सुननेसे प्राप्त हो जाता है।॥ ३९-४०॥ यह पुराण संसारसे भयभीत हुए पुरुषोंका अति उत्तम रक्षक, अत्यन्त श्रवणयोग्य तथा

पवित्रोंमें परम उत्तम है॥ ४१॥ यह मनुष्योंके दु:स्वप्नोंको नष्ट करनेवाला, सम्पूर्ण दोषोंको दूर करनेवाला, मांगलिक वस्तुओंमें परम मांगलिक और सन्तान तथा सम्पत्तिका देनेवाला है॥ ४२॥

इस आर्षपुराणको सबसे पहले भगवान् ब्रह्माजीने ऋभुको सुनाया था। ऋभुने प्रियव्रतको सुनाया और प्रियव्रतने भागुरिसे कहा॥ ४३॥ फिर इसे भागुरिने स्तम्भमित्रको, स्तम्भमित्रने दधीचिको, दधीचिने सारस्वतको और सारस्वतने भृगुको सुनाया॥ ४४॥ तथा भृगुने पुरुकुत्ससे, पुरुकुत्सने नर्मदासे और नर्मदाने धृतराष्ट्र एवं पूरणनागसे कहा॥ ४५॥ हे द्विज! इन दोनोंने यह पुराण नागराज वासुकिको सुनाया। वासुकिने वत्सको, वत्सने अश्वतरको, अश्वतरने कम्बलको और कम्बलने एलापुत्रको सुनाया॥ ४६-४७॥ इसी समय मुनिवर वेदशिरा पाताललोकमें पहुँचे, उन्होंने यह समस्त पुराण प्राप्त किया और फिर प्रमतिको सुनाया॥ ४८॥ प्रमतिने उसे परम बुद्धिमान् जातुकर्णको दिया तथा जातुकर्णने अन्यान्य पुण्यशील महात्माओंको सुनाया॥ ४९॥

[पूर्व-जन्ममें सारस्वतके मुखसे सुना हुआ यह पुराण] पुलस्त्यजीके वरदानसे मुझे भी स्मरण रह गया। सो मैंने ज्यों-का-त्यों तुम्हें सुना दिया। अब तुम भी कलियुगके अन्तमें इसे शिनीकको सुनाओगे॥ ५०-५१॥

जो पुरुष इस अति गुह्य और कलि-कल्मष-नाशक पुराणको भक्तिपूर्वक सुनता है वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ५२॥ जो मनुष्य इसका प्रतिदिन श्रवण करता है उसने तो मानो सभी तीर्थोंमें स्नान कर लिया और सभी देवताओंकी स्तुति कर ली॥ ५३॥ इसके दस अध्यायोंका श्रवण करनेसे नि:सन्देह कपिला गौके दानका अति दुर्लभ पुण्य-फल प्राप्त होता है॥ ५४॥

जो पुरुष सम्पूर्ण जगत्के आधार, आत्माके अवलम्ब, सर्वस्वरूप, सर्वमय ज्ञान और ज्ञेयरूप आदि-अन्तरहित तथा समस्त देवताओंके हितकारक श्रीविष्णुभगवान्का चित्तमें ध्यान कर इस सम्पूर्ण पुराणको सुनता है उसे नि:सन्देह अश्वमेध-यज्ञका समग्र फल प्राप्त होता है॥ ५५॥

जिसके आदि, मध्य और अन्तमें अखिल जगत्की सृष्टि, स्थिति तथा संहारमें समर्थ ब्रह्मज्ञानमय चराचरगुरु भगवान् अच्युतका ही कीर्तन हुआ है उस परम श्रेष्ठ और अमल पुराणको सुनने, पढ़ने और धारण करनेसे जो फल प्राप्त होता है वह सम्पूर्ण त्रिलोकीमें और कहीं प्राप्त नहीं हो सकता, क्योंकि एकान्त मुक्तिरूप सिद्धिको देनेवाले भगवान् विष्णु ही इसके प्राप्तव्य फल हैं॥ ५६॥

जिनमें चित्त लगानेवाला कभी नरकमें नहीं जा सकता, जिनके स्मरणमें स्वर्ग भी विघ्नरूप है, जिनमें चित्त लग जानेपर ब्रह्मलोक भी अति तुच्छ प्रतीत होता है तथा जो अव्यय प्रभु निर्मलचित्त पुरुषोंके हृदयमें स्थित होकर उन्हें मोक्ष देते हैं उन्हीं अच्युतका कीर्तन करनेसे यदि पाप विलीन हो जाते हैं तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?॥ ५७॥ यज्ञवेत्ता कर्मनिष्ठ लोग यज्ञोंद्वारा जिनका यज्ञेश्वररूपसे यजन करते हैं, ज्ञानीजन जिनका परावरमय ब्रह्मस्वरूपसे ध्यान करते हैं, जिनका स्मरण करनेसे पुरुष न जन्मता है, न मरता है, न बढ़ता है और न क्षीण ही होता है तथा जो न सत् (कारण) हैं और न असत् (कार्य) ही हैं उन श्रीहरिके अतिरिक्त और क्या सुना जाय?॥ ५८॥ जो अनादिनिधन भगवान् विभु पितृरूप धारणकर स्वधासंज्ञक कव्यको और देवता होकर अग्निमें विधिपूर्वक हवन

किये हुए स्वाहा नामक हव्यको ग्रहण करते हैं तथा जिन समस्त शक्तियोंके आश्रयभूत भगवान्‌के विषयमें बड़े-बड़े प्रमाणकुशल पुरुषोंके प्रमाण भी इयत्ता करनेमें समर्थ नहीं होते वे श्रीहरि श्रवण-पथमें जाते ही समस्त पापोंको नष्ट कर देते हैं॥ ५९ ॥

जिन परिणामहीन प्रभुका आदि, अन्त, वृद्धि और क्षय कुछ भी नहीं होता, जो नित्य निर्विकार पदार्थ हैं उन स्तवनीय प्रभु पुरुषोत्तमको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ६० ॥ जो उन्हींके समान गुणोंको भोगनेवाला है, एक होकर भी अनेक रूप है तथा शुद्ध होकर भी विभिन्न रूपोंके कारण अशुद्ध-(विकारवान्)-सा प्रतीत होता है और जो ज्ञानस्वरूप एवं समस्त भूत तथा विभूतियोंका कर्ता है उस नित्य अव्यय पुरुषको नमस्कार है॥ ६१ ॥ जो ज्ञान (सत्त्व), प्रवृत्ति (रज) और नियमन (तम)-की एकतारूप है, पुरुषको भोग प्रदान करनेमें कुशल है, त्रिगुणात्मक तथा अव्याकृत है, संसारकी उत्पत्तिका कारण है, उस स्वतःसिद्ध तथा जराशून्य प्रभुको सर्वदा नमस्कार करता हूँ॥ ६२ ॥ जो आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवीरूप है, शब्दादि भोग्य विषयोंकी प्राप्ति करानेमें समर्थ है और पुरुषका उसकी समस्त इन्द्रियोंद्वारा उपकार करता है उस सूक्ष्म और विराट्‌रूप व्यक्त परमात्माको नमस्कार करता हूँ॥ ६३ ॥

इस प्रकार जिन नित्य सनातन परमात्माके प्रकृति-पुरुषमय ऐसे अनेक रूप हैं वे भगवान् हरि समस्त पुरुषोंको जन्म और जरा आदिसे रहित (मुक्तिरूप) सिद्धि प्रदान करें॥ ६४ ॥

इस प्रकार श्रीविष्णुपुराणके छठे अंशमें आठवाँ अध्याय समाप्त॥ ८ ॥

इस प्रकार श्रीपराशरमुनिद्वारा विरचित श्रीविष्णुपरत्वनिर्णायक श्रीविष्णुमहापुराणका छठा अंश समाप्त।

॥ श्रीविष्णुमहापुराण समाप्त ॥